पुरुषार्थपकारी

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के शुध्धाचारी पूज्य श्री सुखा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य स्व तपस्वीजी श्री केवल ऋषिजी महाराज! आप आने मुख साथ से महा परिश्रम से हैद्राबाद जैसा बडा क्षेत्र साधुमार्गीय धर्म में प्रसिद्ध किया व परमाप्रेश से राजाबहादुर दानवीर लाला सुखदेव सहायजी ज्वाला प्रसादजी को धर्मप्रेमी बनाये उनके प्रतापम ही शास्त्रोद्धारादि महा कार्य हैद्राबाद में हुए इस लिये इस कार्य के पुरुषार्थपकारी आपही हुए जो जो भव्य जीवों इन शास्त्र द्वारा महाल्लाभ प्राप्त करेंगे वे आपही के कृतज्ञ होंगे

सिष्य अमोल ऋषि

उपकारी महात्मा

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के कविवरेन्द्र महा पुरुष श्री तिलोक ऋषिजी महाराज के पाटवीय शिष्य वर्य, पूज्यपाद गुरु वर्य श्री रत्नऋषिजी महाराज!

आप श्री की आज्ञासे ही शास्त्रोद्धार का काय स्वीकार किया और आपके परमाशिर्वाद से पूर्ण कर सका इस लिये इस कार्य के परमोपकारी महात्मा आप ही हैं आप का उपकार केवल मेरे पर ही नहीं परन्तु जो जो भव्यों इन शास्त्रोंद्वारा लाभ प्राप्त करेंगे उन सबपर ही होगा

दास अमोल ऋषि

अपनी छची ऋद्धि का त्याग कर हैद्राबाद सीकन्द्राबादमें दीक्षा धारक बाल ब्रह्मचारी पण्डित मुनि श्री अमोलक ऋषिजीके शिष्यवर्य ज्ञानानन्दी श्री देव ऋषिजी वैय्यावृत्यी श्री राज ऋषिजी तपस्वी श्री उदय ऋषिजी और विद्याविलासी श्री मोहन ऋषिजी इन चारों मुनिवरोंने गुरु आज्ञाका बहुमानसे स्वीकार कर आहार पानी आदि सुख्याप चार का संयोग मिला दो प्रहर का व्याख्यान प्रसंगीमे वार्तालाप,काय दक्षता व समाधि भाव से सहाय दिया जिस से ही यह महा कार्य इतनी शीघ्रता से लेखक पूर्ण सके इस लिये इन कार्य वरक उक्त मुनिवरों का भी महा उपकार है

पंजाब देश पावन करता पूज्य श्री सोहन लालजी, महात्मा श्री माधव मुनिजी, शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी तपस्वीजी माणकचन्दजी, कवी वर श्री अमी ऋषिजी,सुवक्ता श्री दौलत ऋषिजी व श्री नथमलजी, व श्री जोरावरमलजी कविवर श्री नानचन्द्रजी प्रवर्तिनी सतीजी श्री पार्वतीजी गुणज्ञ सतीजी श्री रंभाजी धोराजी सर्वज्ञ भंडार भीना सरवाले फकीरामजी बहादरमलजी बाँठीया, लीम्बडी भंडार कुचेरा भंडार, इत्यादिक की तरफ से शास्त्रों व सम्मति द्वारा इस कार्य को बहुत सहायता मिली है इस लिये इन का भी बहुत उपकार मानते हैं

आभारी महात्मा

[illegible] पारन [illegible] पक्ष के परम पूज्य श्री [illegible] महाराज के शिष्यवर्य [illegible] महाराज।

इस शास्त्रोद्धार [illegible] आप श्री [illegible] [illegible] समय पर [illegible] में इस कार्य को पूर्ण कर सका [illegible] में ही नहीं परन्तु जो जो भव्य [illegible] शास्त्रद्वारा लाभ प्राप्त करेंगे वे सब ही आप के आभारी होंगे

आपका अमोल ऋषि

हिन्दी भाषानुवादक

बुद्धाचार्य पूज्य श्री खूबा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य आर्य मुनि श्री चेना ऋषिजी महाराजके शिष्यवर्य बाल ब्रह्मचारी पण्डित मुनिश्री अमोलक ऋषिजी महाराज! आपने बड़े साहस से शास्त्रोद्धार जैसे महा परिश्रम वाले कार्य का जिस उत्साहसे स्वीकार किया था उस ही उत्साह से तीन वर्ष जितने स्वल्प समय में अहर्निश कार्य को अच्छा चलाने के शुभाशय से सदैव एक भक्त भोजन और दिन के सात घंटे लेखन में व्यतीत कर पूर्ण किया और ऐसा सरल बनादिया कि कोई भी हिन्दी भाषज्ञ सहज में समझ सके, ऐसे ज्ञानदान के महा उपकार तले दब हुए हम आप के बड़े आभारी हैं

सबकी तर्फ से

सुखदेव सहाय ज्वाला प्रसाद

सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र की प्रस्तावना

देवाधिदेवं जिन नत्वा, सद्गुरू ज्ञान प्रसादतः॥सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्रस्य वार्तिक कुरुते मया ॥१॥

सर्व देवों के देव श्री जिनेश्वर भगवन को नमस्कार करके श्री सद्गुरु महाराजने दी हुई ज्ञान रूप प्रसादी के प्रसाद कर यह सातवा उपांग सूर्य प्रज्ञप्ति शास्त्र का हिन्दी भाषानुवाद करता हूं ॥ १ ॥ यह भगवती शास्त्र का उपांग कहा जाता है ज्ञाता सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध में चन्द्रमा का अध्ययन है तथा निरयावलिका के पुप्फिया अध्ययन में सूर्य की अग्रमहिषियों के नाम मात्र व पूर्वभव की करणीका कथन किया है यह सूर्य किस प्रकार ऋद्धिवाला है जिस का मण्डल, गति, गमन, संवत्सरों वर्ष पक्ष, महिने तीथि नक्षत्रों का काल मान व ज्योतिष्क नक्षत्रों ज्योतिषी के मुख वगैरह बहुत विस्तार से वर्णन किया है यह सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र कैसा चमत्कारिक (चमत्कारी) व कितना गहन है यह कुछ जनों से छिपा नहीं है बडे २ महात्मा साधुओं भी इस का पठन मात्र करते अचकाते हैं जिन २ ने इस का पठन किया उन २ ने इस के चमत्कार देखे ऐसी दंत कथाओं भी बहुतसी प्रचलित है इस से सहज भान होगा कि इस को लिखना और छपा के प्रसिद्धी में लाना यह कितना विकट काम है सामान्य पुरुष से हो सकता है क्या ? ऐसे दुष्प्राप्य शास्त्र को आज हिन्दी भाषानुवाद युक्त प्रसिद्धी में रखने जो मैं समर्थ होता हूं यह प्रबल प्रताप कच्छ देश पावन करता आठ कोटी बडी पक्ष के प्रतापी परमपूज्य श्री कर्मसिंहजी महाराज के ज्येष्ठ

ताभग तारत नगामा मा गी रग म श्रेष्ठ दूरदर्शी दानवीर राजा बहादुर लालाजी साहब श्री सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रसादजी

आपने साधु मुनिराजों को और ज्ञान दान जैसे महान् कार्य के लिये जैन साधुमार्गीय धर्म के परम माननीय व परम आदरणीय बत्तीस शास्त्रों का हिन्दी भाषानुवाद करके छपाने में रु० २०० का सर्वथा अमूल्य भेंट स्वीकार किया और यूरोप युद्धारंभ से सब वस्तु के भाव में वृद्धि होने से रु० ४००० के खर्च में भी काम पूरा होनेका संभव नहीं होते भी आपने उस ही उत्साह से काम को समाप्त कर सबको अमूल्य महालाभ दिया यह आप की उदारता साधुमार्गियों को गौरव दर्शक व अनुकरणीय है!

धराला (काठीयावाड) निवासी धर्म प्रेमी कायस्थ कुलभूषण मणिलाल शिवलाल शेठ इन्होंने जैन ट्रेनिंग कालेज रतलाम में संस्कृत प्राकृत व अंग्रेजी का अभ्यास कर तीन वर्ष उपदेशक रह अच्छी कौशल्यता प्राप्त की इन से शास्त्रोद्धार का काम अच्छा होगा ऐसी सूचना गुरुवर्य श्री रत्न ऋषिजी महाराज से मिलने से इन को बोलाये, इन्होंने अन्य प्रेस में शुद्ध अच्छा और शीघ्र काम होता नहीं इस शास्त्रोद्धार प्रेस कायम किया और प्रेस के कर्मचारियों को उत्साही कार्य दक्ष बना काम किया जैन ही भाषानुवाद की प्रेसकोपी बनाइ यद्यपि यह भाइ पगार से रहे थे तथापि इन्होंने इस कार्य की सेवा वेतन के प्रमाण से अधिक की इस लिये इनको भी धन्यवाद देते हैं

सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र की प्रस्तावना

देवाधिदेवं जिन नत्वा, सद्गुरू ज्ञान प्रसादतः॥सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्रस्य वार्तिक कुरुते मया ॥१॥

सर्व देवों के देव श्री जिनेश्वर भगवन को नमस्कार करके श्री सद्गुरु महाराजने दी हुई ज्ञान रूप प्रसादी के प्रमाद कर यह सातवा उपांग सूर्य प्रज्ञप्ति शास्त्र का हिन्दी भाषानुवाद करता हूं ॥ १ ॥ यह ज्ञाताजी शास्त्र का उपांग कहा जाता है ज्ञाता सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध में चन्द्रमा का अध्ययन है तथा दूसरे श्रुतस्कन्ध में सूर्य की अग्रमहिषियों के नाम मात्र व पूर्वभव की करणीका कथन किया है वह सूर्य किस प्रकार प्रकाशता है जिस का मंडल,गति,गमन, संवत्सरों ऋतु पक्ष, महिने तीथि नक्षत्रों का काल प्रमाण इत्यादि नक्षत्रों ज्योतिषी के सुख वगैरह बहुत विस्तार से वर्णन किया है यह सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र कैसा चमत्कारिक (चमत्कारी) व कितना गहन है यह गुप्त जनों से छिपा नहीं है बडे २ महात्मा साधुओं भी इस का पठन मात्र करते अचकाते हैं जिन २ ने इस का पठन किया उन २ ने इस के चमत्कार देखे ऐसी दंत कथाओं भी बहुतसी प्रचलित है इस से सहज ज्ञान होता कि इस को लिखना और छपा के प्रसिद्धी में लाना यह कितना विकट काम है सामान्य पुरुष से हो सकता है क्या ? ऐसे दुष्प्राप्य शास्त्र को आज हिन्दी भाषानुवाद युक्त प्रसिद्धी में रखने को मैं समर्थ होता हूं यह प्रबल प्रताप कच्छ देश पावन करता आठ कोटी बडी पक्ष के प्रतापी परमपूज्य श्री कर्मसिंहजी महाराज के ज्येष्ठ

शिष्यवर्य कविवरत्न परमोपकारी महात्मा मुनिराज श्री नागचन्द्रजी महाराज का ही है इन महात्माने एक बहुत अर्थ वाली अद्धलिपी वाली अपने पास की चन्द्र प्रज्ञप्ती की प्रत भेजी, वैसे ही परम प्रयास कर अहमदाबाद के भंडारमें रह हुवे अष्टकोटी दरियापुरी सम्प्रदाय के परमपूज्य रघुनाथजी महाराज के शिष्यर्षि रामजि गणितानुयोग विशारद महापुरुष श्री हाथीजी स्वामीजी के परम प्रयास से लिखे हुवे बहुत ही खुलासा और यंत्रो के इस के प्रज्ञप्ति के गुटके (पुस्तके) यहां भेजवाइ, उन के आधार से इस प्रकार खुलास सहित इस का उतारा कर सका हूं तैसे ही गोघशा में भीनासर के शेठ हजारीमलजी बांठीया की तरफ से प्राप्त हुई प्रत की भी सहाय ली गइ हैं हमारे जानने में तो यथा बुद्धि बहुत खुलासा किया है तथापि इस के मूल में अशुद्धायों का समव रहा है क्योंकि इस प्रकार की हस्त लिखित प्रतीयों भी क्वचित उपलब्ध होती है इसलिये विद्ववर सुधारा कर पठन कीजीये

☛ परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदायके बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलकऋषिजी ने सीर्फ तीन वर्ष में ३२ ही शास्त्रों का हिंदी भाषानुवाद किया, उन ३२ ही शास्त्रों की १०००-१००० प्रतों को सीर्फ पांच ही वर्ष में छपवाकर दक्षिण हैद्राबाद निवासी राजा बहादूर लाला सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी ने सब को, उस का अमूल्य लाभ दिया है।

सूर्य प्रज्ञप्ति मूल की विषयानुक्रमणिका

॥ सप्तमउपाङ्ग-सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र ॥

तेण कालेण तेण समएण महिलाए णाम णयरीए होत्था वण्णओ तीसेण महिलाए णाम णयरीए बहिया उत्तर पुरत्थिमे दिसीभाए एत्थण माणिभद्द नामचेइए होत्था चिराइए वण्णओ ॥ १ ॥ तीसेण महिलाए णयरीए जियसत्तू नाम राया धारणि देवी वण्णओ ॥ तेण कालेण तेण समएण सामी समोसढे परिसा णिग्गया धम्मोकहिओ परिसा पडिगया ॥ २ ॥ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स

उस काल चौथे आरे में, चरम जिनेश्वर भगवत महावीर स्वामी विचरतेथे उस समय में मिथिला नामकी नगरी थी, उस का वर्णन उववाइ सूत्र से जानना उस मिथिला नगरी के बाहिर ईशान कौन में माणिभद्र नामक यक्ष का चैत्य उद्यान था उसका भी वर्णन उववाइ सूत्र में जैसे पूर्णभद्र नामक यक्ष का वर्णन कहा वैसे कहना उस मिथिला नगरी में जितशत्रु राजा राज करता था उन को धारणी नाम की राणी थी इन दोनों का वर्णन उववाइ में जैसे कूनिक राजा का कहा वैसे कहना ॥१॥ उस मिथिला नगरी की ईशान कौन में माणिभद्र नामक उद्यान में श्री श्रमण भगवत महावीर स्वामी पधारे, परिषदा आइ धर्म कथा सुनाई, परिषदा पीछी गइ वगैरह सब कथन उववाइ सूत्र में कहे अनुसार मानना ॥ २ ॥ उस काल उस समय में श्री श्रमण भगवंत महावीर स्वामीके ज्येष्ठ शिष्य गौतम गौत्रिय, सातहाथ की अवगाहना वाले

सूत्र

जइ अनचासी इन्भइ णाम अणगार णायमणाहण तेचूसेहु जाव पज्जवासमाण, एवं वयासी-ता कइते मुहुत्ताण वुड्ढावुड्ढीय आहिएति वएज्जा? ता अट्ठसए एगूणवीसे मुहुत्तेण सत्तावीसत्त सत्तसट्ठी भाग मुहुत्तस्स आहिएति वएज्जा ॥३॥ ता जयाण त सरिय सव्वब्भतरा ओ मंडलाओ सव्व बाहिर मंडल उवसंकमित्ता चार चरति सव्वबाहिरा ओ मंडलाओ सव्वब्भतर मंडल उवसंकमित्ता चार चरइ ॥ एसण अद्धाकेवतियं

अर्थ

इन्द्रभूति नामक अनगार यावत पर्युपासना करते हुवे श्रमण भगवंत महावीर स्वामी की पास आकर इस प्रकार प्रश्न पूछा, कि अहो भगवन्! नक्षत्रमास, सूर्यमास, चन्द्रमास तथा ऋतुमास के कितने मुहूर्त की हानिवृद्धि कही है अर्थात किस प्रकार हानिवृद्धि होती है? अहो गौतम! नक्षत्र से ८१९ $\frac{२७}{६७}$ की हानिवृद्धि कही है युग के नक्षत्रमास ६७ हैं और युग के दिन १८३० इस १८३० का चंद्रमास ६७ का भाग देने से एक मास के २७ दिन ९ मुहूर्त और अंश २७ भाग रहता है इन को तीस मुहूर्त की साथ गुनाकार करनेसे ८१९ $\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त होवे एस ही सूर्यमास के ९१५ मुहूर्त हैं युग के सूर्यमास ६० हैं और दिन १८३० उस को ६० का भाग देने से एक मास के ३०॥ दिन होवे और इन को तीस मुहूर्त की साथ गुनाकार करने से एक मास के ९१५ मुहूर्त होवे चंद्र मास के ८८५ $\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त होवे युग के चंद्र मास ६२ होव और दिन १८३० होवे इसको ६२का भाग देने से एक मास के २९॥ रात्रीदिन व बासठीया एक भाग होव, उस से तीस मुहूर्तका गुनाकार करने से ८८५ $\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त होवे है ऋतुमास९०० मुहूर्तका होता है युगकी ऋतु१०है

राथदियग्गेगं आहितेति वएज्जा? ता तिण्णिछावट्ठी रायदियसए रायदियग्गेण आहिएति वएज्जा ॥४॥ ता एएणं अद्धाए सूरिए कइ मंडलाइं चरति ? कइ मंडलाइं दुक्खुत्तो चरइ,कइमंडलाइं एगक्खुत्तो चरइ? ता चुलसीति मंडलसय चरइ,बायासीयच मंडलसय दुक्खुत्तो चरइ, तजहा निक्खममाणेचेव पविसमाणेचेव दुवेय खलु मंडलाइं एगक्खुत्तो

और दिन १८३० है इस से १८३० को ३० का भाग देने से एक ऋतु के रात्रि दिन ६० होवे और इस से ३० मुहूर्त का गुनाकार करने से १८०० मुहूर्त होवे, और एक ऋतु के मास दो हैं तो १८०० को दो का भाग देने से ९०० होवे, अर्थात् एकमास के ९०० मुहूर्त इस का यह ॥८॥ अब गौतम स्वामी प्रश्न करते हैं कि जब सूर्य सब से आभ्यंतर मांडल में से नीकलकर सबके बाहिर के मडले में चाल चले तथा सबके बाहिर के मांडल से नीकलकर सब के आभ्यंतर मडले में चाल चले तब यह काल कितने रात्रि दिन का होवे ? यहां तीन सो छासठ ३६६ रात्रि दिन का काल होवे ॥ ८ ॥ प्रश्न—पूर्वोक्त काल में सूर्य कितने मांडले पर चलता है, कितने मांडले पर एक वक्त चलता है और कितने मांडले पर दो वक्त चलता है ? उत्तर—सामान्य प्रकार से सूर्य १८४ मांडले पर चलता है जिस में से १८२ मांडले पर सूर्य दो वक्त चलता है, और प्रथम व अन्तिम मांडले पर एक वक्त चलता है; क्योंकि बीचके १८२ मांडले पर सूर्य का आना व जाना होने से दो वक्त चलता है और प्रथम व

मास के मुहूर्त का यन्त्र

नाम	युग के मास	एक मास के दिन	एक मास के मुहूर्त
नक्षत्र मास	६७	२७ ११/६७	८१९ २७/६७
सूर्य मास	६०	३०॥	९१५
चन्द्र मास	६२	२९॥ ३२/६२	८८५ ३०/६२
ऋतु मास	६१	३०	९००

चरइ तजहा सव्वब्भतरचव मडल सव्वबाहिरचव मडल ॥ ५ ॥ जदि खलु तस्सेव आइच्च सवच्छरस्स सय अट्ठारस मुहुत्त दिवसे भवइ सय अट्ठारस मुहुत्ता राई भवइ, सय दुवालस मुहुत्ते दिवस भवइ सय दुवालस मुहुत्ता राई भवइ सेपढमे छम्मास अत्थि अट्ठारस मुहुत्ता राई णत्थि अट्ठारस मुहुत्त दिवस अत्थि दुवालस मुहुत्त दिवसे, नत्थि दुवालस मुहुत्ता राई भवइ ॥ दोच्च छम्मासे अत्थि अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे

अर्थ

मंडिप मांडल में आकर पीछा दुसरे पर आ जाता है इस से दोनों मांडले पर एक चक्र ही चलता है॥५॥ प्रश्न इस आदित्य संवत्सर में क्या कभी अठारह मुहूर्त का दिन, कभी अठारह मुहूर्त की रात्रि, कभी बारह मुहूर्त का दिन व बारह मुहूर्त की रात्रि होवे? उत्तर पहिले के छ मास में अर्थात् सूर्य १८४ मे मांडले पर होता है तब अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है परंतु अठारह मुहूर्त का दिन नहीं होता है और बारह मुहूर्त का दिन होता है परंतु बारह मुहूर्त की रात्रि नहीं होती है अर्थात् जब अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है तब बारह मुहूर्त का दिन होता है और बारह मुहूर्त का दिन होता है तब अठारह मुहूर्तकी रात्रि होती है दूसरे छ मास में अर्थात् पहिले मांडले पर जब सूर्य होता है तब अठारह मुहूर्त का दिन

णत्थि अट्ठारस मुहुत्ता राई, अत्थि दुवालस मुहुत्ता राई णत्थि दुवालस मुहुत्ते दिवसे भवइ ॥ पढमेवा छम्मासे दुच्चा छम्मास णत्थि पण्णरस मुहुत्ते दिवसे भवति, णत्थि पण्णरस मुहुत्ता राई भवइ॥१॥तत्थ का हेउ? अयण्ण जंबूद्दीवेदीवे सव्वदीव समुद्दाण सव्व भतराए जाव विसेसाहिए परिक्खेवेण पण्णत्ते ॥ ताजया ण सूरिए सव्वब्भतर मंडल उवसंकमित्ता चार चरति तयाण उत्तम कट्ठपत्त उक्कोसेण अट्ठारस मुहुत्त दिवसे भवति, जहण्णया दुवालस मुहुत्ता राई भवति, से निक्खममाणे सूरिए णव संवच्छर अयमाणे

होता है १ तु अठारह मुहूर्त की रात्रि नहीं होती है और बारह मुहूर्त की रात्रि होती है परंतु बारह मुहूर्त का दिन नहीं होता है अर्थात् इस में अठारह मुहूर्त का दिन व बारह मुहूर्त की रात्रि होती है प्रथम छ मास अथवा दूसरे छ मास अर्थात् १८४ व मांडले पर अथवा पहिले मांडले पर पन्नरह मुहूर्त का दिन व रात्रि नहीं होती है ॥ १ ॥ प्रश्न—इस का क्या हेतु है ? उत्तर—यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सब द्वीप समुद्रों के बीच में रहा हुवा है एक लक्ष योजन का लम्बा चौडा है, तीन लाख सोलह हजार दो सो सत्तावीस योजन, तीन कोश, एक सो अठावीस धनुष्य, साढी तेरह अंगुल से कुछ अधिक परिधि है इस में जब सब से आभ्यन्तर—अंदर के (मेरु पर्वत के पास के) मांडले पर सूर्य आकर चाल चलता है तब उत्तम

सूत्र

मास [illegible]

मास	दिन	दिन भाग	मुहूर्त
नक्षत्र मास	[illegible]	[illegible]	[illegible]
सूर्य मास	[illegible]	[illegible]	[illegible]
चंद्र मास	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ऋतु मास	[illegible]	[illegible]	[illegible]

चरइ तंजहा सव्व भतरचेव मंडलं सव्वबाहिरचेव मंडलं ॥ ५ ॥ जदि खलु तस्सेव आइच्च संवच्छरस्स सय अट्ठारस मुहुत्त दिवसे भवइ सय अट्ठारस मुहुत्ता राई भवइ, सय दुवालस मुहुत्त दिवस भवइ सय दुवालस मुहुत्ता राई भवइ सपढम छम्मास अत्थि अट्ठारस मुहुत्ता राई णत्थि अट्ठारस मुहुत्त दिवसे अत्थि दुवालस मुहुत्त दिवसे णत्थि दुवालस मुहुत्ता राई भवइ ॥ दोच्च छम्मास अत्थि अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे

अर्थ

अंतिम मांडले में जाकर पीछा दूसरे पर आ जाता है इस से दोनों मांडले पर एक वक्त ही चलता है ॥ ५ ॥ प्रश्न इस आदित्य संवत्सर में क्या कभी अठारह मुहूर्त का दिन, कभी अठारह मुहूर्त की रात्रि, कभी बारह मुहूर्त का दिन व बारह मुहूर्त की रात्रि होवे? उत्तर पहिले के छ मास में अर्थात् सूर्य १८४ वे मांडले पर होता है तब अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है परंतु अठारह मुहूर्त का दिन नहीं होता है और बारह मुहूर्त का दिन होता है परन्तु बारह मुहूर्त की रात्रि नहीं होती है अर्थात् जब अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है तब बारह मुहूर्त का दिन होता है और बारह मुहूर्त का दिन होता है तब अठारह मुहूर्तकी रात्रि होती है दूसरे छ मास में अर्थात् पहिले मांडले पर जब सूर्य होता है तब अठारह मुहूर्त का दिन

राई भवइ घउहिं एगट्ठी भाग मुहुत्तेहिं अहिआ एव खलु एतेण उवाएण निक्खममाण सूरिए तदाणतराओ मडलातो मडल सकममाणे दो दो एगट्ठी भाग मुहुत्त एगमग मडले दिवसखत्तस्स निवुट्टेमाणे रयणि खेत्तस्स अभिवड्ढेमाणे सव्व बाहिर मडल उवसकमित्ता चार चरति ता जयाण सूरिए सव्व बाहिर मंडल उवसकमित्ता चार चरति तयाण सव्वब्भतर मडल पणिहाय एगेण तेसीतेण रातिदिय सतेण तिन्निछावट्ठी एगसट्ठी भाग मुहुत्तस्स दिवस खेत्तस्स

मुहूर्त में एकसठीए चार भाग कम का दिन होता है अर्थात् १७ ,,, मुहूर्त का दिन व १२ ,,, मुहूर्त की रात्रि होती है इसी तरह नीकलता हुवा सूर्य अनतर मांडला अंगीकार करे अथ तृ तीसरे से चौथे चौथ से पांचवे यों अनतर मांडल पर आता हुवा सूर्य दिन विभाग में एकसाठिय दो २ भाग कम करता है और उक्त दानों भाग रात्रि क्षत्र में बढ़ता है इस तरह पढाता हुवा सब स बाहिर के १८४ वे मांडले पर जाता है जब सूर्य सब से बाहिर के १८४ वे मांडल पर चाल चलता है तब १८३ रात्रि में एक मुहूर्त के एकसाठिय ३६६ भाग दिन के क्षत्र की हानि हाती है और इतना ही रात्रि के क्षत्र की वृद्धि होती है उस समय अठारह मुहूर्त की रात्रि और बारह मुहूर्त का दिन होता है, यह पहिला छ मास हुवा, अब

मास अ भिन्ताम अब्भतराण तर मडल उवसकमिता चारचरति ता जयाणं सरिय अ भतराणतरमडल उवसकमित्ता चार चरति तयाण अट्ठारस मुहुत्ते दिवस भवति दोहिं एगट्ठि भाग मुहुत्तहिं ऊण दुवालस मुहुत्ता राइ भवइ दोहिं एगट्ठी भाग मुहुत्त हि अहिया स निक्खममाण सरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भतर तच्च मडल उवसक मत्ता चार चरति ता जयाणसरिए अब्भतर तच्च मडल उवसकमित्ता चारचरति तयाण अट्ठारस मुहुत्ते दिवस भवति चउहिं एगट्ठी भाग मुहुत्तहिं ऊण दुवालस मुहुत्ता

अर्थ

कर्क राशि प्रथम ... मकान्त का उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और बारह मुहूर्त की रात्रि होती है फिर उस प्रथम मंडल से बाहिर नीकलता हुआ दूसरे मांडल में प्रवेश करे तब नया सूर्य संवत्सर होवे और नवी अयन स्पर्शे उस समय अहोरात्रि में सब से आभ्यन्तर जो पहिला मांडला उस से अनन्तर दूसरा मांडला उस पर आकर चाल चलता है जब सूर्य दूसरे मांडल पर चाल चलता है तब अठारह मुहूर्त में एकसठिय दो भाग कम दिन अर्थात् १७ $\frac{59}{61}$ मुहूर्त का दिन होवे और १२ $\frac{2}{61}$ भाग की रात्रि होवे वहां से नीकलता हुआ सूर्य प्रथम अयन की दूसरी अहोरात्रि में तीसरे आभ्यन्तर मांडल पर चाल चलता है जब आभ्यन्तर तीसरे मांडले पर सूर्य चाल चलता है तब अठारह

पविसमाण सूरिए दोचसि अहोरत्तसि बाहिरं तच्चमंडल उवसंकमित्ता चार चरति, ता जयाण सूरिए बाहिर तच्च मंडल उवसंकमित्ता चार चरति तयाण अट्ठारस मुहुत्ता राई भवति चउहिं एगट्ठी भाग मुहुत्तेहिं ऊणे दुवालस मुहुत्त दिवसे भवति चउहिं एगट्ठी भाग मुहुत्तेहिं आहिए ॥ एव खलु एएण उवाएण पविसमाणे सूरिए तयाणं तराओ मंडलाओ मंडल संकममाण २ दो एगट्ठीभाग मुहुत्ते एगमेगे मंडले राति खेत्तस्स निव्वट्टेमाण दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेमाणेय २ सव्वब्भतर मंडल उवसंकमित्ता चार चरति ता जयाण सूरिए सव्वबाहिराओ सव्वब्भतर मंडल उवसंकमित्ता

उक्त दो २ भाग दिन के क्षेत्र में वृद्धि करता है इस तरह करता हुवा सब आभ्यंतर अर्थात् पहिले मांडले पर्यंत चाल चलता है जब सूर्य सब के बाहिर के मांडले से सब के आभ्यंतर मांडलपर चाल चलता है तब सब का बाहिर का मांडला छोडकर १८३ रात्रि दिन में एकसठीये ३६६ भाग की रात्रि क्षेत्र में हानि हुई, और इतना ही भाग की दिन के क्षेत्र में वृद्धि हुइ और इसी से यहां उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन व बारह मुहूर्त की रात्रि हुई यह दूसरा छ मास का पर्यवसान हुवा यह आदित्य संवत्सर व आदित्य संवत्सर का पर्यवसान हुवा इसी से आदित्य संवत्सर में एक समय अठारह मुहूर्त का दिन, एक समय अठारह मुहूर्त की रात्रि होवे, एक समय बारह मुहूर्त का दिन होवे एक समय बारह मुहूर्त की रात्रि होवे

सूत्र

निक्खमिचा दोच्चंसि अभितराणंतरं चार चरति, तयाणं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारस मुहुत्ता राई भवति जहण्णए दुवालस मुहुत्ते दिवसे भवति, एसणं पढम छम्मासे एसण पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे। से पविसमाणे सूरिए दोच्च छम्मास अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति, तयाण अट्ठारस मुहुत्ते राई भवति दोहिं एगट्ठिभाग मुहुत्तेहिं ऊणे दुवालस मुहुत्त दिवसे भवति दोहिं एगट्ठिभाग मुहुत्तेहिं अहिए, से

अर्थ

पहिले छ मास के पर्यवसान में जो सूर्य होता है वह दूसरे छ मास की अयन में पहिली रात्रि में सब से बाहिर के अनन्तर दूसरे मांडले पर आता है, तब अठारह मुहूर्त में एकसठिये दो भाग कम की रात्रि होती है और बारह मुहूर्त पर एकसठिये दो भाग अधिक का दिन होता है अब दूसरी अहोरात्रि में भीतर मांडले पर सूर्य प्रवेश कर चाल चलता है अब दूसरी अहोरात्रि में तीसरे मांडले पर आकर सूर्य चाल चलता है तब अठारह मुहूर्त में एकसठिये चार भाग कम की रात्रि होती है और बारह मुहूर्त पर एकसठिये चार भाग, अधिक का दिन होता है इसी तरह प्रवेश करता हुवा सूर्य अनन्तर मांडले से दूसरे मांडले पर जाता हुवा एकसठिये दो २ भाग रात्रि क्षेत्र में कमी करता है और

पविसमाण सूरिए दोचसि अहोरत्तसि बहिरं तच्चमडल उवसकामित्ता चार चरति, ता जयाण सूरिए बाहिर तच्च मडल उवसकामित्ता चार चरति तयाण अट्ठारस मुहुत्ता राई भवति चउहिं एगट्ठी भाग मुहुत्तेहिं ऊणे दुवालस मुहुत्त दिवसे भवति चउहिं एगट्ठी भाग मुहुत्तेहिं आहिए ॥ एव खलु एएण उवाएण पविसमाणे सूरिए तयाण तराओ मडलाओ मडल सकममाण द दो एगट्ठीभाग मुहुत्ते एगमेगे मडले राति खत्तरस निव्वद्वेमाण दिवसखेत्तरस अभिवड्ढमाणेय २ सव्वब्भतर मडल उवस कमित्ता चार चरति,ता जयाण सूरिए सव्वबाहिराओ सव्वब्भतर मडल उवसकमित्ता

चक दो २ भाग दिन के क्षेत्र में वृद्धि करता है इस तरह करता हुवा सब आभ्यतर अर्थात पहिले मांडले पर्यंत चाल चलता है जब सूर्य सब के बाहिर के मांडले से सब के आभ्यतर मांडलपर चाल चलता है तब सब का बाहिर का मांडला छोडकर १८३ रात्रि दिन में एकसठीये ३६६ भाग की रात्रि क्षेत्र में हानि हुई, और इतना ही भाग की दिन के क्षेत्र में वृद्धि हुइ और इसी से यहां उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन व बारह मुहूर्त की रात्रि हुई यह दूसरा छ मास का पर्यवासन हुवा यह आदित्य संवत्सर व आदित्य संवत्सर का पर्यवसान हुवा इसी स आदित्य संवत्सर में एक समय अठारह मुहूर्त का दिन, एक समय अठारह मुहूर्त की रात्रि होवे, एक समय बारह मुहूर्त का दिन होवे एक समय बारह मुहूर्त की रात्रि होवे

सूत्र

चारं चरति तयाणं सव्वबाहिरमंडलं पणिहाय एगेणं तेयासिएणं राइंदियसतेणं तिण्णि छावट्ठी एगसट्ठी भाग मुहुत्तसतेणं रातिंखत्तस्स णिवुट्टित्ता दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढित्ता चारं चरति तयाणं उत्तमकट्ठ पत्ते उक्कोसए अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालस मुहुत्ता राइ भवति ॥ एसणं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे एसणं आदिच्चसंवच्छरे । आदिच्चसंवच्छरस्स एसणं पज्जवसाणे इति खलु तस्सेव आदिच्चसंवच्छरस्स सय अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवति सय अट्ठारस मुहुत्ता राइ भवति सय दुवालस मुहुत्ते दिवसे भवति सय दुवालस मुहुत्ता राई भवति, पढमे

अर्थ

इस में प्रथम छमास के अंत में अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है परंतु अठारह मुहूर्त का दिन नहीं होता है, और बारह मुहूर्त का दिन होता है परंतु बारह मुहूर्त की रात्रि नहीं होती है दूसरे छ मास के अंतमें अठारह मुहूर्त का दिन होता है परंतु अठारह मुहूर्त की रात्रि नहीं होती है बारह मुहूर्त का दिन नहीं होता है परंतु बारह मुहूर्त की रात्रि होती है पहिले व दूसरे छ मास के अंत में पन्नरह मुहूर्त का दिन व पन्नरह मुहूर्त की रात्रि नहीं होती है पन्नरह मुहूर्त की रात्रि व पन्नरह मुहूर्त का दिन कदापि नहीं होता है क्यों कि छमास में सब मीलकर १८३ अहोरात्रि और छ मुहूर्त की हानिवृद्धि है इस को अर्ध करने से ९१॥ व दिन होवे उस में पहिले का एक मांडला घटाने से ९२॥ मांडला होवे तब एक पन्नरह मुहूर्त का दिन व पन्नरह मुहूर्त की रात्रि होवे परंतु ९२ से मांडलेपर पूर्ण पनरह होवे तब

छम्मासे अत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, णत्थि अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवति अत्थि दुवालस मुहुत्त दिवसे णत्थि दुवालस मुहुत्ता राइ भवति । दोच्चे छम्मासे अत्थि अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवति णत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राई, अत्थि दुवालस मुहुत्ता राई णत्थि दुवालस मुहुत्ते दिवसे भवति पढमे वा छम्मास दोच्चे वा छम्मासे, णत्थि पण्णरस मुहुत्ते दिवसे णत्थि पण्णरस मुहुत्ता राई भवति णण्णत्थ राइंदियाण वड्ढोवड्ढीए मुहुत्ताण चयोवचएण, णण्णत्थवा अणुवाय गइय पुव्वेण दोण्णिभाग, पाहुडिया गाहाओ भाणियव्वा सूरिय पण्णत्तीए पढम पाहुड सम्मत्त॥ १ ॥ १ ॥ *

१८ ३/६१ मुहूर्त का दिन होवे और रात्रि १४ ३/६१ मुहूर्त की होवे और १३ वे मांडलेपर दिन १४ ३/६१ मुहूर्त का होवे और रात्रि १५ ३/६१ मुहूर्त की होवे इस कारन से पनरह मुहूर्त का दिन व पनरह मुहूर्त की रात्रि न होवे इस तरह सूर्य के मांडलपर हानि वृद्धि करते परस्पर छ भाग का खुलासा करते हैं १८३ मांडलपर छ मुहूर्त की हानिवृद्धि होती है इस में १८३ को तीन का भागदने से ६१ होते हैं और छ मुहूर्त का तीन का भागदेने से दो होते हैं इसी से एक मुहूर्त के एकसठिये दो भाग की हानिवृद्धि होवे मर्यादा से वृद्धि व मर्यादा से हानि होवे पनरह मुहूर्त के रात्रि दिन नहीं होते हैं पूर्वोक्त दो भाग की हानिवृद्धि होती है यह सूर्य मण्डल के प्रथम पाहुडेका प्रथम अंतर पाहुडा हुआ ॥१॥१॥

सूत्र

ता कहते अद्ध मंडल संठिई आहितति वदेज्जा तत्थ खलु इमा दुविहा अद्धमंडल संठिई पण्णत्ता तंजहा दाहिणा चेव उत्तरा चेव ॥ १ ॥ ता कहते दाहिणअद्ध मंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा, ता अयण्ण जंबुद्दीवेदीवे सव्वदीवसमुद्दाणं जाव परिक्खवेणं ता जयाणं सूरिए सव्वभंतर दाहिणं अद्धमंडल संठिति उवसंकमित्ता चार चरति, तताणं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारस मुहुत्त, दिवसे भवति जहण्णया

अर्थ

अब दूसरा अंतर पाहुडा में अर्धमंडल स्पर्शने का अधिकार कहा है यहां गौतम स्वामी प्रश्न पुछते हैं अहो भगवन् ! एकेक सूर्य एकेक अहोरात्रि से एकेक मांडला के अर्ध विभाग को परिभ्रमण कर पूर्ण करे एकेक अहो रात्रि से आधे मंडल पर व्यवस्थित रहे यह कथन आप के मत में किस तरह है ? उत्तर—अर्ध मंडल दो प्रकार के कहे हैं १ दक्षिण दिशा की तरफ आधा मंडल रहा है और २ उत्तर दिशा के स्थान आधा मंडल रहा है ॥ १ ॥ प्रश्न—दक्षिण दिशा के अर्धमंडल की संस्थिति कैसे कही है ? उत्तर—सब द्वीप समुद्र में यह जम्बूद्वीप यावत् परिधिवाला है इस में जब सूर्य दक्षिणार्ध विभाग में सब के आभ्यंतर मांडले पर दक्षिण के अर्ध मंडल की संस्थिति को अंगीकार कर चाल चलता है तब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होवे और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होवे जब वह सूर्य उस प्रथम मांडले पर से नीकल कर दो योजन व एक योजन के एकसठिये ४८

दुवालस मुहुत्ता रत्ती भवति॥ से निक्खममाण सूरिए णव संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अंतराए भागाए तसाए पदेसाए अब्भतराणतर उत्तरद्ध मंडल संठिइ उवसंकमित्ता चार चरति, जयाण सूरिए अब्भतराणतर उत्तरद्धमंडल संठिइ उवसंकमित्ता चार चरति तयाण अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवति, दोहिं एगट्ठीभाग मुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालस मुहुत्ता राई भवति, दोहिं एगट्ठी भाग मुहुत्तेहिं अहिया॥ से निक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि, उत्तराए अंतराए भागाए तसाए

भाग इतना उल्लंघन कर नया संवत्सर में आता है तब प्रथम अहोरात्रि दक्षिण हुवा, दक्षिण दिशा के अंदर भाग में से उस दक्षिण दिशा के प्रथम मांडले के प्रदेश से, पहिला आभ्यंतर मांडल के अनंतर उत्तरार्ध मंडल पर रह कर चाल चलता है अब दो योजन व एक योजन के एकसठिये ४८ भाग जितने बाहिर नीकलता हुवा सूर्य आभ्यंतर मंडल के अंत से उत्तरार्ध मंडल को अंगीकार कर चाल चलता है तब अठारह मुहूर्त में एकसठिये दो भाग कम का दिन होता है और बारह मुहूर्त में एकसठिये दो भाग अधिक की रात्रि होती है फीर दूसरे मांडले से सूर्य नीकलता हुवा दूसरी अहोरात्रि में उत्तरार्ध भाग से उस प्रदेश से नीकलकर दो योजन व एक योजन के एकसठिये ४८ भाग उल्लंघन कर आभ्यंतर

निकल चले वृद्धावस्था होने से गुरु चल सके नहीं, जिस से शिष्य पर क्रुद्ध होकर बोलने लगे कि अरे पापिष्ठ ! तेरे लिये मुझे यह कष्ट उठाना पड़ा मैं अब नहीं चल सकता हूं तब शिष्य बोला कि-आप मेरे स्कंध पर बैठ जावो आप का मैं ले चलूंगा तब वह शिष्य आचार्य को अपने स्कंध पर लेकर चलने लगा, परन्तु अंधेरे में अच्छी तरह नहीं दीखने से शिष्य का पांव ऊंचा नीचा पड़ता था जिस से आचार्य का शरीर हिचकारे खाता हुवा खेदित होने लगा आचार्य क्रोधातुर बनकर शिष्य के मस्तक में लष्टि मुष्टि आदि प्रहार से मारने लगे परन्तु शिष्य किंचिन्मात्र भी क्रोध नहीं करता था और शांत भाव से विचार करता था कि मेरे जैसे पापी को धिक्कार होवो कि सुख से रहे हुए गुरु को मैंने दुःखित कर दिये यों पश्चाताप करते हुए क्षपक श्रेणि में चढ़ कर घन घातिक कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त किया सबका सब दर्शनी ज्ञान से अच्छे मार्ग पर गमन हुवे गुरु हिचकारा नहीं पाने लगे तब गुरु बोलने लगे कि "मार सार" शिष्य बोले-'गुरु उपकार' गुरुने पुच्छा कि क्या ज्ञान हुवा है ? शिष्यने कहा हां, गुरु ने पुछा कि प्रतिपाति किंवा अप्रतिपाति ? शिष्यने कहा कि-अप्रतिपाति ज्ञान मुझ हुवा है तब गुरु उन के स्कंध से शीघ्रमेव नीचे उतर गये और पश्चाताप करने लगे कि मैंने दुष्टने केवलीकी अशातना की इस तरह पश्चाताप करते हुए वह भी क्षपकश्रेणि में चढ़कर कर्म का क्षय कर केवलज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त हुए यों विनीत शिष्य दोनों के आत्मा का कल्याण करने वाला होता है यह चौथी कथा संपूर्ण हुई ॥ ४ ॥

वागरे किंचि, पुट्ठो या नालियं वए ॥ कोहं असच्चं कुव्वेज्जा, धारेज्जा पियमप्पियं॥

गुरु आदि के बिना पूछे विनीत शिष्य कुच्छ भी बोले नहीं और पूछने पर मृषा बोले नहीं कदाचित् क्रोध के आधीन बनकर जो कुच्छ अयोग्य कार्य किया होवे तो उसे समाकर निष्फल बनावे, और विनयवंतका कर्तव्य प्रियकारी व अविनयवंत का वचन्य अप्रियकारी है ऐसा धारन कर विनयकरे॥१४॥ इसमें क्रोध का असत्य करने पर कुलपुत्र की कथा कहते हैं-किसी गाम में अपनी माता सहित दो क्षत्रिय पुत्र रहते थे इन दोनों भाइयों में बडे भाइ को किसीने मारडाला जिस से इस की माता बोली कि—क्षत्रिय का धर्म है कि दुश्मन से वैर लेना इस से तू दुश्मन को ले आ यह अपने भाइ की घात करनेवाले को पकड लाया और अपनी माता के सन्मुख खडा कर खड्ग उठाकर मारने लगा तब वैरी मुख में तृण लेकर बोला कि मैं आप के शरण हूं ऐसा सुन उस की माता बोली-अहो पुत्र! शरणागत को मारनेका क्षत्रियों का धर्म नहीं है तब पुत्र बोला कि मुझे क्रोध आगया है तो अब मैं क्या करूं? तब माता बोली कि सब स्थान क्रोधको सफल करनेका नहीं है विरोध उपशमा दे माताका वचन मान्यकर पुत्रने दुश्मनको अच्छा सन्मान दिया और उन के स्थान पहुंचा दिया ऐसे ही साधु के छ ही काया के जीवों शरणागत हैं उन में से कोई अज्ञानतासे अपराध करे तो उस पर क्षमा रखना चाहिये और उस को प्राण देना चाहिये यह कुलपुत्र की पांचवी कथा संपूर्ण हुई॥ ५ ॥

* *

अब प्रिय व अप्रिय हितशिक्षा धारन करने पर तीन मंत्र वादी की कथा कहते हैं किसी गांव में राजा

॥ १४ ॥ अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पाहु खलु दुद्दमो ॥ अप्पादंतो सुही होइ अस्सिं

राज्य करता था उस का पुत्र बहुत व्याधिग्रस्त था वह राजा प्रतिदिन बहुत वैद्य वगैरह को बोला कर उस का उपचार करता था तोभी उस का रोग नहीं मीटता था अन्यदा उस ही गांव में तीन मंत्रवादी आगये राजा का खबर होते ही उन तीनों वैद्य को बोलाये और अपन पुत्र का सब कथन कहा तब उन में से एक वैद्य बोला कि मरी औषधि से पुराना रोग चला जाता है और रोग नहीं होवे तो नया रोग आता है राजा बोला-पेट मसल कर शूल करने जैसी तेरी औषधि हम को पसन्द नहीं है दूसरा बोला कि मेरी औषधिसे रोग चला जाता है परंतु गुण अवगुण कुच्छ करे नहीं ऐसा है तब राजा बोला कि पानी मन्थन करने समान तुम्हारी औषधि की हमे जरूर नहीं है तीसरा वैद्य बोला कि मेरी औषधि से रोग होवे तो चला जाता है और रोग होवे नहीं तो शरीर में पुष्टि करता है राजाने उस ही पास से औषधि दिलाकर पुत्र को निरोगी किया ऐसे ही साधु भी तीसरे वैद्य की औषधि समान हितकारी कर्तव्य का आचरण करे यह तीन वैद्यों की छठी कथा संपूर्ण हुई ॥ ६ ॥ ❁

आत्मा का दमन करना दुष्कर है परंतु आत्म दमन करने वाला ही इसलोक व परलोक में सुखी होता है, इसलिये आत्म दमन करना चाहिये ॥१५॥ आत्म दमन पर पल्लीपति की कथा कहते हैं—कोई साधु चौमासा करने को जाते रास्ता भूल कर चोर पल्ली में चले गये वहां पल्लीपति से बोले कि भाइ! आज संध्या से चतुर्मास लगता है फिर हम को विहार करना नहीं कल्पता है इसलिये यदि तुम्हारी

लाए परत्थय ॥ १५ ॥ वर मे अप्पा दंतो, सजमेण तवेण य ॥ मा ह परेहि दम्मतो, आज्ञा होवे वो यहां रहे पल्लीपति ने कहा कि-आप यहां सुख से रहो परंतु उपदेश करना नहीं पल्ली पति ने दिये हुए स्यान में ज्ञान ध्यान तप व संयम से आत्मा का भावते हुए साधुने चतुमास पूर्ण करके विहार किया और पल्लीपति पहुंचाने गया साधुजी ने उस पल्लीपति को समजाकर अनजान फल खाने का सोगन कराये एकदा सब चोरों राजा का खजाना लुटकर भयकर अटवि में छिपगये तीन दिन तक कुच्छ खाने पीने का मीला नहीं चौथे दिन किंपाक वृक्षों को देखकर उन के फलों को सब चोर तोड २ कर खाने लगे और पल्लीपति को भी दिये पल्लीपति ने उस फल का नाम पुछा परंतु किसी को इस का नाम मालुम नहीं था तब पल्लीपति ने कहा कि मुझे ऐसे अनजान फल खाने के सोगन हैं इस से मैं खाऊंगा नहीं ऐसे विकट प्रसंग में भी व्रत पर कायम रहा और फल खाये नहीं थोडी देर पीछे उन फलों का विष सब चोरों को परगमगया और सब चोर मरगये फक्त पल्लीपति रहगया वह पल्लीपति आनदित होता हुआ और साधुओं के गुन गाता हुआ सब धन लेकर अपने घर आया और सुखी हुआ इस प्रकार जो आत्मदमन नहीं करते हैं वे चोरों के तरह दुःख पाते है और आत्म दमन करने वाले पल्लीपति जैसे सुखी होते हैं यह पल्लीपति की सातवी कथा हुई ॥ ७ ॥ *

मुझे अन्य कोई वध बधन से न मारे इस लिय सत्तरह प्रकार के संयम व बारह प्रकार के तप से आत्मा का दमन करना श्रेय है ॥ १६ ॥ आत्मदमन पर सींचानक हस्ती की कथा कहते हैं—विन्ध्या चल

घघणहि घह्नहि य ॥ १६॥ पडिणीयस्स युद्दाण वाया अदुत्र कम्मुणा ॥ आत्री वा

पर्वत के मूल में एक तापस के आश्रम में बहुत तापस रहते थे उस आश्रम के पास जंगल में हाथि व हथणियों का यूथ रहता था, उस यूथ का अधिपति हाथी हथणियों के भोग में ऐसा लुब्ध बना था कि को नर हस्ती पैदा होता तो जन्मते ही उस को मार डालता था एकदा एक हथणी को गर्भ रहा और कदाचित् पुत्र होगा तो हाथी मार डालेगा इस विचार से पुत्र की रक्षा के लिये लंगडापने का ढोंग धारन कर पीछे २ रहन लगी कभी एक दिन कभी दो दिन बीच में अन्तर डाल मिलने लगी इस से हाथी को ऐसा विश्वास हुआ कि गर्भवती होने से यह अपनी साथ नहीं चल सकती है यों करते २ हथणीने तापसों के आश्रम में पुत्र प्रसवा वह बच्चा बड़ा होकर उन तापसों के लड़कों के साथ वृक्षों को अपनी सूंड में पानी लेकर सींचता था इस से तापसोंने उस का नाम सींचानक दिया जब वह सींचानक यौवनावस्था को प्राप्त हुआ तब वह हथणियों के यूथ में चलागया और उस वृद्ध हस्ती को मार कर सब हथणीयों का अधिपति बना फीर विचार किया कि जिस प्रकार तापस के आश्रम में मेरी माताने मुझे जन्म दिया और मैंने मेरे पिता को मार डाला वैसे ही दूसरी कोई हथणी दूसरे पुत्र को जन्म दे वह जन्म कर मुझे मार डाले! इस विचार से वह तापस के आश्रमों के पास आया और उन को उपद्रव करने लगा। वे तापसों वहां से घबरा कर श्रेणिक राजा के पास आये और कहा कि राज्य योग्य सींचानक नामक गंध हस्ती हमारे आश्रमोंके पास विन्ध्याचल पर्वतमें है वह आप के पाटवी हस्ति होने योग्य है राजाने यहबात सुनकर किसी प्रकारसे

सींचानक हस्ती को पकड मंगवाया और मस्त स्तंभ से बांध दिया तब तापस लोग कहने लगे कि—रे सींचानक ! हम ने तेरा रक्षण किया था इस से बडा धन कर तैने हम को दुःखी किया तेरे इस दुष्कृत्य का यही फल है हाथी रोश में आकर अपने बंधन तोडकर जंगलमें चला गया पुनः उसे पकडने के लिये श्रेणिक राजाने बहुत उपाय किये, परंतु वह हाथ में आया नहीं तब राजाने अपनी कुलदेवी का आराधन किया देवीने आकर कहा कि हे राजन् ! चंपा नगरी में धनवान व ब्राह्मण के शास्त्र में पारगामी ऐसा वसु नाम का ब्राह्मण रहता था उस को धनदत्त नामक जैन के साथ मित्रता थी वह उस वसु ब्राह्मण को सदैव कहा करता था कि सुपात्र दान दे जिस से तेरे धन का व जन्मका सार्थक होवे वह कहा करता था कि ब्राह्मण ही सुपात्र हैं यों वारंवार विवाद होता था वे दोनों वहां से काल कर धनदत्त तेरी नंदारानी की कुक्षि से नंदीषेण कुमार हुवा और वसु ब्राह्मण कुपात्र दान के प्रभाव से सींचनक गंध हस्ती हुवा है यह कथन नंदीषेण कुमार जाकर उस हाथी से कहेगा तो उसको जाति स्मरण ज्ञान होगा और कुमार के साथ वह हस्ती चला आवेगा इतना कहकर कुलदेवी चली गइ श्रेणिक राजाने नंदीषेण कुमार को भेजकर सींचानक गंध हस्ती का बडी धूमधाम से मंगवाया, और अभिषेक हस्ती बनाया वही हाथी श्रेणिक राजाने हल विहल कुमार को दिया था और इस ही के लिये चेडा राजा व कूणिक राजा को बडा संग्राम हुवा था, जिस का कथन कुकवालु मुनि की दूसरी कथा पृष्ट ३ में है जैसे इस हाथीने स्वयमेव अपना

जइ वा रहस, नेव कुज्जा कयाइवि ॥ १७ ॥ न पक्खओ न पुरओ, नेव किचाण पिट्ठओ ॥ नजुंजे ऊरुणा ऊरु, सयणे नो पडिस्सुणे ॥ १८ ॥ नेव पल्हत्थिय कुज्जा पक्खपिंड च सजए ॥ पाए पसारिए वावि, नचिट्ठे गुरुणातिए ॥ १९ ॥ आयरिएहिं वाहितो, तुसिणीओ न कयाइवि ॥ पसायपेही नियागट्ठी, उवचिट्ठे गुरुण

आत्मा वश किया जिस से दूसरे के वध बंधन वगैरह से बचकर पान्वीय अभिषेक योग्य हाथी हुवा वैसे ही जो साधु स्वयमेव आत्मदमन करते हैं वे अन्य वध बंधन को प्राप्त नहीं होते हुए आचार्यादिक की पद्वी को प्राप्त होते हैं यह सींचानक हाथी की आठवी कथा सपूर्ण हुइ ॥८॥ यदि गुरु कठोर वचन से शिक्षा देवे तो भी प्रगटपने अथवा गुप्तपन, वचन से अथवा कार्य से गुरु क साथ शत्रुता करे नहीं ॥ १७ विनीत शिष्य गुरु के बराबर बैठे नहीं, गुरु के आगे बैठे नहीं और गुरु को पीठकर के भी बैठे नहीं गुरुके पास पांवपर पांव चढाकर बैठे नहीं वैसे ही शयनमें तथा बिछानेमें बैठा गुरुके वचन श्रवण करे नहीं परंतु आसन छोडकर गुरु के वचन प्रमाण कर सुने ॥ १८ ॥ विनयवान संयती गुरु के पास वस्त्र से अथवा हाथों से पालखी (दोनों घुटन) बंध कर बैठे नहीं, वैसे ही पांव पसारकर भी बैठे नहीं ॥ १९ ॥ गुरु की मेरे पर कृपा दृष्टि है ऐसा जानने वाला मोक्षार्थी सदैव गुरु के पास रहे और जब कभी गुरु बोलावे तब मौनस्थ रहे नहीं, रोगावस्था में होवे तो भी विना बोला रहे नहीं ॥ २० ॥

सया ॥ २० ॥ आलवंते लवंते वा, न निसीएज्ज कयाइवि ॥ चइऊण आसणं धीरो
जओ जत्तं पडिस्सुणे ॥ २१ ॥ आसणगओ न पुच्छेज्जा, णेवसेज्जागओ कया ॥
आगम्मुक्कुडुओ संतो, पुच्छेज्जा पंजलीउडो ॥ २२ ॥ एवं विणय जुत्तस्स, सुत्तं
अत्थं च तदुभयं ॥ पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरिज्ज जहासुयं ॥ २३ ॥ मुसं
परिहरे भिक्खू, न य ओहारिणिं वए ॥ भासादोसं परिहरे, मायं च वज्जए सया
॥ २४॥ न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं, न निरट्ठं न मम्मयं ॥ अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्स

गुरु एक बार या वारंवार बोलावे तो बैठा रहे नहीं कदाचित् व्याख्यानादि काम करता
होवे तो अपना आसन छोड़कर गुरु जो आदेश करे सो धैर्यता पूर्वक व सावधानपने श्रवण करे
और वैसा ही कार्य करे ॥ २१ ॥ कोई गुरु पूछे होवे तो भी अपने आसन व संथारे पर
रहा हुआ गुरु को प्रश्न पूछे नहीं, परंतु गुरु के समीप आकर नमस्कार सहित दोनों हाथ जोड़कर नम्रता
युक्त आशीर्वाद की इच्छा होवे सो पूछे ॥ २२ ॥ ऐसा विनयवान शिष्य गुरु को सूत्र अर्थ व तदुभय
पूछे तो गुरु उस को जैसा स्वताने अपने आचार्य से सुना होवे वैसा कहे ॥ २३ ॥ साधु
मृषा वाद का त्याग करे, वैसे ही निश्चय कारिणी भाषा बोले नहीं माया के दोषों का त्याग करे और
माया कपट सदैव वर्जे ॥२४॥ कोई पूछे तो अपने लिये या दूसरे के लिये अथवा इन सिवाय और किसी

सूत्र

तरेण वा ॥ २५ ॥ समरेसु आगारेसु, सधीसु य महापहे ॥ एगो एगत्थिए सद्धिं, नेव चिट्ठे न सल्वे ॥ २६ ॥ जम्मे बुद्धाणुसासांति, सीएण फरुसेण वा ॥ मम लाहो त्ति पेहाए, पयओ त पडिस्सुणे ॥ २७ ॥ अणुसासणमोवायं दुक्कडस्स य चोयण ॥ हियं तं मण्णइ पण्णो, वेसं होइ असाहुणो ॥ २८ ॥ हिय विगयभया बुद्धा, फरुस पि अणुसासण ॥ वेसं तं होइ मूढाण, खंतिसोहिकरं पय ॥ २९ ॥ आसणे उवचिट्ठेज्जा,

अर्थ

कार्य के लिये सावद्य भाषा बोले नहीं, वैसे ही निरर्थक व मर्मकारी वचन भी बोले नहीं ॥ २५ ॥ लोह कारादिक शाला में, किसी मकान में, दोनों घर की संधी (गली) में, और राजमार्ग में अकेला साधु अकेली स्त्री के साथ खडा रहे नहीं वैसे ही वार्तालाप भी करे नहीं ॥ २६ ॥ कोमल अथवा कठोर वचनों से गुरु मुझे जो हितशिक्षा देते हैं वे मेरा लाभ के लिये देते हैं ऐसी बुद्धि से गुरु की शिक्षा अतिशय सावधान पूर्वक श्रवण करे ॥ २७ ॥ कदाचित् शिष्य से कोई दुष्कृत्य हुवा होवे और गुरु उसे कोमल अथवा कठोर भाषा से हित शिक्षा देवे तो प्रज्ञावान साधु उस शिक्षा को हितकारी मानते हैं और अविनीत शिष्य को वह शिक्षा द्वेष उत्पन्न करनेवाली होती है ॥२८॥ जो विनीत तत्त्वज्ञ और जिन के सब प्रकार के भय दूर हो गये हैं वैसे शिष्य कठोर अनुशासन को भी हितकारी मानते हैं, ऐसी क्षमादि धर्मोत्पादक व सौम्यकारी हितशिक्षा को मूढ अविनीत शिष्य द्वेष रूप मानते हैं ॥ २९ ॥ विनीत शिष्य उच्चासन

अणुच्चे अकुए थिरे ॥ अप्पुट्ठाई निरुट्ठाई, निसीएज्ज अप्पकुक्कुए ॥ ३० ॥ कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेणय पडिक्कमे ॥ अकालंच विवज्जेत्ता, कालेकाल समायरे ॥ ३१ ॥ परिवाडीए न चिट्ठेज्जा, भिक्खू दत्तेसणंचरे ॥ पडिरूवेण एसित्ता, मियं कालेण भक्खए ॥ ३२ ॥ नाइदूर मणासन्ने, नन्नेसिं चक्खुफासओ ॥

पाट आदि आसन गुरु के आसन से नीचा और जो डगमगता न होवे परन्तु स्थिर जमा हुवा होवे ऐसा रखता है, चपल आसन नहीं रखता है, वैसे ही गुरु समीप रहा हुवा बिना प्रयोजन उठे नहीं प्रयोजन होने पर थोडा उठे अर्थात् एक काम में अनेक काम कर लेवे, तैसे ही बैठा हुवा भी हाथ पांव प्रमुख अंग को बिना प्रयोजन हिलावे नहीं ॥ ३० ॥ विनीत शिष्य की एषणा समिति कहते हैं—विनीत शिष्य भिक्षा का काल अनुमान प्रमान से जाने जिस ग्राम में भिक्षा का समय हुवा होवे तब भिक्षा के लिये जावे भिक्षा काल होजाय के तुरत ही पीछा फीर जावे समय बिना भिक्षा के लिये जावे नहीं यों सब क्रिया इस ही के २६ वे अध्ययन में कहे अनुसार कालोकाल काम करे अनियमित रहे नहीं ॥ ३१ ॥ भिक्षा निमित्त निकला हुवा साधु जहां जिमने की पंक्ति बैठी होवे वहां खडा रहे नहीं गृहस्थने दिया हुवा शुद्ध निर्दोष आहार यथायोग्य गवेषणा करके ग्रहण करे और सिद्धांतोक्त मर्यादित समय में आहार करे ॥ ३२ ॥ गृहस्थ के वहां कोई भिक्षुक खडा होवे तो साधु उस के बहुत पास व उस से बहुत

सूत्र

एगो चिट्ठिज्ज भत्तट्ठा लंघित्ता त नाइक्कमे ॥ ३३ ॥ नाइउच्च न नीएवा नासन्ने नाइदूरओ ॥ फासुय परकड पिंड, पडिगाहेज्ज संजए ॥ ३४ ॥ अप्पपाणप्प बीयंमि पडिच्छन्नमि संवुडे॥ समय संजए भुंजे, जय अपरिसाडिय ॥ ३५ ॥ सुक्कडित्ति

अर्थ

दूर खडा रहे नहीं वैसे ही गृहस्थ अथवा भिक्षुक की दृष्टिगत खडा रहे नहीं उस को उल्लंघ कर गृहस्थके घर में प्रवेश करे नहीं, परंतु माधपानी का अर्थी पना हुवा राग द्वेष रहित अकेला किस को नहीं में आवे नहीं वैसे खडा रहे ॥ ३३ ॥ भिक्षा के लिये गया हुवा विनयवान साधु दातार से बहुत ऊंचा बहुत नीचा बहुत आसन्न-नजदीक न बहुत दूर खडा नहीं रहता हुआ अन्य के लिये बनाया हुआ प्रासुक एषणिक पिण्ड आहार ग्रहण कर ॥ ३४ ॥ अब भोजन करने का स्थान बताते हैं—जो स्थान चारों तरफ व ऊपर से ढका हुआ होवे जिस में द्विन्द्रियादि प्राणि तथा अनाज के दाने बीज वगैरह न होवे एवं मकान में अपने जैसे आचारवाले साधु होवे उन के साथ अन्नादि नीचे नहीं डालता हुआ सबडकादि स्वाद नहीं करता हुआ यत्ना पूर्वक आहार करे ॥ ३५ ॥ अब आहार करते समय भाषा समिति कहते हैं यह भोजन बहुत अच्छा बना यह पक्वान अच्छे पकाये यह शाकादि का अच्छा छेदन किया इन करेलादिक की कडवास अच्छी हरण की, इन मोदकादिक में घृत अच्छा भरा हुवा है यह कुष्माण्डादि की पकी आदि अच्छी बनाई है यह भोजन ...

सुपक्कात्ति, सुच्छिन्ने सुहडे मडे ॥ सुणिट्ठिए सुलट्ठेत्ति, सावज्ज वज्जए मुणी ॥३६॥
रमए पंडिए सासं, हयं भद्दं व वाहए ॥ बालं सम्मइ सासंतो, गलियस्सं व वाहए

कर अच्छे शिणगारे इत्यादि प्रकार की सावद्य भाषा बोले नहीं अर्थात मनोज्ञ भक्त पान की भांति होनेपर उस में लुब्ध बनकर उस की प्रशंसा करे नहीं, वैसे ही अमनोज्ञ भोजन मिलकर उस की निंदा भी करे नहीं; ऐसे ही अन्य स्थान भी सावद्य भाषा बोलने का विचार रखना जैसे-यह मकानादि अच्छे बनाये, यह भोजन अच्छा पकाया, यह वृक्षादि अच्छा छेदा इस कृपण का धन अच्छा हरा, यह पापी जीव मरगया सो अच्छा हुवा, यह वस्त्र भूषणादि अच्छे स्थापन किये, यह रूपवती कन्या पति के योग्य है इत्यादि आरंभ की प्रशंसा करे नहीं और वैसी सावद्य भाषा का सर्वथा त्याग करे परंतु कार्य प्रसंग से ऐसा बोले कि इसने धर्म ध्यान अच्छा किया, इस का संथारा अच्छा पका, इस के स्नेह का छेदन अच्छा हुवा, इस का मोह अच्छा हरा, यह पंडित मरण अच्छा मरा इसने सम्यक्त्व में अपनी आत्मा को अच्छा स्थापन किया, इस का संयम अच्छा शोभता है इत्यादि निर्वद्य भाषा प्रयोजन होने पर बोले ॥ ३६ ॥ अब विनीत अविनीत पर घोडे का दृष्टांत कहते हैं जैसे उत्तम जाति के घोडे को कलाभ्यास कराते स्वार आनंद पाता है, वैसे ही विनीत शिष्य को हित शिक्षा देते हुए गुरु आनंद मानते हैं और जैसे गलीयार घोडे को शिक्षा देने में स्वार खेदित होता है, वैसे ही अविनीत शिष्य को शिक्षा देने में गुरु खेदित होते हैं

॥ १७ ॥ सड्डुयामे चवेडामे, अक्कोसा य वहाय मे । कल्लाण मणुसासतो, पाव

॥ १७ ॥ इस पर दो घोडे की कथा कहते हैं एकदा म्लेच्छ लोगों कहीं जाते हुए एक नदी के किनारे पर रथ को छोड घोडों को घास पासचारा चरने के लिये छोड दिये उन दोनों घोडोंने वहां एक हृष्ट पुष्ट गद्धा देखकर उस से पूछा कि-अरे तू कौन है ? उसने उत्तर दिया कि-मेरा स्वामी मेरे पर बहुत वजन लादता था और मुझे बहुत सताता था एक समय मैं यहां आगया और यह अच्छा स्थान देखकर यहांही रहने का विचार किया जब वह कुमार मुझे चलाने लगा तब मैं यहां ही नीचे जमीन पर गिरगया कुंभारने मुझे बहुत मार मारी; परंतु मैं उठा ही नहीं तब मुझे यहां छोड कर वह चला गया अब मैं यहां आनन्द में रहता हूं ऐसा सुनकर उन में से एक घोडेने वैसा ही विचार, किया जब उन का मन के लिये म्लेच्छ लोक आये तब वह घोडा नीचे गिरगया उस को उठाने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु वह उठा नहीं, इस से क्रोधावेश में आकर उस की गरदन काट डाली और उस के स्थान उस गद्धे को जोतलिया गद्धेने विचार किया कि-यदि मैं भी वैसे करूंगा तो मुझ भी यह मार डालेंगे यों मान व दूसरे घोडे के साथ चलने लगा यों अविनीत की कुशिक्षा मानने वाले बहुत दुःख पाते हैं यह दो घोडों की नवमी कथा सम्पूर्ण हुइ ॥ ९ ॥

अब यदि अविनीत शिष्य को गुरु हित शिक्षा देवे तो वह द्वेषी बनकर लोगों के सन्मुख कहता है कि गुरु मुझे चपेटा (थप्पड) मारते हैं, ठकोर मारते हैं, मेरे पर आक्रोश करते हैं, मेरा वध करते हैं, इस

,दिट्ठी वि मन्नइ ॥ ३८॥पुत्तो मे माइ नाइ वि, साहू कल्लाणं मन्नइ ॥ पावदिट्ठिओ अप्पाणं, सासं दासिति मन्नइ ॥ ३९ ॥ नकोवए आयरियं, अप्पाणं पि न कोवए ॥ बुद्धोवघाई न सिया, न सिया तोत्त गवेसए ॥ ४० ॥ आयरियं कुवियं नच्चा,

धरह वह निन्दा करता है ॥ ३९ ॥ और विनीत शिष्य गुरु की हित शिक्षा से प्रसन्न बनकर विचारता है कि यह गुरुजी मुझे पिता पुत्र की तरह बड़े छोटे भाइ की तरह अथवा ज्ञाति जन की तरह हित शिक्षा देते हैं मेरे आत्मा को यह शिक्षा हितकर्ता, ज्ञानादि गुन की वृद्धि कर्ता व कल्याणकारी होगी और जो अविनीत पाप दृष्टि शिष्य है वह ऐसा विचारता है कि गुरु मुझे दास की तरह तर्जना ताडना करते हैं ॥ ३९ ॥ जो विनीत शिष्य होते हैं वे सदैव ऐसे प्रवर्तते हैं कि न तो वह आचार्य को कुपित करते हैं और न आप कदापि कुपित बनते हैं गुरु की घात का चिंतवन कदापि नहीं करते हैं और गुरु के छिद्र की गवेषणा करनेवाले भी नहीं होते हैं ॥ ४० ॥ इस पर आचार्य की कथा कहते हैं कोई एक आचार्य महा गुणवान अपने शिष्य के परिवार से बहुत वर्ष पर्यंत ग्रामानुग्राम विचरते भव्य जीवों को प्रतिबोध करते जंघा बल क्षीण होने से विहार करने में अशक्त बन किसी ग्राम में कि जहां श्रावकों का अच्छा समुदाय था और वे सुखी थे वहां स्थिरवास रहे आचार्यने अपने पास एक विनीत शिष्य को रखकर शेष सब शिष्यों को विचरने की आज्ञा दी यहां विनीत शिष्य गुरु को सब प्रकार से साता

उपजाता था और आचार्य की बहुत अच्छी तरह वैय्यावृत्य करता था इस से गाम के भाविक श्रावक उस की अच्छी प्रशंसा करते थे अब दूसरे साधु फीरते २ पुनः आचार्य के पास आये तब आचार्यने और गाम के श्रावकोंने उस विनीत शिष्य की बहुत प्रशंसा की यह सुनकर कितनेक विनीत भद्रक शिष्यों को यह बात रुची परंतु एक कदाग्रही शिष्य को ईर्षा उत्पन्न हुई और मन में विचार करने लगा कि क्या यह वैय्यावृत्य कर सकता है वैसी मैं नहीं कर सकता हूं अब तो आचार्य के पास में रहूंगा और वैय्यावृत्य करूंगा यों विचार कर आचार्य के पास रहने की अपनी इच्छा प्रदर्शित कर वह वहां ही रहा दूसरे शिष्य फीर अन्य स्थान विहार कर गये थोडे दिन तक तो अच्छी तरह वैय्यावृत्य की, परंतु पीछे से घबराकर विचारने लगा कि यह गुरु कब मरे और पाप कटे. ऐसा सदैव काम करने से तो नहीं हो सकता है इन के काम में मुझे घडी भर की फुरसद ही नहीं मीलती है इससे जल्दी मरजावे तो अच्छा यों गुरु को मारनेका उपाय रचा जब घर गोचरी जाय और गृहस्थ उन को अच्छा सरस आहारादि बहोरावे तब शिष्य ग्रहण करे नहीं और कहे कि गुरुजी का संथारा करने का भाव है इस से सरस स्निग्ध आहार का त्याग करते हैं ऐसा कहता हुआ सरस आहार लावे नहीं, और असातावकारी आहार लावे ऐसा देखकर गुरुजीने शिष्य से पूछा कि ऐसा आहार क्यों आता है ? तब शिष्य बोला कि आप को यहां रहते बहुत दिन होगये हैं जिस से श्रावकों के भाव मन्द पडगये हैं कहा है कि-स्त्री पीअर नर सासरे संयमीयो स्थिरवास, इतन होवे अलखामने जो रे अधिक निवास॥ इस अनुसार अब आपन इन श्रावकों को हो गये हैं अच्छी वस्तु की आसना

पचिएण पसायए ॥ विज्झनेज्ज पजलिउडो, वएज्ज न पुणोत्तिय ॥ ४१ ॥ धम्माज्जिय
च ववहार, बुद्धेहायरिथ सया ॥ तमायरतो ववहार, गरहं नाभिगच्छइ ॥ ४२ ॥

करने पर भी यहां के श्रावकों देते नहीं हैं यों गुरजी को समजाया इतने में गामते श्रावको मीलकर आचार्य के पास आकर विनाति करने लग कि-आपका सथारा करनेका विचार है ऐसा चेलाजी करते हैं इस से हम दिलगीर हुवे हैं अहो भगवन् ' आप का शरीर अभी अच्छा है तो आप क्यो सथारा क्यों करना आचाय महाराज अपने अविनीत शिष्यका कपट समज गये और विचार किया कि श्रावकोंका तो वैसा ही भाव है परंतु यह सब अविनीत शिष्यका प्रपच है अब इस में सथारा नहीं करू तो धमकी हीलना होवे इस लिय सथारा करना ही मुझे उचित है ऐसा विचार अपने दुष्ट शिष्यके अवगुन प्रसिद्ध नहीं करते हुए सथारा कर दिया और आयुष्य पूर्णकर स्वर्ग गये अविनीत शिष्य अनत ससारी बना यह आचायकी दूसरी कथा हुइ *

किसी समय आचाय कुपित होजावे तो उन का प्रतीतकारी वचनों से शात करे दोनों हाथ जोड कर विनाति करे कि मेरा अपराध क्षमा करो पुन मैं ऐसा नहीं करूगा ॥ ४१ ॥ तत्त्ववेत्ता ज्ञाता बुद्धिवत दशविध यति धर्म से प्राप्तकिया हुआ व्यवहार का पालन करे शुद्ध व्यवहार पालने वाले की कोइ निंदा नहीं करता है ॥ ४२ ॥ आचार्य के मनोगत अथवा कहा हुवा कार्य को

सूत्र

मणोगय वक्कगय, जाणित्ता यरियस्सउ ॥ त परिगिज्झ वायाए कम्मुणा उववायए ॥ ४३ ॥ वित्ते अचोइए निच्च खिप्प हवइ सुचोइए ॥ जहोवइट्ठ सुकय किच्चाइ कुव्वइ सया ॥ ४४ ॥ नच्चा नमइ मेहावी, लोए कित्ती से जायए ॥ हवइ किच्चाण सरण, भूयाण जगई जहा ॥ ४५ ॥ पुज्जा जस्स पसीयति, सबुद्धा पुव्व-सयुया ॥ पसन्ना लाभइस्सति विउल अट्ठिय सुय ॥ ४६ ॥ (काव्य)-सपुज्ज सत्थे सुविणीय ससए मणोरुई चिट्ठइ कम्मसपया ॥ तवो समायारि समाहि सवुडे,

अर्थ

शीघ्रमेव वचन से ग्रहण करे अर्थात यह कार्य मैं करूंगा यों कहकर फिर काया से उसे शीघ्रमेव कर देवे ॥ ४३ ॥ विनीत शिष्य गुरु आदि की प्रेरणा विना ही जाने प्रेरणा की है इस प्रकार शीघ्र मेव गुरु का काम करे इस से गुरु भी प्रसन्न हो कर उस की प्रशंसा करे ॥ ४४ ॥ विनयवान की सब लोक में कीर्ति होती है ऐसा मानकर मेधावी विनय का आचरण करे और जैसे पृथ्वी सब को आधार भूत है वैसे ही वह विनीत शिष्य सब का आधार भूत होवे ॥ ४५ ॥ जिनने विनय-नम्रता से आचार्य की सेवा की है उसे शिष्य पर आचार्य प्रसन्न होकर विशेष श्रुत ज्ञान का लाभ देते हैं ॥ ४६ ॥ उपसहार-वे ही पूज्यनीय हैं कि जिन का गुरु की आज्ञा में प्रवृत्ति रूप उपासना द्वारा आचार्य प्राप्त कर सर्व प्रकार से संशय रहित बने हैं, मन की रुचि-उत्साह पूर्वक साधु की कर्म सम्पदा कर्तव्य में

महज्जुई पचवयाइ पालिया ॥ ४७ ॥ सदेव गधव्व मणुस्स पूइए, चइत्तु देह मल पक पुव्वय ॥ सिद्धे वा हवइ सासए, देवेवा अप्परए महड्ढिए ॥ ४८ ॥ त्तिवेमि

इति विणयसुयणा मज्झयण सम्मत्त ॥ १ ॥ * * * *

रहे हैं तप तथा समाचारी में समाधिवंत व सवृतात्मा हैं, और महाद्युतिवंत—निर्मल पंच महाव्रत के पालक हैं ॥ ४७ ॥ ऐसे गुण युक्त जो विनीत शिष्य होते हैं वे चारों मकार के देवता विद्याधरों मनुष्यों के पूज्यनीय होते हैं यह मलमूत्रादि कीचड से भरा हुवा औदारिक शरीर का त्याग कर अनंत अक्षय अव्याबाध शाश्वत सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं अथवा कर्म रज अल्प रह जाने से (पुण्य वृद्धि होने से) महा ऋद्धिक देवता होते हैं ऐसा सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू ! जैसा मैंने महावीर स्वामी के पास से सुना है वैसा ही तेरे से कहा है यह विनय श्रुत नामक पहिला अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ १ ॥ ❁ ❁ ❁

॥ परिषह नामकं द्वितीय मध्ययनम् ॥

सूत्र

सुयमे आउसं तेणं भगवया एव मक्खायं, इह खलु बावीसं परिसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा यरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहण्णेज्जा ॥ कयरे खलु ते बावीसं परिसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा यरियाए परिव्वयतो पुट्ठो नो विहण्णेज्जा ? ॥ इमे खलु ते बावीसं परिसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सुच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा

अर्थ

अहो आयुष्मन् जम्बू ! मैंने सुना है उन भगवानने ऐसा कहा है इस लोक में बावीस परिषह काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कहे हैं इन को सुन कर इन को जान कर इन पर जय कर और इन के सन्मुख बन कर भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हुए साधु को परिषह प्राप्त होवे तो भी वे हणावे संयमकी घात करे नहीं प्रश्न- बावीस परिषह कौनसे २ हैं कि जिन को जान कर यावत् उन के सन्मुख होकर भिक्षा के लिये भ्रमता हुवे साधु को परिषह प्राप्त होवे तो भी वे हणावे नहीं ? उत्तर ये निम्नोक्त बावीस परिषह काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कहे हैं जिन को सुन कर, जान कर जिस पर जय कर और जिस के सन्मुख हो कर भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हुए

चरियाए परिव्वयतो पुट्ठो ना विहण्णेज्जा ॥ तंजहा—दिगच्छा परिसहे, पिवासा परिसहे, सीयपरिसहे उसिण परिसहे, दसमसय परिसहे, अचेल परिसहे, अरइ परिसहे, इत्थीपरिसहे, चरिया परिसहे, निसीहिया परिसहे, सेज्जा परिसह, अक्कोस परिसहे, वहपरिसहे, जायणा परिसहे अलाभ परिसह रोगपरिसहे, तणफास परिसहे जल्लपरिसहे, सक्कार पुरक्कार परिसहे, पन्नापरिसहे, अन्नाण परिसहे, दंसण परिसहे ॥ १ ॥ (गाहा)—परिसहाण पविभत्ती, कासवेण पवेइया ॥ तं भे उदा-

गाथा द्वारा कहते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं, कि अहो जम्बू ! काश्यप गोत्रीय श्री महावीर स्वामीने २१ अज्ञान परिषह, और २२ दर्शन परिषह॥*॥ अब इन बावीस परिषह का वर्णन विस्तारपूर्वक दो दो परिषह १७ तृणस्पर्श परिषह १८ जल मैल परिषह १९ सत्कार पुरस्कार परिषह, २० प्रज्ञा परिषह, ११ शय्या परिषह १२ आक्रोश परिषह, १३ वध परिषह, १४याचना परिषह १५ अलाभ परिषह, १६ रोग परिषह, ७ अरति परिषह, ८ स्त्री परिषह, ९ चर्या परिषह, १० निषद्या परिषह २ तृषा परिषह, ३ शीत परिषह, ४ उष्ण परिषह ५ दंशमशक परिषह, ६ अचेल साधु को परिषह होवे तो भी वे हणावे नहीं जिन के नाम कहते हैं—१ क्षुधा परिषह,

॥ परिपह नामकं द्वितिय मध्ययनम् ॥

सूत्र

सुयमे आउस तेण भगवया एव मक्खाय, इह खलु बावीस परिसहा समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा यरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विहण्णेज्जा ॥ कयर खलु ते बावीस परिसहा समणेण भगवया महावीरेण कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा यरियाए परिव्वयतो पुट्ठो नो विहण्णेज्जा ? ॥ इमे खलु ते बावीस परिसहा समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया, जे भिक्खू सुच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खा

अर्थ

अहो आयुष्मन् जम्बू ! मैंने सुना है उन भगवानने ऐसा कहा है इस लोक में बावीस परिषह काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कहे हैं इन को सुन कर इन को जान कर इन पर जय कर और इन के सन्मुख बन कर भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हुए साधु को परिषह प्राप्त होवे तो भी वे इणावे संयमकी घात करे नहीं प्रश्न-वे बावीस परिषह कौनसे? हैं कि जिन को जान कर यावत् उन के सन्मुख होकर भिक्षा के लिये भ्रमता हुवे साधु को परिषह प्राप्त होवे तो भी वे ध्यावे नहीं ? उत्तर ये निम्नोक्त बावीस परिषह काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कहे हैं जिन को सुन कर, जान कर जिस पर जय कर और जिस के सन्मुख हो कर भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हुए

यरियाए परिव्वयतो पुट्ठो ना विहण्णेज्जा ॥ तजहा—दिगच्छा परिसहे, पिवासा
परिसहे, सीयपरिसहे उसिण परिसहे, दसमसय परिसहे, अचेल परिसहे, अरइ
परिसहे, इत्थीपरिसहे, चरिया परिसहे, निसीहिया परिसहे, सेज्जा परिसह, अक्कोस
परिसहे, वहपरिसहे, जायणा परिसहे, अलाभ परिसह रोगपरिसहे, तणफास पारि
सहे, जल्लपरिसहे, सक्कार पुरक्कार परिसहे पन्नापरिसहे अन्नाण परिसहे, दसण
परिसहे ॥ १ ॥ (गाहा)—परिसहाण पविभत्ती, कासवेण पवइया ॥ त भे उदा-

साधु को परिषह होवे तो भी वे हणावे नहीं जिन के नाम कहते हैं—१ क्षुधा परिषह,
२ तृषा परिषह, ३ शीत परिषह ४ ऊष्ण परिषह ५ दंसमशक परिषह, ६ अचेल
परिषह, ७ अरति परिषह, ८ स्त्री परिषह, ९ चर्या परिषह, १० निषद्या परिषह
११ शय्या परिषह १२ आक्रोश परिषह, १३ वध परिषह, १४ याचना परिषह १५ अलाभ परिषह, १६ रोग
परिषह १७ तृणस्पर्श परिषह १८ जल मैल परिषह, १९ सत्कार पुरस्कार परिषह २० प्रज्ञा परिषह,
२१ अज्ञान परिषह, और २२ दर्शन परिषह॥*॥ अब इन बावीस परिषह का वर्णन विस्तारपूर्वक दो दो
गाथा द्वारा कहते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं, कि अहो जम्बू ! काश्यप गोत्रीय श्री महावीर स्वामीने

सूत्र

हरिस्सामि आणुपुर्व्वि सुणेहमे ॥ १ ॥ दिगिंच्छा परिगए देहे, तवस्सी भिक्खू थामवं॥ नछिंदे नछिंदावए, नपए न पयावए ॥ २ ॥ कालीपव्व सकासे, किसेधमणि संतते ॥ मायन्ने असणपाणस्स अदीनमणसो चरे ॥ ३ ॥ तओ पुट्ठो पिवासाए,

अर्थ

बावीस परिषह अनुक्रम २ कहे हैं उन का ही कथन में दृष्टान्त सहित अनुक्रम से कहता हूं सो तू श्रवण कर ॥ १ ॥ सब परिषह में क्षुधा परिषह सहन करना दुष्कर है इसलिये प्रथम इसका कथन कहते हैं-संयम व तप में जिन का आत्मा बलवान है वैसा तपस्वी साधु को क्षुधा व्याप्त हो जावे और अचित्त निर्दोष आहार का योग बने नहीं तो सचित्त वस्तु फलादि का स्वयं छेदन करे नहीं अन्य से छेदन करावे नहीं और छेदन करने वाले को अच्छा भी जाने नहीं वैसे ही स्वयं अशनादि पकावे नहीं अन्य से पकवावे नहीं पकाते को अच्छा जाने नहीं ॥ २ ॥ काक पक्षी की जंघा समान जिस का शरीर दुर्बल होगया होवे रक्त मांस सूक गये होवे और मात्र नसा जाल रही होवे वैसा तपस्वी असन पान की मात्रा प्रमाण का जान बना हुवा अदीन पना से विचरे अर्थात् आहार विना शरीर इतना शुष्क होजावे तो भी दीनता धारन करे नहीं ॥ ३ ॥ क्षुधा परिषह पर हस्तीमित्र सेठ की कथा कहते हैं-उज्जयनी नगरी में हस्तिमित्र नामक कोई श्रेष्टि रहता था किसी कारण पश्चात् पिता पुत्र वैरागी बनकर दीक्षा अंगीकार कर ग्रामानुग्राम विचरते हुवे कोई अटवि में पडगये वृद्धावस्था के कारण से हस्ति

मित्र साधु विहार करसके नहीं, जिस से अपने आचार्य से बोले कि-मेरा शरीर श्रम से अत्यंत खेदित होगया है और मैं नहीं चल सकता हूं इसलिये मैं अनशन व्रत लेकर संथारा अंगीकार करूं और आप आगे पधारो आचार्यने उन की शक्ति देखकर संथारा करवाया और उन का पुत्र साधु को आचार्यने अपने साथ आने के लिये बहुत कहा परंतु पितापर मोह होने के कारन वह वहां ही रहा. कालांतर में पिता साधु आयुष्य पूर्ण कर देव लोक में गये, और अवधि ज्ञान से अपने पूर्व भव के पुत्र साधु को शरीर की रक्षा करता हुआ देख कर मोह होने से वह देवता वहां आया, और उस मृत कलेवर में प्रवेश कर के अपने क्षुधा से पीडित पुत्र को कहने लगा कि-अहो मुने! इस जगह में जो वृक्ष फले हैं वे खाने योग्य हैं इसलिये खाओ, पुत्र साधु ने उत्तर दिया कि साधु को वैसा सचित्त अहार अकल्पनीय है, इसलिये मैं प्राणांत में भी वैसा आहार नहीं करूंगा उस साधु की ऐसी दृढता देखकर देवने वैक्रेय से श्रावक श्राविका का संघ बनाया और आहारादिक का आमंत्रण किया, परंतु उसे भी देव कृत्य जानकर ग्रहण किया नहीं तपश्चात् आस पास में ग्राम नगरादि बसाये और आहार की निमंत्रणा की परंतु उन में से भी आहार लिया नहीं इस से देवताने प्रसन्न होकर जहां उन का साधु समुदाय था वहां उस साधु को पहोंचा दिया और उन के गुरु को देवताने की हुई सब हकीकत कह सुनाइ गुरु खुश हो गये और उन की बहुत प्रशंसा की उस पुत्र साधुने भी शुद्ध संयम का पालन कर आत्म कल्याण किया इस तरह अन्य साधु को भी क्षुधा परिषह सहन

सूत्र

हरिस्सामि आणुपुव्विं सुणेहमे ॥ १ ॥ दिगिंच्छापरिगए देहे, तवस्सी भिक्खू थामवं॥ नछिंदे नछिंदावए, नपए न पयावए ॥ २ ॥ कालीपव्व सकासे, किसेधमणि संतते ॥ मायन्ने असणपाणस्स, अदीणमणसो चरे ॥ ३ ॥ तओ पुट्ठो पिवासाए,

अर्थ

बाइस परिषह प्रसंग २ करे हैं उन का ही कथन मैं दृष्टांत सहित अनुक्रम से कहता हुं सो तू श्रवण कर ॥ १ ॥ सब परिषह में क्षुधा परिषह सहन करना दुष्कर है इसलिये प्रथम इसका कथन करते हैं-संयम व तप में जिन का आत्मा बलवान है वैसा तपस्वी साधु को क्षुधा व्याप्त हो जाव और अचित्त निर्दोष आहार का योग बनें नहीं तो सचित्त वस्तु फलादि का स्वयं छेदन करे नहीं अन्य से छेदन करावे नहीं और छेदन करने वाले को अच्छा भी जाने नहीं वैसे ही स्वयं अशनादि पकावे नहीं अन्य से पकवावे नहीं पकाते को अच्छा जाने नहीं ॥ २ ॥ काक पक्षी की जंघा समान जिस का शरीर दुर्बल होगया होवे रक्त मांस सूक गये होवे और मात्र नसा जाल रही होवे वैसा तपस्वी असन पान की मात्रा प्रमाण का ज्ञान वाला हुवा अदीन पना से विचरे अर्थात् आहार बिना शरीर इतना शुष्क होजावे तो भी दीनता धारन करे नहीं ॥३॥ क्षुधा परिषह पर हस्तीमित्र श्रेठ की कथा कहते हैं-उज्जयनी नगरी में हस्तिमित्र नामक कोई श्रेष्टि रहता था किसी कारण वशात् पिता पुत्र वैरागी बनकर दीक्षा अंगीकार कर ग्रामानुग्राम विचरते हुवे कोई अटवि में पहुंचे वृद्धावस्था के कारण से हस्ति

विरयं लूह सीय फुसइ एगया ॥ नाइवेलं मुणी गच्छे, सोच्चाण जिनसासण ॥ ६ ॥

पता देख कर सोचा कि और कोई नहीं देखते हैं; परन्तु अनंतज्ञानी तो देख रहे हैं यह असंख्य जीवों का पिंड मेरे एक जीव की रक्षा के लिय नाश करना, तैसे ही महा पुण्योदय के प्राप्त अनंत भव निध्वंसक संयम का एक भव के क्षणिक सुख के लिये नाश करना मुझे उचित नहीं है इस विचार से लिया हुवा पानी यत्ना पूर्वक पीछा रख दिया फिर वहां से उठते हुए चक्कर आया और मूर्च्छित होकर नीचे गिरगया वहां से वह आयुष्य पूर्ण कर देवलोक में देवता हुआ वहां अवधि ज्ञान से अपना पीछे का भव देखा, और पिता साधु का मनोगत दुष्ट भाव जाना इस पाप की निवृत्ति कराने के लिये वह देव अपने कलेवर में प्रवेश कर जहां आचार्य और पिता साधु थे वहां आया और आचार्य को वंदनानमस्कार किया, परन्तु पिता साधु को वंदना नमस्कार किया नहीं आचार्य के पूछने पर वह देव बोला कि-अहो भगवन् ! सचित्त पानी भोगवाने का उनोंने दुष्ट मन से आदेश किया था, यों अथ इति सब कथन कह सुनाया और पिता साधु को प्रायश्चित्त दिलाकर शुद्ध किया स्वर्ग वहां से देवलोक में चला गया यह तृषा परिषह सहन करने पर धनमित्र साधु की बारहवी कथा हुई ॥ १२ ॥ ✿

क्षुधा तृषा से रहित निर्बल शरीरवाले को शीत विशेष होवे, इस से तीसरा शीत परिषह कहते हैं जो अग्नि आदि के आरंभ से निवर्ते हैं जिन का शरीर तपादिक से रूक्ष बना है अथवा तैलादिक विलेपन रहित रूक्ष हैं वैसे ग्रामानुग्राम विचरते हुवे साधु को कदाचित् शीत का परिषह होवे तो वह साधु जिन भगवान की आज्ञा श्रवण कर क्रिया काल का उल्लंघन करे नहीं परंतु कालोकाल क्रिया

सूत्र

दोगुञ्छीलज्जसजए ॥ सीओदग न सेविज्जा, वियडस्सेसण चरे ॥ ४ ॥ छिन्नावएसु पथेसु, आउरेसु विवासिए॥ परिसुक्क मुहे दीणे, त तितिक्खे परिसहे ॥ ५ ॥ चरत

अर्थ

करना चाहिये पर प्रथम क्षुधा परिषह पर हस्ति मित्र साधु की इग्यारवी कथा पूर्ण हुई ॥ ११ ॥ ❀ ❀ आहार करने से तृषा होती है इसलिये दूसरा तृषा परिषह का कथन करते हैं—अनाचार की दुगंछा करनेवाला और संयम की लज्जावाला संयति को तृषा की परिषह होवे तो सचित्त ठंडा पानी पीवे नहीं परंतु निर्दोष अचित्त पानी की गवेषणा करता हुवा विचरे ॥ ४ ॥ जिस मार्ग में कोई भी मनुष्य नहीं आवे जावे वैसे मार्ग में तृषा से आकुल व्याकुल बना हुवा और जिस का मुख सूक गया है वैसा साधु दीनपना रहित तृषा परिषह सम्यक् प्रकार से सहन करे परंतु सचित्त पानी का सेवन करे नहीं ॥ ५ ॥ इस

कथा

परिषह पर धनमित्र साधु की कथा कहते हैं। किसी आचार्य के पास पिता पुत्रने दीक्षा ली वे ऊष्ण काल में विहार करते हुवे तृषातुर हो गये पुत्र साधु का शरीर कोमल होने से वह बहुत घबराया आगे चलते हुए कोइ जलाशय दृष्टिगत हुवा, तब पिता साधुने विचार किया कि मेरी लज्जा से यह पानी नहीं पीवेगा इसलिये जल्दी २ पांव उठाकर आगे चलेगये पुत्र साधु पीछे से आ रहे थे उनोंने जलाशय देखकर पानी पीने का विचार किया, और चारों तरफ देखते कोइ दिखा नहीं इस से उस जलाशय में जाकर उस में से पानी की अंजली भरकर पीने का विचार किया जितने में उस पानी में रहे हुवे ...

परिवेवए ॥ ८ ॥ उण्हाहि तत्तो मेहावी, सिणाण नो वि पत्थए ॥ गाय नो परिसिं
चेज्जा, न वीएज्जाय अप्पयं ॥ ९ ॥ पुट्ठो य दंसमसएहिं, समरेव महामुणी ॥ नागो

मैल वगैरह से, अभ्यतर तृषा से पीडित बना हुवा साधु शुष्टि वायु मे साता होवे वैसा इच्छे नहीं ॥ ८ ॥ ऊष्ण ताप से पीडित बना हुवा साधु स्नान की भी प्रार्थना करे नहीं, पानी से गात्र का सिंचन मात्र भी करे नहीं, वैसे ही वींजने से हवा भी करे नहीं ॥९॥ इस ऊष्ण परिषह पर अरणक मुनि की कथा कहते हैं-तगरा नगरी के दत्त साहुकारने अपनी भद्रा भाया और अरणिक पुत्र के साथ दीक्षा अंगीकार की दत्त साधु वृद्धावस्था क कारन से आप ज्ञानाभ्यास कर सके नहीं, परंतु अपने पुत्र साधु को ज्ञानाभ्यास में लगाया और आप उस की वैय्यावृत्य करने लगा अब वह पिता साधु उस के लिये आहार वस्त्र पात्र वगैरह जो चाहिये सो लाकर देता था कालान्तर में वह पिता साधु काल के अवसर मे काल कर देवलोक में गया अब अरणिक मुनि को ही भिक्षा करने के लिये जाना पडा भीक्षार्थ भ्रमण करते हुए ताप से पीडित हो आकुल व्याकुल बन कर एक गृहस्थ के प्रासाद की छाया में खडे रहे उस समय उसही प्रासाद में रहनेवाली विरहिनी स्त्रीने अपने गवाक्ष में रहे हुवे साधु को देखे और दासी को बोलाने के लिये भेज दी अरणिक साधुने भिक्षा के लिये उस के घर में प्रवेश किया वहां उस स्त्रीने अनेक हाव भाव कटाक्ष से उस साधु को मोहित कर अपना तन मन व धन अर्पन कर दिया अरणिक साधु ऐसे भोगोंमें लुब्ध बन वहां रहने लगे उनकी माता साध्वी को अरणिक मुनि का का पता नहीं लगने से मोह से भ्रमित बन ढुंढने के लिये निकली और अरनक !

नमेनिवारं अत्थि, छविचाण न विज्जइ ॥ अहं तु अग्गि सेवामि, इइ भिक्खू न चिंतए ॥ ७ ॥ उसिण परियावेण, परिदाहेण तज्जिए ॥ घिंसुवा परियावेण, सायं नो करे ॥ ८ ॥ शीत का निवारण करने के लिये मुझे घर नहीं है, वस्त्र भी पूरे नहीं है इस से मैं अग्नि का सेवन करूं, ऐसी चिंतवना मात्र भी साधु करे नहीं ॥ ७ ॥ इस पर भद्रबाहु आचार्य के चार शिष्यों का दृष्टांत करते हैं—राजगृही नगरीमें चार वणिक थे कि जिनों भद्रबाहु आचार्य के पास दीक्षा अंगीकार कर ज्ञानाभ्यास करते व ग्रामानुग्राम विचरते पुनः राजगृही नगरी में आये इन चारों साधुओं में से एक वैभारगिरी पर्वत पर, दूसरा पर्वत के नीचे, तीसरा राजगृही के पंथ में वृक्ष के नीचे, और चौथा राज गृह नगरी के द्वार के पास दिन अस्त होने से रात्रि के चार प्रहर पर्यंत ध्यान करके स्थिर रहे रात्रि में अत्यंत शीत पडने से पर्वत पर का साधु प्रथम प्रहर में, पर्वत के नीचे का साधु दूसरे प्रहर में, राजगृही नगरी के पथ का साधु तीसरे प्रहर में और द्वार के पास का साधु चतुर्थ प्रहर में यों चारों साधु शीत परिषह को समभाव से सहन करते हुए आयुष्य पूर्ण होने से काल कर देवलोक में देवता हुए यह शीत परिषह पर भद्रबाहु आचार्य के चार शिष्यों की तेरवी कथा हुइ ॥ १३ ॥

* *

शीतकाल पीछे उष्ण काल आवे इस से चौथा उष्ण परिषह कहते हैं—ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ट आषाढ) अथवा शरद ऋतु (आश्विन कार्तिक) इन में उष्ण भूमि आदि के आताप से और बाह्य पसीना

उवेह न हणे पाणे, भुंजते मससोणियं ॥ ११ ॥ परिजुण्णेहिं वत्थेहिं, होक्खा
मित्ति अचेलए ॥ अदुवा सचेलए होक्खं, इइ भिक्खू न चिन्तए ॥ १२ ॥ एगया

प्राणियों मांस व रुधिर खाते होवे तो भी उन प्राणियों को त्रास देवे नहीं वैसे ही उन को अलग भी करे नहीं किंबहुना उन पर मन से भी द्वेष करे नहीं, परंतु उन की उपेक्षा [दया] करे, किसी प्रकार से उन जीवों को अन्तराय करे नहीं॥११॥ दंसमशक परिषह पर श्रमणभद्र कुमार की कथा कहते हैं चंपा नगरी के जितशत्रु राजा के श्रमणभद्र कुमारने दीक्षा अंगीकार करके ज्ञानाभ्यास किया अन्यदा वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके रहे वहां वृक्ष पर मधुका छत्ता था इस में से किसी प्रयोग से शहद मुनि के शरीर पर पडा जिस से मधुमक्षिका उस शहद लेने के लिये मुनि को दंश देने लगी मधु मक्षिकाओंने सब शरीर छिद्रमय बना दिया, तो भी वे चले नहीं, अत्यंत उज्वल नरक जैसी वेदना समभाव से सहन की उस समय नरक तिर्यचादि दुःखों का विचार कर अपने परिणाम की विशुद्ध धारा पूर्वक समाधि मरण मरकर देवलोक में गये यों श्रमणभद्र साधु समान सब साधुओं को दंश मशक का परिषह सहन करना यह श्रमणभद्र की पन्नरहवीं कथा संपूर्ण हुई ॥१५॥

दंशक मशक की बाधा निवारने के लिये वस्त्र की जरूर होने इस से छठा वस्त्र परिषह कहते हैं, वस्त्र जीर्ण होजाने से मैं वस्त्र रहित हो जाऊंगा तब मैं क्या करूंगा यों खेदित होवे नहीं वैसे ही किसी से याचना करते वस्त्र प्राप्त होजावे तो हर्षित भी होवे नहीं यों दोनों प्रकार का चिन्तवन साधु करे

सगाम सीसेवा, सूरो अभिहणे पर ॥ १० ॥ न सतसे न धारेज्जा, मणसि न पओसए॥

भरनक ' यों पुकारती फिरने लगी पकडा यह साध्वी माता इस तरह पुकारती हुइ उस ही मासाद नीचे से जा रही थी सो भरनकने देखी यह माता को देख लज्जित हुआ महेल से नीचे उतरकर साध्वी माताके पांव वंदन किया माता बोली अहो पुत्र ! चिंतामनी समान सयम व्रत का नाश कर तैने यह अनर्थ किया तब भरनकने उत्तर दिया कि-मातु श्री ! सयम की दुष्कर क्रिया मेरे से नहीं पलती है, परतु आज्ञा होवे तो जिस ऊष्ण परिषह से मैं भ्रष्ट हुआ हु उस ही ऊष्ण परिषह से मैं मेरे आत्मा का सुधारा करलू माताने कहा-आत्म कल्याण करना ही श्रेष्ठ है ऐसा सुन कर भरणकने सूर्य के ताप से अत्यंत तप्त बनी हुइ पत्थरकी शिला पर अपना शरीर डाल दिया और आहार व शरीर का त्याग कर सथारा किया जैसे अग्नि के ताप से मक्खन पीगलता है वैसे ही उन भरनक साधु का शरीर पिगल गया और आप समाधि भाव में लीन बने कर्म क्षय कर तत्काल स्वर्ग गये यह भरणक मुनि की चौदनी कथा सपूर्ण हुई ॥ १४ ॥

ऊष्ण काल पीछे चतुर्मास आवे और चतुमास में जीवादिक की उत्पत्ति होने से पांचवा दंशमशक का परिषह होने सा करते हैं जैसे संग्राम के अग्र भाग में रहा हुवा शूरवीर हाथी भाला आदि शस्त्र के बहुत प्रहार होने पर भी शत्रु की घात करता है वैसे ही दंशमशक परिषह से स्पर्शाया हुवा महा मुनि परिषह को जीतता है अर्थात् दंशमशक का परिषह प्राप्त होने पर समभाव से रहता है ॥ १० ॥ दंशमशकादि छुद्र

साधु हुआ अग्यारह अंग पढाये और पूर्व की विद्या पढाने के लिये वज्रस्वामी के पास भेजा वस रात्रि को वज्रस्वामी को स्वप्न आया कि किसी दीक्षितने दुध पीके २ छोड दिया प्रातःकाल में आर्यरक्षित मुनि मीले और सब वृतांत कह सुनाया वार्तालाप होने से उसे योग्य जान पुर्वो का अभ्यास शरू करवाया अभ्यास करते २ नव पूर्व का अभ्यास पूर्ण किया और दशवा पू। पढते गुरुजी से पूछा कि अब और कितना पढना बाकी है ! गुरुजीने उसे थका जान पढाना बंध कर दिया योग्य जानकर आचार्य पद पर स्थापन किये वे वहां से विहार कर दशारन पूर आये, वहां प्रतिबोध देकर माता को और फल्गु रक्षिता दे भाइयों को दीक्षा दी सोमदेव लज्जा से साधु का लिंग नहीं धार सके परंतु आचार्य सब फीरते रहे लोग आचार्यादि सब साधुओं को वंदना करे परंतु सोमदेव को वंदना करे नहीं सोमदेव के पुछने पर लोग ऐसा ही उत्तर देते थे कि हम साधु को वंदन करते हैं तुम दंड कमंडल धारी हो ऐसा सुनकर सोमदेवने दंड कमंडल छोड दिये परंतु धोती का त्याग किया नहीं आचार्यने उन के आत्मा का उद्धार के लिये श्रावक के बालकों को सीखला कर सोमदेव की धोती रस्ते चलते हुवे छिनवाइ वहां एक गृहस्थने सोमदेव को चोलपट्टा दिया उस पहनकर आचार्य के पास आवे और बालकों की निंदा करने लगे जब कोइ श्रावक बोला कि क्या धोती लादेऊं ? उन्होंने कहा कि अब लज्जा तो गइ धोती से क्या काम है अब तो ऐसा ही वस्त्र पहिनूगा तब वे सोमदेव प्रमाणोपेत वस्त्र धारी बने और आचार्यने उन को दीक्षा दी वे चारित्र

अचेलए होइ, सचेले आवि एगया ॥ एय धम्म हिय णच्चा, नाणी नो परिदेवए ॥

नहीं ॥ १२ ॥ कदापि जिनकल्पी की अपेक्षा वस्त्र रहित भी होजाऊं और स्थविर कल्पी की अपेक्षा कदापि वस्त्र सहित भी होजाऊं तो भी वस्त्र सहित अथवा रहित यों दोनों प्रकार के धर्म को हितकारी मानकर साधु खेदित होवे नहीं ॥ १३ ॥ इस अचेल परिषह पर आर्यरक्षित कुमार की कथा कहते हैं—दशपुर नगर का सोमदेव पुरोहित का पुत्र आर्य रक्षित परदेश से चवदह विद्या का अभ्यास कर आया उसे राजा आदिने बहुत धूमधाम से नगर में प्रवेश कराया वह अपने पिता के चरणारविंद में पडकर जैनधर्मावलम्बिनी माता के पास गया परंतु माता का मुख कमल आनंदित देखा नहीं, तब उसने माता से कारन पुछा माताने कहा कि कदापि तू चौदह विद्याका निधान बन आया है परन्तु यह चौदह विद्या तेरा आत्मकल्याण नहीं करसकती है कल्याण मात्र धर्म से ही होता है तब पुत्रने माता से पुछा कि धर्म का अभ्यास मुझे कौन करावे ? माताने कहा कि—तोतली पुत्र आचार्य कि जो तेरे संसार के मामा होते, उन के पास जा वे ही धर्मज्ञान पढा सकेंगे यह माताकी आज्ञा प्रमाण कर घर से निकलते ही इक्षु के नव अखंड सांठे ले जाते हुए का शकुन हुआ तब माताने कहा कि हे पुत्र ! तू नव पूर्व का अभ्यास करेगा तब वह आर्यरक्षित तोतलीआचार्य के पास आया, और वंदना नमस्कार कर सब वृत्तांत कहा तब आचार्य ने कहा कि जो संसार त्यागी होते हैं उन को ही हम ऐसी विद्या का अभ्यास करा सकते हैं यों सुनकर वह आर्यरक्षित [illegible]

पुत्र की स्थिति सुनकर राजा क्रोधित हो कर साधु के पास आया, परंतु अपने भाई को ही साधु देखकर लज्जित हुआ कि-राज पुत्र की यह क्या अवस्था की? साधुने उत्तर दिया कि-तुम्हारे ग्राम में किसी साधु को नहीं रहने देना यह कितना अनर्थ है? अब तेरा पुत्र दीक्षा लेवे तो अच्छा होवे राजाने उन की आज्ञा प्रमाण की और वे दोनों पुत्र अच्छे हो गये दोनों ने डर से दीक्षा ले राजकुमार शुद्ध संयम पालने लगा परंतु पुरोहित पुत्र जाति अभिमान से द्वेष सहित दीक्षा पालता था दोनों आयुष्य पूर्ण कर देवता हुए महा विदेह क्षेत्र में श्री सीमंधर स्वामी के दर्शनार्थ वे दोनों गये और पूछा कि-अहो भगवन्! हम सुलभ बोधि हैं या दुर्लभबोधि हैं? भगवानने राजपुत्र को सुलभ बोधि कहा और पुरोहित पुत्र को दुर्लभ बोधि कहा पुरोहित पुत्रने पुनः प्रश्न किया कि अहो भगवन्! मैं यहां से चवकर कहां जाऊंगा भगवानने उत्तर दिया कि-कौशाम्बी नगरी में मूकसेठ का तू भाई होगा अहो भगवन्! मूकसेठ कौन है? भगवान बोले कि कौशाम्बी नगरी में श्री नामक सेठ अपने वारस में एक पुत्र छोड़कर मर कर वह भंडसूर हुआ, उसे किसी प्रयोग से उस के पुत्रने मार डाला वह वहां से मरकर सर्प हुआ, वहां भी उस को पुत्रने मारा, और वहां से उस के पुत्र के वहां ही पुत्रपने उत्पन्न हुआ वहां जातिस्मरण ज्ञान से अपना पूर्व भव जाना और विचार हुआ कि-मैं बेटे को बाप कैसे कहूं? पुत्र वधू को माता कैसे कहूं? यों विचार वह मौन रहता था इस से उस का नाम मूक रखा वहां चार ज्ञान के धारक साधु आये और कहा कि—तू पहिले भंडसूर पीछे सर्प और वहां से पुत्र के पुत्रपने उत्पन्न हुआ है

सूत्र

॥ १३ ॥ गामाणुगाम रीयंतं, अणगारं अकिंचणं ॥ अरई अणुप्पवेसेज्जा, तं तितिक्खे परिसहं ॥ १४ ॥ अरई पिट्ठओ किच्चा विरए आयरक्खिए ॥ धम्मारामे निरारंभे, उवसंते मुणी चरे ॥ १५ ॥ संगो एस मणुस्साणं, जाओ लोगम्मि इत्थिओ

कथा

पाकर देवलोक में गये जैसे सोमदत्तने अचेल परिषह सहन किया वैसे ही सब साधु को अचेल परिषह सहन करना यह अचेल परिषह पर आर्यरक्षित कुमार की सोलहवी कथा हुई ॥ १६ ॥

अर्थ

सब नहीं मीलने से चिंता होवे इस से सातवा अरति परिषह कहते हैं—परिग्रह से रहित साधु को ग्रामानुग्राम विचरते हुए अरति होवे तो उस अरति परिषह को सहन करे ॥ १४ ॥ आत्मा की रक्षा करनेवाला विरतिवन्त व उपशांत मुनि अरति को दूर करके आरंभ रहित धर्म रूप बगीचे में विचरे ॥१ ॥ अचल पुरी नगरी के मित्रप्रभु राजा का पुत्र सागर चन्द्र और पुरोहित पुत्र इन दोनोंने राधाचार्य के पास दीक्षा अंगीकार की फिर शास्त्राभ्यास कर के उज्जयनी गये वहां सुना कि वहां का राजपुत्र और पुरोहित पुत्र ग्राम में साधुओं को नहीं रहने देते हैं, इस से लोगों को मना करने पर भी दोनों पुत्र को प्रतिबोध देने गये राजपुत्र साधु को देखकर बोला कि क्या तुम नृत्य करोगे ? साधु ने कहा कि वार्दित्र बजाओगे ? यों सुनकर दोनों पुत्र साधु को मारने आये, परंतु साधु के तप बल से रक्त का वमन करते हुए मूर्छित हो पड गये साधु वहां से स्वस्थान आ गये ऐसी अपने

जरेस एया परिन्नाया, सुकडं तस्स सामण्णं ॥ १६ ॥ एयमादाय मेहावी, पंक भूयाओ इत्थिओ ॥ नो ताहिं विणिहन्निज्जा, चरेज्जत्तगवेसए ॥१७॥एग एव चर लाढे

को सम्झान के लिये देवता उस के सामने सूके घास का भारा लेकर अग्नि में प्रवेश करने लगा तब दुर्लभ बोधि बोले,—रे मूर्ख ! घास का भारा ले कर जाज्वल्यमान अग्नि में क्यों मरने को जाता है ? देवता बोला हां हां ! मैं एक ही बार जलकर मरूंगा परन्तु तुम तो संसार रूप प्रज्वलित अग्नि में जाते हो जिस से तुम को अनंत वख्त मरना पड़ेगा, साधु मौन रहे आगे देवता पथिक का रूप बनाकर कांटे वाले मार्ग में खुल्ले पांव से चलने लगा उसे देख साधु बोले रे मूर्ख ! अच्छा मार्ग छोड़कर कांटे में क्यों चलता है ? देवता बोला कि यह कांटे तो निकल जायेंगे परन्तु तू संयम मार्ग छोड़कर कंटक रूप संसार मार्ग में क्यों जाता है ऐसा सुनकर वह चमक गया और पूछा कि तू कौन है? देवताने कहा कि-मैं एक श्रावक हूं यों अथ इति सब वृत्तान्त सुनाया—तब वह दुर्लभ बोधि मिटकर सुलभबोधि हुआ और शुद्ध मन से संयम ग्रहण कर शुद्ध संयम पालकर देवता हुआ ऐसा सुनकर अन्य साधुओंको अरति परिषह समभाव से सहन करना चाहिये यह अरति परिषह पर तपस्वी कथा हुई ॥ १७ ॥

भिक्षा जाने से स्त्री का स्मरण होवे इस से अब आठवा स्त्री परिषह कहते हैं—लोक में मनुष्यों को स्त्रियों का संग कर्म बंध करनेवाला है ऐसा जानकर जो स्त्री को त्याग करते हैं उस का ही साधुपना अच्छा है पंडित पुरुष कीचड़ समान स्त्रियों को जानकर मन से संयम की घात करे नहीं, परंतु आत्मगुण गवेषक होता हुआ विचरे ॥ १६ १७ ॥ स्त्री परिषह पर स्थूलीभद्र मुनि की कथा कहते हैं—

कथा

अब तू समज और जिन भाषीत धर्म अंगीकार कर उस समय उस मूक ने श्रावक पना धारन किया और धर्म ध्यान करने लगा हे देव तू उस का भाइ होगा अब वह देवता भगवान को नमस्कार कर मूकसेठ के पास आकर कहने लगा कि मैं तुम्हारी माता को स्वप्न में आम्र फल बताकर पुत्र पने उत्पन्न होउंगा तुम मुझे धर्मोपदेश करना मूक श्रावकने इस बात का स्वीकार किया अब वह देवता वहां से चवकर वहां मूक श्रावक के भाइपने उत्पन्न हुवा वह उस को धर्म का उपदेश सुनाते तब रोने लगे, साधुजी महाराज के पास भी जावे नहीं, पूर्व जन्मकी बात कह लगावे तो भी समजे नहीं यों कितनेक उपाय करते हुए भी उसे धर्म की रुचि हुई नहीं अब कितनेक दिन पीछे मूक श्रावक मर कर देवता हुवा ज्ञान से अपने भाइ को देखकर समजाने आया परंतु वह समजा नहीं तब उस को जलोदरका रोगी बना दिया और आप वैद्यका स्वांग बना कर आया उसने वैद्य से अपना रोग दूर करने का अत्यागृह किया वैद्यने कहा कि तू मेरा नौकर बन तो मैं तेरा रोग दूर करूं उसने वह स्वीकार किया उस का रोग दूर करके अपनी औषधि की थेली पांच मनवजन बना कर उस के शिर पर देकर चलता जिस से वह घबराने लगा साधु को देख देवता बोला जो तू साधु होवे तो तुझे छोड दूं! उस ने मन नहीं होने पर भी दुःखसे छुटने का साधु होना कबूल किया उसे साधु बनाकर देवता स्वस्थान गया वह दुलभबोधी संयमछोडकर घर भग गया देवताने फीर जलोदरका रोग उस के शरीरमें डालदिया यों वह तीन वक्त भगगया, और देवताने उसे साधु बनाया इस तरह भी धर्म में स्थिर नहीं रहने से उस

यह पाखंड है गुप्त रीति से तपास करते प्रधान को उस का भेद मालूम हो गया और थेली पानी से गुप्तपने निकलवा ली। फिर राजा और प्रधान दोनों वहां गये ब्राह्मणने स्तुति पूर्ण होने पर पटिया बहुत ही दबाया परंतु थेली बाहिर आई नहीं जिस से बड़ा शरमिंदा हो गया राजा प्रधान दोनों घर आ गये अब उस ब्राह्मण का अपमान होने से प्रधान को मारने का उपाय करने लगा प्रधान के छोटे पुत्र श्रिये के लग्नोत्सव में राजाजी को नजराणा करने के लिये राजा के आभूषण व शस्त्रादि बनवाते थे इस बात की वररुचि पंडित को मालूम हुई जिस से गाँव के बालकों को एक दुहा बनाकर सिखलाया कि-दुहा नंदराय नवी जान ही जो शकडाल करेश।। नंदराय मारी करी,श्रीयो राजठवेश ॥१॥ राजाने बालकों के पास से सुनकर प्रधान के घर में गुप्तपने तपास कराई तो मालुम हुवा कि प्रधान के वहां भी छत्र, चामर, व शस्त्र बनवा रहे हैं यह सुनकर राजा कोपातुर हो गया प्रधान राजा के पास आया तब राजाने मुख फिरा लिया प्रधान अपने घर गया और पुत्र से कहा कि राजा मेरे से रुष्ट हो गये हैं इस से सब कुल का नाश करदेंगे इसलिये राजसभा में राजा के सन्मुख तू मुझे खड्ग से मार डाल अब प्रधान पुत्र के साथ राजा को पुन नमन करने गया परंतु राजाने सामने देखा नहीं तब श्रियाने उस को खड्ग से मार डाला राजा हाहा कर कहने लगा कि—यह क्या ? श्रिया बोला कि जिस पर स्वामी कोपित हो गये हैं उस का ऐसा ही हाल करना चाहिये राजा

पाटली पुर नगर के नंद राजा का शकडाल प्रधान के स्थूलिभद्र और श्रिया नामके दो पुत्र और सेना प्रमुख सात पुत्रियों थी बडे पुत्र को कोश्या नामक वेश्या के यहां विद्याभ्यास करने को बैठाया वह उस के भोगों में लुब्ध बनकर वहां ही रहने लगा सातों पुत्रियों महा विदुषी थी इन में से पहिली एक बार श्रवण करने से, दूसरी दो बार श्रवण करने से, यावत् सातवी सात बार श्रवण करनेसे कोई भी ग्रन्थ कंठस्थ कर लेती थी वहां रुचि नामक परदेशी ब्राह्मण नित्य १०८ नविन श्लोक राजा को सुनाया करता था जिस से राजा संतुष्ट हो सदैव १०८ सुवर्णमहोर उस को दिया करता था प्रधानने विचार किया कि इस तरह देने से राजाका भंडार खाली हो जायगा इस से यह बंध करना ऐसा विचार कर राजा से बोला कि यह ब्राह्मण नविन श्लोकों का ढोंग कर आप को प्राचीन श्लोक सुनाता है राजाने कहा कि तुम कैसे जानते ? प्रधानने कहा कि मेरी पुत्रियों को ये श्लोक कंठाग्र आते हैं सातों पुत्रियोंको राजसभा में लाया, ब्राह्मण जो श्लोक बोला उस पहिली पुत्रीने एक बार सुनकर सब बोल दिया फिर दूसरी यों सातों पुत्रियोंने सब श्लोक सुना दिये तब वह ब्राह्मण खेदित होकर चला गया अब वह ब्राह्मण गंगा नदी की रेती में एक पटिया डालकर उसके किनारेपर खडा रहता और दूसरे किनारे पर गंगा नदी में १०८ सुवर्ण महोरों की थैली रखकर गंगा की स्तुति करता था स्तुति पूर्ण हुए पीछे पांव से पटिया दबाने से दूसरे किनारे पर रही हुई सुवर्ण महोरों की थैली उछलती थी वह हाथ में झेलकर लोगों को कहता था कि

र चतुर्मास करने की आज्ञा मांगी तब चौथे स्थुलिभद्रने कोश्या वश्या के यहां चौमासा करने की आज्ञा मांगी गुरुजीने चारो को सुख होवे वैसे करो—यों चौमासा करने की आज्ञा दी चारों इच्छित स्थान गये स्थुलि भद्र को आते हुए देख कर कोश्या खुश होगइ, साधुने चौमासा रहने के लिये स्थान मांगा, तब वैश्याने कहा कि आप का देह और गेह है! यों कह कर स्थुलि भद्र के पास आइ, स्थुलि भद्रने कहा मैं साधु हूं मेरे से दूर खडी रह कर बोलना कोशा वेश्याने विचार किया कि यह थोडी देर का वैराग्य है इसे पीछे से वश में करूंगी यों विचार कर कहने लगी की जैसी आप की इच्छा अब स्थुलि भद्र चित्रशाला में चतुर्मास रहे वह कोशावेश्या सदैव अनेक हाव भाव व कटाक्ष से उन को चलित कर परंतु स्थुलिभद्र चलायमान हुये नहीं और उपदेश देवे यों उपदेश देकर वश्या को श्राविका बनाइ बारह व्रत धारन कराये, राजा आज्ञा कर किसी पुरुष को भेज उस के आगार और अन्य सब पुरुषसे भोगका त्याग किया चोमासा पूर्ण हुए पीछे चारों साधु गुरुजी के पास आये; गुरुजीने तीन साधुओं को दुक्कर करनी करने वाले कहे परन्तु स्थूलिभद्र को महा दुक्कर करनी करने वाले कहे इस से तीनों को ईर्षा हुई और परस्पर कहने लगे कि काष्ट जैसा शरीर बनाकर आये हैं तब दुक्कर कहा और यह स्थूलिभद्र वेश्या की चित्र शाला में मनोरम षट्रस के भोजन खाकर पुष्ट शरीर बना आया, उस को महा दुक्कर कहा गुरुजी सो प्रधान पुत्र का पक्ष रखते हैं तब गुरुजीने कहा कि वहां रागवती वेश्या और नित्य षट्रस के भोजन सदा विषय स्थान में रहना, और मनोहर शरीर की धारक ये या की संगति ऐसा होने पर, स्थूलिभद्र

सुनकर खुशी हुआ, और उस के पिता का पद उस को ही देने लगा तो उसने कहा कि मेरा बड़ा भाई स्थुलिभद्र है उस को दो स्थुलिभद्र को कोशा वेश्या के यहां से बोलाया और प्रधान पद का कहा उसने विचार किया कि जैसे पिता का हाल हुवा वैसा ही मेरा हाल होगा यदि मैं इस बात का स्वीकार करु नहीं तो बलात्कार से मुझे उस पद पर नियत करेंगे इस से बचने का यही उपाय है कि दीक्षा लेना ऐसा विचार कर साधु का वेष पहिन कर राजा के पास आया राजा बोले कि यह क्या किया? स्थुलिभद्रने उत्तर दिया कि आत्मा तारने का यह मार्ग है राजा बोले अच्छा है परंतु जैसा लिया वैसा ही पार पहुंचाना स्थुलिभद्र संभूति आचार्य के पास दीक्षा लेकर नव पूर्व का ज्ञान पढे कोशा वेश्या स्थुलिभद्र के दीक्षा का समाचार सुनकर उदास हो गई उस से श्रियाने स्थुलिभद्र की दीक्षा का कारन पूछा श्रियाने सब कथन कह सुनाया और वररुचि पंडित को मारने का उपाय किया वेश्याने उस वररुचि पंडित को अपने वश में कर मदिरा पान कराया और श्रियाने उसे राज्यसभा में पकड मंगवाया औषधि देकर उस को वमन करवाया जिस से मदिरा निकली सब लोगोंने उस की दुर्गछा की राजाने उस को भ्रष्टाचारी जानकर ऊष्ण ताम्बे का रस पिलाया वह मरकर दुर्गति में गया, यहां स्थुलिभद्र संभूति आचार्य के पास ज्ञानाभ्यास करते विचर रहे हैं उतने में चतुर्मास का काल नजदीक आया एक शिष्यने कुवे के बीच में रहा हुवा काष्ट पर कायोत्सर्ग से चातुर्मास व्यतीत करने की आज्ञा मांगी दूसरेने सिंह की गुफा में चतुर्मास पूर्ण करने की आज्ञा मांगी, तीसरेने सर्प की बिल के

पर चतुमास करने की आज्ञा मांगी तब चौथे स्थुलिभद्रनें कोश्या वेश्या के यहां चौमासा करने की आज्ञा मगी गुरुजीने चारो को सुख होवे वैसे करो—यों चौमासा करने की आज्ञा दी चारों इच्छित स्थान गये स्थुलि भद्र को आते हुए देख कर कोश्या खुश होगई, साधुने चौमासा रहने के लिये स्थान मांगा, तब वैश्याने कहा कि आप का देह थोर गेह है ! यों कह कर स्थुलि भद्र के पास आई स्थुलि भद्रने कहा मैं साधु हूं मेरे से दूर खडी रह कर बोलना कोशा वेश्याने विचार किया कि यह थोडी देर का वैराग्य है इसे पीछे से वश में कर लूगी यों विचार कर कहने लगी की जैसी आप की इच्छा भब स्थुलि भद्र चित्रशाला में चतुर्मास रहे वह कोशावेश्या सदैव अनेक हाव भाव व कटाक्ष से उन को चलित कर परंतु स्थूलिभद्र चलायमान हाये नहीं और उपदेश देवे यों उपदेश देकर वेश्या को श्राविका बनाइ बारह व्रत धारन कराय, राजा आज्ञा कर किसी पुरुष को भेजे उस का आगार और अन्य सब पुरुषसे भोगका त्याग किया चोमासा पूर्ण हुए पीछे चारों साधु गुरुजी के पास आये, गुरुजीने तीन साधुओं का दुक्कर करनी करने वाले कहे परंतु स्थूलिभद्र को महा दुक्कर करनी करने वाले कहे इस से तीनों को ईर्षा हुई और परस्पर कहने लगे कि काष्ट जैसा शरीर बनाकर आये हैं तब दुष्कर कहा और यह स्थूलिभद्र वेश्या की चित्र शाला में मनोरम षडरस के भोजन खाकर पुष्ट शरीर बना आया उस को महा दुक्कर कहा गुरुजी तो प्रधान पुत्र का पक्ष रखते हैं तब गुरुजीने कहा कि वहां रागमती वेश्या और नित्य षड रस के भोजन सदा विषय स्थान में रहना, और मनोहर शरीर की धारक वेश्या की संगाते ऐसा होने पर, स्थूलिभद्र

रहे इस लिये सच ही महा दुष्कर करणी करनेवाले हैं तब सिंहगुफावासी साधु ने ईर्षा से दूसरा चौमासा आया तब वेश्या के यहां रहने की आज्ञा मांगी गुरु मौन रहे तब शिष्यने आज्ञा विना ही चलदिया अब वह कोशा वेश्या के यहां गया वेश्या उस मुनि को आते हुए देखकर समझ गई कि यह स्थूलिभद्र की ईर्षा से आये हैं उन को अपनी चित्र शाला में रहने का स्थान दिया साधु उस का वैभव देखकर विषयाभिलाषी बनकर भोग की याचना करने लगा तब उसने कहा कि हम तो धन देनेवाले को स्वीकारती हैं साधुने कहा कि-हमारी पास धन नहीं है तू कहे यहां से ले आऊं. वेश्याने नेपाल देश का राजा रोगी साधु को रत्न कम्बल देता है वह ला दो ऐसा कहा ऐसा सुनकर चतुर्मास में अनेक जीवों की घात करता हुवा नेपाल देश में गया वहां से रत्न कम्बल ली और मार्ग में चोर वगैरह के महा संकट से बचकर वेश्या के यहां आया वेश्याने इसे मल मूत्र की मोरी में डाल दी साधुने कहा कि मैं बहुत परिश्रम से लाया हूं उसे तू खराब मोरी में क्यों डाल देती है? वेश्याने कहा कि-तुम्हारा वैसे ही कार्य है साधु बोले कैसे? वेश्याने कहा कि-रत्न कम्बल से अधिक मूल्यवाला यह संयम तुझे यह प्राप्त हुवा है इस को तैने मल मूत्र से भरा हुवा मेरा शरीर के लिये नष्ट कर दिया तुझ को धिक्कार होवो ऐसे कार्य में स्थूलिभद्र जैसे मुनि ही समर्थ हैं तुम्हारे जैसे पामरों क्या कर सकते हैं ऐसा सुनकर साधु लज्जित हो गया और गुरु के पास आकर आलोचना कर पुनः संयम धारन किया जैसे स्थूलिभद्रने स्त्री परिषह सहन किया वैसे ही सब साधु को स्त्री परिषह सहन करना चाहिये यह स्थूलिभद्रजी की अठारवी कथा संपूर्ण हुई ॥ १८ ॥

अभिभूय परिसहे ॥ गामे वा नगरे वावि, निगमेवा रायहाणिए ॥ १८ ॥ असमाणो चरेभिक्खू, नेव कुज्जा परिग्गह ॥ असंसत्तो गिहत्थेहिं, अणिकेओ परिव्वए ॥१९॥

स्त्री परिषह से बचने के लिये विहार करना चाहिये इस से नववा चर्या परिषह कहते हैं—निर्दोष आहार से शरीर का निर्वाह करनेवाला, साधु चर्या परिषह जीतकर अकेला राग द्वेष रहित गाम, नगर, निगम व राज्यधानी में विचरे ॥ १८ ॥ वह साधु किसी गृहस्थ की नेश्राय नहीं रखता हुवा घर मनुष्यादिक में ममत्व रूप परिग्रह नहीं करता हुवा और गृहस्थ के साथ संसर्ग नहीं रखता हुवा घर रहित साधु नव कल्पी विहार करता हुवा विचरे ॥ १९ ॥ इस चर्या परिषह पर संगमाचार्य की कथा कहते हैं— श्रावस्ती नगरी में संगमाचार्य वृद्धावस्था के कारण जंघा बल क्षीण होने से स्थिरवास करके रहे एकदा वहां दुष्काल पडने से लोगों का मन संकुचित देखकर अपने शिष्यों को विहार करवाया और आप उस नगर के अलग २ पुरे में विचरने लगे अवसर देखकर गौचरी करते थे और आयंबिल एकाशन अवमोदर्यआदि तप करके बारह वर्ष व्यतीत किये आचार्य की ऐसी उत्कृष्ट क्रिया देखकर नगर रक्षक देव संतुष्ट हुवा एकदा एक दत्त नामक शिष्य वहां आया और गुरु को उस ही स्थान में देखकर द्वेष लाया कि यह तो आनंद में यहां ही बैठे हैं और हम को तो विहार करवाया इस प्रकार विचार करता ग्राम में भिक्षार्थ गया और एक श्रेष्ठि पुत्र की व्यंतर व्याधि दूर कर आहार

सूत्र

सुसाण सुन्नागारेवा रुक्खमूले व एगओ ॥ अकुक्कुओ निसीएज्जा नय वित्तासए परं ॥ २० ॥ तत्थ से अच्छमाणस्स, उवसग्गाभिधारए ॥ संकाभिओ न गच्छेज्जा, उट्ठित्ता अन्नमासणं ॥ २१ ॥ उच्चावयाहिं सेज्जाहिं, तवस्सी भिक्खु थामवं ॥

भावार्थ

नगर आचार्य इस बात को जानकर पाछे कि सदोष आहार की आलोचना निंदा कर प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होवे तब शिष्यने कहा कि आपने ऐसे दुष्काल में यहां एक स्थान रहकर कैसे निर्दोष आहार भोगवा होगा ! ऐसे सुनकर नगररक्षक देव उस शिष्य से कहने लगा कि अरे तुम तुम्हारा अपराध आचार्य पर डालते हो तुम तो एक दिन भी निर्मल संयम पालसके नहीं परंतु आचार्यने जंघाबलक्षीण होने हुए भी विहार किया था और निर्दोष आहार पानी से आजीविका की थी यों सुन देव साधुने गुरु का अपराध खमाया और प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हुवा यों संगमाचार्य की तरह सब साधु को यथा परिषह सहन करना चाहिये संगमाचार्य की उन्नीसवी कथा हुई ॥ १० ॥

✽ पन्द्रो हवे को बैठने की इच्छा होवे जिस से अब दशवा निषधा बैठने का परिषह कहते हैं—विचरता हुवा साधु बैठने का प्रयोजन प्राप्त होने पर श्मशान शून्य गृह अथवा वृक्ष मूल में अकेला कुचेष्टा रहित बैठे और वहां बैठा हुवा अन्य किसी जीव को त्रास उत्पन्न करे नहीं ॥ २० ॥ वहां बैठते हुवे जो कोई देव दानव मानव का उपसर्ग आवे उस सहन करे परंतु उपसर्ग से भयभीत बनकर अपने आसन से उठकर अन्य आसन पर जावे नहीं ॥ २१ ॥ इस निषधापरिषह पर कुरुदत्त आचार्य की कथा कहते हैं हस्तिनापुर नगर में

मातिवेलं विहन्नेज्जा, पावदिट्ठी विहम्मइ ॥ २२ ॥ पइरिक्क वसयं लद्धुं, कल्लाणं

अदुव पावगं ॥ किमेगराय करिस्सति, एव तत्थ अहियासए ॥ २३ ॥ अक्कोसेज्जा

कुरुदत्त व्यवहारियाने दीक्षा धारन कर विहार करते एकदा किसी ग्राम के बाहिर रात्रि के चार प्रहर पर्यंत अभिग्रह सहित कायोत्सग करके रहे उस दिन रात्रि को गांव में धन की चोरी करके चोर उस ही रास्ते से चले गये गांव के लोगोंने पीछे गये और मुनि को पूछने लगे तो कुच्छ भी उत्तर दिया नहीं तब गांव के लोग कुपित बनकर मुनि के मस्तक पर मिट्टि की पाली बांधकर उस में जाज्वल्यमान अग्नि डालदिया उस से मुनि को अत्यंत उज्वल वेदना प्रगट हुई और मुनि शुभ ध्यान सहित आयुष्य पूर्ण कर कर देवलोक में गये यों सब मुनियों को निषेधा परिषह सहन करना चाहिये यह कुरुदत्त आचार्य की बीसवी कथा हुइ ॥ २० ॥

विक्षेप काल रहने के लिये मकानादि होना चाहिये इस से अग्यारहवा शैय्या परिषह कहते हैं अच्छी अथवा खराब शैय्या-स्थानक प्राप्त होने पर तप में बलवान साधु स्वाध्यायादिक की मर्यादा का उल्लंघन करे नहीं और जो पाप दृष्टी होते हैं वे प्रमादि बन शास्त्र उल्लंघन करते हैं ॥२२॥ अन्य के लिये बनाया हुवा शोभनिक अथवा अशोभनिक स्त्रियादि रहित स्थान प्राप्त करके वहां रहे और ऐसा विचार करे कि एक रात्रि यहां निकालनेकी है तो इतने में मेरा क्या होने का है, यों विचार कर परिषह सहे ॥ २३ ॥

सुसाणे सुन्नगारेवा रुक्खमूले व एगओ ॥ अकुक्कुओ निसीएज्जा नय वित्तासए पर ॥ २० ॥ तत्थ स अच्छमाणस्स, उवसग्गाभिधारए ॥ सकाभिओ न गच्छेज्जा, उट्ठित्ता अन्नमासणं ॥ २१ ॥ उच्चारयाहिं सज्जाहिं, तवस्सी भिक्खु थामवं ॥

लागा भावार्थ इस बात को जानकर पाले कि सदोष आहार की आलोचना निंदा कर प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हुआ नव शिष्यने कहा कि आपने ऐसे दुष्काल में यहाँ एक स्थान रहकर कैसे निर्दोष आहार भोगवा होगा ? ऐसे सुनकर नगररक्षक देव उस शिष्य से कहने लगा कि अरे तुम तुम्हारा अपराध आचार्य पर डालते हो तुम तो एक दिन भी निर्दोष संयम पालते नहीं परंतु आचार्यने जंघाबल्हीन होते हुए भी विहार किया था और निर्दोष आहार पानी से आजीविका की थी यों सुन दत्त साधुने गुरू का अपराध खमाया और प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हुआ यों संगमाचार्य की तरह सब साधु को चर्या परिषह सहन करना चाहिये संगमाचार्य की उन्नीसवी कथा हुइ ॥ १० ॥ ❁

चलते हुए या पढने की इच्छा होवे जिस से चप दबाना निषद्या बैठने का परिषह कहते हैं—विचरता हुवा साधु बैठन का प्रयोजन प्राप्त होने पर स्मशान शून्य गृह अथवा वृक्ष मूल में अकेला कुचेष्टा रहित बैठे और वहां बैठा हुवा अन्य किसी जीव को त्रास उत्पन्न करे नहीं ॥ २० ॥ वहां बैठते हुवे जो कोई देव दानव मानव का उपसर्ग आवे उस सहन करे परंतु उपसर्ग से भयभीत बनकर अपने आसन से उठकर अन्य आसन पर जावे नहीं ॥ २१ ॥ इस निषद्यापरिषह पर कुरुदत्त आचार्य की कथा कहते हैं हस्तिनापुर नगर में

उस की प्रतिमा को प्रधान पुष्पों से पूजा करता था फिर वहां से निकल कर ग्राम में पुष्पादि का विक्रय कर उसे अपनी आजीविका चलाता था उस ही राजगृही नगरी में छे मित्र पुरुष रहते थे वे राजा तरफ से निर्भय बने हुये मदोन्मत्त बनकर एकदा उत्सव के लिये उस ही बगीचे में आये वहां उस मालन को देखकर वे विषयाभिलाषी पुरुष परस्पर कहने लगे कि इस मंदिर के कमाडों पीछे अपन छिपकर खडे रहे जब वह माली उस यक्ष को नमस्कार करने को आय किन्तुरत ही उस को बांधकर उस की स्त्री से अपन भोग करेंगे, ऐसा कहकर वे वहां ही छिपगये, वह अर्जुन माली अपनी स्त्री सहित वहां आया यक्ष की पूजा करके नमस्कार करने लगा, उतने में ही उन छ ही पुरुषोंने उस को मजबुत बांधकर गुडा दिया, और उस की स्त्री साथ व्यभिचार सेवन करने लगे तब माली क्रोधित हो कर बोला कि—मेरी कई पीढियों से यह यक्ष पूजित हो रहा है और मैं भी बाल्यावस्था से इस का पूजारी हूं अगरचेत इस में सत्यता होती तो इस के ही सन्मुख मेरी होती हुइ अपचेष्टा वह कदापि सहता नहीं इस से यह यक्ष नहीं है परंतु काष्ट का पूतला है वह माली ऐसा चिन्तवन कर रहा था, उतने में ही उस यक्षने उस के शरीर में प्रवेश कर तडातड बधनो तोड कर एक हजार पल्य का मुद्गल उठाकर उक्त छे ही पुरुष और स्त्री को मार डाली फिर वह यक्ष अर्जुनमाली के शरीर में रहा हुवा राजगृही नगरी के बाहिर फिरने लगा, और नित्य छ पुरुष व एक स्त्री यों सात को मारने लगा राजगृही नगरी के लोक बडे त्रास पाये और गोचिक

सूत्र

परे भिक्खू, न तेसिं पडिसजले॥सरिसोहोइ बालाण, तम्हा भिक्खूने सजचे ॥२४॥
सोच्चाण फरुसा भासा, दारुणा गामकंटगा ॥ तुसिणीओ उवेहेज्जा, न ताओ

कथा

इस पर सोमदत्त व सोमदेव की कथा कहते है—कौशाम्बी नगरी में मगदत्त ब्राह्मण के सोमदत्त व सोमदेव ये दोनों पुत्र शांत आचार्य के पास दीक्षा लेकर ज्ञानाभ्यासकर सोमप्रभ आचार्य ने उधनाथ उज्जयनी नगरी जाते मार्ग में किसीने भोसामन वहराया उस भोगवते हुए दोनो साधु व्याधिसे पीडित हुए उस भोसामन को विष मीश्रित जानकर एक नदी के किनारे किसी काष्ट के पाटपर अनशन से ध्यानस्त रहे अकस्मात् वृष्टि होने से साधु सहित वह काष्ट नदी में बहकर चला परन्तु साधु चलायमान हुए नहीं और आयुष्य पूर्ण कर देवलोक गये इस ही प्रकार अन्य साधु को भी शैय्या परिषह सहन करना यह इक्कीसवी कथा हुई ॥ २१ ॥ ❁ ❁ ❁ ❁

अर्थ

ग्रामानुग्रामादिक में रहते हुए गृहस्थ आक्रोश वचन सुनावे इस से बारहवा आक्रोश परिषह कहते है जो कोई साधु को आक्रोश वचन कहे उस पर वह साधु क्रोध करे नहीं क्यों की क्रोध करने वाला बाल अज्ञानी जैसा होता है इस से साधु को क्रोध करना नहीं ॥२४॥ कठोर दारुण, और इन्द्रियों को कंटक समान भाषा सुनकर के भी साधु मौन धना हुवा उस की उपेक्षा करे अर्थात वैसी भाषा की दरकार करे नहीं और उन बोलने वाले पर द्वेषभी करे नहीं ॥ २५ ॥ इस पर अर्जुन माली की कथा कहते हैं राज गृही नगरी के बाहिर एक बगीचे का अर्जुन माली स्वामी था उस को रूपवती बन्धुवती नामक भार्या थी वे दोनों बगीचे में से पुष्पों चुनकर वहां ही रहा हुआ मुद्गर पानी यक्ष के देवालय में

मणसीकरे ॥ २५ ॥ हओ न सजले भिक्खू, मणंपि न पओसए ॥ तितिक्ख परम नचा, भिक्खू धम्म विचिंतए ॥ २६ ॥ समण संजय दंत, हणेज्जकोइ कत्थइ ॥ नत्थि जीवस्स नासोत्ति, एव चिंतज्ज सजए ॥२७॥ दुक्कर खलु भो निच्च, अणगा-

पत्नि वगैरह को मारे हैं इस से उस को भिक्षा के छल से अपने घर में बोला कर लष्टि मुष्टि आदि प्रहार करने लगे उस पर अर्जुन अनगार किंचित्मात्र कोप नहीं करते हुए और कुच्छ भी प्रत्युत्तर नहीं देते हुए समभाव से सहन करने लगे जब वे लोग मारना छोड देते थे तब आप कहते थे कि मैंने तो तुम्हारे स्वजनादिक को जीवित से पृथक् किये हैं परन्तु तुम तो मुझे जिंदा छोड रहे हो यह तुम्हारा परम उपकार है यों समभाव से आक्रोश परिषह सहन करते हुए क्वचित आहार मिलता तो पानी नहीं मिलता और क्वचित् पानी मिलता तो आहार नहीं मिलता यों जो मिले उस में संतोष मानते हुए छे ही महिने में सब कर्मों क्षय कर केवल ज्ञान केवल दर्शन सहित मोक्ष गये यह बारहवी कथा संपूर्ण हुई ॥२२॥

कदापि मार भी मारे इस से तेरवा वध परिषह कहते हैं—साधु को कोई मार मारे तो मन से भी उस पर क्रोध अथवा कोप करे नहीं परन्तु उस को सहन करने में उत्कृष्ट धर्म है ऐसा जानकर क्षमा धर्म की चिंतवना करे ॥ २६ ॥ कोई पुरुष किसी स्थान सयति व दमितेन्द्रिय श्रमण को मारे तो साधु विचार करे कि जीव का नाश तो कदापि होता ही नहीं है, यह मात्र पुद्गल पिण्ड को मारता है इस से मेरा कुच्छ नुकशान नहीं है ॥ २७ ॥ इस पर कथा कहते हैं—श्रावस्ती नगरी में जितशत्रु राजा के

राजाने ढुंढी पिटाइ कि राजगृही नगरी के बाहिर अर्जुन माली मनुष्यों को मारता है इस लिये किसी को गांव बाहिर आना नहीं इस तरह उपसर्ग होते ५ मास १३ दिन व्यतीत हुए जिस में ११४१ मनुष्य की घात हुइ लोगों के भाग्योदय से श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे गुणशील उद्यान में विराजमान हुए गांव में लोकों का मालूम हुआ परन्तु अर्जुनमाली के डर से कोई भी बाहिर जा सका नहीं उस राजगृही नगरी में सुदर्शन नामक सेठ रहता था वह सब के ना कहने पर भी भगवान के दर्शन के लिये गांव बाहिर गया वहां अर्जुन माली को मुद्गल उछालते हुए अपनी तरफ आता हुवा देखा कि तुरन ही सुदर्शन सेठने नीचे जमीन पूंजकर अरिहंत सिद्ध धर्माचार्य को नमस्कार करते हुए आलोचना निन्दना सहित सागारी संथारा किया उतने में अर्जुन माली वहां आ पहूंचा और उसे मारने के लिये मुद्गल उठाया परंतु मुद्गल हाथ से छूटा नहीं चारों तरफ फिरकर वह मुद्गल मारने लगा परन्तु हाथ से छूटा नहीं इस से आश्चर्यभूत बनकर सुदर्शन से देखने लगा दोनों की दृष्टि एक होते ही यक्ष उस अर्जुनमाली के शरीर में से निकल गया और अर्जुन मूर्छित होकर नीचे जमीन पर गिरपडा सुदर्शन संथारा पार कर अर्जुन सहित भगवान के पास आया भगवानने धर्मोपदेश दिया वहां अर्जुनने दीक्षा अंगीकार की और भगवान की आज्ञा से जावजीव पर्यंत बेले २ के तप करता हुआ विचरने लगा प्रथम बेले के पारणे में भिक्षा लेने के लिये राज गृही नगरी में आया उसे देख लोग क्रोधातुर होकर कहने लगे कि इसने हमारे मा-बाप मा

तब आचार्य बोले कि-मेरे सन्मख इसे मत मार परंतु पूरा दुष्ट पालक प्रधानने उस शिष्य को आचार्य के पास से छीनकर पील डाला वे भी केवली होकर मुक्ति गये इस समय आचार्य शांत रह सके नहीं और नियाना किया कि मेरी करनी का फल होवे तो इस घोर कृत्य का मैं वैर लेवूं अब प्रधानने उन को भी घानी में पीलडाले व मरकर भवनपति में अग्निकुमार जाति के देव हुए अब यहां पर उस स्कंधकाचार्य की रक्त से भरी हुई मुख वस्त्रिका मांस का लोथा जानकर चील ले उड गई, और उसे राजमहेल में डाल दी. उसे राजा की रानीने देखकर तपास कराई तो अपने भाई साधु को और उन के पांचसो शिष्यों को पालक प्रधान ने मार डाले हैं ऐसा सुनकर विलापात करती हुई राजा को कहने लगी कि पालक प्रधान के भ्रम में फसकर आपने बडा अनर्थ किया है इस का बदला आप को यहां ही मिल जायगा यों कहकर उसने दीक्षा ली अब अग्नि कुमार देवने कुपित बनकर राजा व पालक प्रधान सिवाय सब को जलाकर भस्म कर दिये राजा और प्रधानने पुनः उस देश का बडी कठिनता से आबाद किया, जिस को बारह वर्ष पीछे उस देवताने जला दिया यों बारह बार देश को जलाया और तेरहवी बार राजा प्रधान को भी जला दिये पालक अभव्य जीव अनंत संसारी हुआ जिस प्रकार स्कंधक अनगार के पांचसो शिष्योंने वध परिषह सहन किया वैसे ही सब साधु को सहन करना चाहिये यह तेवीसवी कथा संपूर्ण हुई ॥ २३ ॥

\+ \+

वध से पीडित साधुको औषधि आदि की याचना करनी पडे इससे चवदहवा याचना परिषह कहते हैं

धारनी रानी से खंधक कुमार और पुरंधरा पुत्री हुए थे, दोनों नीतिशास्त्र व धर्म शास्त्र में प्रवीण बने पुरंधराको दंडकारण्य देश के आधिपतिको दी थी, दंडकारण्यके राजा का पालक प्रधान रानीको लेनेके लिये श्रावस्ती नगरी में आया और राज्यसभा में धर्म चर्चा करता हुआ नास्तिक मत की स्थापना करने लगा खंधक कुमारने उसे प्रत्युत्तर दे कर निरुत्तर किया और जैन मत का महत्व बढाया इस से पालक अपने मन में अमरोष रखता हुआ रानी को ले अपने देश आया पीछे से मुनि सुव्रत भगवान के पास खंधक मुनिने ५०० पुरुषों के साथ दीक्षा ली और आचार्य पद पाये ५०० साधु सहित विचरते हुए दंडकारण्य देश में आये पालक प्रधान को इस बात की खबर होते ही अपना पूर्व का द्वेष से जहां खंधक अनगार अपने शिष्यों के परिवार से रहे थे, उस के पीछे नदी की रेती में विविध प्रकार के शस्त्रों छुपा दिये और राजा से कहने लगा कि तुम्हारा साला उन के ५०० सुभटों सहित तुम्हारा राज्य लेने के लिये आया है तुम को धर्म के ढोंग में फसाकर मार डालेंगे राजाने पूछा कि—तुम को यह कैसे मालूम हुवा ? उसने राजा को अपने साथ लेकर गुप्तपने नदी में छुपाये हुए शस्त्रों बताये राजा क्रोधातुर हो गया और आज्ञा की जैसी तुम्हारी इच्छा होवे वैसे इन की स्थिति करो तब पालकने पांचसो साधुओं को अपने वश में कर लिये और एक बडा घाणी का घाणा मेंडवाकर उस में एक २ साधु को पीलने लगा खंधक आचार्य बडे शब्द से उपदेश करते हुए उन के आत्मा को शांत करने लगे यों ४९९ साधु को पीले और वे अन्तकृत केवली हो मुक्ति गये पीछे एक छोटा साधु रहा गया

तब आचार्य बोले कि-मेरे सन्मुख इसे मत मार परंतु पूरा दुष्ट पालक प्रधानने उस शिष्य को आचार्य के पास से छीनकर पील डाला वे भी केवली होकर मुक्ति गये इस समय आचार्य शांत रह सके नहीं और नियाना किया कि मेरी करनी का फल होवे तो इस घोर कृत्य का मैं वैर लेवूं अब प्रधानने उन को भी घानी में पीसडाले व मरकर भवनपति में अग्निकुमार जाति के देव हुए अब यहां पर उस स्कंधाचार्य की रक्त से भरी हुई मुख वस्त्रिका मांस का लोंदा जानकर चील ले उड गई, और उसे राजमहेल में डाल दी. उसे राजा की रानीने देखकर तपास कराई तो अपने भाई साधु को भार उन के पांच सो शिष्यों को पालक प्रधान ने मार डाले हैं ऐसा सुनकर विलापात करती हुई राजा को कहने लगी कि पालक प्रधान के भ्रम में फसकर आपने बडा अनर्थ किया है इस का बदला आप को यहां ही मिल जायगा यों कहकर उसने दीक्षा ली अब अग्नि कुमार देवने कुपित बनकर राजा व पालक प्रधान सिवाय सब को जलाकर भस्म कर दिये राजा और प्रधानने पुनः उस देश को बडी कठिनता से आबाद किया, जिस को बारह वर्ष पीछे उस देवताने जला दिया यों बारह बार देश को जलाया और तेरहवी बार राजा प्रधान को भी जला दिये पालक अभव्य जीव अनंत संसारी हुआ जिस प्रकार स्कंधक अनगार के पांचसो शिष्योंने वध परिषह सहन किया वैसे ही सब साधु को सहन करना चाहिये यह तेवीसवी कथा संपूर्ण हुई ॥ २३ ॥

\+ \+

वध से पीडित साधुको ओषधि आदि की याचना करनी पडे इससे चवदहवा याचना परिषह कहते हैं

सूत्र

रस्स भिक्खुणो ॥ सव्वसे जाइय होइ, नत्थि किंचि अजाइय ॥ २८ ॥ गोयरग्ग पविट्ठस्स,पाणी नो सुप्पसारए ॥ सेओ आगार वासु चि,इइ भिक्खू न चिंतए॥२९॥

अर्थ

गुरु कहते हैं कि-अहो शिष्य ! साधु की याचना वृत्ति बडी दुष्कर है गृहस्थ का कुच्छ भी कार्य किये बिना मुफ्त में याचना करनी पडती है तब बहुत लज्जित होना पडता है परंतु याचना किये बिना कुच्छ भी नहीं मीलता है, जो कुच्छ मीलता है सो याचना करने से ही मीलता है ॥ २८ ॥ गोचरी के लिये गया हुवा साधु भिक्षा के लिये हाथ बाहिर निकाल सके नहीं तब ऐसा विचार करे नहीं कि इस से तो गृहवास अच्छा है ॥ २९ ॥

कथा

इस पर बलभद्र मुनि की कथा कहते हैं-एकदा नेमीनाथ भगवान से कृष्ण वासुदेवने प्रश्न किया कि मेरा मृत्यु कैसे होगा ? भगवानने कहा कि कौशाम्बी वन में वट वृक्ष नीचे पीताम्बर ओढ कर तू सोता होगा तब जराकुमार का बान लगने से तुम्हारा मृत्यु होगा श्री कृष्ण वासुदेवने दूसरा प्रश्न किया कि-द्वारिका नगरी का नाश कैसे होगा ? भगवानने कहा कि मदिरा पान से तुम्हारे कुमार दीपायन ऋषि को त्रास देंगे वह ऋषि कुमार देव बनकर तुम्हारी द्वारिका नगरी जलायेगा परंतु जहां तक आयंबिल जितना तप द्वारिका में होता रहेगा वहां तक देवता कुच्छ भी नहीं कर सकेगा पुनः कृष्ण वासुदेवने प्रश्न किया कि मैं यहां से मरकर कहां जाऊंगा ? भगवानने कहा कि तू यहां से मरकर तीसरी नरक में जावेगा यों सुन कृष्ण उदास हुए

तब भगवानने कहा कि-हे कृष्ण ! तू उस नरक से निकल कर शतद्वारा नगरी में अमम नामक बारहवा तीर्थंकर होकर मुक्ति में जावेगा इतना सुनते ही कृष्ण वासुदेव प्रमुदित होगये और सिंहनाद किया फिर भगवान को वंदना नमस्कार करके द्वारिका नगरी में आये और ढंढेरा पिटाया कि-द्वारिका नगरी में नाश होगा इस से नेमीनाथ भगवान के पास जिन की दीक्षा लेने की इच्छा होवे उन के कुटुम्बकी पार्छे से मैं संभाल करुंगा अपनी आठ पट्टरानियों और अन्य यदुस कुमारादि दीक्षा लेनेके लिये निकले और कृष्ण वासुदेव ने सब को बडी धूमधाम से दीक्षा दिलाइ अब द्वारिका के नाश का कारन मदिरा होने से उस की नगरी में रखने की मनाइ करदी और गांव में जो मदिरा थी वह सब डलवा दी वैसे ही गांव में सदैव एक आयंबील करान का प्रबंध कर दिया इधर राजकुमार वन में क्रीडा के लिये गये थे प्यास लगने से किसीने छिपाकर रखा हुवा मदिरा का घडा पानी के भरोसे पीगये इस से उन्मत्त बने हुवे वहां तप करने वाले दीपायन तपस्वी की अपचेष्टा करने लगे उस ने कुपित होकर श्राप दिया कि मेरे तप का फल होवे तो मैं द्वारिका जलावूं यों सुन कर कुमारोंने श्री कृष्ण से सब निवेदन किया कृष्ण व बलभद्र ये दोनों भाइ दीपायन ऋषि के पास आकर नमस्कार कर कहने लगे कि राज कुमारों का अपराध की क्षमा करो वगैरह बहुत दीनपना करनेपर दीपायन ऋषिजीने कहा कि तपस्वीका श्राप और स्वर्गों का अपवाद अन्यथा नहीं होता है परंतु अब तुम दोनों को नहीं जलाऊंगा दीपायन ऋषि को बहुत समजाया परतु माना नहीं तब होनहार जानकर अपने स्थान आये

द्वीपायन वहां से काल कर अग्नि कुमार देवता हुआ ज्ञान से सब वृत्तान्त जाना परंतु आयंबिल तप के प्रभाव से द्वारका जला सका नहीं, भवितव्य ऐसा ही हुआ कि जिस को आयंबिल करने का था उस के घर वालेने एक एक के भरोसे से आयंबिल किया नहीं यों संपूर्ण द्वारिका में आयंबिल तप नहीं हुआ देख देवताने नगर को अग्नि का दाह लगा दिया और किसी उपाय से अग्नि शांत हुई नहीं. उस में भी दीक्षा लेना चाहते थे उस को भगवान नेमीनाथजी के पास पहोंचा दिये कृष्ण व बलभद्र दोनों अपने पिता वसुदेव व माता देवकीजी को रथ में बैठाकर आप दोनों रथ खींचते हुए द्वारिका के द्वार से निकलने लगे, दोनों भाइ बाहिर निकले कि तुरत ही दरवाजा गिरने से उन के मात पिता वहां दबकर काल कर गये द्वारिका जलती देखकर कृष्णजी आर्तध्यान करने लगे वे वहां से पांडव मथुरा जाते मार्ग में कोशांबी वन आया कृष्णजी को प्यास लगने से बलभद्रजी पानी लेने गये कृष्णजी वट वृक्ष नीचे पीताम्बर ओढ कर सो गये इतने में वहां जरा कुमार निकले उसने दूर से कृष्णजी के पांव का पद्म को मृग का नयन मानकर उस को मारने के लिये बाण छोडा और वहां आया वह कृष्णजी को देखकर घबराया और पांव में पडकर अपना अपराध खमाया कृष्णजीने अपना कौस्तुभ मणि उस को दिया और कहा कि यह पांडवों को देना और सब वृत्तान्त कहना, अब तू यहां से चला जा नहीं तर बलभद्रजी आवेंगे सो तुझे मार डालेंगे यों सुनकर जरा कुमार भग गया उस को देख कर अन्त में उन की गति बीगडने की होने से कृष्ण क्रोधातुर हो गये और बोले किन्यार मुझे मारकर

कहां गया है, इसे भी मारुं और दीपायन कि जिसने मेरी द्वारिका नगरी जलाकर भस्म कर दी उसे भी मारुं. यों क्रोधावेश में उठकर जोर से जमीन पर पांव रखने गये कि तुरत ही वह बान पांव में प्रवेश कर गया और कृष्णजी मृत्यु शरण हो गये फीर बलभद्रजी पानी लेकर आये और कृष्ण को जगाने लगे परतु जगे नहीं तब वह बोलने लगे कि-मुझे पानी लाने में देर हो गई जिस से क्या रुसा गये ? यों अपने शरीर पर उसके शरीर को उठाकर फीरने लगे यों छ मासेनेशीतगये * फीर देवता समजाने के लिये एक मृतक गो का दूध निकालने बैठा उसे देख बलभद्रजी कहने लगे कि रे मूर्ख ! मृतक गाय भी क्या दूध देती है ? तब देवताने कहा कि-मरा हुआ भी क्या नींदा हो सकता है कि जैसे तुम उठाकर फीर रहे हो बलभद्रजी सुना अनसुना कर आगे चले तब देवता घानी बना कर रेती पीलने लगा. बलभद्रजी बोले रे मूर्ख ' क्या रेती में से तेल निकलता है ? देवताने पूर्वोक्त प्रकार उत्तर दिया यों देवता ने समजा कर कृष्ण के शरीर को चंदन काष्ट से अग्नि संस्कार किया बलभद्रजी नेमनाथ भगवान के पास दीक्षित हो एकल विहारी बने बलभद्रजी का इतना रूप था कि जहां जावे वहां स्त्रियों उन के रूप से मोहित बनकर पीछे फिरने लगे एक वक्त तुंगीया पुरी में बलभद्रजी आये वहां कूवे पर एक स्त्री पानी भर रही थी बलभद्रजी का रूप देखते ही मोहित होगइ और पानी भरते २ घडे के भरोंसे से अपने बालक के गले में फांसा डाल

द्वीपायन वहां से काल कर अग्नि कुमार देवता हुआ. ज्ञान से सब वृत्तान्त जाना परंतु आयंबिल तप के प्रभाव से द्वारका भस्म सका नहीं, भवितव्य ऐसा ही हुआ कि-जिस को आयंबिल करने का था उस के घर वालेने एक एक के भरोसे से आयंबिल किया नहीं. यों संपूर्ण द्वारिका में आयंबिल तप नहीं हुआ देख देवताने शहर की अग्नि का दाह लगा दिया और किसी उपाय से अग्नि शांत हुई नहीं. उस में जो दीक्षा लेना चाहते थे उस को भगवान नेमीनाथजी के पास पहोंचा दिये. कृष्ण व बलभद्र दोनों अपने पिता वसुदेव व माता देवकीजी को रथ में बैठाकर आप दोनों रथ खींचते हुए द्वारिका के द्वार से निकलने लगे, दोनों भाइ बाहिर निकले कि तुरत ही दरवाजा गिरने से उन के मात पिता वहां दबकर काल कर गये द्वारिका जलती देखकर कृष्णजी आर्तध्यान करने लगे वे वहां से पांडव मथुरा जाते मार्ग में कौशांबी वन आया कृष्णजी को प्यास लगने से बलभद्रजी पानी लेने गये कृष्णजी वट वृक्ष नीचे पीताम्बर ओढ कर सो गये उतने में वहां जरा कुमार निकले उसने दूर से कृष्णजी के पांव का पद्म को मृग का नयन मानकर उस को मारने के लिये बाण छोडा और वहां आया वह कृष्णजी को देखकर घबराया और पांव में पडकर अपना अपराध खमाया कृष्णजीने अपना कौस्तुभ मणि उस को दिया और कहा कि यह पांडवों को देना और सब वृत्तान्त कहना, अब तू यहां से चला जा नहीं तर बलभद्रजी आवेंगे तो तुझे मार डालेंगे यों सुनकर जरा कुमार भग गया उस को देख कर अन्त में उन की गति बीगडने की होने से कृष्ण क्रोधातुर हो गये और बोले कि-यह मुझे मारकर

परेसु घासमेसेज्जा, भोयणे परिणिट्ठिए ॥ लद्धेपिंडे अलद्धेवा, नाणुतप्पेज्ज पंडिए ॥ ३० ॥ अज्जेवाहं न लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया ॥ जो एवं पडिसंचिक्खे, अलाभो तं न तज्जए ॥ ३१ ॥ नच्चा उप्पइयं दुक्खं, वेयणाए दुहट्टिए ॥ अदीणो

कहते हैं—साधु गृहस्थ के घर में आहार की गवेषणा करे और वहां भोजन तैयार होने पर मीले अथवा नहीं मीलनेसे भी पंडित साधु द्वेष करे नहीं ॥ ३० ॥ आज मुझे आहार का लाभ नहीं मीला तो क्या हुवा कल मील जायगा इस तरह जो विचार करते हैं उन को अलाभ परिषह नहीं होता है ॥ ३१ ॥ इस पर ढंढण मुनि की कथा कहते है -मगध देश में पूर्वार्ध नगर था वहां पारासर नामक कुनबी रहता था वह हल चलाता हुवा सब कृषिकारों का अधिपतिपना करता हुवा विचरता था एकदा स खेत में काम कर रहा था उतने में सब के लिये भोजन आया, तब वह सब को बोलने लगा कि एक लिखा दो और खींचलो उस की आशा से उनोंने एक चीला खींचा जिस से पशु मो जीवों को आहार की अंतराय दी अंतराय कर्म बांधकर वह जीव वहां से चवकर कृष्णजी की ढंढणा रानी की कुक्षी से ढंढण कुमार पने उत्पन्न हुवा बाल्यावस्था से तरुणावस्था में आते ही नेमीनाथ भगवानके पास दीक्षा अंगीकार की अंतराय कर्म के उदय से गोचरी करने जावे परंतु आहार मीले नहीं दूसरे कोइ साधु उन के साथ जावे तो उन को भी आहार मीले नहीं तब अपने से अन्य साधुओं को अंतराय होती हुई जानकर

कर कूवे में उतारा बलभद्रजी अपने रूपसे होता हुवा यह अनर्थ देख कर अपने रूप को धिक्कार देते ग्राम में प्रवेश करने का त्याग कर वनमें ही रहने लगे वन की उत्कृष्ट क्रियादेख कर एक मृग को भाव स्मरण ज्ञान हुवा, यह जहां सथवारा जाता होवे, वहां कोइ भोजन पान करता हो वहां मुनिराज को ले जावे और मुनि निर्दोष आहार की याचना कर शरीर को भाड़ा देवे एकदा एक खाती उस वन में वृक्ष काट रहा था उस की स्त्री उस के लिये आहार ले कर आइ उसे मृगने देख कर मुनि को वहां ले गया यह खाती आधी कटी हुइ शाखी छोड कर नीचे उतरा था वह मुनि को देख हुए तुष्ट हुवा और वन्दना नमस्कार कर निर्दोष आहार दिया वहां मृग भी पश्चताप करने लगा कि यदि मैं मनुष्य होता तो इस प्रकार दान देकर जन्म सफल करता ! इतने में आधी कटी हुइ शाखी टूट कर मुनि खाति व मृग पर पड़ने से तीनों ही मृत्यु पाये × वे पांचवे देवलोक में अपने २ पुण्य अनुसार ऋद्धि धारक देवता हुए. बलभद्र मुनि एक भवकर मुक्ति में जावेंगे यों बलभद्र मुनि की तरह याचना परिषह सहन करना यह चौवीसवी कथा संपूर्ण हुई ॥ २४ ॥ * * *

याचना करते इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होने से असम होवे इस से पच्चीसवा अलाभ परिषह

× कितनेक स्त्री और उस का गर्भ भी दान की अनुमोदना करते हुए शाखा नीचे दब कर मृत्यु पाये यों पांच जीव कहते हैं

थावए पज्जं, पुट्ठो तत्थ ओहियासए ॥ ३२ ॥ तेगिच्छं नाभिनंदेज्जा, संचिक्खत्त गवेसए ॥ एवं खु तस्स सामण्णं, जं नकुज्जा नकारवे ॥ ३३ ॥ अचेलगस्स लूहस्स,

आये बहुत वर्ष संयम पालकर मुक्ति में गये जिस प्रकार ढंढण मुनिने अलाभ परिषह सहन किया ऐसे अन्य साधु को भी सहना चाहिये यह पचीसवी कथा संपूर्ण हुई ॥ २५ ॥ ✿ ✿

इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होने से शरीर में व्याधि होवे इस से सोलवा रोग परिषह कहते हैं रोगादि दुःख उत्पन्न हुआ जानकर वेदना से पीडित प्रज्ञावान साधु अदीनपना से अन्य को धर्म में थापे और परिषह सहन करे ॥ ३२ ॥ आत्मा की गवेषणा करने वाला साधु रोग परिषह वेदनीय कर्म का उदयका कारन जानकर चिकित्सा की प्रशंसा करे नहीं इस तरह जो चिकित्सा नहीं कराते हैं अन्य से नहीं करवाते हैं और करने वाले को अच्छा नहीं जानते हैं उन का ही साधुपना कहा है ॥ ३३ ॥ इस पर कथा कहते हैं. मथुरा नगरी में जितशत्रु राजाने कालाइश्या नाम की वेश्या में मुग्ध बनकर उस को अपने अन्तःपुर में रखी उस को जो पुत्र हुआ उस का नाम भी कालाइश्या रखा, एकदा रात्रि को शृगाल का शब्द सुनकर उस की निद्रा खुल गइ उसने शृगाल को पकड मगवाया और मार डाला वह शृगाल वहां से काल कर व्यंतर देवता हुआ एकदा उस कालाइश्योंने हरस (मसा) के रोग से पीडित बनकर प्रतिबोध पा दीक्षा ली और औषधिका त्याग कर समभाव से उदित कर्मों क्षय करने के

किसी के साथ जाना छोड दिया और भगवान के पास अभिग्रह धारन किया कि मेरी लब्धि से मुझे आहार पानी मीले तो ही में आहार पानी करूंगा छ महिने तक आहार पानी की जोगवाइ बनी नहीं एकदा नेमनाथ भगवान के साथ वह द्वारिका आये और आज्ञा लेकर भिक्षाय गये जब भगवान से श्री कृष्णने प्रश्न किया कि अठारह हजार साधुओं में सब से दुष्कर क्रिया करने वाले और आज ही केवल ज्ञान प्राप्त करने वाले कौन साधु हैं ? भगवानने कहा ढंढण ऋषि है यों सुन कृष्ण जी प्रसन्न हुए और भगवान को वंदना नमस्कार कर द्वारिका में आते हुए बजार में ढंढण ऋषि को देखकर हस्ती पर से नीचे उतरे तिखुत्तो के पाठ से विधि पूर्वक वंदना की फिर वहां से आगे गये यह एक गाथापतिने देखकर विचारा कि यह कोई बडे महात्मा हैं जिन को श्री कृष्ण ने भी वंदना नमस्कार किया मैं इन को दान दूं यों विचार कर मुनि को गौचरी के लिये विनंति की और मोदक बहोराये मुनि निर्दोष आहार लेकर नेमीनाथ भगवान के पास गये और कहने लगे कि आज मेरी अंतराय टूटी देखाती है यह मेरी लब्धि से मुझे आहार पानी मीला है भगवानने कहा तेरी लब्धि से आहार पानी नहीं मीले हैं; परतु कृष्ण वासुदेव की लब्धि से मीला है छे महिने के उपवास होने पर ढढण मुनिने विचार किया कि ऐसा आहार खाना मुझे नहीं कल्पता है इस परिठाने के लिये निर्वद्य स्थान पर आये और विचारने लगे यदि भगवान नहीं होते तो मेरा अभिग्रह भंग होजाता धन्य है कि भगवानने मेरे व्रत की रक्षा की इत्यादि शुभ भावना भाते हुए मोदक के चूर के साथ घनघाति कर्मों का चूर भी कर डाला और केवल ज्ञान प्राप्त कर भगवान के पास

यथा

॥ ३५ ॥ किलिन्नगाए मेहावी, पंकेण वरएणवा ॥ घिंसु वा परितावेण, साय नो परिदेवए ॥ ३६ ॥ वेएज्ज निज्जरापेही, आरियं धम्मणुत्तर ॥ जाव सरीरभेओ त्ति, जल्लं काएण धारए ॥३७॥ अभिवायण मब्भुट्ठाणं, सामी कुज्जा निमंतण ॥ जे ताइं

में ही डाल दिया घास में रहे हुए कंटक वगैरह से शरीर में बहुत कीलामना हुई और कुच्छ दिन बाद उन को छोड दिये इतना कष्ट होने पर भी संयम धम से चलित हुए नहीं ऐसे ही अन्य साधु को भी परिषह सहन करना यह सत्तावीसवी कथा हुइ ॥ २७ ॥ * *

तृणपर शयन करने से रज मेल लगे इस से अठारवा जलमेल का परिषह कहते हैं स्नान नहीं करने से, शरीर के मेल से व स्वेद से जिन के गात्र खेदित हो गये हैं, और ग्रीष्म ऋतु अथवा शरद ऋतु के ताप से जो पीडित हो रहे हैं वैसे बुद्धिमान साधु साता की वांच्छा करे नहीं ॥ ३६ ॥ परंतु अनुत्तर आर्य धर्म को मान कर कर्म क्षय करने की इच्छावाले उक्त परिषह सहन करे और जहां लग शरीर का भेद होवे-मृत्यु आवे वहां लग शरीर पर मैल धारन कर रख ॥ ३७ ॥ इस पर कथा कहते हैं— चंपा नगरी के सुनंद श्रेठने अपने घर आये हुए साधु का मलिन शरीर देख कर दुर्गंछा की और कहा कि जैन धम तो अच्छा है परंतु ये लोग स्नान नहीं करते हैं यह अच्छा नहीं है ऐसे विचार में कर्म बांध कर आयुष्य पूर्ण होने से कौशाम्बी नगरी में व्यवहारी का पुत्र हुआ उस का शरीर भ म से

सूत्र

संजयस्स तवस्सिणो ॥ तणेसु सयमाणस्स हुज्जा गाय विराहणा ॥ ३४ ॥ आय
वस्स निवाएण, आउला हवइ वेयणा ॥ एवं नच्चा न सेवति, ततुज तणतज्जिया

अर्थ

लिये रोग परिषह सहन करते मुद्गल नगर के राजगृह में भिक्षार्थ गये, वहां उन की भगिनीने औषधि मीश्रित आहार परोराया मुनिने औषधि मीश्रित आहार जान परिठा दिया और वन में संथारा कर ध्यानस्थ रहे, उस समय उक्त शृगाल का जीव व्यंतर देव शृगाल का ही रूप बना कर उन मुनि के शरीर का भक्षण करने लगा, परन्तु मुनि किंचिन्मात्र चलायमान हुए नहीं, और समभाव से आयुष्य पूर्ण कर देवलोक में गये ऐसे ही सब मुनियों को रोग परिषह सहन करना यह छब्बीसवी कथा हुइ २६
गाती को नरम बिछौना चाहिये जिस से सत्तरहवा तृण स्पर्श परिषह कहते हैं वृषि पाले, वस्त्र रहित अथवा अल्प वस्त्रधारी तपस्वी साधु को तृण के बिछौने पर शयन करते हुवे गात्र विराधना होवे ॥ ३४ ॥ बहुत ताप पडने से महा वेदना होवे ऐसा जानकर तृण स्पर्श परिषह से स्पर्शाया हुवा मर्यादा से अधिक वस्त्र, का सेवन करे नहीं ॥ ३५ ॥ इस पर कथा कहते हैं—श्रावस्ती नगरी के जितशत्रु राजा के पुत्र सुकोमल शरीर वाले भद्र कुमारने दीक्षा धारन की और परिषह सहने के लिये अनार्य देश में गये, साधु को अज्ञान लोग पूछने लगे कि तू कौन है ? उन की भाषा नहीं समज ने से साधु मौन रहे तब साधु को हेरु जानकर पकड लिया और घास की रस्सीओं से मजबूत बांध कर घास

॥ २५ ॥ किलिन्नगाए मेहावी, पंकेण वरएणवा ॥ घिंसु वा परितावेण, साय नो परिदेवए ॥ २६ ॥ वेएज्ज निज्जरापेही, आरिय धम्मणुत्तर ॥ जाव सरीरभेओ त्ति, जल्ल काएण धारए ॥३७॥ अभिवायण मब्भुट्ठाणं, सामी कुज्जा निमंतण ॥ जे ताइ

में ही डाल दिया घास में रहे हुए कण्टक वगैरह से शरीर में बहुत कीलामना हुई और कुच्छ दिन बाद तन को छोड दिये इतना कष्ट होने पर भी संयम धर्म से चलित हुए नहीं ऐसे ही अन्य साधु को भी परिषह सहन करना यह सत्तावीसवी कथा हुइ ॥ २७ ॥ * *

तृणपर शयन करने से रज मेल लगे इस से अठारवा जल्लमेल का परिषह कहते हैं स्नान नहीं करने से, शरीर के मेल से व स्वेद से जिन के गात्र खेदित हो गये हैं, और ग्रीष्म ऋतु अथवा शरद ऋतु के ताप से जो पीडित हो रहे हैं वैसे बुद्धिमान साधु साता की वांच्छा करे नहीं ॥ ३६ ॥ परंतु अनुत्तर आर्य धर्म को जान कर कर्म क्षय करने की इच्छावाले वक्त परिषह सहन करे और जहां लग शरीर का भेद होवे-मृत्यु आवे वहां लग शरीर पर मैल धारन कर रखे ॥ ३७ ॥ इस पर कथा कहते हैं— चंपा नगरी के सुनंद शेठने अपने घर आये हुए साधु का मलिन शरीर देख कर दुगंछा की और कहा कि जैन धर्म तो अच्छा है परंतु ये लोग स्नान नहीं करते हैं यह अच्छा नहीं है ऐसे विचार में कर्म बांध कर आसन्न पूर्ण होने से कौशाम्बी नगरी में व्यवहारी का पुत्र हुआ उस का शरीर जन्म से

सूत्र

पडिसेवंति न तेसिं पीहए मुणी ॥३८॥ अणुक्कसाई अप्पिच्छे, अन्नएसी अलोलुए ॥ रसेसु नाणुगिज्झेज्जा नाणुतप्पेज्ज पण्णव ॥ ३९ ॥ से नूणं मए पुव्वं, कम्माणाण

कथा

ही महा दुर्गंधवाला हुआ उसे कोइ पास आने देवे नहीं अब वह अपवाद से घबरा कर आत्मघात करने कि लिये वन में गया वहां के साधुने उसे धर्मोपदेश देकर साधु बनाया और ज्ञान पढकर क्रिया करने लगा शरीर की दुर्गंधि से लोगों को घबराते देख कर आप सदा वन में ही निवास करने लगा एकदा केवली भगवान मिले पूर्व भव का वृत्तान्त सुनाया और उसे अवधार कर अभिग्रह किया कि जब मेरे दुगछा से उपार्जन किये हुए कर्म क्षय होंगे तब ही मैं कायोत्सर्ग से निवृत्त होऊंगा तप और ध्यान से कर्म क्षय हुए तब किसी देवतान उन के शरीर की दुर्गंध हरण की और सुगंधमय शरीर बना दिया तो भी उसने कायोत्सर्ग पारा नहीं और आयुष्य पूर्ण कर देवलोक गया यों सब को जल्लमेल का परिषह सहन करना यह अठावीसवी कथा सुनंद की हुई ॥ १८ ॥ * *

अर्थ

अकेले ज्ञानवाले साधु का सत्कार सन्मान नहीं होता है इस से उन्नीसवा सत्कार पुरस्कार का परिषह कहते हैं स्तुति करना साधु आवे तो खडे होना अथवा राजा वगैरह आहारादि से निमंत्रण करे, इस प्रकार साधु का सत्कार करे तो उन को मुनि इच्छे नहीं अर्थात इस का अभिमान करे नहीं ॥ ३८ ॥ पतली कषायवाले, अल्प इच्छावाले अज्ञात कुल में आहार की गवेषणा करनेवाले और अलोलुपी प्रज्ञावान साधु रसादिक की आमंत्रणा करे तो उस में लुब्ध होवे नहीं, वैसे ही नहीं देवे तो उन पर तपे नहीं कोप करे नहीं॥३९॥

इस पर कथा कहते हैं–मथुरा नगरी के जयसिंह राजा का मिथ्यामद में छका हुआ इन्द्रदत्त पुरोहितने अपने गोख में बैठे हुवे किसी महा तपस्वी साधु मार्ग में जा रहे थे उन के मस्तक पर पांव लगाया ऐसा एक श्रावकने देख लिया धर्मानुराग से उस पुरोहित के पांवका छेदन करानेका अपना मनोभाव आचार्यको दर्शाया आचार्य बोले कि–हम साधुओं को मान अपमान सदा एकसा है श्रावकने कहा कि–जैन धर्म का अप वाद मिटाने के लिये कुच्छ करना चाहिये तब आचार्य बोले कि–मात्र परोपकार के लिये कहता हूं कि–पुरोहित ने जो मकान बनाया है वहां राजा देखने आवेगा उस समय तू राजा को मकान में प्रवेश करते हुए पीछे खींच लेना क्यों कि वह मकान गिर जायगा श्रावकने वैसा ही किया राजाने पूछा कि–तुम को यह किसने कहा ? श्रावकने कहा हमारे धर्माचार्यने कहा राजा और श्रावक आचार्य का महा उपकार मानने लगे श्रावक को प्रधान पद दिया और आचार्य को गुरु बनाये फिर श्रावकने राजा से कहा कि–इस पुरोहितने अपना पांव आचार्य के शिर पर लगाया था राजाने रुष्ट हो कर उन का पांव का छेदन करने की आज्ञा दी आचार्यने इस को अभय वचन दिलवाया उस पुरोहितने आचार्य को परमोपकारी जानकर उन को नमन किया इस प्रकार अन्य साधुओं को भी सत्कार पुर स्कार परिषह सहन करना चाहिये यह उनतीसवी आचार्य की कथा हुई ॥ २९ ॥ ✽

ज्ञानी का सत्कार सन्मान होवे इस से ज्ञान परिषह कहते हैं–ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से ज्ञान प्राप्त हुआ होवे तो उस का मद करे नहीं–परंतु विचार करे कि मैंने पूर्व भव में ज्ञान की वृद्धि

सूत्र

फलाकडा ॥ जेणाहं नाभिजाणामि, पुट्ठो केणइ कण्हुइ ॥४०॥ अह पच्छा उइज्जंति कम्माऽणाण फलाकडा ॥ एवं मस्सासि अप्पाणं नच्चा कम्मविवागयं ॥ ४१ ॥ निरट्ठ

अर्थ

ही ज्ञानी की प्रशंसा विनय वैय्यावृत्यादि ज्ञान प्राप्त होने के शुभ कर्तव्य किये हैं जिससे इस मनुष्य जन्म में ज्ञान प्राप्ति के सन्मुख हुआ हूं इसलिये ही मुझे ज्ञानार्थी जीवों प्रश्नादि पूछने आते हैं और उन का मैं समाधान कर सकता हूं अब जो मैं ज्ञान ध्यान करते घबराऊंगा ज्ञान का अभिमान करूंगा तो आगा-मिक काल में मुझे मेरे ही कर्तव्य के फल से अज्ञानता प्राप्त हो। इस प्रकार ज्ञान द्वारा कर्मों के शुभा-शुभ फल का विचार कर अपना आत्मा को स्वस्थ करके ज्ञान का गर्व करे नहीं ॥ ४०-४१ ॥ इस पर

कथा

कथा कहते हैं—कालकाचार्य अपने ५०० शिष्यों को प्रमादी अविनीत बने जानकर उन को खबर नहीं होवे वैसे उन को छोडकर सुवर्णभूमि में अपना प्रशिष्य सागरचंद्र था उस के पास आये उसने आचार्य को पहिचाने नहीं परंतु वृद्ध साधु मानकर उन की भक्ति करने लगा एकदा व्याख्यान समाप्त हुए पीछे वह साधु आचार्य से पूछने लगे कि अहो वृद्ध मुने ! मेरा व्याख्यान कैसा है ? तुम वृद्ध हो बहुत साधुओं का व्याख्यान तुमने सुना होगा आचार्य उस के व्याख्यान की प्रशंसा करने लगे अब गुरुने छोडे हुए ५०० साधुओंने जाना कि-आचार्य अपन को छोड गये तथा श्रावक अपमान करने लगे तब उनोंने गुरु की शोधन करने के लिये सुवर्ण भूमिमें आकर सागर चंद्र से गुरु महाराजा का समाचार पूछा सागरचंद्रने कहा कि—मुझे मालुम नहीं है

गमि विरओ, मेहुणाओ सुसंवुडो ॥ जो सक्खं नाभिजाणामि, धम्मं कल्लाणं पावगं ॥ ४२ ॥ तवोवहाणमादाय, पडिमं पडिवज्जओ ॥ एवं पि विहरओ मे, छउमं न

उपाश्रय में आवे सो एकांत में गुरु जी को ज्ञान ध्यान करते देखकर हृष्ट तुष्ट हुए और आचार्य को वन्दना नमस्कार कर अपराध खमाया सागरचन्द्र यह देख आश्चर्य पाया कि धन्य है गुरुजी को ऐसे ज्ञानी होने पर प्रगट नहीं हुए और मेरा तुच्छ व्याख्यान की भी प्रशंसा की यों जैसे आचार्यने ज्ञान परिषह सहन किया वैसे ही सब को सहन करना यह तीसरी कालकाचार्य कथा हुई ॥ ३० ॥ * *

ज्ञान का प्रतिपक्षी अज्ञान होने से इक्कीसवा अज्ञान का परिषह कहते हैं-धर्म-वस्तु का स्वभाव मोक्ष तथा नरक का हेतु और जीवादिक पदार्थ मैं प्रत्यक्ष नहीं जानता हूं इस से मैं इन्द्रियों का संवर कर के भोगादिसे निरर्थक निवर्ता यों साधु विचार करे नहीं परंतु तप उपधान व साधु की १२ प्रतिमा अंगीकार कर विचरता हुवा विचार कर कि मेरा छद्मस्थपना ज्ञानावरणीय कर्म का उदय से नहीं निवर्ता है और मुझे केवलज्ञान नहीं हुआ है ॥ ४३ ॥ इस पर दो भाइ की कथा कहते हैं गंगापुर नगर के निवासी दो भाईने दीक्षा ग्रहण की एक भाइ विनय भक्ति से ज्ञान गुण संपन्न बना और दूसरा प्रमादी होने से ज्ञानादि गुण प्राप्त कर सका नहीं अब जो ज्ञान गुण संपन्न था वह आचार्य पद पर नियत हुआ और उस की पास बहुत

सूत्र

फलाकडा ॥ जेणाह मभिआणामि, पुट्ठो कणइ कण्हुइ ॥४०॥ अह पच्छा उदज्जात

कम्माऽणाणं फलाकडा ॥ एव मस्सासि अप्पाणं नच्चा कम्मविवागय ॥ ४१ ॥ निरट्ठ

अर्थ

की ज्ञानी की प्रशंसा विनय वैयावृत्यादि ज्ञान प्राप्त होने के शुभ कर्तव्य किये हैं जिससे इस मनुष्य जन्म में ज्ञान प्राप्ति के सन्मुख हुआ हूं, इसलिये ही मुझे ज्ञानार्थी जीवों प्रश्नादि पूछने आते हैं और उन का मैं समाधान कर सकता हूं अब जो मैं ज्ञान दान करते घबराऊंगा ज्ञान का अभिमान करूंगा तो आगा मिक काल में मुझे मेरे ही कर्तव्य के फल से अज्ञानता प्राप्त हो ॥ इस प्रकार ज्ञान द्वारा कर्मों के शुभा- शुभ फल का विचार कर अपना आत्मा को स्वस्थ करके ज्ञान का गर्व करे नहीं ॥ ४०-४१ ॥ इस पर

कथा

कथा कहते हैं—कालकाचार्य अपने ५०० शिष्यों को प्रमादी अविनीत पने जानकर उन को खबर नहीं होवे वैसे उन को छोडकर सुवर्णभूमि में अपना प्रशिष्य सागरचंद्र था उस के पास आये उसने आचार्य को पहिचाने नहीं परंतु वृद्ध साधु मानकर उन की भक्ति करने लगा एकदा व्याख्यान समाप्त हुए पीछे पर साधु आचार्य से पूछने लगे कि कहो वृद्ध मुने ' मेरा व्याख्यान कैसा है ? तुम वृद्ध हो बहुत साधुओं का व्याख्यान तुमने सुना होगा आचार्य उस के व्याख्यान की प्रशंसा करने लगे अब गुरुने छोडे हुए ५०० साधुओंने जाना कि आचार्य अपन को छोड गये तथा श्रावक अपमान करने लगे तब उनोंने गुरु की शोधन करने के लिये सुवर्ण भूमिमें आकर सागर चंद्र से गुरु महाराजा का समाचार पूछा सागरचंद्रने कहा कि—मुझे मालुम नहीं है

एव माहसु, इइ भिक्खू न चितए ॥ ४५ ॥ एए परिसहे सव्वे, कासवेण पवेइया ॥

हुए हैं वर्तमान काल में भी हैं अथवा भविष्य काल में भी होंगे; यह सब मिथ्या कहते हैं; ऐसा साधु विचार करे नहीं॥ ४५॥इस पर अपाडाचार्य की कथा कहते हैं एकदा अपाडाचार्य बहुत शिष्यों को शास्त्रका अभ्यास कराते संशय हुआ कि शास्त्र में कहा है कि-अनंत तीर्थंकर हुए और अनंत होवेंगे तथा नरक देवलोकादि गति हैं परंतु मैंने न तो तीर्थंकर देखे और न किसी देव को देखे किसी शिष्य का आयुष्य पूर्ण होने आया तब संथारा किया तब अपाडाचार्य बोले कि यहां से कालकर तुम देवता होवेंगे तब आकर मुझे मीलना उन का आयुष्य पूर्ण हुए पीछे आचार्यने बहुत राह देखी परंतु वह आया नहीं, ऐसे ही दो तीन साधुओं को संथारा करवा कर उन से देवलोक में गये पीछे मीलने का वचन लिया परंतु कोई आया नहीं योगानुयोग से किसी छोटे शिष्य का मृत्यु नजदीक आया जान उसे भी संथारा करवाया, देवलोक में गये पीछे आकर मीलने का कहा परतु वह भी आया नहीं तब आचार्य को निश्चय हुआ कि नरक स्वर्ग वगैरह कुछ भी नहीं है यह सब वार्तों मिथ्या है अब संयम का कष्ट व्यर्थ क्यों उठाना; ऐसा विचार कर अपने घर जाने के लिये द्रव्य लिंगी बनकर निकले उस समय लघु शिष्य देवता का आसन चलायमान हुआ और अवधि ज्ञान से गुरु को अपने घर जाते हुए देखे, रास्ते में देवने नाटकका आरंभ किया वह ऐसा रम्य बनाया कि-छमहिने पर्यंत देखते हुए भी आचार्यने समजा के एक मुहूर्त मात्र देखा है-यों विचार कर आगे चले अब गुरु की दया देखने के लिये देवताने छ छोटे बालक सब वस्त्र आभूषणों

सूत्र

निव्वहए ॥ ४३ ॥ नत्थिनूण परलोए, इड्ढी वावि तवस्सिणो॥ अदुवा वंचिओ मित्ति, इइ भिक्खू न चिंतए॥ ४४ ॥ अभू जिणा अत्थि जिणा, अदुवावि भविस्सई ॥ मुस ते

अर्थ

निर्वाह करते थे इस से इन कार्यों में उन को निद्रा लेने का व खाने का भी पूरा समय नहीं मीलन लगा इस से उन के मन मे विचार हुआ कि-मेरा भाइ अज्ञानी रहा सो वह सुखी है; मैं ता साधु हुवा तब से ही दुःखी हूं, प्रथम विनयादि भक्ति कर ज्ञान प्राप्त करने मे परिश्रम करना पडता था और अब ये दुःखो को सहन कर रहा हूं इस विचार से उस ने ज्ञानावरणीय कर्म का बंध किया और काल के अवसर मे काल कर देवता हुआ वहां स चवकर अहीर कुल में जन्म लिया गुरु बोध हाने से ज्ञानाभ्यास करने लगा परंतु अभ्यास हाने नहीं तब पश्चाताप करने लगा गुरु बोध किया कि आयंबिलादि तप कर गुरु के कहने से आयंबिलादि तप किया जिस से कुछ बुद्धि की तीव्रता हुई और छजीवनिकाय अध्ययन का पाठ किया उस ही में अपन आत्मा को रमाता हुवा समाधि भाव रखता हुआ कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति में गया इस प्रकार ज्ञान का अभिमान करने से अज्ञानी होता है ऐसा जान साधु ओंको अज्ञान परिषह होने पर समभाव से सहन करना यह इक्कीस वी कथा संपूर्ण हुइ॥२१॥

अज्ञानता से समकित में संशय होय इस से बावीसवा दर्शन परिषह करते हैं निश्चय ही परलोक नहीं है वैसे ही तपस्वी को इहलोक में जो ऋद्धि मीलती है वह भी नहीं है, केशलोचनादि कष्ट सहन कर के मेरा आत्मा को मैंने भोग से व्यर्थ वंचित किया ऐसा साधु चिंतवे नहीं ॥४४॥जिन—केवली भुत काल में

जे भिक्खू न विहन्नेज्जा, पुट्ठा केणइ कण्हुइ

इति परीसहज्झयणं वीयं सम्मत्तं ॥ २ ॥

देखे और अपने २ बालक के आभूषण पहिचान लिये तब उन छ ही के मा पाप रुदन करने लगे और आचार्य की निंदा व तिरस्कार करने लगे आचार्य भयभीत बने हुए किसी का शरण नहीं देखते चितवने लगे कि—अरिहंत सरणं पवज्जामि, जाव धम्मसरणं पवज्जामि इस प्रकार आचार्य भय को मेंआये हुए जानकर देवता उस ही शिष्य का रूप बनाकर निसीही २ शब्द कहता आया उस के शब्द से आचार्य ऊंचे देखते हैं तो न तो कोई श्रावक श्राविका है और न कोई दूसरा है मात्र अपना छोटा शिष्य खडा है ऐसा देख कर आचार्य आनंदित होकर पूछने लगे कि तू तो मर गया था सो कहां से आया? तब उसने तत्काल अपना देव का रूप बना लिया और अपनी ऋद्धि का वर्णन करने लगा कि—जैसे आपने छ महिने तक नाटक देखते हुए मात्र एक मुहूर्त ही समजा था वैसे ही देवता भी देवलोक के सुख व भोग में लुब्ध बने हुए व्यतीत काल से अज्ञात रहते हैं इस का निश्चय करने के लिये आनागने सूर्य को दक्षिणायन से उत्तरायन में देखा फिर सम्यक्त्व में निश्चल बनकर आलोचना प्रतिक्रमण कर संयम अंगीकार किया यों सब साधु को दर्शन परिषह सहन करना चाहिये यह पचीसवी कथा संपूर्ण हुई॥२५॥

उक्त बाईस परिषह काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कहे हैं—जिस किसी साधु को उक्त परिषह आ पडे तो उस से अपने संयम की घात करे नहीं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं॥यह परिषह नामक दूसरा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ २ ॥

से सुशोभित का वैक्रेय किया व आचार्य को नमस्कार करने के लिये आये उन बालकोंको देखकर आचार्य पूछने लगे कि-तुम कौन हो ! और तुम्हारा नाम क्या है ? बालकोंने उत्तर दिया कि हम श्रावक के पुत्र हैं और हमारा नाम १ पृथ्वीकाय २ अपकाय, ३ तेउकाय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय, और ६ त्रसकाय यों छ के छ नाम हैं आचार्यने विचार किया मैंने आज पर्यन्त षट्काया की रक्षा की परंतु इस में कुच्छ सार नहीं है और गृहस्थ को तो द्रव्य की आवश्यक्ता रहती है इसलिये इन छ ही के पास बहुत धन है इन को मारकर द्रव्य वस्त्र वगैरह छीन लूं, जिस से मैं सुख पूर्वक भोग भोगवूंगा यों विचार कर छेही को मारडाले और उन के वस्त्र आभरण वगैरह छीन कर अपने पात्र में भर लिये शिष्य देवताने विचार किया कि-आचार्य में दया तो नहीं रही परन्तु अब लज्जा है कि नहीं? जो लज्जा होगा तो मैं पीछा इन को धर्म में स्थिर कर सकूंगा ऐसा विचार कर उस ने एक आर्या का रूप बनाया वह उत्तम वस्त्राभूषणों से सज्ज बनी हुइ आचार्य को नमस्कार करने लगी आचार्य बोले कि-क्यों धर्म कलमाती है ! साध्वी बोली अपने अवगुन तो नहीं देखते हैं और दूसरे के झूठे बताते हो, मुझे बोली दरा फीर मैं बता दूं इतना सुनते ही आचार्य आश्चर्य चकित हो गये और लज्जित बनकर आगे चले. अब शिष्य देवताने देखा कि लज्जा तो है इस से आगे एक गाम वैक्रिय किया उस में के बहुत श्रावक श्राविका सब आचार्य की विनंति करनेको आये और गांवमें लेगये फीर गोचरी को विनंतीकी परंतु आचार्य अपनी

ब्राह्मण का ... इस से अपन का ऐना मांगना चाहिये ...
होगा और दुःखी बनोगे इस से अपन का एक दिन भोजन करने का और एक महोर दक्षिणा मिलन
अपन का चक्रवर्ती के राज्य में नित्य प्रत्येक घर में एक दिन भोजन करने का और एक महोर दक्षिणा मिलन
का मांगना चाहिये ब्राह्मणने चक्रवर्ती से वैसाही मांगा तब चक्रवर्तीने निर्भागी जान वैसा दिया पहिले दिन
चक्रवर्ती के यहां सूर्यपाक नामक रसमय भोजन बना कर उन दोनों को जिमाये और एक महोर दक्षिणा भी
दे कर विदा किया दूसरे दिन दूसरे घर भोजन किया परंतु चक्रवर्ती के भोजन जैसा स्वाद देखा नहीं
तब वह ब्राह्मण झूरने लगा कि छे ही खंड राज के सब घरों में भोजन करना पूरा हो कर पीछा चक्रवर्ती
के यहां कब भोजन का वारा आवे और सूर्यपाक भोजन करूं ! जिस प्रकार उसे पीछा सूर्यपाक नामक
रसमय भोजन मिलना दुर्लभ होगया वैसे ही इस जीव को मनुष्य जन्म की सामग्री मिलना बड़ी कठिन
है ॥ १ ॥ दूसरा पासे का दृष्टांत-पाटली पुर नगर में एक ब्राह्मण के घर दांत सहित पुत्र का जन्म हुआ,
उस का नाम चाणक्य दिया निमित्तिये को पूछने से कहा कि यह राजा होगा ब्राह्मणने विचार किया कि जो
राजा होता है उस की गति अच्छी नहीं होती है ऐसा जान उस के दांत घीसे और निमित्तिये से पूछा तब कहा कि
यह राज्याधिकारी होगा जब चाणक्य योग्य अवस्था को प्राप्त हुआ तब ज्योतिषी वगैरह विद्या में प्रवीण
बना उस वक्त पाटली पुर का नंद राजा राज्यारूढ होने के लिये सज्ज हुआ, परंतु किसी कार्य प्रसंग से राज्यसिं
हासनपर बैठ सका नहीं तब चाणक्य उस सिंहासनपर जा बैठा ऐसा देख राजा क्रोधातुर होगये परंतु ब्राह्मण को
अवध्यजान कर उसे देश निकाल कर दिया वह रुष्ट होकर पाटली पुरका राजा बनने का उपाय

॥ चुतुरगा नामक तृतीय मध्ययनम् ॥

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणिहजंतुणो ॥ माणुसत्त सुई सद्धा संजमम्मि वीरियं॥१॥

दूसरे अध्ययन में परिषह का कथन किया धर्म साधन के लिये परिषह सहन करते हैं और धर्म की साधना चार अंग की प्राप्ति से होती है सो तीसरे अध्ययन में कहते हैं-इस जीव को १ मनुष्य जन्म, २ शास्त्र श्रवण ३ शुद्ध धर्म में श्रद्धा और ४ धर्म में पराक्रम करना; ये चार अंग कि जो मुक्ति साधन कराने वाले हैं इनकी प्राप्ति होना बहुत दुर्लभ है ॥१॥ इन पर दश दृष्टांत कहते हैं—गाथा—चुल्लगे पासग धन्ने जुए रयणेय सुमिण चक्केय कुम्म जुगे परमाणुं दसदिट्ठंति॥१॥ पहिले चुल्लक का भोजन दृष्टांत—भरत क्षेत्र में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बाल्यावस्था में देशाटन करते हुए एकदा एक अटवी में मार्ग भूल गये तब एक ब्राह्मणने मार्ग बताया उस का उपकार मानकर उस से कहा कि जब मुझे कंपिलपुर का राज्य प्राप्त होजावे तब तू मिलना कालान्तर से ब्रह्मदत्त वहां का राजा होगया ऐसा सुन कर ब्राह्मण राजा के पास आया चक्रवर्तीने दुःख में सहायता की है ऐसा उसे जानकर उस का बहुत आदर सत्कार किया और कहा कि तेरी जो इच्छा होवे सो मांग। ब्राह्मणने कहा कि मैं मेरी स्त्री से पूछकर मांगूंगा अब वहां से वह ब्राह्मण अपनी स्त्री से आकर पूछने लगा, तब स्त्रीने ऐसा विचारा कि—यह राजा बन जावेगा तो मुझे छोड देगा, इसलिये उस से कहा कि अपन ब्राह्मण को राज्य पाने की क्या जरूरत है राज्य में फसने से ब्राह्मणों की क्रिया का भी नाश

राजा भार ढु सा बनाम इस से अपन का ऐसा मागना चाहिय कि जिस से अपनी आजीविका सुखपूर्वक चलसके अपन का चक्रवर्ती के राज्य में नित्य प्रत्येक घर में एक दिन भोजन करने का और एक महोर दक्षिणा मिलने का मांगना चाहिये ब्राह्मणने चक्रवर्ती से वैसाही मांगा तब चक्रवर्तीने निर्मागी आन वैसा किया पहिले दिन चक्रवर्ती के यहां सूर्यपाक नामक रसमय भोजन बना कर उन दोनों को जिमाये और एक महोर दक्षिणा की दे कर विदा किया दूसरे दिन दूसरे घर भोजन किया परंतु चक्रवर्ती के भोजन जैसा स्वाद देखा नहीं तब वह ब्राह्मण झूरने लगा कि छे ही खंड राज के सब घरों में भोजन करना पूरा हो कर पीछा चक्रवर्ती के यहां कब भोजन का वारा आवे और सूर्यपाक भोजन करूं ! जिस प्रकार उसे पीछा सूर्यपाक नामक रसमय भोजन मीलना दुर्लभ होगया वैसे ही इस जीव को मनुष्य जन्म की सामग्री मिलना बड़ी कठिन है ॥ १ ॥ दूसरा पासे का द्रष्टांत-पाटली पुर नगर में एक ब्राह्मण के घर दांत सहित पुत्र का जन्म हुआ, उस का नाम चाणक्य दिया निमित्तिये को पूछनें से कहा कि यह राजा होगा ब्राह्मणने विचार किया कि जो राजा होता है उस की गति अच्छी नहीं होती है ऐसा जान उस के दांत घीसे और निमित्तिये से पूछा तब कहा कि यह राज्याधिकारी होगा जब चाणक्य योग्य अवस्था को प्राप्त हुआ तब ज्योतिषी वगैरह विद्या में प्रवीण बना उस वक्त पाटली पुर का नंद राजा राज्यारूढ होने के लिये सज्ज हुआ, परंतु किसी कार्य प्रसंग से राज्यासिंहासनपर बैठ सका नहीं तब चाणक्य उस सिंहासनपर जा बैठा ऐसा देख राजा क्रोधातुर होगये परंतु ब्राह्मण को अवध्यजान कर उसे देश निकाल कर दिया वह रुष्ट होकर पाटली पुरका राजा बनने का उपाय

घूमते एक गांव में आया वहां एक सगर्भा स्त्री को चंद्रमा पीने का दोहद उत्पन्न हुआ उसे चाणक्यने दुध में चंद्रमा का प्रतिबिम्ब देखा कर घोलकर पिलाया यों उस का दोहद पूरा कर दिया और चाणक्यने विचार किया कि-यह लडका राजा होगा पुत्र का जन्म हुआ और वह बडा हुआ तब चाणक्य फीरता हुआ वहां आया उस लडके को बालकों के साथ क्रीडा करता देखा तो आप राजा बना है और अन्य को अपने सेवक बनाये है इस से उस लडके को पहिचान लिया कि यह लडका वही है कि-जिस की माताने गर्भ होने पर चंद्रमा घोलकर पीने का विचार किया था उसने उस लडके को अरमा कर अपने साथ लिया पढाकर सब कला में निपुण बनाया उस लडके के पुण्य से बहुत द्रव्य भी मिल गया द्रव्य के योग से सेना बनाई किसी छोटे राज्य का अधिकारी बन राज्य वृद्धि करने लगा यों करते २ बहुत राजाओं को साथ लेकर पाटली पुर आया और नंद राजा का पराजय कर उस लडके को गादी पर बैठाया यह चंद्रगुप्त राजा के नाम से प्रसिद्ध हुवा उस का अधिकारी चाणक्य बना एकदा उस को देवताने पराजय पासे दिये इस मे कोई भी चाणक्य को जीत सके नहीं चाणक्य द्यूत खेलने लगा और एक दिनार का सुवर्ण थाल रखकर बोलने लगा कि-जीतने से एक दीनार लेवूं और हारने से सब थाली देवूं कई एक द्यूत खेलने आये परंतु कोइ जीत सके नहीं एकदा एक कठिआरा का मन एसी दिनार की थाली देखकर ललचाया और मोजी बेचते २ बहुत दिनों में एक महोर बनाई और उस से चाणक्य के साथ खेलने लगा वह महोर हार गया पुनः मोजी बेचने लगा और एक महोर प्राप्त की

का कथन तो क्षण २ में पर्याय पलटने आश्री है और उनोंने द्रव्य आश्री ग्रहण किया, वे विचरते हुए रामगृही नगरी आये वहां सेवरक्ष दानीने इन का अपमान किया साधु बोले कि-श्रावक होकर साधुका अपमान कैसे करते हो? तब वह बोला कि-क्षणिकवाद से तुम्हारा साधु पना भी क्षणिक है यों समजाये परंतु वे समजे नहीं यह चौथा निन्हव हुआ ॥ ४ ॥ कथा ॥ ४४ ॥ श्री वीर निर्वाण से २२८ वर्ष पीछे उल्लुका नदी के किनारे पर गंगाचार्य रहते थे और दूसरे किनारे पर उन का शिष्य धनगुप्त रहता था वह किसी कारन से नदी उतर कर गुरु के पास जाते पाँव को पानी ठंडा लगा और उपर मस्तक को सूर्य का ऊष्ण ताप लगा तब विचार हुआ कि भगवान जो कहते हैं कि-एक समय में दो उपयोग होवे नहीं सो मिथ्या है; प्रत्यक्ष मुझे दो उपयोग भवत रहे हैं आगे एक समय में दो कार्य होवे वैसी प्ररूपना करने लगा गुरु ने बहुत समजाया और समय की सूक्ष्मता बताई परंतु माना नहीं एक॰ जिनाज्ञानुसार यक्षने इन को ऐसी प्ररूपना करते देख कर मुद्गल उठाकर बहुत डराये तो भी अपना कदाग्रह छोडा नहीं यह पांचवा निन्हव हुआ ॥५॥कथा॥४५॥ श्रीवीर निर्वाण से ५४४ वर्ष पीछे अतरणक नगर में श्री बलनृप की सभा में एक पंडित पेट को लोहे का पट्टा बांध कर आया पूछने से बोला कि विद्या से मेरा पेट फटता है इस से कोइ मुझे पराजित कर मेरा पेट हलका करने वाले को ढूंढता हू आप के यहां पुष्पक उद्यान में श्री गुप्ताचार्य विज्ञानी सुने हैं उन से संवाद करने आया हू तब राजा आदि चतुर्विध संघने मीलकर आचार्य से विनंति की आचार्यने अपना रोहगुप्त

नामक शिष्य को सभा चतुर जानकर विवाद करने के लिये राजसभा में भेजा उस पंडित से किसी प्रकार से जय नहीं होता देखा तब रोहगुप्त साधुने एक सूत का डोरा खूब बटकर उस के सन्मुख रख उस से पूछा कि— यह जीव है या अजीव है ! तू जीव कहता है तो सूत का डोरा है और अजीव कहता है तो क्यों हीलता है ! इस में वह पंडित निरुत्तर होगया तब रोहगुप्तने नो जीवा नो अजीवा इस तीसरी राशी की स्थापना से उस पर जय कर अपने गुरु क पास आया गुरु के सन्मुख सब वृत्तांत कहा गुरुने कहा भगवानने जीव अजीव यों दो राशि कही हैं, तैने जिनाज्ञा की विराधना की इस से तू राज्य सभा में जाकर मिथ्यादुष्कृत दे रोहगुप्तने गुरु के वचन की उत्थापना कर गुरु के साथ छ महिने तक विवाद किया वहां द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छे वस्तु की स्थापना की गुरु बोले कि-कुत्रिकापन की दुकान से तीनों वस्तु मंगला वहां उस ने जाकर जीव वस्तु मांगी तो दी अजीव वस्तु मांगी तो दी और जब नो जीव नो अजीव वस्तु मांगी तब उस की निर्भत्सना कर निकाल दिया इतना होने पर भी अपना दुराग्रह का त्याग किया नहीं यह छट्टा निन्हव हुआ ॥ ६ ॥ कथा ॥ ७ ॥ श्री वीर निर्वाण से ५८४ वर्ष पीछे दशारणभद्र पुर के इक्षाग्र उद्यान में श्री आर्य रक्षित सूरी वृद्धावस्था के कारन स्थिरवास रहे थे उन को १ गोष्टामाहिल २ फल्गुरक्षित, और ३ दुर्बलिका पुष्य, इन नाम के तीन बडे विद्वान शिष्य थे एकदा मथुरा नगरी में अक्रिया वादीने बहुत पाखंड मचाया, तब श्री संघने दशारन पुर आकर आचार्य को विनंती की आचार्यने वादी

विजय गोष्ठामहिल को चौमासा करने के लिये मथुरा भेजे, वहां उनोंने उस का पराजय किया इधर आचार्य अपना आयुष्य नजदीक जानकर श्री संघ को बोलाकर बोले कि–दुर्बलिक रक्षित निष्पाव घट समान है फल्गुरक्षित तल घट समान है और गोष्ठा महिल घृतघट समान है इतना कह आयुष्य पूर्ण कर देवता हुए श्री संघने दुर्बलिक पुष्प को आचार्य पदपर नियत किये चतुर्मास पूर्ण हुए पीछे गोष्ठा महिल आये, दुर्बलिक पुष्प के आचार्य पद मीला जान आप दूसरे उपाश्रय में रहे आचार्य का मालुम होवे उन को विनय पूर्वक अपने उपाश्रय में लेगये तो भी उस का अमरोष मिटा नहीं एकदा शिष्यों सूत्राभ्यास करते २ ऐसा सूत्र आया कि जीव को कर्म बन्ध स्पष्ट व निकाचित यों दो प्रकार का है उस पर विचार हुआ कि निकाचित बंध छूटे नहीं और जीव मोक्ष आवे नहीं इस में शिष्यों में परस्पर विरोध कराने के लिये गोष्ठा महिल बोला कि–यह कथन मिथ्या है जीव को जो कर्म स्पर्श कर रहे हैं वे जैसे सर्प को कांचली अथवा शरीर को वस्त्र रहता है वैसे है जैसे नाग की कांचली उतरने से नाग मुक्त होता है, वैसे ही जीव के कर्म दूर होने से जीव मुक्ति में जाता है शिष्यों को ऐसा कथन रुचा नहीं इस से आचार्य से पूछने पर कहा कि जो अभव्य है उन के निकाचित कर्म बंध है उन की मुक्ति नहीं होती है; जीव को कर्म लोहपिण्ड अग्निवत् है वे जीव के देश से मिल कर रहे हैं जैसे लोहपिण्ड अग्नि दूर होती है वैसे ही कर्म भी दूर होते है गोष्ठामाहिल्ने इस बात का स्वीकार किया नहीं दुसरी बात प्रत्याख्यान आश्री निकली तब गोष्ठा माहिल बोला कि–काल की मर्यादा

॥९॥ सुईंच लद्धु सद्धंच वीरियं पुण दुल्लहं ॥ बहवे रोयमाणावि,नो य णं पडिवज्जई ॥ १० ॥ माणुसत्तंमि आयाओ, जो धम्म सोच्च सद्दहे ॥ तवस्सी वीरियं लद्धुं,

से कोइ प्रत्याख्यान नहीं होवे हैं क्यों कि प्रत्याख्यान पूरे होवे ही उस वस्तु को भोगने की इच्छा होती है आचार्य बोले कि-जो काल्मयार्थ न होवे तो साधु मर कर देवलोक में गये पीछे स्त्रियादि का सेवन करे तो व्रत भंग का दोष लगे परतु यह बात गोष्ठमहिलने मानी नहीं श्री सघने गोष्ठमहिल को समझाने के लिये वेला कर शासन देव की आराधना की शासन देव द्वारा श्री श्रीमंदर स्वामी से इस बात का खुलासा पुछवाया शासन देवने पीछा आकर कहा कि आचार्य जो कहते हैं वह सत्य है इतना कहने पर भी गोष्ठ महिल्ने माना नहीं तब श्री संघने उसे नि-हव जानकर संघ से बाहिर किया यह सातवा नि-हव हुवा ॥७॥इस प्रकार संयम मार्ग प्राप्त होने परभी धर्मसे भ्रष्ट होते हैं ये सातों नि-हव उववाइ सूत्रमें कहे हैं कथा ४७॥ कदाचित् मनुष्य जन्म,शास्त्र श्रवण और धर्ममें श्रद्धा ये तीनों ही प्राप्त हो जाते हैं परंतु धर्म मार्ग में बल वीर्य का फोडना दुर्लभ है ऐसे जीव बहुत हैं कि जो धर्म का सत्य स्वरूप समझते हुए भी उसे अंगीकार नहीं कर सकते हैं ॥ १० ॥ मनुष्य जन्म को प्राप्त कर, सद्धर्म श्रवण कर, उस में श्रद्धा रख, और धर्म कार्य करने का वीर्य भी प्राप्त कर आश्रव का निरूंधन करने-

समुडे निद्भूण रय ॥ ११ ॥ साही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ ॥ निव्वाण परम जाइ, घयसित्ति व्व पावए ॥१२॥ विगिंच कम्मुणोहेउ, जस सचिणु खतिए पाढव सरीर हिच्चा, उड्ढ पक्कमइ दिस ॥ १३ ॥ विसालसेहिं सीलेहिं जक्खा उत्तर उत्तरा ॥ महासुक्काय दिप्पता, मन्नता अपुणच्चव ॥ १४ ॥ अप्पिया देवका-माणं, कामरूव विउव्विणो ॥ उड्ढ कप्पेसु चिट्ठंति पुव्वा वाससया बहु ॥ १५ ॥ तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया ॥ उविंति माणुस जोणिं से दसगे

वाले तपस्वी कर्म रज का दूर करते हैं ॥ ११ ॥ स्वभाव से सरल जीव को कषाय रहित निर्मलपना प्राप्त होता है और कषायादि रहित जीव धर्म में स्थिर रहता है फीर जैसे घृत से सिंचन कराइ हुई अग्नि ऊंची जाती निर्मल दीखती है वैसे ही यह जीव निर्वाण को प्राप्त होता निर्मल दीखता है ॥१२॥ मिथ्यात्व, अव्रत अशुभ योग, कषाय और प्रमाद इन पांचों कर्म के हेतुओं का त्याग कर क्षमादि दश धर्म से संयम धर्म का जो जीव स्पर्श करते हैं वे पृथ्वी काया के कचे भाजन समान उदारिक शरीर का त्याग कर ऊर्ध्व दिशा देवलोक में गमन करते हैं ॥ १३ ॥ अनेक प्रकार के व्रतादिक से शुद्ध क्रियाओं से उत्तरोत्तर देवता होते हैं वे चंद्रमा समान देदीप्यमान होते हैं और ऐसा मानते हैं कि हम यहां से-कदापि चवेंगे नहीं ॥१४॥ देवताओं के काम भोगों में आसक्त, इच्छानुसार वैक्रेय करनेवाले ऐसे ऊर्ध्व देवलोक में अर्थात् बारह देवलोक नव ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान में सैंकडों पूर्व तक रहते हैं ॥१५॥ वे देवता

॥९॥ सुईंच लद्धु सद्धंच वीरियं पुण दुल्लहं ॥ बहवे रोयमाणावि,नो य णं पडिवज्जई ॥ १० ॥ माणुसत्तमि आयाओ, जो धम्म सोच्च सद्दहे ॥ तवस्सी वीरियं लद्धु,

से कोई प्रत्याख्यान नहीं होते हैं क्यों कि प्रत्याख्यान पूरा होते ही उस वस्तु को भोगने की इच्छा होती है आचार्य बोले कि-जो काल अवधि न होवे तो साधु मरकर देवलोक में गये पीछे स्त्रियादि का सेवन करे तो व्रत भंग का दोष लगे परंतु यह बात गोष्टमहिलने मानी नहीं श्री संघने गोष्टमहिल को समझाने के लिये तेला कर शासन देव की आराधना की शासन देव द्वारा श्री श्रीमंदर स्वामी से इस बात का खुलासा पुछवाया शासन देवने पीछा आकर कहा कि आचार्य जो कहते हैं वह सत्य है इतना कहने पर भी गोष्ट महिलने माना नहीं तब श्री संघने उसे निन्हव जानकर संघ से बाहिर किया यह सातवा निन्हव हुवा ॥७॥इस प्रकार संयम मार्ग प्राप्त होने परभी धर्मसे भ्रष्ट होते हैं ये सातों निन्हव उववाइ सूत्रमें कहे हैं कथा ४७॥ कदाचित् मनुष्य जन्म,शास्त्र श्रवण और धर्ममें श्रद्धा ये तीनों ही प्राप्त हो जाते हैं परंतु धर्म मार्ग में बल वीर्य का फोरना दुर्लभ है ऐसे जीव बहुत हैं कि जो धर्म का सत्य स्वरूप समझते हुए भी उसे अंगीकार नहीं कर सकते हैं ॥ १० ॥ मनुष्य जन्म को प्राप्त कर, सद्धर्म श्रवण कर, उस में श्रद्धा रख, और धर्म कार्य करने का वीर्य भी प्राप्त कर आश्रव का निरुंधन करने-

॥ असस्कृत जीवित नामक चतुर्थ मध्ययनम् ॥

असस्वय जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु नत्थि ताण ॥ एव वियाणाहि जणे
पमत्ते कण्णुविहिंसा अजया गिहिंति ॥ १ ॥ जेपावकम्मेहि धण मणूसा, समाययति

तीसरे अध्ययन में चार अंग की प्राप्ति दुर्लभ कही चार अग प्राप्त होने पर भी आयुष्य का भरोसा नहीं है, ऐसा जान प्रमाद नहीं करना सो चौथे अध्ययन में कहते हैं टुटा हुवा आयुष्य किसी भी प्रकार सधाता नहीं है अर्थात् आयुष्य कदापि बढसकता नहीं है और वृद्धावस्था प्राप्त होने इन्द्रियों जब क्षीण हो जाती है तब इस जीव का कुटुम्ब वगैरह कोइ भी शरण देने वाले नहीं होते हैं इस लिये जहां लग आयुष्य टुटे नहीं और वृद्धावस्था नहीं आइ है वहां लग तू प्रमाद मत कर और ऐसा जान कि इन्द्रियों को अपने वश में नहीं करने वाला प्रमादी हिंसक मनुष्य किस का शरण अंगीकार करेगा? अर्थात् उस को धर्म सिवाय और कोइ भी शरण भूत नहीं हो सकता है ॥ १ ॥ इस पर अट्टणमल की कथा कहते हैं उजयनी नगरी के जितशत्रु राजा के समय में वहां अट्टणमल नामका एक प्रसिद्धमल रहता था वह मल्लयुद्ध में ऐसा था कि इस का कोइ पराजय नहीं कर सकता था एकदा वह मल्ल सिंहागिरी राजा की राज्यधानी में गया और राजा के सन्मुख वहां के सब मल्लों का पराजय कर अपने देश में आया यों दो तीन वार वहां जाकर विजय करने से सिंहागिरि राजाने विचार किया कि-अट्टण मल्ल प्रतिवर्ष यहां आकर विजय करता है, इस से उस का ही विजय करे ऐसा मल्ल बनाना यों

सूत्र

अभिजायए ॥ १६ ॥ खित्त वत्थु हिरण्णच, पसवो दासपोरूस ॥ चत्तारि काम खधाणि तत्थ से उववज्जइ ॥ १७ ॥ मित्तव नायव होइ, उच्चगोएय वण्णवं ॥ अप्पायके महापन्ने अभिजाए जसो बले ॥१८॥ भोच्चा मणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउय ॥ पुव्वि विसुद्ध सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया ॥ १९ ॥ चउरंग-दुल्लहं नच्चा, संजमं पडिवज्जिया ॥ तवस्सा धूतकम्मसे सिद्धे हवइ सासए ॥ २० ॥ त्तिबेमि ॥ इति चतुरंगी नामक तइय अज्झयण सम्मत्त ॥ ३ ॥ * * *

कथा

वहां यथोचित स्थान में सुख पूर्वक रहकर आयुष्य का क्षय होने से वहां से चवकर मनुष्य योनि में उत्पन्न होते हैं और वहां दश वस्तु प्राप्त करते हैं ॥१६॥ इन दश बोलका नाम कहते हैं १ खुल्ली भूमिका क्षेत्रादि, २ ढका भूमि गृहादि, ३ सुवर्णादि धन और ४ पशु आदि दास दासी प्रमुख ये चार काम का स्कंध जहां होता है वहां वह उत्पन्न होता है उक्त चार बोलका एक ही बोल लिया है॥१७॥-उसके बहुत मित्र होवे, ३ बडी ज्ञाति होवे ४ ऊंचा गोत्र होवे ५ शरीरका वर्ण अच्छा होवे, ६ रोग रहित शरीर होवे, ७ बुद्धिवाला होवे ८ विनयवान होवे ९ यशवान होवे, और १० बलवान होवे इन दश बोल को वह प्राप्त करे ॥ १८ ॥ अपने आयुष्य पर्यंत मनुष्य संबंधी अनुपम भोग भोगवकर विशुद्ध सद्धर्म में पहिले कहे निष्कलंक बोध बीज रूप सम्यक्त्व की प्राप्ति करनेवाले मनुष्य जन्मादि चार अंग का दुर्लभ मानकर संयम को अंगीकार करते हैं वे तप से कर्म मेल को दूर करके शाश्वत सिद्ध होते हैं ॥ २० ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं यह तीसरा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥३॥

अमइ गहाय ॥ पहायते पासपयाट्टिए नरे, वेराणुबद्धा नरय उवेंति ॥ २ ॥ तणे जहा
सधिमुहे गहीए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी ॥ एवं पया पेच इह च लोए, कडाण

अंत में कुटुम्ब मुझे दुःख देंगे ऐसा विचार कर कोइ महात्मा के पास दीक्षा लेकर देवलोक गया यह मइणमल की ४८ वी कथा हुई ॥ ४८ ॥ ✿ ✿

जो मनुष्य धन को अमृत समान मान कर पाप कर्म से एकत्रित करते हैं वे पुत्र कलत्रादिक के मोह पाश में बंधाए हुये धन को छोड कर षट्काया से जीवों के वैर से बंधाए हुए नरक में उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥ किसी गाम में एक चोरने अपने घर में एक कुवा बनाया था जो धन लावे वह सब उस में डालता था उसने स्त्री के साथ लग्न किया, वह गर्भवती हुइ तब चोरने विचार किया कि इस को जो पुत्र होगा वह मुझे मार कर मेरा धन ले लेगा इस लिये उस स्त्री को उस कूवे में मार डाली और दूसरी स्त्री से लग्न किया वह भी गर्भवती हुइ और पूर्वोक्त विचार से उसे भी मार डाली फिर एक रूपवती स्त्री से लग्न किया और उस को भी गर्भ रहा परंतु उस पर मोह होने से उस को मार सका नहीं सवा नव मास में उसने पुत्र प्रसवा जो नव वर्ष का हुवा तब चोरने विचार किया कि मेरे धन का मालिक यह स्त्री व पुत्र हो जायेंगे इस से इन को मार डालूं यों विचार कर स्त्री को मार कर कूवे में डाल दी यह देख कर उस का लडका भय भीत होगया और बाहिर आकर रोने लगा रोने का कारन गाम पुरुषोंने पूछने पर

विचार करके एक बड़ा बलवान मच्छी मार देखा और उसे मल्लयुद्ध में प्रवीण बनाया तब अट्टणमल्ल वहां आया तब उस मच्छीमार से मल्लयुद्ध किया, जिस में वह हार गया और अपमान पाकर अपने देश चला गया अब उसने अपना अपमान करने वाले का वैर लेने का इरादा किया इस से कोइ दूसरा खेती करने वाला युवान मनुष्य हृष्ट पुष्ट देखा उस के बल की परीक्षा करके उस को अपनी मल्ल विद्या में प्रवीण बनाया और सिंहगिरि राजा की सभा में आकर उस मच्छी मार मल्ल से युद्ध कराया वहां दो दिन के युद्ध में दोनों में से कोइ हारा नहीं वैसे ही जीता भी नहीं मच्छी मार अपने गर्व में अपना दर्द किसी को कहे नहीं और वह कृषिकार मल्ल अपनी सब हकीकत उस अट्टण मल्ल से कहे, जिस से वह औषधि आदि प्रयोग से अच्छा बना दूसरे तीसरे दिन में मच्छीमार मल्ल का पराभव कर दिया और राजा से बहुत द्रव्य लिया वह द्रव्य उस कृषिकार मल्ल को दिया अब वह मल्ल वैर का बदला लेने से आनंदित होता हुआ अपने घर आया तब उस के पुत्रोंने कहा कि-वृद्धवस्था से तुम निर्बल होगये हैं, अब तुम को कोई द्रव्य देंगे नहीं तो बैठे २ क्या खावेंगे ऐसा कहकर उस के कुटुम्बने उस को छोड़दिया वह निराश्रित बन् कोशाम्बी नगरी आया वहां किसी जोगी के पाससे उत्तम रसायन खाइ इस से वह पुनः बलवान बनकर राज सभा में युद्ध करने गया और उस की जीत हुइ वह दान लेकर घर आया अब इस ने विचार किया कि-सब कुटुम्ब धन के अर्थी हैं मैंने एक बार धन से विजय किया अब दूसरी बार वृद्धावस्था के कारन से औषधि भी गुण करेगी नहीं

कम्म ॥ कम्मस्स ते तस्स उवेयकाले, न बंधवा बधवय उवेंति ॥ ४ ॥ वित्तेण ताणं न लभे पमत्तो इमम्मि लोए अदुवा परत्था ॥ दीवप्पणट्ठेव अणत मोहे नेयाउय

ससार में ऊंच नीच कुल में रहा हुआ जो मनुष्य स्वजनादि के लिये कि-जिस में बहुत का विभाग होवे वैसा साधारण कर्म करता है उस मनुष्य को जबकर्मो के उदय में आते हैं तब उस के स्वजनादि बधु बधुपना नहीं रखते हैं अर्थात् कोई भी उसे दुःख से मुक्त नहीं कर सकते हैं ॥ ४ ॥ इस पर हलवाई का दृष्टांत करते हैं—किसी राजा के यहां उन के जामाता आये इस से उसने हलवाई को बोलाकर घृत मैदा वगैरह देकर घेवर बनाने का कहा उसने प्रथम चार घेवर तयार कर छिपा दिये और समीक्षा अनुसार उस की स्त्रीने अपने पुत्र को भेजा, जिस के साथ वे चार घेवर अपने घर पहुंचा दिये अच्छे ताजे घेवर देख कर उस स्त्री का मन चलाय मान हुआ और एक आप खुद खाई, दूसरा पुत्र को दिया और तीसरा पुत्री को दिया चौथा घेवर अपने पति के लिये रखा था जितने में उसका जमाई आया उस का वह रखा हुआ घेवर खिला दिया अब सब काम से निवर्त कर वह हलवाई अपने घर आया और भोजन करने बैठा तो उसकी स्त्रीने मामूली भोजन परुस दिया पूछने से सब वृत्तांत कह सुनाया तब अपने मन में ही गरगुराता चुप हो गया इधर घेवर कम देख राजा को इस हलवाई पर शंका हुई, और सीपाइयों से हलवाई को पकड मंगवाया उस को

कम्माण न मुक्ख अत्थि ॥ ३ ॥ ससार मावन्न परस्स अट्ठा, साहारण ज च करेइ

लडके ने सब हाल कह सुनाया इस पर राज पुरुषोंने उस चोर को पकड कर शूली पर चढा दिया और सब धन ले लिया परंतु वह धन उस को शरण देनेवाला हुवा नहीं यह चोरकी कथा हुई॥४८॥

जैसे पाप कर्म करनेवाला चोर अपने चोरी के कर्म सहित संधि (खात) मुख में पकडाया हुवा पीडित होता है वैसे ही जीव इस लोक व परलोक में पापकारी कर्मों से पीडित होते हैं; उन को उन बंधे हुए कर्मों से विना भोगवे कदापि मोक्ष नहीं होता है ॥३॥ चोर की कथा-एक सुतार चोर करीगरी में बडा चतुर था जहां कहीं चोरी करने जाता था वहां खात दके बडा नकसीदार खात देता था एकदा किसी धनवान के यहां लकडी के पटियेवाली दीवाल में खात देने लगा तब उस में तीक्ष्ण पाखंडियोंवाला कमल फूल कोरा उस में पांव रखकर वह जैसे अंदर प्रवेश करने लगा कि—घर के मालकने उस के पांव पकड लिये और बाहिर से चोरोंने मस्तक पकडा अंदर व बाहिर खींचाताण होते २ लकडी की कोरी हुई कमल की पांखडीयों उस के शरीर में खूंच गई और वह बडा पश्चाताप करने लगा कि मेरे ही किये हुए कर्म का यह फल मुझे मिला है आखीर में घर धनी उस को नहीं छोडता देखा तब साथवाले चोर उसका शिर काटकर चल गये ऐसे ही जो जीव कर्मोपार्जनमें अपनी चातुरता बताते हैं वे अपने कर्म से उस चोर जैसे इस लोक व परलोक में दुःखी होते हैं क्यों की कर्मों के फल भोगवे विना कदापि छुटका नहीं है यह पचास की कथा हुई ॥ ५० ॥

घोरा मुहुत्ता अबल सरीरं, भारंड पक्खीव चर ऽ प्पमत्तो ॥ ६ ॥ चरे पयाइं परिसंकमाणो, जंकिंचि पास इह मन्नमाणो ॥ लाभंतरे जीविय वूहइत्ता, पच्छा

राजा के सन्मुख ले गये राजा कोपातुर हो कर बोला कि राजा की आज्ञा का भंग करने वाला राजा के प्राण का नाश करने वाला गिना जाता है इस लिये इसे शूली पर दो प्रधान यह सुनकर घवराया और अपने घर का सब द्रव्य देकर ही पुत्रभिक्षा मांगी परंतु राजाने उसे छोडा नहीं यों धन दोनों लोक के दुःख से नहीं बचा सकता है वित्तेण ताण, इस पद पर यह कथा पूरी हुइ ॥२॥

द्रव्य निद्रा से सोते हुए परंतु भाव निद्रा से जगते हुए शीघ्रप्रज्ञी पण्डित किसी पर विश्वास करे नहीं क्योंकी काल बडा भयंकर है और शरीर निर्बल है इस से जैसे अढाइद्वीप बाहिर रहने वाला भारंड पक्षी अप्रमादी होता हुवा विचरता है वैसे ही साधु विचरे ॥ ६ ॥—दृष्टांत भरत क्षेत्र के शंख पुर नगर के सुंदर राजा की सुंदरी रानी से उत्पन्न हुवा अगडदत्त कुमार यौवनावस्था से उन्मत्त बना हुवा स्वेच्छा से नगर में फिर व्यभिचार करने लगा उस के त्रास से त्रासित हो कर नगर निवासियोंने राजा से विनंति की, कि-राजपुत्र को समझाओ, अथवा तो इसको रहने के लिये अलग स्थान दो राजानें रुष्ट हो कर कुमार को देश निकाल कर दिया अगडदत्त फिरता हुवा वानारसी नगरी में पाठशाला के बाहिर बैठा उस के शिक्षक के पुछने पर अगडदत्त कुमारने अपना सब वृत्तांत सुना दिया शिक्षकने

दहु मदहु मेव ॥ ५ ॥ सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी, न वीससे पंडिए आसुपन्ने

मारने पर उसने सत्य हकीकत कह सुनाइ और कहा कि चार घेवर मैंने चुराये थे परतु एक भी नहीं खाया है राजाने उस के कुटुम्ब को पकड मगवाया तब उस की स्त्रीने कहा कि–मैंने ऐसा माना था कि राजा साहबने लडके घेवर को खाने दिये होंगे, हम को क्या मालूम कि–यह हमारी इज्जत गमाने के लिये चोरियों करता फिरता है इत्यादि शब्दों में निर्भर्त्सना की घेवर खाने में तो सब खा गये परंतु प्रसंग पर सब बदल गये उस चोरी का फल हलवाइ को ही भोगना पडा यह कथा ॥ ५१ ॥

प्रमादि जीव ऐसा माने कि जब कर्म का उदय होगा तब धन देकर इस से मेरी रक्षा करलूंगा परंतु हे प्रमादि जीव ! इस लोक अथवा परलोक में जीव को धन से शरण नहीं मीलसकता है जैसे किसीने रसकूपीका लेन के लिये दीपक लेकर गुफा में प्रवेश किया वहां दीपक बुझ जाने से मार्ग देखा नहीं और इधर उधर परिभ्रमण करने लगा यहां बिल में रहा हुवा किसी प्रचंड विषधर सर्प ने उसे दंश देकर मार डाला वैसे ही समकित रूप दीपक से मुक्ति माग देखा है परंतु अनत मोहनीय कर्म के उदय से देखा हुवा मार्ग भी बिना देखा जैसा होवे यह काल रूप सर्प के दश से मृत्यु पाकर संसार रूप गुफा में परिभ्रमण करे ॥५॥ यहां कथा कहते हैं वसंतपुर नगर में भद्रसेन राजा ने पढह बजवाया कि आज कौमुदी महोत्सव है इस लिये गांव में किसी पुरुष मात्र को रहना नहीं प्रधान पुत्र वेश्या व्यसनी होने से उस के घर रह गया प्रातः काल होते राज पुरुषों ने उसे पकडा और

किया इस लिये इस गुफा का पटिया दूर कर अंदर आना वहां बहुत धन और मेरी कन्या है उसे तू ग्रहण करना वह अगडदत्त चोर को मारकर गुफा में गया और कन्या को चोर का वृत्तांत सुनाया कन्याने उसे अपने पिता का मारनेवाला जाना इस से वह कपट पूर्वक नम्रता से बोली कि-आप इस पलंग पर आराम करो मैं आती हूं अगडदत्त विचार पूर्वक समजकर दूर खडा रहा कन्याने ऊपर जाकर एक बडी शिला पलंग पर डाली जिस से उस का चूरा हो गया अगडदत्त यह देख कोपातुर हो गया और उस कन्या का चोटा पकडकर सातवे दिन राजा के पास लाया यह कन्या अगडदत्त के हाथ में के छूटते ही आकाश में उड गई, यह देख सब लोग आश्चर्यचकित हो गये अगडदत्तने राजाको मरा हुवा चोर और गुफा में रहा धन बतलाया राजाने जिस का धन था उस को दे कर बाकी का भंडार में रखा अगडदत्त को आधा राज्य दिया और कन्या से पाणिग्रहण करवाया अगडदत्त की कीर्ति विस्तृत हुई और उस के मातपिता उसका वृत्तांत सुनकर प्रधान भेजकर कुमार को अपने राज्यमें बोलाया और उस राजाने अगडदत्त को राज्य देकर संयम लिया अगडदत्त की रानी को एकदा सर्पने दंश दिया इस से वह मूर्च्छित हुई अगडदत्त मोह में अंध बना हुवा उस के साथ चिता में जलने लगा किसी विद्याधरने उस का विष दूर किया और राजा रानी सुख पूर्वक रहने लगे एकदा पराजित चोर के भाइबंध अगडदत्त को मारने आये और महेल में छिपकर रहे रानी उस चोर का रूप देख कर मुग्ध हो गई, और कहने लगी कि-तुम मुझे अंगीकार करो तो मैं राजा को मार डालूं चोरोंने रानी के वच-

कहा कि तेरे पिता को मैंने पढाया है उस ने दिये हुवे द्रव्य से मैं सुख पूर्वक उपजीविका करता हूं तू भी मेरे यहां रहे और कलाभ्यास कर वह कुमार यहां रहकर कलाभ्यास करने लगा अन्यदा राजा का हस्ती मदोन्मत्त बनकर नुकशान करने लगा कोई भी उसे वश में कर सका नहीं, तब अगडदत्त कुमार वृक्ष पर चढकर हाथी की पीठ पर कूद पडा और मुष्टि प्रहार से उस का मद उतार दिया वहां के राजाने खुशी हो कर अगडदत्त को प्रधानपना दिया अन्यदा वहां गांव में चोरी होने लगी लोगों बहुत त्रास पाये इस से राजा के आगे अरज की राजाने ढुंढी पिटवाइ कि-जो कोई चोर पकडे उसे आधा राज्य और मेरी कन्या देऊं. अगडदत्तने सात दिन में चोर को पकडने का कहा छ दिन चोर की तपास करते हुए चोर पकडाया नहीं तब दुःखित हो कर छठे दिन की रात्रि में वह फिरता था उसने योगी के रूप में चोर को देखा और उसे नमस्कार किया, योगी के पूछने पर कहा कि मैं निर्धनता से बडी दुःखी हूं उसने कहा चलो धन देता हूं यों कहकर वे दोनों एक श्रीमान के घर आये और मंत्रप्रयोग से घर के सब मनुष्यों को निद्रस्थ कर धन के गठडे बांध कर एक गुफा में आये दोनों सो गये जोगी रूप चोर को निद्रा आगइ जान अगडदत्त उस का सूर्य हस खड्ग हाथ में लेकर और अपने सोनके स्थान अन्य काष्ट रख उस पर वस्त्र ढक दिया, और आप दूर खडा रहा उस चोरने उठते ही उस लक्कड पर प्रहार किया वहां लक्कड देख वह चमक गया इतने में सूर्य हस खड्ग से चोर को मारडाला मरता २ चोर बोला कि हे सत्पुरुष! मुझे अपराजित को तैने पराजय

धारी॥ पुव्वाइ वासाइ चर ऽप्पमत्तो तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्ख॥ ८ ॥ सपुव्व

गया और उस की बहिन उस मजुर को कूव में डालने के छल से हाथ पाँव धोने बैठी पाँव धोते उसने राजा के चिन्ह देख कर उस पर मोहित होगइ और कहा कि यदि आप मेरे भाइ को जीवित रखो तो मैं आप की साथ लग्न करूं और सब माल बतादूं राजाने उस का वचन स्वीकार किया तब उस ने कहा कि मेरा भाइ कल दिन को गाँव में भिक्षा मागने आवेगा उसे तुम पकडना राजाने वैसे कर के चोर पकड लिया और कहा कि तेरी बहिन का मेरी साथ लग्न कर तो मेरे भंडार का तुझे स्वामी बनादूं चोरने उस की बहिनाका लग्न राजासे कर दिया और राजाने अपने भंडार का स्वामी उस चोरको किया अब राजाने उसे समझाकर जिन का धन चोरी से लिया था उन को पीछा दिलवा दिया राजाने देखा कि अब इस के पास धन नहीं हैं, तब उस को मार डाला जैसे चोर के पास से धन मीलना बंध हो गया कि उस को मार डाला, वैसे ही इस शरीर रूप चोर को जीव रूप राजा संभाल कर रखते हैं जब उस के पास से तप सयम रूप माल निकलना बंध होवे तब साधु उस का त्याग करते हैं अर्थात् संथारा करते हैं यह मंडित चोर का कथा चौपनवी हुइ. ॥५४॥ *

जैसे शिक्षित अश्व शिक्षक से शिक्षित बना हुआ अपनी इच्छा का निरुंधन कर अपने स्वार की इच्छानुसार चलता है वह राजा के स्वारी योग्य होता है और अनेक प्रकार के दुःख से मुक्त होता है वैसे ही अनेक पूर्व व वर्ष पर्यन्त अपने छंदे को रोक अप्रमत्त पन विचरता हुवा मुनि शीघ्रमेव मोक्ष प्राप्त कर सकता है.

परिमाय मलावघसी ॥ ७ ॥छंदनिरोहण उवेइ मोक्ख, आसे जहा सिक्खिय वम्म

सुनकर विचार किया कि जिस के लिये राजा मरता थी उस की ही यह नहीं हुई तो अपनी क्या होगी ? ऐसे संसार को धिक्कार हो यों वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा धारन कर वनमें ध्यानस्थ रहा राजा कपट निद्रा में रानी की बात सुन रहा था वह आश्चर्य पाया उस की मोह निद्रा उडगइ और जाग्रत हुवा धिक्कार है मेरे जैसे मोहांध को और इन चारों को धन्य है यों वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा अंगीकार की और निर्मल संयम पाल कर्म क्षय कर मोक्ष में गया यह भेपमची कथा हुई ॥ ८१ ॥ * *

पाप से शंकित होता हुआ व संयम की विराधना नहीं करता हुआ मूलगुन उत्तरगुन में प्रवर्ते और संसार को पाश समान मानता हुआ जहांलग शरीर से तप जप का लाभ होवे वहां लग शरीर का पोषण कर संयम जीवितव्य की प्रति पालना करे, जब शरीर से कुच्छ भी लाभ नहीं मीलता दखे कि अवसर जानकर संथारा कर के शरीर तथा पाप कर्म रूप रजमेल दूर करे ॥ ७ ॥ वेणातट पाटण में मूलदेव राजा राज्य करता था उस गाम में एक मंडिक चोर का उपद्रव बहुत था वह दिन को गाम में भिक्षा के छल से लोगों के घर देख जाता था, और रात्रि को चोरी करता था इस चोर से सब प्रजा त्रास पाने लगी, परंतु चोर हाथ आया नहीं। तब मूलदेव नोकर का वेष पहिन कर चोर को ढूंढने निकला एकदा मंडिक चोर के हाथ यह मूलदेव मजूर आगया और उसे पकड कर उस के शिर पर गठडी रखकर अपनी गुफा के पास लेगया वहां उसे बाहिर रखकर वह अंदर

चोर आवेंगे जब निकाल डालूंगी एकदा ऐसा ही हुवा कि उस के घर में चोर आये उस समय वह आभूषण निकाल कर छुपा सकी नहीं, जिस से वे आभूषण चोर जबरी से निकाल ले गये अहो भव्य जीवों ! जैसे उस स्त्री के आभूषण चोर आने पर निकल सके नहीं और सब चोर लेगये, वैसे ही मृत्यु आये पीछे धर्म होगा नहीं इसलिये प्रथम ही करलेना चाहिये! यह ब्राह्मणकी कथा हुई ॥८८॥

अब उत्तरार्ध दो पद पर कथा कहते हैं—किसी गांव का एक वणिक अपनी स्त्री को सब नोकर, चाकर, पशु वगैरह से भरा घर समझाकर परदेश गया वह स्त्री पीछे प्रमादी बन गइ और किसीकी संभाल रखी नहीं इस से नोकर, चाकर भी प्रमादी बन गये और पूरा वेतन भी नहीं मिलने से वे भग गये और पशुओं को पुरा खाने का नहीं मिलने से कितनेक मर गये वैसे ही व्यापार में भी नुकशान हुआ जब उस वणिकने अपने घर आकर स्त्री की प्रमाद दशा से होता हुआ नुकशान देखा, इस से उसने तुरत ही दूसरी स्त्री से लग्न किया और उस को घर का सब कार्य संभलाकर परदेश जाते वैसे ही कहता गया कि पहिली स्त्री जैसे तू प्रमादी मत होना, अगरचेत् पहिली स्त्री जैसी होगी तो तेरा त्यागकर दूसरी स्त्री साथ लग्न करूंगा इस कथन को ध्यानमें रख स्त्रीने नोकर चाकरकी अच्छी तरह संभाल की और जानवरों का भी अच्छी तरह भरण पोषण किया इस से उस को अच्छा लाभ हुआ जब वह वणिक पीछा आया तब सब नोकर सेठानीकी प्रशंसा करने लगे, जिस से वह सेठ प्रसन्न होकर धन भर सबकी मालकी उस स्त्री को दी ऐसे ही अहो भव्य जीवों' प्रमादका त्यागकर कायारूप नोकरकी संभालकर

सूत्र

मेव न लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासयवाइयाण ॥ विसीयइ सिढिले आउयमि, कालोवणीº सरीरस्सभेये ॥ ९ ॥ खिप्पं न सक्केइ विवेगमेउं, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे ॥ समिच्च लोग समया महेसी, अप्पाणरक्खी चर अप्पमत्तो ॥ १० ॥ मुदु

अर्थ

॥ ८ ॥ जो मनुष्य धर्म करने के अवसर में प्रमादी बनकर विचार करे कि फिर मैं धर्म करूंगा ऐसी उपमाशाश्वत वादी लोग कहते हैं जब आयुष्य शिथिल हो जाता है मृत्यु नजीक आती है और आयुष्य का भेद होता है तब वह खेदित होता है कि-मैंने प्रथम धर्माचरण किया नहीं अब मैं धर्म नहीं करसकता हूं अब मेरा क्या हाल होगा ! ॥९॥ प्राणी मरण समय पर तत्काल त्याग रूप धर्म नहीं कर सकता है इस से प्रथम ही काम भोगों का त्याग कर, लोक का स्वरूप सम्यक् प्रकार से देख कर दुर्गति में पडते आत्मा की रक्षा करने वाले महर्षी अप्रमादि पने विचर ॥ १० ॥ इस गाथा के पूर्वार्ध दो पद पर एक

कथा

ब्राह्मण की कथा कहते हैं किसी गांव में एक ब्राह्मण काशी से पढकर आया गांव के लोगोंने खुश हो कर उस को बहुत द्रव्य दिया इस से उस ने अपनी स्त्री के लिये आभूषण बनाये वह स्त्री दिन रात आभूषण पहिन रखे,उस गांव में चोरों का डर होने से ब्राह्मणने उस की स्त्री से आभूषण निकालनेका कहा परंतु उसने माना नहीं उस स्त्रीका शरीर प्रतिदिन स्थूल होता गया और सब आभूषण बहुत सज्जड होगये उस समय भी ब्राह्मणने उस को समझाइ परंतु माना नहीं और कहा कि

तुच्छा परप्पवाई, ते पिज्ज दोसाणुगया परब्भा ॥ एते अहम्मेति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीरभेओ ॥ १३ ॥ तिबेमि ॥ इति असखय णाम चउत्थ ज्झयण सम्मत्त ॥ ४ ॥ * * * * * *

होवे नहीं वहां लग अर्थात जाव जीव पर्यंत ज्ञानादि गुण में रमण करते हुए विचरे ॥ १३ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों सुधर्मा स्वामीने अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहा है ॥ यह चौथा असखय अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ ४ ॥ * * * * *

मुहुं मोहगुणे जयत अणेगरूवा समण चरत ॥ फासा फुसती असमजसच, न नेसि भिक्खू मणसा पउस्से ॥ ११ ॥ मदाय फासा बहुलोहणिज्जा, तहप्पगारेसु मण न कुज्जा।रक्खिज्ज कोहं विणएज्ज माण, माय न सेवेज्ज पहेज्ज लोहं॥१२॥ जे संखया

धम साधन सम्य प्रकार करोगे तो गुरु प्रसन्न होकर ज्ञान रूपी भंडार देंगे यह वणिक की कथा हुई॥२६॥

वारंवार अनेक प्रकार के मोह गुन को जीतने वाले और ग्रामानुग्राम विचरने वाले श्रमण को असमंजस (खराब) स्पर्श स्पर्शे तो भी उनपर साधु द्वेष करे नहीं ॥ ११ ॥ शब्दादि व स्त्रियों का स्पर्श मंद बुद्धिवाले पुरुषों का विषय उत्पन्न करनेवाले होते हैं, ऐसे स्पर्श पर साधु कदापि मन करे नहीं और क्रोध मान माया व लोभ का त्याग करे ॥ १२ ॥ कितनेक संस्कार रहित असंबंध वाक्य बोलनेवाले तुच्छ बुद्धि के धारक, सदैव परमवाद में अर्थात् पर के दोष प्रगट करने में आसक्त राग द्वेष रूप शत्रुओं से पराभव पाये हुए व परवश पड़े हैं इस लिये असमार्थी मनुष्यों के असंस्कारी वचनों पर तथा कुमवाद रूप अधर्म को छोड़ कर जहां लग अपने शरीर का भंग

१ कितनेक संखया शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा बोलने वाले के पक्ष में और कितनेक संस्कृत भाषा से अज्ञात नहीं बोलने वाले के पक्ष में करते हैं परन्तु मैंने गुरुगम से उक्त अर्थ की धारना की है वैसा ही यहां किया है

दिट्ठे पर लोए, चक्खुदिट्ठा इमा रई ॥ ५ ॥ हत्थागया इमे कामा, कालिया जे अणागया ॥ को जाणइ परलोए, अत्थिवा नत्थिवा पुणो ॥ ६ ॥ जणेण सद्धिं होक्खामि, इइ बाले पगब्भई ॥ काम भोगाणु राएण, केसं संपडिवज्जइ ॥ ७ ॥ तओ से दंडं समारभई, तसेसु थावरेसु य ॥ अट्ठाए य अणट्ठाए, भूयगामं विहिंसइ॥८॥ हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे ॥ भुंजमाणे सुरं मंसं, सेयमेयं ति मन्नइ

बने हुए जो कोई मृगादि पास में भयंकर नरकादि स्थानक कहा है वैसी कूट कपट वाली-मृषा भाषा बोलता है वह ऐसा कहता है कि-दूसरा लोक मैंने नहीं देखा है यह आनंद प्रत्यक्ष दिख रहा है ॥ ५ ॥ इन कामभोगों को छोड कर धर्म करो जिस से आगे सुख मिलेगा तो कहते हैं कि—ये काम भोग प्रत्यक्ष अपने हाथ में आये हुए हैं उन को मैं भोगता हूं क्यों कि दूसरे जन्म में कामभोग मिलेगा या नहीं यह संशय है और ऐसा कौन जानता है कि परलोक है या नहीं ॥ ६ ॥ और भी अज्ञानी जीव धृष्टपना धारन कर कहते हैं कि क्या हम एकही पापाचरण करने वाले हैं इतने जीवों की जैसी गति होगी वैसी ही हमारी भी होगी यों कामभोग में रक्त बने हुए इस लोक व परलोक यों दोनों लोक के क्लेश-दुःख को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् वह त्रस व स्थावर जीवों में दंड का समारंभ करता तथा सार्थक व निरर्थक जीवों के समूह की हिंसा करता है. ॥ ८ ॥ हिंसा करने वाला अज्ञानी मृषा बोलता है, मायावी बनता है, चुगलीखोर व धृष्ट होता है, और मदिरा मांस भोगता हुवा अपनको अच्छा मानता है ॥ ९ ॥ जैसे अलसिया मट्टी में उत्पन्न होता है मट्टी ही खाता है और वह सूर्य के ताप में

॥ अकाम सकाम मरणं नामक पंचम अध्ययन ॥

अण्णवसि महोहसि, एगे तिण्णे दुरुत्तर ॥ तत्थ एगे महापन्ने, इम पण्ह मुदाहरे ॥ १ ॥ संतिमे य दुवेठाणा, अक्खाया मारणंतिया ॥ अकाममरण चेव, सकाम मरण तहा ॥ २ ॥ बालाणंतु अकाम तु, मरण असइ भवे ॥ पंडियाण सकामतु उक्कोसेण सइभवे ॥ ३ ॥ तत्थिम पढम ठाण, महावीरेण देसिय ॥ कामगिद्धे जहा बाले, भिसकूराइ कुव्वइ ॥ ४ ॥ जे गिद्धे काम भोगेसु एगे कूडाय गच्छइ ॥ नमे

अर्थ

आयुष्य की वृद्धि न होवे ऐसा चौथे अध्ययन में कहा, इसलिये मृत्यु का सुधारा करना यह पांचवे अध्ययन में कहते हैं—महा मशोघ रूप दुस्तर संसार समुद्र तीरने का उपाय श्री तीर्थंकर भगवानने देवादिक की महा परिषद में विराजमान हो कर कहा है उसे श्रवण कर व उन अनुसार प्रवृत्ति करके एक २ महा पुरुष इस संसार रूप समुद्र को तीरे हैं यही उपाय यहां कहते हैं ॥१ ॥ संसार में जीवों का मृत्यु दो प्रकार का कहा है यथा—१ अकाम मरण व २ सकाम मरण ॥ २ ॥ इस में से अकाम मरण अज्ञानी जीवों को अनेक वार होता है और सकाम मरण पंडित पुरुषों को उत्कृष्ट एक वार होता है ॥३॥ श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने इस प्रकार कहा है—कि जो अज्ञानी काम भोग में गृद्ध होता हुवा क्रूर कर्म कारक है उस का अकाम मरण होता है ॥ ४ ॥ पांचों इन्द्रियों के कामभोग में गृद्ध

च धर्म्मं, अहम्मं पडिवज्जिया ॥ बाले मच्चुमुहं पत्ते, अक्खे भग्गे व सोयइ॥ १५ ॥ तओ स मरणंतमि, बाल संतसई भया ॥ अकाममरणं मरइ, धुत्ते व कलिणा जिए ॥ १६ ॥ एयं अकाममरणं, बालाणं तु पवेइयं ॥ एत्तो सकाममरणं, पंडियाणं सुणेहमे ॥ १७ ॥ मरणं पि सपुण्णाणं, जहा मेयं मणुस्सुयं ॥ विप्पसण्णमणाघायं, संजयाणं वुसीमओ ॥ १८ ॥ न इमं सव्वेसु भिक्खूसु, न इमं सव्वेसगारिसु ॥

छोडकर धर्म अंगीकार करने वाले अज्ञानी जीव मृत्यु के मुख में पडे हुए शोक करते हैं, जैसे वह गाडीवाला गाडी का अक्ष (धूरा) टूटने से शोक करता है ॥ १५ ॥ जैसे जुआरी एक दाव में अपना सर्वस्व हार कर पश्चाताप करता है वैसे ही अज्ञानी अकाम मृत्यु से मरता हुआ [illegible] त्रास पाता है कि अब मेरी क्या गति होगी ? ॥ १६ ॥ अकाम मरण मरने से अज्ञानी जीवों का जो होता है सो तो कहा अब आगे पंडित पुरुषों को सकाम मरण कैसे होता है सो कहते हैं उसे तुम दत्त चित्त से श्रवण करो ॥ १७ ॥ पुण्यवान प्राणी को ऐसा सकाम मरण होता [illegible] जैसा मैंने सुना है वैसा ही कहता हूं यह मरण [illegible] का प्रसन्न करनेवाला जीवों की घात नहीं करानेवाला है अर्थात [illegible] से बचानेवाला होता है ऐसा मरण संयति साधु पुरुषों को कहा है॥ १८ ॥ यह पंडित मरण [illegible] नहीं होता है [illegible] भी नहीं होता है [illegible] सम्यक्त्वादि विचित्र प्रकार के [illegible] को [illegible] है उन को और यतिन विशुद्ध

सूत्र

॥ ९ ॥ कायसा वायसा मत्तो, वित्ते गिद्धे इत्थिसु ॥ दुहओ मलं संचिणइ, सिसुणागो व्व मट्टियं ॥ १० ॥ तओ पुट्ठो आयंकेण, गिलाणो परितप्पई ॥ पभीओ परलोगस्स, कम्मुणाप्पेहि अप्पणो ॥ ११ ॥ सुया मे नरए ठाणा, असीलाण य जा गई ॥ बालाण कूरकम्माण, पगाढा जत्थ वेयणा ॥ १२ ॥ तत्थोववाइयं ठाणं, जहा मेऽतमणुस्सुयं आहाकम्मेहिं गच्छतो, सोपच्छा परितप्पई ॥ १३ ॥ जहा सागडिओ जाणं समं हिच्चा महापहं ॥ विसमं मग्गमोइण्णो अक्खे भग्गंमि सोयइ ॥ १४ ॥ एवं धम्मं विउ

अर्थ

अपने से बढकर कर मरजाता है, वैसे ही अज्ञानी जीव मन वचन व काया से धन व स्त्रियों में गृद्ध मदोन्मत्त बना हुवा बाह्य तथा आभ्यंतर दोनों प्रकार की कर्म रूप रज एकत्रित करता है ॥ १० ॥ तत्पश्चात् वह कामभोग की सामग्री क्षय होने से रोग से पीडित बना हुवा अपने कृतकर्मों का स्मरण करता हुवा और परलोक के दुःख से डरता हुवा वह दुःखी पुरुष खेदित होता है ॥ ११ ॥ अब यहां श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि मैंने भगवान श्री महावीर स्वामी से सुना है कि जो अज्ञानी जीव उक्त प्रकार के क्रूर कर्म का आचरन करते हैं वे नरक में जाते हैं, वहां उन जीवों को अत्यंत वेदना होती है ॥ १२ ॥ नरक में उत्पन्न होने का स्थानक जैसे मैंने सुना है वैसा कहता हूं कि-वहां पर वे जीवों यथा संचित कर्म से जाता हुवा पीछे से परिताप पाता है ॥ १३ ॥ जैसे गाडी चलाने वाला अपनी गाडी को सम्यक् (अच्छा) मार्ग छोडकर विषम मार्ग से जाता है उस की गाडीका धुरा टूटने से वह पश्चाताप करता है ॥ १४ ॥ ऐसे ही धर्म को

एगराय नहावए ॥ २३ ॥ एव सिक्खा समावन्ने, गिहिवासे वि सुव्वए ॥ छविप-
व्वाओ मुच्चई, गच्छे जक्खस्स लोगय ॥ २४ ॥ अहजे संवुडे भिक्खू, दोण्हं

का धर्म कहते हैं—गृहस्थ सामायिक * के अंग को श्रद्धा पूर्वक काया से स्पर्शे अर्थात् श्रद्धा पूर्वक शुद्ध
सामायिक पाले कृष्ण पक्ष व शुक्ल पक्ष यों दोनों पक्ष में पौषध करे इस में एक रात्रि की भी हानि
करे नहीं ॥२३॥ इस प्रकार की शिक्षा संपन्न जो गृहस्थ होते हैं उन को गृहस्थ होते हुए भी विशुद्ध व्रती
कहना वे इस हड्डी धर्मवाला उदारिक शरीर का त्याग कर उत्तम जाति के देवलोक में देवता होते हैं

* सामायिक तीन प्रकार की है—१ सम्यक्त्व सामायिक, २ सूत्र सामायिक ३ और देश वृत्ति सामायिक इन तीनों
के २४ अंग हैं—प्रथम सम्यक्त्व के आठ अंग—१ जिन वचन में शंका करे नहीं २ अन्य मत की वांच्छा करे नहीं, ३ करनी
के फल में संदेह करे नहीं, ४ मिथ्या आडंबर की प्रशंसा करे नहीं ५, धर्मात्माओं के गुणानुवाद करे, ६ चलित धर्मिष्ट
का स्थिर करे, ७ स्वधर्मियों को हितकर्ता होवे और ८ जैन धर्म की उन्नति करे दूसरी सूत्र सामायिक के आठ अंग १
काले काल शास्त्राभ्यास करे २ विनय पूर्वक ज्ञान ग्रहण करे ३ ज्ञान का व ज्ञान देनेवाले का बहु मान करे, ४ ज्ञान
का उपधान तप करे, ५ ज्ञान दाता का उपकार न भूले ६-७ सूत्र, अर्थ व उभय को छिपावे नहीं वैसे ही फिरावे
नहीं और ८ पाठ तथा अर्थ विपरीत करे नहीं ३ तीसरी देश विरति सामायिक के आठ अंग १ स्थूल प्राणाति २ पात स्थूल
मृषावाद, ३ स्थूल अदत्तादान, ४ निवर्तना ४ स्वदारा संतोष होना, ५ इच्छा प्रमाण ६ दिशा प्रमाण ७ भोग उपभोग
प्रमाण और ८ अनर्थ दंड विरमण इन आठ का आचरन करे यह सामायिक के २४ अंग कहे

नाणा सीला अगारत्था विसम सीलाय भिक्खुणो ॥ १९ ॥ सति एगेहिं भिक्खूहिं, गारत्था सजमुत्तरा ॥ गारत्थेहिं य सव्वेहिं साहवो सजमुत्तरा ॥ २० ॥ चीराजिण नगिणिणं जडी संघाडि मुंडिण ॥ एयाणि वि न तायंति, दुस्सील पडियागय ॥२१॥ पिंडोलएव दुस्सीले, नरगाओ न मुच्चई ॥ भिक्खाए वा गिहत्थेवा, सुव्वए कम्मई दिव ॥ २२ ॥ अगारि सामाइयंगाणि, सड्ढीकाएण फासए ॥ पोसह दुहओ पक्खं,

क्रिया करनवाले साधु को यह पंडित मरण होता है ॥ १९ ॥ कितनेक द्रव्य लिंगी भ्रष्टाचारी निरस तथा कुशीली साधुओं से सम्यक्त्व व्रत निर्मल पालने वाले गृहस्थ भी अच्छे हैं और गृहस्थियों से शुद्ध संयम पालने वाले साधु तो सदैव अच्छे हैं ॥२०॥ अथ अन्य तीर्थीको का स्वरूप कहते हैं-कितने भगवां वस्त्र के धारक, मृग चर्म रखनेवाले, वस्त्र खंड को जोडकर कंथा बनाकर रखनेवाले, मस्तक मुंडाने वाले इत्यादि अनेक प्रकार के अन्य लिंग के धारक जो दुराचारी हैं, जिनाज्ञा विरुद्ध प्रवृत्ति करनेवाले हैं, वेष मात्र से मोक्ष का साधन मानकर बैठे हैं वे इस संसार में किसी जीव का दुःख से मुक्त नहीं कर सकते हैं ॥ २१ ॥ जो कोई साधु भिक्षा से आजीविका करनेवाले हैं परंतु अनाचार व पापकर्म का त्याग करनेवाले नहीं है, ऐसे दुराचारी नरक से मुक्त नहीं हो सकते हैं परंतु भिक्षा से आजीविका करनेवाले साधु होवे अथवा सदाचार पालनेवाला गृहस्थ होवे सो वह स्वर्ग में जाता है ॥ २२ ॥ अब गृहस्थ

सति मरणते सील्वतो बहुस्सुया ॥ २९ ॥ तुलिया विसेसमादाय, दयाधम्मस्स खंतिए ॥ विप्पसीएज्ज मेहावी, तहाभएण अप्पणा ॥ ३० ॥ तआ काले अभिप्पेए सड्ढीतालिसमतिए ॥ विणएज्ज लोमहरिस भेय देहस्स कखए ॥ ३१ ॥ अह कालम्मि सपत्ते, आघायाय समुस्सय ॥ सकाम मरण मरइ, तिण्ह

श्रमण दोनों प्रकारके मरणका स्वरूप श्रवणकर जो साधु अंगीकार करते हैं वे शीलवंत बहुश्रुत-पंडित मरणांतमें भास पश्चाताप नहीं पाते हैं अर्थात् समाधि मरण मरते हुवे नहीं गभराते हैं ॥२९॥ अहो पंडितों! उक्त प्रकार अकाम मरण व सकाम मरण दोनों का कथन कहा अब स अपनी बुद्धि से तोल कर बाल मरण का दुःख का हेतु जान कर उस का त्याग कर और पंडित मरण के लिये दया धर्म का आचरन करो, क्षमा आदि दश यतिधर्म का धारक बनो मिथ्यात्वादि आश्रव का निरूधन कर तथाभूत अपना आत्मा को बनाओ ॥ ३० ॥ जब मरण समय नजीक आवे तब मन के भोगों को हीन नहीं करता हुवा शूरवीर पना धारन करो, जिन वचन में पूर्ण श्रद्धा रखकर परिषह होने पर भी मन को स्थिर रखो, शरीर के रोम मात्र में खेद नहीं करता हुवा व्याकूलता रहित शरीर के विनाश की अशरीरी होने की इच्छा करो ॥३१॥ जब समय मृत्युकाल पास आवे तब तीन प्रकार के सकाम मरण मुनि करे जिन के नाम कहते हैं भक्त प्रत्याख्यान सो तीन अथवा चार आहार का जावजीव त्याग २ करे इंगित मरण क्षेत्रादि मर्यादा बांधकर

अन्नयरे सिया ॥ सव्व दुक्ख पहीणेवा,देवे वावि महिड्ढिए ॥२५॥ उत्तराई विमोहाई, जुइमंताणुपुव्वसो ॥ समाइण्णाइ जक्खेहिं, आवासाइ जसंसिणो ॥ २६ ॥ दीहा उया इड्ढिमंता, समिद्धा कामरूविणो ॥ अहुणोववन्न संकासा, भुज्जो अच्चिमालिप्पभा ॥ २७ ॥ ताणि ठाणाणि गच्छंति सिक्खित्ता संजमं तवं ॥ भिक्खाए वा गिहित्थे वा, जे संति परिनिव्वुडा ॥ २८ ॥ तेसिं सोच्चा सपुज्जाण, संजयाण वुसीमओ ॥ न संत

॥ २४ ॥ अब साधु का धर्म कहते हैं—जो पांच प्रकार आश्रव का रुधन करनेवाला भिक्षुक है उन की गति दो प्रकार की है वे सब कर्म का क्षय कर मुक्त होवे अथवा तो कर्म बाकी रह जाने से महर्द्धिक देव होवे ॥ २५ ॥ वे देवता किस प्रकार के हैं सो कहते हैं—सौधर्म देवलोक से सर्वार्थ सिद्ध विमान पर्यंत एकेक से अधिक पुण्याइवाले तेज कांति के धारक देवता जो देवलोक में संकीर्ण हैं इन में सर्वोत्तम पांच अनुत्तर विमानवासी जो देव हैं उन का मिथ्यात्व मोहनीय नष्ट होने से अपने २ विमान में सदैव सुखानुभव करनेवाले हैं वैसे ही महा कीर्ति के धारक हैं॥२६॥ वे देवता दीर्घ आयुष्यवाले महा ऋद्धिवाले समृद्धि- वंत ,इच्छित रूप करनेवाले जब देखो तब जाने तुरत ही उत्पन्न हुए हैं ऐसे और सूर्य से भी अधिक कांतिवाले हैं।२७। जो साधु अथवा गृहस्थ कषायों के उपशम से शीतलीभूत बने हुए हैं वे संयम व तप अंगीकार करके आयु का अन्त होने से उक्त प्रकार के देव स्थान में जाते हैं ॥२८॥ पूजनीय संयति आचार्य के पास से पूर्वोक्त प्रकारसे

ॐ क्षुल्लक निर्ग्रंथ नामकं षष्ठमध्ययनम् ॐ

जावंति ऽ विज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्ख संभवा ॥ लुप्पंति बहुसो मूढा, संसारंमि

पांचवे अध्ययन में अकाम सकाम मरण का कहा विद्यावालों को सकाम मरण और अविद्या
वाले को अकाम मरण होता है इस लिये छठे अध्ययन में विद्यावन्त अविद्यावन्त का अधिकार कहते हैं
इस जगत में जितने बाल-अज्ञानी जीव तत्त्व के अज्ञान और कुविद्यावंत ऐसे जो मूर्ख हैं वे सब दु ख भोगने के
अधिकारी होते हैं अनंत संसार में वारंवार परिभ्रमण करते हुए अनेक वार छेदन भेदन आदि पीडा सहन
करनेवाले होते हैं ॥ १ ॥ यहां कुविद्या पर कथा कहते हैं-किसी गाँव के ब्राह्मण के तीन पुत्र काशी
में अभ्यास करने के लिये गये इनों में से एकने व्याकरण एकने न्याय और एकने वैद्यक का
अभ्यास किया विद्याभ्यास करके तीनों ब्राह्मण अपने देश आ रहे थे बीच में किसीने इन को
पंडित जानकर रसोई जीमाने का कहा और सब भोजन सामग्री ला दी अब इस में एक रसोई बनाने
बैठा, दूसरा घृत लेने गया और तीसरा शाक भाजी लेने गया रसोई बनानेवालने चूलेपर खीचडी
खदबदती सुनकर विचार किया ऐसा प्रयोग व्याकरण में नहीं दीखता है इस से यह उस को बोलने
लगा कि ऐसा अशुद्ध प्रयोग क्यों करती है ! खीचडी में तो वैसा ही उफार निकलने लगा तब
उस ने विचारा कि इस के मुह में धूल डालना चाहिये यों विचार कर उसने मुट्ठी भर कर धूल

भमयरं मुणी ॥ ३२ ॥ त्तिबेमि ॥ इति अकाम सकाम मरणिज्ज णामं पंचम अज्झयण सम्मत्त ॥५॥ * * * * * *

उस के बाहिर गमनागमन का तथा चारों आहार का त्याग करे और ३ पादोपगमन सो आहार और शरीर दोनों का त्याग कर छेदित वृक्ष की डाली समान हलन चलन नहीं करता हुवा आयुष्य पूर्ण करे इन तीनों प्रकार के मृत्यु में यथा शक्ति कोइ भी एक मृत्यु मरकर आयुष्य पूर्ण करे ॥ ३२ ॥ यों मैं कहता हूं, ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जंबू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने भगवान के पास से श्रवण किया है वैसा ही तुझे कहता हूं यह अकामसकाम मरण नामक पांचवा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ ५ ॥

अणंतए ॥ १ ॥ समिक्ख पंडिए तम्हा, पास जाई पहे बहु ॥ अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्तिं भूएसु कप्पए ॥ २ ॥ माया पिया न्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा ॥ नालं ते मम ताणाय, लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥ ३ ॥ एयमट्ठं सपेहाए, पासे समिय दंसणे ॥

चोटिया उडा दी ऐसा देखकर वे तीनों ब्राह्मण आश्चर्य चकित हो गये और उस वृद्ध ब्राह्मण को घर कर कहने लगे कि हम को ऐसी विद्या सिखलाओ, वृद्ध ब्राह्मणने इन को अयोग्य जानकर ना कही परंतु माने नहीं तब वह विद्या सिखाकर चला गया अब वे तीनों वहा से आगे जा रहे थे तब उन के मनमें संदेह हुआ कि-उस ने अपन को सची विद्या सीखाइ है या झूठी इस की परीक्षा करनी चाहिये ऐसा विचार कर रहे थे उतने में क्षुधा से मूर्छित बना हुआ सिंह का कलेवर देखा, उनोंने वहां जाकर मंत्र के प्रयोग से उस को कंकर मंत्रकर मारा वह सावधान होते ही क्षुधा से पीडित होने से उन तीनों ब्राह्मणों को मार डाले! इस लिये बिना बुद्धि विद्या निरुपयोगी है यह कथा ५२ वी हुइ ॥ ५२ ॥

और जो ज्ञानी पंडित होते हैं वे इस जगत में पुत्र कलत्रादि संबंध को पास रूप व एकेन्द्रियादि जाति में परिभ्रमण करानेवाला देखते हुए अपना आत्मा के सुख के गवेषी बनकर सब जीवों के साथ मैत्रीभाव करते हैं परन्तु किसी से वैर भाव नहीं करते हैं ॥ २ ॥ पंडित पुरुष जानते हैं कि-माता, पिता, पुत्रवधू, भाइ भार्या पुत्र, पुत्रियों वगैरह जब मुझे कर्म आकर घेरेंगे तब उस से मेरा रक्षण करनेवाले कोइ नहीं होंगे ॥ ३ ॥ उक्त भय को सम्यक् दृष्टी जीव अपनी बुद्धि से विचारें और मिथ्यात्व तथा स्नेह रूप पाश का

स्रीपरी में राख थी, जिस से सदपद होना पन्ध हो गया ऐसा देख कर वह खुश हो गया कि जैसे को जैसा ही होना योग्य है अब जो दूसरा घृत लान बाजार में गया था वह घृत लेकर पीछे आते न्याय लगाने लगा कि घृत के आधार से पात्र होगा अथवा पात्र के आधार से घृत होगा ! इस का प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चय करने के लिये पात्र का उ टा कर दिया जिस से सब घृत नीचे गिर गया अब जो तीसरा शाक भाजी लेने गया था उसने सब शाक भाजी के गुण दोष देखते हुवे मात्र निम्बकी निरोगी मालूम हुआ, वह निम्ब के पत्ते लेकर आया यजमानने देखलिया कि पंडित पढे हैं परंतु गुने नहीं हैं अब तीन यहां से बिना जीमे ही निकल कर अपने गाँव आये वहां अपनी पंडिताइ बताने के लिये संस्कृत भाषा में ही बोलने लगे उन के मात पिताने उन को अपनी देश भाषा में बोलने के लिये बहुत समझाया परंतु उनोंने माना नहीं एकदा ऐसा ही हुवा कि-रात को उन के यहां चोरों आकर उन की गाय लेजाने लगे, तब वे संस्कृत का अभिमान करने वाले पंडित संस्कृत भाषा में ही लोगों को पुकारने लगे, लोगोंने समझा कि-य विद्याभ्यास करते ऐसे ही पुकारते हैं, इस से कोइ भी आया नहीं और चोरों गायों लेगये प्रातः काल होने से लोगों को सब हाल मालुम हुआ और उन की मूर्खता पर उपहास्य करने लगे जिस अपमान से वे यहां से निकल अन्य ग्राम जाते मार्ग में कोई वृद्ध ब्राह्मण मिला और उनकी पंडिताइ का अभिमान उतारने के लिये उन से पूछा कि तुम पंडित हो तो इस मृत चिडिया को जीवित कर दो वे तीनों वैसा कर सके नहीं तब वृद्ध ब्राह्मणने एक कंकर उस पर मंत्र कर मूर्छित पडी हुई

मुजेज्ज भोयण ॥८॥ इह मगे उ मन्नंति अप्पच्चक्खाय पावग ॥ आयरिय विदित्ताण, सव्व दुक्खाण मुच्चइ ॥ ९ ॥ भणता अकरेंताय, बन्धमोक्खपइण्णिणो ॥ वाया वीरियमेत्तेण, समासासेंति अप्पय॥१०॥न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासण॥ विसन्ना पावकम्मेहिं,बाला पडिय माणिणो॥११॥जे केई सरीर सत्ता वण्णेरूवे य सव्वसो

अपनी इच्छा से देवे उसे ग्रहण कर भोगवे ॥ ८ ॥ इस संसार में कितनेक अविद्य वान् पुरुष हैं वे कहते हैं कि हिंसादि पापकर्म के प्रत्याख्यान करने की कोई जरूर नहीं है ओर अपन पूर्वज करते आये हैं वेही कुलाचरन करते रहेंगे इस से अपन सब दुःख से मुक्त हो सकेंगे ॥९॥ और भी कितनेक अक्रियावादि ऐसा भी कहते हैं कि मात्र ज्ञान में रमणता करने से ही मुक्ति की प्राप्ति होजाती है क्रिया करने की कुछ आवश्यक्ता नहीं है ये ज्ञानी हो कर वचन मात्र आडंबर से बंध मोक्ष के ज्ञानी की प्राप्ति अच्छी तरह करते हैं और वैसे ज्ञान से अपने आत्मा को संतुष्ट करते हैं परंतु क्रिया कुछ भी नहीं करते हैं ॥ १० ॥ ऐसे वचन के आडम्बरी पुरुष संस्कृत प्राकृतादि अनेक प्रकारकी भाषा के भी ज्ञाता होते हैं परन्तु उन कुविद्या वाले को यह विविध प्रकार की भाषा शरणभूत नहीं होती है वे अपन को पंडित मानने वाले अज्ञानी पाप कर्म से सेवते दुःखी दुःख पाते हैं ॥ ११ ॥ जो अज्ञानियों अपने मन वचन वैं काया के

सूत्र

छिंद गेहिं सिणेहच, नकखे पुव्वसथवं ॥ ४ ॥ गवासं मणिकुडलं, पसवो दास पोरुस ॥ सव्वमेय चइत्ताणं कामरूवी भविस्ससि ॥ ५ ॥ थावरं जगम चेव, धण धन्न उवक्खर ॥ पच्चमाणस्स कम्मेहिं, नाल दुक्खाओ मोयणे ॥ ६ ॥ अज्झत्थ सव्वओ सव्व, दिस्सपाणे पियायए ॥ न हणे पाणिणा पाण ॥ भयवेराओ उवरए ॥ ७ ॥ आदाण नरय दिस्स, नायएज्ज तणामवि ॥ दोगुन्छी अप्पणो पा०, दिन्न

अर्थ

छेदन कर विचरे फिर पहिले जिन के साथ संबंध था उन संबंधियों को मन से चाहे नहीं ॥ ४ ॥ अहो आयुष्मन्! गवादि पशु मणि कुंडलादि भूषण धन, हाथी घोड़े नौकर चाकर इत्यादि का त्याग कर संयम अंगीकार करेगा तो मनोवांछित वैक्रेय रूप करनेवाला देव होगा ॥ ५ ॥ दुःख से पचते हुए जीव को घर वगैरह स्थावर परिग्रह और मनुष्य वगैरह जंगम धन, धान्य आदि घर परवेश दुःखसे छोडाने समर्थ नहीं होते हैं ॥ ६ ॥ पृथ्वादि सब दिशा में रहे हुवे प्राणी एकान्त सुखाभिलाषी हैं ऐसी मन की अध्यात्मवृत्ति ज्ञान प्रज्ञा से देखकर भयात्स्थान प्रज्ञा कर उन के प्राणों की घात करे नहीं इस प्रकार भय से और वैर से अपनी आत्मा को बचावे निवारे ॥ ७ ॥ किसी का विना दिया कुछ भी पदार्थ ग्रहण करना-अर्थात् चोरी करना नरक गमन का हेतु है ऐसा जानकर तृणमात्र कोई भी वस्तु विना याचे ग्रहण करे नहीं सदैव पापकर्म की दुगंछा करता हुवा शरीर पोषण के लिये आहार पानी भी गृहस्थ

॥ १६ ॥ एसणा समिओ लज्जू, गामे अणियओ चरे ॥ अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिण्ड वाय गवेसए ॥ १७ ॥ एवं से उदाहु अणुत्तरणाणी, अणुत्तरदंसी, अणुत्तरनाण दंसणधरे ॥ अरहा नायपुत्ते भगवं, वेसालिए वियाहिए ॥ १८ ॥ त्तिबेमि ॥

इति खुड्डाग नियंठिज्ज छट्ठज्झयणं सम्मत्तं ॥ ६ ॥ * * *

एषणा समिति में लज्जावान साधु ग्राम नगरादिक में विचरता हुवा गृहस्थों के घर में अप्रमत्त पने आहारादिक की गवेषणा करे ॥ १७ ॥ अनुत्तर ज्ञान वाले, अनुत्तर दर्शन वाले अनुत्तर ज्ञान दर्शन के धारक अरिहंत श्री ज्ञात पुत्र महावीर स्वामीने ऐसा उपदेश कहा है वैसा मैं कहता हूं ॥ १८ ॥ ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं. यह छठा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ ६ ॥ * * * * *

सूत्र

मणसा काय वक्केण, सव्वे ते दुक्खसंभवा ॥ १२ ॥ आवन्ना दीहमद्धाणं, संसारम्मि अणंतए ॥ तम्हा सव्वदिसं पस्स, अप्पमत्तो परिव्वए ॥ १३ ॥ बहिया उड्ढ मादाय, नावकंखे कयाइवि ॥ पुव्वकम्म खयट्ठाए, इमंदेहं समुद्धरे ॥१४॥ [विगिंच कम्मुणो हेउं कालकंखी परिव्वए ॥ मायं पिंडस्स पाणस्स कडं लद्धूण भक्खए ॥ १५ ॥ सन्निहिं च न कुव्विज्जा लेवमायाए संजए ॥ पक्खीपत्तं समादाय, निरवेक्खो परिव्वए

अर्थ

योगों से अपने शरीर के वर्ण सौंदर्य में आसक्त बन शरीर की पोषणा में मग्न रहते हैं वे सब महा दुःख के भोगने वाले हैं ऐसा जानना ॥ १२ ॥ उक्त प्रकार से अज्ञानी जीवों अनादि अनंत संसार के दीर्घ मार्ग में परिभ्रमण कर रहे हैं उन को देख कर ज्ञानी जीव संयम धर्म में सदैव प्रवर्ते ॥ १३ ॥ चार गति से उत्तम मोक्ष गति को अपने मन में रखकर कदापि विषय कषाय की वांच्छा करे नहीं और पीछे का कर्म क्षय करने के लिये निर्दोष आहार से अपना शरीर को रखे ॥ १४ ॥ आहार पानी गृहस्थ ने अपने लिये बनाया हो उस ग्रहण कर आप भोगवे और कर्म के हेतु का त्याग कर क्रिया काल की वांच्छता हुवा संयम मार्ग में प्रवृत्ति करे ॥ १५ ॥ जितना आहार पानी स्वतः का तथा अपने अन्य स्वधर्मियों को चाहिये उतना ही ग्रहण करे परंतु पात्र में लेप मात्र आहारादिक रात्रि का रखे नहीं और जैसे पक्षी अपनी पांखों लेकर आकाश में गमन करता है, वैसे ही साधु भी अपने धर्मोपकरण ग्रहण कर किसी प्रकार के प्रतिबंध रहित ग्रामानुग्राम विचरे ॥१६॥

याले अहम्मिट्ठे ईहई नरयाउय ॥ ४ ॥ हिंसे बाले मुसावाई, अद्धाणम्मि विलोवए ॥

अन्नदत्तहरे तेणे, माई क नु हरसढे ॥५॥ इत्थी विसयगिद्धे य, महारंभ परिग्गह ॥

देवी है तो भी तुझे घास फूस खीलाता है और यह बकरा कुच्छ भी नहीं देता है तो भी उस को माल मसाले खीलाते हैं इस से मुझे बड़ा आश्चर्य होता है गायने कहा कि बच्चा! अपन को घास फूस ही अच्छा है अपन को प्राण नाशक माल की जरूर नहीं है पुत्रने कहा कि यह कैसे? गायने कहा की तू थोड़े दिन में इस का फल देखेगा, एकदा उस के घर मिजमान आये तब घर का मालिक अपनी तरवार से उस बकरे को मारने चला ऐसा देखकर वह गाय का बच्चा डरकर चिल्लाने लगा तब गायने कहा कि तू क्यों डरता है जो 'खावेगा गटका वह सोवेगा झटका'' इतने में तो उस बकरे की गरदन काट डाली ऐसा देख वह गाय का बच्चा मानने लगा कि अपन के ऐसा घास फूस ही अच्छा है यह दृष्टांत कहा अब इस का भावार्थ सूत्र से कहते हैं —जैसे वह बकरा मिजमानों के लिये करवाया हुवा था, वैसे ही अज्ञानी अधर्म का आचरण करने वाला नरक गति योग्य आचरन करने से नरक का आयुष्य बंधता है अर्थात् वह नरक में जाता है ॥ १ ॥ अब अज्ञानी के लक्षण कहते हैं—१ हिंसा करने वाला, २ मृषा बोलने वाला, ३ मार्ग में जाते को लूटने वाला, ४ अदत्त चोरी करने वाला, ५ माया कपट करने वाला ६ किसे लूट ऐसा विचार करनेवाला, ७ धूर्त ठगारा ८ स्त्री के विषय में गृद्ध ९ छ ही काया का महा आरंभ करने

॥ एलयं नामक सप्तम मध्ययनम् ॥

सूत्र

जहा एसं समुद्दिस्स केइ पोसज्ज एलय ॥ ओदणं जवस देज्जा, पोसेज्जा वि सयगणे ॥ १ ॥ तओ से पुट्ठे परिवूढे, जायमेदे महोदरे ॥ पीणिए विउले देहे, आएस परिकंखए ॥ २ ॥ जाव न एइ आएसे, ताव जीवइ सो दुही ॥ अह पत्तमि आएसे, सीस छेत्तूण भुज्जइ ॥ ३ ॥ जहा से खलु उरब्भे, आएसाए समीहिए ॥ एव

अर्थ

छठे अध्ययन में भगिया का कथन किया यह रसगृद्धि मनों को होता है इसलिये सातवे अध्ययन में रस गृद्धता का कथन करते हैं—जैसे कोइ हिंसक मनुष्य मिजमान के लिये बकरे को पाले, उस को चांवल जव वगैरह खीलाकर अपने अगन में उस की पालना करे ॥ १ ॥ इस तरह वह बकरा चांवल वगैरह खाकर मांसादिक से पुष्ट बनता है उसका उदर भी बडा होता है और वह बकरा भी बडा हो जाता है तब वह हिंसक मनुष्य किसी मिजमान की प्रतीक्षा करता है ॥ २ ॥ वह दुःखी बकराका जीवितव्य वहां लग ही है कि जहां लग मिजमान नहीं आवे जब मिजमान आ जाते हैं तब उस के शिर का छेदन कर उस को खाया जाता है ॥ ३ ॥ इस पर कथित कथा कहते हैं उस बकरे के पोषक के घर में एक गाय का बछा उस बकरे का सुख देख कर उस की मा से कहने लगा कि—तू अमृत समान दूध

जहा कागिणिए हेउं सहस्सं हारई नरो ॥ अपत्थं अंबगं भोच्चा,राया रज्जं तु हारए ॥ ॥ ११ ॥ एवं माणुसगा कामा, देवकामाण अंतिए ॥ सहस्सगुणिया भुज्जो, आउ-कामा य दिव्विया ॥ १२ ॥ अणेगवासा नउया जा सा पन्नवओ ठिइ ॥ जाणि जीयंति

॥ १० ॥ दूसरा कागणी का दृष्टांत कहते हैं—जिस प्रकार किसी मूर्ख वणिकने एक कागनी के लिये हजार महोरों गमाइ इस पर दृष्टांत कहते हैं—कोई वणिक परदेश में महा परिश्रम से एक हजार महोरों कमाकर पीछा अपने घर आता था उसने सब महोरों एक नवली में डालकर कमर से बंध की और एक रूपे की ८० कागणि अपनी पास रखी; नित्य एक २ कागणीका अपने भोजन के लिये खर्चा करता था रास्ते में महा अटवी आवेगी ऐसा जानकर उसने एक कागणी का सौदा लेकर उस को दो कागणी ददी और सादा लेकर वह से निकल चला आगे जाते कागणियों गिनते एक कागणी कम आइ जब उसने समजा की उस वणिक ने मुझ ठग लिया, इस से उस के पास जाकर कागणी ले आऊं उस के साथवाले ने उस बहुत समजाया परंतु समजा नहीं और पीछा गया जंगल मे सोना महोरों गाडकर वह गांव में आया उस धनीयने झगडा करके वो कागनी पाछी ददी यहां नवली गाडता वक्त ने देखी उनोंने उस खड्डे में से निकाल कर उस जगे में वे महोरों बिखेर दी वह धनीया वहां आया और नोली नहीं मिलने से बहुत रोने लगा. वहां से घर आया उस के सथियोंने भी उस का तिरस्कार किया. यह कागणी

सूत्र

भुंजमाणे सुरं मंसं, परिवूढे परंदमे ॥ ६ ॥ अयकक्कर भोईय, तुंदिल्ले चिय लोहिए ॥ आउयं नरए कंखे, जहा एसं व एलए ॥ ७ ॥ आसणं सयणं जाणं, वित्तं कामाणि भुंजिया ॥ दुस्साहडं धणं हिच्चा बहुं संचिणिया रयं ॥ ८ ॥ तओ कम्मगुरू जंतू पच्चुप्पन्नपरायणे ॥ अएव्व आगयाएसे मरणंतम्मि सोयइ ॥ ९ ॥ तओ आउपरिक्खीणे, चुया देहा विहिंसगा ॥ आसुरियं दिसं बाला, गच्छंति अवसा तमं ॥ १० ॥

अर्थ

वाला, १० परिग्रह की महा इच्छा वाला ११ मांस खानेवाला १२ मदिरा पान करनेवाला और १३ पर को दमन करनेवाला ऐसा पापिष्ठ मद्य मांस का सेवन करता हुवा हृष्ट पुष्ट होता है ॥ ६ ॥ करड २ शब्द करे वैसा बकरे का मांस खानेवाला अज्ञानी रुधिर मांस से पुष्ट बनकर जैसे वह बकरा मिजमानों का इच्छित होता है वैसे ही वह नरक का आयुष्य की इच्छा करता है ॥ ७ ॥ आसन, शयन यान, धन, और काम भोगों को भोगव कर महा दुःख से उपार्जन किया हुवा धन का त्याग कर और बहुत प्रकार का [illegible] रजमेल एकत्रित कर विद्यमान काम भोगों में तत्पर व कर्मों से भारी बना हुवा जीव उस बोकर जैसे मरणांत में शोक-पश्चाताप करता है ॥ ८-९ ॥ तत्पश्चात् आयुष्य पूर्ण होने से वह हिंसा करने वाला वहां से चवकर परवश पना से अंधकार मय नरक में आता है यह प्रथम बकरे का दृष्टांत हुवा

एगोत्थ लहए लाभ एगोमूलेण आगओ ॥ १४ ॥ एगो मूल पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ ॥ ववहारे उवमा एसा, एव धम्मे वियाणह ॥ १५ ॥ माणुसत्तं भवे-मूल लाभो देवगई भवे ॥ मूलच्छेएण जीवाणं, नरगतिरिक्खत्तण धुव ॥ १६ ॥ दुहओ गई बालस्स, आवई वहमूलिया ॥ देवत्त माणुसत्त च, ज जिए लोलया सढे

वृद्धि की दूसरेने मूलका पूंजी कायम रखी और तीसरेने यूतादि कुकर्म में सब रकम गमा दी जब पिताने पूछा तब पहिलेने मूल पूंजी और नफा दिया, दूसरेने मूल पूंजी दी और तीसरने कुच्छ भी नहीं दिया इस पर से शेठजीन पहिले को सब घर कुटुम्ब का स्वामी बनाया दूसरे का भंडारी बनाया और तीसरे को निकाल दिया यह व्यवहारिक उपमा कही अब इसे धर्म पर उतारते हैं ॥ १४ १५ ॥ जो जीव पुण्य रूपी पिता के पास से मनुष्य गति प्राप्त करके धर्म करणी तप वगैरह कम करके मनुष्य से उपरान्त देवगति प्राप्त करते हैं वे पूंजी में वृद्धि करनेवाले हैं ऐसा जानना जो मनुष्य हुवे पीछे दया नम्रता रखने से पुन यहां से मरकर मनुष्य उत्पन्न होता है वह मूल पूंजी रखनेवाला है वैसा जानना और जो मोह शाम्य में पड़कर नरक तिर्यचादि गति के अधिकारी होते हैं वे मूल पूंजी को गमानेवाले हैं वैसा जानना ॥ १६ ॥ मूल पूंजी गमानेवाले अज्ञानी मांस मदिरा आदि भोग की लोलुपता व धूर्तता से मनुष्य व देव गति को हार कर जहां अपार दु ख व बध है वैसी नरक तियच की दो प्रकार की गति में जाते हैं ॥ १७ ॥

मूल — दुम्मेहा, ऊणयाससयाउए ॥ १३ ॥ जहा य तिन्नि वाणिया, मूलं घेत्तूण निग्गया ॥

अर्थ — गुमान रानेका दृष्टांत हुआ अब उत्तरार्धकेलिये पहले आमका दृष्टांत कहते हैं जैसे अपथ्य आम्र को भोगवकर राजा अपना राज्य गुमाकर बैठा इसका दृष्टांत कहते हैं—जैसे किसी राजा को अतिशय आम खाने से अम्लरोग हुआ उस के लिये बहुत उपाय किये परंतु मीटा नहीं एक वृद्ध वैद्यने कहा कि—यदि तुम आम खाना छोड दो तो तुम्हारा रोग मीटाऊं राजाने कथन कबूल किया तब वैद्यने औषधोपचारसे रोग मिटा दिया अब दूसरे वर्ष में जब आम की ऋतु आई तब वह क्रीडा करने जंगल में गया वहां मधान करना करने पर भी आम के वृक्ष नीचे बैठा और आम भी खा लिया इस से पुनः वह अम्लरोग प्रगट हुआ कि जो अनेक उपायों से भी मीटा नहीं और राजा भी मर गया यह राजा का दृष्टांत हुआ जैसे किसी वणिकने एक काकिणि के लिये हजार मोहरों गमाई २ और अपथ्य आम खाने से राजाने अपना राज्य गमाया वैसे ही मनुष्य के आयुष्य से और कामभोगों से देवता का आयुष्य और कामभोग हजारों गुन अधिक हैं अनेक वर्षवाला नयुते की देवताओं की स्थिति है ऐसी स्थिति के सुख को सो वर्ष में भी कम आयुष्यवाले दुर्बुद्धि मनुष्य तुच्छ सुख के लिये हार जाता है। ॥ ११-१३॥ अब तीन वणिक का दृष्टांत कहते हैं—किसी वाणकने अपने तीन पुत्रों को थोडी २ रकम देकर अलग कर दिये और कहा कि इस द्रव्यको मैं जब मांगू तब देना उन तीनोंमें ज्येष्ठ पुत्रने उससे व्यापार करके अच्छी

१ चोरासी लाख पूर्व को चोरासी लाख गुना करने से नयुतांग होवे और ८४ लाख नयुतांग का एक नयुत होवे.

एगोत्थ लहए लाभ, एगोमूलेण आगओ ॥ १४ ॥ एगो मूल पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ ॥ ववहारे उवमा एसा, एव धम्मे वियाणह ॥ १५ ॥ माणुसत्तं भवे मूल लाभो देवगई भवे ॥ मूलच्छेएण जीवाण, नरगतिरिक्खत्तण धुवं ॥ १६ ॥ दुहओ गई बालस्स, आवई वहमूलिया ॥ देवत्त माणुसत्त च, जं जिए लोलया सढे

वृद्धि की दूसरेने मूलको पूंजी कायम रखी और तीसरेने जूतादि कर्म में सब रकम गमा दी जब पिताने पूछा तब पहिलेने मूल पूंजी और नफा दिया, दूसरेने मूल पूंजी दी और तीसरने कुछ भी नहीं दिया इस पर से सेठजीने पहिले को सब घर कुटुम्ब का स्वामी बनाया दूसरे का भंडारी बनाया और तीसरे को निकाल दिया यह व्यवहारिक उपमा कही अब इसे धर्म पर उतारते हैं ॥ १४ १५ ॥ जो जीव पुण्य रूपी पिता के पास से मनुष्य गति प्राप्त करके धर्म करणी तप वगैरह कम करके मनुष्य से उपरान्त देवगति प्राप्त करते हैं वे पूंजी में वृद्धि करनेवाले हैं ऐसा जानना जो मनुष्य हुवे पीछे दया नम्रता रखने से पुन वहां से मरकर मनुष्य उत्पन्न होता है वह मूल पूंजी रखनेवाला है वैसा जानना और जो मोह पाप में पडकर नरक तिर्यंचादि गति के अधिकारी होते हैं वे मूल पूंजी को गमानेवाले हैं वैसा जानना ॥ १६ ॥ मूल पूंजी गमानेवाले अज्ञानी मांस मदिरा आदि भोग की लोलुपता व धूर्तता से मनुष्य व देव गति को हार कर जहां अपार दुःख व वध है वैसी नरक तिर्यंच की दो प्रकार की गति में जाते हैं ॥ १७ ॥

॥ १७ ॥ तओ जिए सइ होई, दुविह दोग्गई गए ॥ दुल्लहा तस्स उम्मग्गा, अद्धाए सुचिरादवि ॥ १८ ॥ एव जिय सपेहाए, तुलिया बाल च पंडिय ॥ मूलियं ते पवेसंति, माणुसिं जोणिमंतिजे ॥ १९ ॥ वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे नरा गिहिसुव्वया ॥ उवेंति माणुसं जोणिं, कम्मसच्चा हु पाणिणो ॥ २० ॥ जेसिंतु विउला सिक्खा, मूलियं ते

रे अज्ञानी कि जो मनुष्य पञ्चेन्द्रिय गति को हार कर नरक तिर्यंच यों दो प्रकार की गति को प्राप्त हुए हैं उन को आगमिक काल में उन गति में से निकलना बड़ा दुर्लभ है अर्थात् वहां भ्रमण किया करते हैं ॥ १८ ॥ अहो भव्यो! उक्त दृष्टांत को ज्ञान दृष्टि से अपने मन में स्थापना बाल और पंडित की अवस्था का विचार करना और [illegible] नहीं होवे तो मूल की [illegible] गमान नहीं [illegible] मनुष्य जन्म से निकल कर पुनः मनुष्य जन्म की [illegible] होवे ऐसी करनी वा अवश्य ही करना ॥ १९ ॥ मनुष्य जन्म किस प्रकार प्राप्त करते हैं सो कहते हैं मूलकी तथा सद्गुरु की विविध प्रकार की हित शिक्षा विनीतपना भद्रिकपना दुर्व्यसन का त्याग लौकिक विरुद्ध आचरन नहीं करना सत्यवादी होना प्रमाणिकपना रखना इत्यादिक को जो धारन करते हैं वे मनुष्य जन्म प्राप्त करते हैं मतलब कि देशव्रती तथा समव्रती बने सिवाय उक्त प्रकारकी अन्य करनी मनुष्य जन्म देनेवाली [illegible]ती है ॥ २० ॥ और जो जीव पांच अनुव्रत तथा पांच महाव्रतादि उत्तरोत्तर प्रधान जिनेश्वर भगवानकी

अइच्छिया ॥ सीलवंता सविसेसा, अदीणा जंति देवयं ॥ २१ ॥ एवमदीणवं भिक्खु आगारिं च वियाणिया ॥ कहण्णु जिच्चमेलिक्खं, जिच्चमाणो न संविदे ॥ २२ ॥ जहा कुसग्गे उदग, समुद्देण समं मिणे ॥ एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अंतिए ॥ २३ ॥ कुसग्गमेत्ता इमे कामा सन्निरुद्धम्मि आउए ॥ कस्स हेउं पुराकाउं, जोगक्खेमं न संविदे ॥ २४ ॥ इह कामाणियट्टस्स, अत्तट्ठे अवरज्झई ॥ सुच्चा नेयाउयं

शिक्षा है उस का सम्यक् प्रकार से पालन करे जो परिषह उत्पन्न होने पर कदापि दीनता धारन करे नहीं, वह ऊपर का लाभ रूप देव गति में जाता है ॥ २१ ॥ इस तरह दीनपना रहित साधु तथा देश विरति गृहस्थ को देवपना मिलता है ऐसा जानते हुए भी विषय व कषाय में लुब्ध होकर विवेकी मनुष्य कभी देवपना गमावेंगे ? अर्थात् विवेकी पुरुष कदापि गमावेंगे नहीं ॥ २२ ॥ जैसे कुशाग्र पर रहा हुआ पानी का बिंदु समुद्र के पानी से असंख्यातवा भाग हीन है वैसे ही देवताओं के कामभोग के आगे मनुष्य के कामभोग असंख्यातगुने हीन है ॥ २३ ॥ कुशाग्र पर रहा हुआ पानी के बिंदु समान ये मनुष्य के कामभोग हैं तो भी अतिशय अल्प आयुष्य होने पर भी विषय कषाय में लुब्ध बनकर किस कारन से अज्ञानी मनुष्य [1]जोग और क्षेम नहीं जानते हैं ! ! ॥ २४ ॥ इस संसार में जो जीव न्याय

---

१ अप्राप्त धर्म की इच्छा सो योग और प्राप्त धर्म का रक्षण सो क्षेम

सव्वधम्माणुवत्तिणो, चिच्चा अहम्म धम्मिट्ठे देवेसु उववज्जई ॥ २९ ॥ तुलियाण बालभावं, अबालं चेव पंडिए ॥ चइऊण बालभावं, अबालं सेवए मुणी ॥ ३० ॥ त्तिबेमि ॥ इति एलय अज्झयणं सम्मत्तं ॥ ७ ॥

उस धर्म को अपना प्राण प्रिय बना कर देवलोक में उत्पन्न होता है ॥ २९ ॥ अहो मुनियों ! इस प्रकार अज्ञानता तथा पंडित पना को न्याय बुद्धि से तोलकर अज्ञानता का त्याग कर पंडित पने को अंगीकार कर सुखी बनो ! ॥ ३० ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसे ही कहता हूं यह सातवा एलक नामक अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

सूत्र

मग्ग, जं भुज्जो परिभस्सई ॥ २५ ॥ इह काम नियट्टस्स, अत्तट्ठे नावरज्झई ॥ पूइदेहनिरोहेणं, भवे देवे त्ति मे सुय ॥ २६ ॥ इड्ढी जुई जसोवण्णो, आउ सुहं मणुत्तरं ॥ भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु तत्थ से उववज्जइ ॥ २७ ॥ बालस्स पस्स बालत्तं, अहम्मं पडिवज्जिणो ॥ चिच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे नरएसु उववज्जई ॥ २८ ॥ धीरस्स पस्स धीरत्तं,

अर्थ

मार्ग भरण करके कामभोग से नहीं निवर्ता है वह धर्म से भ्रष्ट होता है और वह अपने आत्मा का अर्थ स्वर्ग व मोक्ष के सुखों का विनाश करता है ॥ २५ ॥ और इस संसार में जो कामभोग से निवर्ता है वह अपने आत्मा का विनाश नहीं करता है और वह रुधिर मांस से भरा हुवा उदारिक शरीर छोड़ कर देवता होता है ऐसा मैंने सुना है ॥ २६ ॥ देवता किस प्रकार का होता है सो कहते हैं परिवार की ऋद्धि शरीर की कांति लोक में कीर्ति, शुभ शरीर का वर्ण दीर्घ आयुष्य और अनुत्तर सुख, ये छ बोल देवता में जहां होवे वहां वह उत्पन्न होता है और वहां से मनुष्य में भी आवे तो मनुष्य गति में जहां उक्त छ बोल होवे वहां उत्पन्न होवे ॥ २७ ॥ उपसंहार—अहो भव्यो! अज्ञानी का अज्ञानता को देखो कि सत्य में प्राप्त होता धर्म का त्याग कर अधर्म को अंगीकार कर और अधर्म को प्रिय मानकर नरक गति में उत्पन्न होता है ॥ २८ ॥ वैसे ही धीर पुरुष की धीरता देखो कि—अनादि काल की संगति वाला अधर्म का त्याग कर, सम्यक् प्रणीत क्षमादि दशविध यतिधर्म को अंगीकार कर और

सव्वधम्माणुवत्तिणो, भिच्चा अहम्म धम्मिट्ठे देवेसु उववज्जई ॥ २९ ॥ तुलियाण बालभावं, अबाल चेव पंडिए ॥ चइऊण बालभाव, अबालं सेवए मुणी ॥ ३० ॥ त्तिबेमि ॥ इति एलय अज्झायण सम्मत्तं ॥ ७ ॥

उस धर्म को अपना प्राण प्रिय बना कर देवलोक में उत्पन्न होता है ॥ २९ ॥ अहो मुनियों ! इस प्रकार अज्ञानता तथा पंडित पना को न्याय बुद्धि से तोलकर अज्ञानता का त्याग कर पंडित पने को अंगीकार कर सुखी बनो ! ॥ ३० ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसे ही कहता हूं यह सातवा एलक नामक अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ ७ ॥

मग्गं, जं भुज्जो परिभस्सई ॥ २५ ॥ इह काम नियट्टस्स, अत्तट्ठे नावरज्झई ॥ पूइदेहनिरोहेणं, भवे देवे त्ति मे सुयं ॥२६॥ इड्ढी जुई जसोवण्णो, आउ सुह मणुत्तरं ॥ भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु तत्थ से उववज्जइ ॥ २७ ॥ बालस्स पस्स बालत्तं, अहम्मं पडिवज्जिणो ॥ चिच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे नरएसु उववज्जई ॥ २८ ॥ धीरस्स पस्स धीरत्तं,

मार्ग भ्रष्ट करके कामभोग से नहीं निवर्ता है वह धर्म से भ्रष्ट होता है और वह अपने आत्मा का अर्थ स्वर्ग व मोक्ष के सुखों का विनाश करता है ॥ २५ ॥ और इस संसार में जो कामभोग से निवर्ता है वह अपने आत्मा का विनाश नहीं करता है और वह रुधिर मांस से भरा हुआ उदारिक शरीर छोड कर देवता होता है ऐसा मैंने सुना है ॥ २६ ॥ देवता किस प्रकार का होता है सो कहते हैं परिवार की ऋद्धि शरीर की कांति लोग में कीर्ति, शुभ शरीर का वर्ण दीर्घ आयुष्य और अनुत्तर सुख, ये छ बोल देवता में जहां होवे वहां वह उत्पन्न होता है और वहां से मनुष्य में भी आवे तो मनुष्य गति में जहां उक्त छ बोल होवे वहां उत्पन्न होवे ॥ २७ ॥ उपसंहार—अहो भव्यो ! अज्ञानी का अज्ञानता को देखो ! कि सहज में प्राप्त हुवा धर्म का त्याग कर अधर्म को अंगीकार कर और अधर्म को प्रिय मानकर नरक गति में उत्पन्न होता है ॥ २८ ॥ वैसे ही धीर पुरुष की धीरता देखो कि—अनादि काल की संगति वाला अधर्म का त्याग कर, सर्वज्ञ प्रणीत क्षमादि दशविध यतिधर्म को अंगीकार कर और

ने पढाना स्वीकार किया और भोजन के लिये यहां पर धनदत्त नामक किसी गृहस्थ के यहां प्रबंध कर दिया यहां दासी उस को भोजन वगैरह कराते दोनों मोह मुग्ध बनकर भोग भोगवने लगे ऐसा करते दासी सगर्भा हुई और कपिल से कहने लगी कि बालक होगा तो उस के पालन पोषण में द्रव्य व्यय करना पडेगा इस से द्रव्य का प्रबन्ध करना चाहिये और कहा कि यहां के राजा को प्रथम जो आशीर्वाद देता है उस को राजा दो मासा सुवर्ण सदैव देता है कपिल यह सुन संतुष्ट होगया रात्रि में पूरी निद्रा भी आई नहीं और आधि रात्रि में अपने घर से निकल पडा मार्ग में इस को चोर जानकर कोतवालने पकड लिया और राजा के सन्मुख उपस्थित किया राजाने उसे देखकर पहिचाना कि-वास्तवमें यह चोर नहीं है उस से पूछा कि तू कैसे पकडा गया ? कपिलने अपना वृत्तांत सुना दिया और कहा-कि मैं अवश्य ही धर्मभ्रष्ट होने से शिक्षा पात्र हूं राजाने इस से संतुष्ट होकर कहा कि-तेरी इच्छा होवे सो मांग तू मांगेगा सो देता हूं कपिलने कहा कि मैं विचार कर मंगूगा इस से वह अशोक वाडी में बैठकर विचार करने लगा कि दो मासे सुवर्ण में क्या होगा ? चार मासे सुवर्ण मांगू फिर विचार हुवा कि चार मासे सवर्ण से तो पुत्र का जन्म खरच भी पूरा नहीं होगा इस से आठ मासे सुवर्ण मांगू यों विचार करते२ सब राज्य मांगने की इच्छा हुई फिर ज्ञान मय बुद्धि होने से विचार हुआ कि इस तृष्णा को धिक्कार होवो रे कपिल'तू जाति से भ्रष्ट हुवा, और इतनी विटम्बना पाया तो भी तेरी बुद्धि ठिकाने आइ नहीं फिर भी इस संसार जाल में फसने का उपाय कर रहा है इस से इस विषय तृष्णा को भी धिक्कार

॥ काविलियं अष्टम मध्ययनम् ॥

सातवे अध्ययन में रसनेन्द्रिय पर विजय करने का कहा रसना का जय करनेवाला तृष्णा का भी जय करता है इस लिये आठवे अध्ययनमें तृष्णाका जय करनेका कहते हैं इस अध्ययनका सम्बन्ध मिलाने कथा कहते हैं—कौशाम्बी नगरी में जितशत्रु राजा का काश्यप नामक पुरोहित रहता था उस को यशा नामक भार्या और कपिल नामक पुत्र था पुत्र के बचपनमें पिता का मृत्यु हो गया तब राजाने उस पुरोहित के स्थान दूसरे पुरोहित को रखा एकदा वह दूसरा परोहित अश्व गज छत्र चामर सहित पुराने पुरोहित के घर के सामने से चला जा रहा था उसे देखकर पुराने पुरोहित की यशा भार्या रोने लगी तब उस का कपिल पुत्र कहने लगा कि हे माता ! क्यों रोती है ? वह बोली हे पुत्र ! तू नादान होने से तेरे पिता की संपत्ति इस पुरोहित को मिलने से मुझे रुदन हुवा तेरा पिता जीता था तब वह भी ऐसी धूमधाम से निकलता था कपिलने माता से कहा कि ऐसी ऋद्धि मुझ कैसे मिल सके ! माताने कहा कि जब तु विद्याभ्यास करके अच्छा विद्वान होगा तो तुझे ऐसी ऋद्धि प्राप्त हो जावेगी उसने कहा कि मैं विद्याभ्यास करूंगा माताने कहा कि यहां पर कोई भी इस परोहित के डर से तुझे विद्याभ्यास करावेगा नहीं इस लिये तू यहां से श्रावस्ती नगरी जा वहां तेरे पिता का मित्र इन्द्रदत्त ब्राह्मण तुझे पढावेगा माता की ऐसी आज्ञा सुनकर वह कपिल श्रावस्ती नगरी में इन्द्रदत्त ब्राह्मण के पास गया, इन्द्रदत्त

दोग्गइ न गच्छेज्जा ॥ १ ॥ विजहित्तु पुव्वसंजोगं, न सिणेहं कहिंचि कुव्वेज्जा ॥ असिणेह सिणेहकरेहिं दोसपओसेहि मुच्चए भिक्खू ॥ २ ॥ तो नाण दंसण समग्गो, हियनिस्सेसाए सव्व जीवाण ॥ तेसिं वि मोक्खणट्ठाए भासइ मुणिवरो विगय मोहो ॥ ३ ॥ सव्वं गंथं कलहं च, विप्पजहे तहाविहं भिक्खू ॥ सव्वेसु कामजाएसु, पासमाणो न लिप्पइ ताई ॥४॥ भोगामिस दोसविसन्ने, हियनिस्सेय सबुद्धिवोच्चत्थे ॥

में जा सके नहीं ॥ १ ॥ तब कपिल केवली उन चारों को इस प्रकार उपदेश देते हैं—कि अहो चोरों! पूर्व संयोग सो मात पितादि तथा पूर्व का अनादि संयोग-विषय कषायादि का त्याग कर साधु बनो और किसी में किंचिन्मात्र भी स्नेह मत करो इस तरह स्नेह नहीं करने वाला साधु इस लोक व परलोक संबंधि दुःख से मुक्त होता है ॥ २ ॥ इस प्रकार उत्तर देकर ज्ञान दर्शन सहित व मोह रहित कपिल केवली सब जीवों के हित निस्तार के लिये और उन को मिथ्यात्वादिक से मुक्त करने के लिये इस प्रकार उपदेश करने लगे ॥ ३ ॥ बाह्य और आभ्यन्तर यों सब प्रकार के अर्थात् परिग्रह को क्लेश का कारण जानकर छोड़ देना और सब कामभोगों को दुष्ट फल देने वाले जानकर उस में लिप्त होना नहीं ॥ ४ ॥ मोहरूप कीचड़ में खुंता हुवा, आत्मा का हित व मोक्ष मार्ग से विपरीत

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्खपउराए । किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं

ऐसो यों विचारते २ ही जाति स्मरण ज्ञान हुवा जिन से पूर्व जन्म से साधुपना पाला जान पुनः साधु होने की इच्छा हुइ सब शासन देवने साधु लिंग दे दिया वह साधु लिंग पहिन कर मस्तक पर के बालोंका लोचकर राजा के पास आया राजान आश्चर्य चकित हो कर कहा कि-क्या सोचा ? साधुने कहा कि-सोचकर सोचा तत्पश्चात् "जहा लाहो तहा लोहो" अर्थात् ज्यों लाभ है त्यों लोभ है इत्यादि धर्मोपदेश दिया राजा प्रतिबोध पाकर श्रावक बना कपिल अनगारोंने वहां से विहार किया और छ महिने पीछे केवल ज्ञान प्राप्त हुवा वहां से राजगृही नगरी आते बीच में अठारह योजन की अटवि को उल्लंघते बलभद्र प्रमुख पांच सो चोरों मिले वे साधु को देखकर कहने लगे कि अहो साधु 'क्या तुम को नृत्य करना आता है' केवली उन को प्रतिबोध देने के लिये बोले कि तुम वादित्र बजाने वा मैं नृत्य करूं केवलीने उन को इस आठवे अध्ययन में कथित गाथा सुनाई बजाने का तान ही मगन से वे गायन में ही मुग्ध हो वैरागी बने और वे पांचसो ही कपिल केवली के शिष्य बनकर देश में विचरने लगे देश में विचरते हुए बहुत उपकार किया और केवली व पांचसो चोर मोक्ष में गये यह कपिल केवली की कथा हुई ॥ ✽ ✽

वैरागी बने हुए बलभद्रादि चोरोंने प्रश्न किया कि पर्याय की अपेक्षा अध्रुव द्रव्यादिक पदार्थ की अपेक्षा अशाश्वत और दुःख से परिपूर्ण ऐसे संसार में ऐसी कौनसी करनी करनी कि जिस से हम दुर्गति

थलाओ ॥ ९ ॥ जगनिस्सिएहिं भूएहिं तसनामेहिं थावरेहिं चेव ॥ नो तेसि मारंभे दडं मणसा वयसा कायसा चेव ॥ १० ॥ सुद्धेसणाओ नच्चाण, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाण ॥ जायाए घासमेसेज्जा, रसगिद्धे न सिया भिक्खाए ॥ ११ ॥ पंताणिचेव सेवेज्जा, सीयपिंडं पुराण कुम्मासं ॥ अदु वक्कस पुलागंवा जवणट्ठाए निसेवए मथु ॥ १२ ॥ जे लक्खण च सुमिण, अंगविज्ज च जे पउंजति ॥

करता है वह पांच समितिवंत और षट्काया का रक्षक कहाता है और जैसे ऊंचे स्थल से ढलकता हुआ पानी उतर जाता है वैसे ही उस के पाप कर्म दूर होजाते हैं ॥९॥ इस जगत में नामकर्म के उदय से त्रस व स्थावर जीव रहे हैं उन का मन, वचन व काया से समारंभ करे नहीं करावे नहीं अनुमोदे भी नहीं॥१०॥ एषणा शुद्धि जानकर उस में अपने आत्मा को स्थापे याचना करके आहार के ग्रास की गवेषणा कर, परंतु भिक्षा के लिये निकला साधु रस में गृद्ध होवे नहीं ॥ ११ ॥ शरीर का निर्वाह के लिये आहार की जरूर पडती है इस लिये मसाले तथा घृतादि रहित निरस आहार, शीतल ठंडा आहार जूना पुराना धान्य का आहार, मूंग उडद चने आदि के उबाले हुए बाकुले और थोरका कूटा इत्यादि जो मिले उसे भोगवकर शांत भाव से रहे ॥ १२ ॥ स्त्री पुरुष के लक्षण, स्वप्न शास्त्र, अंग स्फुरण वगैरह अष्टांग

सूत्र

बाले य मंदिए मूढे वज्झई मच्छिया व खेलम्मि ॥ ५ ॥ दुपरिच्चया इमे कामा, नो सुजहा अधीरपुरिसेहिं ॥ अहसंति सुव्वया साहू, जेतरंति अतर वणिया वा ॥ ६ ॥ समणा नु एगे वदमाणा, पाणवह मिया अयाणंता ॥ मंदा निरय गच्छंति, बाला पावियाहिं दीट्ठीहिं ॥ ७ ॥ न हु पाणवहं अणुजाणे मुच्चेज्ज कयाइ सव्व दुक्खाण ॥ एवायरिएहिं अक्खायं जेहिं इमा साहुधम्मो पण्णत्तो ॥ ८ ॥ पाणे य नाइवएज्जा, से समिए त्ति वुच्चई ताई ॥ तओ से पावय कम्मं, निज्जाइ उदग व

अर्थ

बुद्धि वाला, धर्म में प्रमादी, मूढ अज्ञानी जैसे मक्षिका श्लेष्म में लीपटाती है वैसे विषय कषाय में लिपटाते हैं ॥ ५ ॥ यह शब्दादि तथा स्त्री आदि संबंधी जो कामभोग हैं उनको छोडना कायर पुरुषों के लिये बडा दुष्कर है परंतु जो धीरवीर पुरुष होते हैं वे ही छोडते हैं दृष्टांत–जिस प्रकार व्यापारी नावा से समुद्र तीरते हैं वैसे ही सुव्रति साधु भी दुस्तर संसार समुद्र तीर जाते हैं, ॥ ६ ॥ कितनेक अन्य दर्शनी हम साधु हैं ऐसा बोलते हुए प्राणिवध करते हैं वे मृग समान अज्ञानी मंदबुद्धि वाले पुरुष एक प्रकार की पाप दृष्टि से नरक में जाते हैं ॥ ७ ॥ प्राणवधादिक पांच आश्रव की जो अनुमोदना करता है वह सब दुःखों से कदापि मुक्त नहीं हो सकता है ऐसा अनाक धर्म व साधु का धर्म श्री तीर्थंकर भगवान ने कहा है ॥ ८ ॥ जो प्राणिवधादिक पांचों आश्रव की अनुमोदना नहीं

सीसु गिज्झेज्जा, गण्डवच्छासु णेगचित्तासु ॥ जाओ पुरिस पलोभित्ता, खेलंति जहा व दासेहिं ॥ १८ ॥ नारीसु नोव गिज्झेज्जा इत्थी विप्पजहे अणगारे ॥ धम्म च पेसल नच्चा, तत्थ ठविज्ज भिक्खू अप्पाण ॥ १९ ॥ इइ एस धम्मे अक्खाए कविलेण च विसुद्ध पन्नेण ॥ तरिहिंति जेउ काहिंति, तेहिं आराहिया दुवे लोग ॥ २० ॥ त्तिबेमि ॥ इति कविलीय अज्झयण सम्मत्तं अट्ठमं ॥ ८ ॥

* * * * *

में फोरे समान दो स्तन है वैसी और जिस का चित्त अनेक पदार्थ में रहा है वैसी राक्षसणी समान स्त्रियों में साधु गृद्ध होवे नहीं क्यों की स्त्रियों पुरुषों को लोभाकर जैसे दास से काम लिया जाता है वैसे ही उस पुरुष से काम कराती हैं ॥ १८ ॥ अणगार-साधु स्त्रियों में गृद्ध होवे नहीं परंतु स्त्री का त्याग कर और ब्रह्मचर्यादिक साधु का उत्तम धर्म जानकर अपना आत्मा को धर्म में स्थापे ॥ १९ ॥ विशुद्ध प्रज्ञावान कपिल केवलीने ऐसा धर्म कहा है इस से जो कोई धर्म करेगा वही इस संसार रूप समुद्र से तीरेगा और दोनों लोक में आराधिक व सुखी होगा ऐसा मैं कहता हूं,॥२०॥ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते यह हैं आठवा कपिल केवली का अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

सूत्र

नहुते समणा वुच्चंति एवं आयरिएहिं अक्खायं ॥ १३ ॥ इह जीवियं अणियमेत्ता, पब्भट्ठा समाहि जाएहिं ॥ ते काम भोग रसगिद्धा उववज्जति आसुरेकाए ॥ १४ ॥ तत्तोविय उव्वट्टित्ता, संसारं वहु अणुपरियडति ॥ वहु कम्मलेव लित्ताण बोही होइ सुदुल्लहा तेसिं ॥ १५ ॥ कसिणंपि जो इमं लोयं, पडिपुण्ण दलेज्ज इक्कस्स ॥ तेणावि से न संतूसे, इइ दुप्पूरए इमे आया ॥ १६ ॥ जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई ॥ दोमासकयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठियं ॥ १७ ॥ नो रक्ख-

अर्थ

निमित्त तथा गुनहीन पाप सूत्र जो हैं उन की प्ररूपणा जो साधु करते हैं वे साधु नहीं हैं ऐसा श्री तीर्थंकर भगवानने कहा है ॥ १३ ॥ ऐसे साधु इस मनुष्य जन्म में तप संयमादिक से अपना आत्मा को वश नहीं करने से और समाधि योग से भ्रष्ट होने से काम भोग में गृद्ध बने हुए असुर कुमार की जाति में उत्पन्न होते हैं ॥ १४ ॥ वे वहां से निकल कर बहुत संसार में परिभ्रमण करते हैं बहुत कर्मों के लेप से लिप्त बने हुए उन साधु को सम्यक्त्व की प्राप्ति होना दुर्लभ है ॥ १५ ॥ किसी लोभी पुरुष को जो कोई इस लोक का धनादिक से संपूर्ण भरकर देवे तो भी वह लोभी पुरुष इस से संतुष्ट नहीं होता है. अर्थात् लोभ का अन्त कदापि नहीं आता है ॥१६॥ ज्यों ज्यों लाभ मीलता है त्यों २ लोभ बढता ही जाता है लाभ से लाभ की वृद्धि होती है मैं संसार अवस्था में दो मासा सुवर्ण लेने के लिये गया था परंतु करोडों सोनेये लाने का विचार करते हुवे मेरी तृप्ति हुई नहीं ॥ १७ ॥ जिस के वशवर्त्त

सती मदनरेखा का सौंदर्य देखकर विद्याधर उस पर मोहित
था उस में वह सती जा कर पड़ी सतीने विमान पीछा फिराते
हुआ और अपने घर पर उसे रखने के लिये विमान पीछा फिराया विद्याधर ने कहा कि
हुए देखकर प्रश्न किया आप कहां जाते हैं और अब पीछे क्यों फिर गये घर पर छोड कर
मेरे पिता साधु के दर्शनार्थ में जा रहा था, परंतु तेरे जैसी सुंदरी का लाभ होने से तुझे आप वहां
फिर मैं जाऊंगा इस विचार से मैंने विमान फिराया है, सतीने कहा कि आप ऐसा मत करो और
चलेंगे तो आप की कृपासे मुझे भी दर्शन हो जायेंगे, विद्याधरने उसका कथन स्वीकार किया उन के
इच्छित स्थान पर विमान लाया वहां परिषद में मणिचूड मुनिराज विराजमान थे शील की
पास आकर दोनों नमस्कार कर सन्मुख बैठे मुनिने मनःपर्यव ज्ञान से सब वृत्तांत जाना और मदन
महिमा का उपदेश देकर मणिप्रभ विद्याधर को परस्त्री सेवन का प्रत्याख्यान कराया। इस समय करने
रेखाने उस मुनि को अपने पुत्र का वृत्तांत पूछा, तब मुनिने कहा मिथिला नगरीका पद्मरथ राजा वन में क्रीडा जन्म
आया था वह तेरे पुत्र को ले गया है उसने अपनी रानी पुष्पचूला को देकर पुत्रवत् मानकर वहां में
महोत्सव किया है सतीने पुनः प्रश्न किया कि ऐसा संयोग कैसे बना? अर्थात् उन का पूर्व जन्म मणितोरन
क्या संबंध था! मुनिने कहा कि इस जम्बूद्वीप के महा विदेह क्षेत्र के पुष्कलाविजय के राज्य
नगर के अमितयश चक्रवर्ती का पुष्पावती रानी के दो पुत्र पुष्पसिंह व रत्नसिंह थे, उन को सुख
देकर चक्रवर्तीने संयम अंगीकार किया पीछे से दोनों भाइने ८४ लाख पूर्वतक राज्य का

॥ नमिप्रवर्ज्या नामकं नवम मध्ययनम् ॥

आठवे अध्ययन में तृष्णा का त्याग कहा जो तृष्णा का त्याग करते हैं वे इन्द्रादिक को पूज्यनीय होते है इस लिये नववे अध्ययन में नमीराजर्षि का कथन करते हैं जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आवंती देश में सुदर्शन नगर में मणिरथ राजा राज्य करता था वह अपने छोटे भाई युगबाहु की स्त्री मदनरेखा का रूप देखकर उस पर मोहित हो गया और अपनी दासी द्वारा भोग के पदार्थ भेजकर अपनी इच्छा दर्शाई मदनरेखा ने दासी के पास से ऐसा सुनकर उस की निर्भर्त्सना कर उसे निकाल दी एकदा युगबाहु अपनी स्त्री सहित वन में क्रीडा करने गया था आधी रात को मणिरथ राजा अचिंत्य जाकर उस पर खड्ग प्रहार कर पीछा भगा, तो मार्ग में उस को सर्प दंश होने से वह मृत्यु पाकर नरक में गया युगबाहु खड्ग प्रहार हुआ देखकर मदनरेखा सती अपने पति पास आई और उन का आयुष्य पास आया जान कर उस को अठारह पाप स्थानक चारों आहार के प्रत्याख्यान कराये और अंतिम श्वासोश्वास तक नवकार मंत्र का शरण सुनाया वह युगबाहु धर्म की श्रद्धा करता हुआ काल के अवसर में काल कर देवलोक में गया इस समय वह मदनरेखा सती सगर्भा थी वह अपना शील का रक्षण के लिये जंगल में चली गई कि जहां उस को पुत्र का प्रसव हुआ उस के हाथ में अपने पति की मुद्रिका डालकर और सुन्दर चीर की झोली में उसे रखकर नवकार मंत्र का शरणा दे कर किसी वृक्ष के नीचे लटका दिया और वह अपने शरीर की शुचि करने के लिये तलाव में स्नान करने गई वहां कोई हाथी आया और अपनी सूंड में सती को पकडकर ऊंची उछाली, वहां मणिप्रभ विद्याधर का विमान जा रहा

कृपा

तत्पश्चात सब मौमिए विना मनाये ही आकर राजा के दास बनगये इस से उस पुत्र का गुण निष्पन्न नाम नमी दिया वह सब कला में प्रवीण हुए पीछे यौवनावस्थामें आते ही एक हजार राजकन्या के साथ पाणि-ग्रहण कराया कुमार को राज्य योग जानकर राज्य देकर पद्मरथ राजाने दीक्षा ग्रहण की एकदा नमी राजा का सुभद्र जाति का श्वेत हस्ती मदान्ध होकर भगा उसे चंद्रयश राजा के सुभटों पकड कर लेगये नमी राजान यह जानकर दूत भेजा चंद्रयशने कहलाया कि नमीराय को राज्य नीति मालूम नहीं है वास्तव में जो वस्तु जिन के हाथ में आवे उस की ही होती है दूतने पीछा वैसा ही कहा इस पर से नमीराय अपनी चतुरंगिनी सेना सहित युद्ध करने आया उस का सामना चंद्रयशने भी किया यह समाचार मदनरेखा आर्या जी ने सुना और उपकार का कारन जानकर गुरुणी जी की आज्ञा लेकर नमीराजाके पास आई नमी राजाने साध्वीको देख नमस्कार किया और आने का प्रयोजन पूछा तब साध्वी जीने कहा कि तेरे ज्येष्ट भ्राताके साथ युद्ध करना उचित नहीं है नमीराजजी से पूछनेपर साध्वीजी ने सब वृत्तांत कह सुनाया इसपर नमीराय भाइ को नमस्कार करने के लिये जाने लगा तब साध्वीजी उसे रोककर चंद्रयश राजा के पास आई राजाने अपनी माता साध्वी को नमस्कार कर पुछा कि आप का गर्भ कहां है! साध्वीजीने नमीराय को बताया यह सुनकर वह आश्चर्य चकित हुआ और परस्पर दोनों भाइ मील गये चंद्रयश अपने छोटे भाइ को राज्य देकर दीक्षा लेकर मोक्ष गये नमीराय दोनें देश का अधिपति हुआ एकदा नमीराय के शरीर में दाहज्वर का रोग हुआ शरीर पर बावना चंदन कालेव

भोगवकर संयम लिया, शुद्ध संयम पाला और आयुष्य पूर्ण कर बारहवे देवलोक में देवता हुए वहां से चवकर धान की खण्ड में हरिषेन वासुदेव की समुद्रदत्तारानी के पुत्रपने हुए वहां सागरदेव व सागरदत्त नाम दिया वहां दोनोंने अग्यारहवे हर सुव्रत तीर्थंकर के पास दीक्षा ली दीक्षा लेने के तीसरे दिन ही विद्युत पात उनपर होने से वे काल कर सातवे महाशुक्र देवलोक में देवता हुए वहां से चवकर एक मिथिला नगरी का पद्मरथ राजा हुवा और दूसरा यह तेरा पुत्र हुवा इस के राज्य में इस के गये पीछे सब शत्रु नमन से तेरे पुत्र का नाम नमिराय देवेंगे अहो सति ! पूर्व जन्म का बधुप्रेम होने से तेरे पुत्र को पद्मरथ राजा ले गया है इस तरह यह कथन चल रहा था इतने में महा दीव्य रूपवाला देव अन्तरीक्ष से वहां आया उसने प्रथम सती को नमस्कार किया फिर मुनि को नमस्कार किया ऐसा देख मणिप्रभ हसने लगा तब मुनिराज बोले कि यह देव इस बाइ का पूर्व जन्म का पति है इसने उस की मृत्यु के अवसर में धर्म की सहायता दी और इस से यह पांचवे देवलोक में देवता हुवा है इसे ज्ञान से यहां देखकर यह यहां आया है और यह उपकार करनेवाली होने से इसे प्रथम नमस्कार किया है अब वह देवता मदनरेखा सती को अपने विमान में बैठाकर ले चला, और कहने लगा कि मणिरथ तो सर्प दंश से मरगया है तेरे बड़े पुत्र चंद्रयश को सुदर्शन नगर का राज्य मिला है अब तू कहे सो करूं सतीने कहा कि-मुझे सुव्रता आर्या जी के पास दीक्षा दीलावो देवता वैसा ही कर स्वर्ग में गया, उधर सतीने जो कुमार को झोली में डालकर लटकाया था वहां पद्मरथ राजा वन में क्रीडा करने आया था वह उसे देखकर अपने महेल में ले गया

बलमोरोहं च परियणं सव्वं ॥ चिच्चा अभिनिक्खतो, एग त महिड्डिओ भयवं ॥४॥ कोलाहल समूय, आ ी माहिलाए पव्वयतम्मि ॥ तइया रायरीसिम्मि, नमिम्मि अभिनिक्खमनम्मि ॥ ५ ॥ अब्भुट्ठिय रायरिसिं, पव्वज्जाठाण मुत्तम ॥ सक्को माहण रूवेणं, इम वयण मब्बवी ॥ ६ ॥ किण्णु भो ! अज्ज महिलाए, कोलाहलग सकुला ॥ सुव्वति दारूणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य ? ॥ ७ ॥ एयमट्ठ निसमिता, हेउ कारण

स्वयं बुद्ध बने ॥३॥ बहुत जनपद सहित मिथिला नगरीका राज्य अश्व, हाथी, रथ सुभटों की चतुरंगिनी सेना व स्त्री पुत्रादि सब परिवार का त्याग कर नमीराय भगवानने अपने घर से निकलकर द्रव्य से एकांत वन में और भाव से राग द्वेष रहित अपना आत्मा को धर्म में स्थापन किया॥४॥ नमीराजर्षीने दीक्षा अंगी कार की इस से मिथिला नगरी व राजा के राज्य महेल कोलाहल भूत हो गये अर्थात् रानियों व नगर के लोगों के रूदन से शोर मच गया ॥ ५ ॥ नमीराजर्षी संयम के अत्युत्तम स्थान में सावधान हुए हैं ऐसा समाचार प्रथम देवलोक के शक्रेन्द्रने जानकर ब्राह्मण का रूप बनाकर नमीराजर्षी के पास आये और इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥ अहो नमीराजर्षि ! आज मिथिला नगरी में इतना कोलाहल क्या हो रहा है और प्रासादों में हृदय का भेदन कर वैसा दारुण शब्द क्यों सुनने में आता है ? ॥ ७ ॥

सूत्र

चइऊण देव लोगाओ, उववन्नो माणुसम्मि लोगंमि ॥ उवसंतो मोहणिज्जो, सरई पोराणयं जाय ॥ १ ॥ जाइ सरित्तु भयवं, सहसंबुद्धो अणुत्तरे धम्मे[1]॥ पुत्तं ठवेत्तु रज्जे, अभिणिक्खमइ नमीराया ॥ २ ॥ सो देवलोग सरिसे, अंतेउर वरगओ वरे भोए ॥ मुंजित्तु नमीराया, बुद्धो भोगे परिच्चयइ ॥ ३ ॥ महिलं सपुर जणवय

कथा

करने के लिये रानियों चंदन पीसने लगी उन के हाथ के कंकण के परस्पर संघर्षण होने का शब्द होने से नमरायजी को दुःख होने लगा इस से सब रानियोंने मात्र एक२कंकण हाथ में मंगलार्थ रखा इस से शब्द होना बंध होगया नमीरायजी को इसपर से विचार हुआ कि कि सब जब कंकण साथ थे तब शोर मचरहाथा, अब अकेला कंकण रहने से शोर मीटगया इस प्रकार मैं भी जहांलग इन सब में फसा हुवा हूं यहां लग ही दुःखी हूं सबको छोड अकेला हो जाबू तो सुखी होऊं, ऐसे विचार में निंद्र आगइ स्वप्न में सातवा देवलोक देखकर जाग्रत हुए अब आगे का कथन सूत्र द्वारा कहते हैं—नमीरामजी का दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम होने से जाति स्मरण ज्ञान की प्राप्ति हुई जिस से अपना पूर्व जन्म देखा कि मैं सातवे महा शुक्र देवलोक से चवकर यहां मनुष्य लोकमें आया हूं ॥ १ ॥ जातिस्मरण ज्ञान स गुरु के उपदेश विना स्वयं ही वैराग्य प्राप्त कर और अपने पुत्र को राज्यगादी पर बैठाकर घर से निकले अर्थात् दीक्षा अंगीकार की ॥ २ ॥ नमीराजा अपने अन्तःपुर की एक हजार रानियों सहित देवलोक जैसे सुख भोगते हुए विचरते थे उन का त्याग कर के ही स्वय

हीं रमाणमि चेइयंमि मणोरमे ॥दुहिया असरणा अत्ता, एए कंदति भो खगा॥१०॥
एयमट्ठ निसामित्ता, हेऊ कारण चोइआ ॥ तओ नमिरायरिसिं देविंदो इणमब्बवी
॥ ११ ॥ १ ॥ एस अग्गी य वाऊ य एय डज्झइ मंदिर ॥ भयवं अंतेउरतेण, कीस ण

वगैरह शरण रहित पीडित बने हुए, आक्रंद करते हैं जैसे वे पक्षी अपने स्वार्थ के लिये आक्रंद करते हैं परंतु वृक्ष के लिये आक्रंद नहीं करते हैं ऐसे ही ये लोक अपने स्वार्थ के लिये आक्रंद करते हैं न कि मेरी प्रवज्या के लिये इस से तुम्हारा हेतु अयोग्य है ऐसा करके उस का हेत्वाभास बनाया वृक्ष के दृष्टांत से अपना स्वार्थ के लिये जीव आक्रंद करते हैं इस से तुम्हारा दीया हुवा उदाहरण भी अयोग्य है अपने स्वार्थ के लिये जो आक्रंद करते होवे उस का धर्मी पुरुषों को आचरण नहीं करना इस से तुम्हारा उपनय भी अयोग्य है मेरी प्रवज्या के लिये आक्रंदादि नहीं करते हैं इस से मेरी प्रवज्या ग्रहण करना योग्य है, इस से तुम्हारा पक्ष की समाप्ति भी अयोग्य है इस से मेरी दीक्षा कल्याण का कारण है ऐसा पांच वचन रूप हेतु और एक वचन रूप कारण मानना॥१०॥प्रश्नोत्तर नमीराजर्षि के हेतु व अर्थ को सुनकर हेतु व कारण से प्रेराया हुवा इन्द्र इस प्रकार बोलने लगा ॥ ११ ॥ अहो भगवन् ! यह वायु व अग्नि तुम्हारे मंदिर व अंतःपुर को जला रहे हैं, उस को तुम क्यों नहीं देखते हो ? (इस को बचाना यह तुम्हारा धर्म है यह पक्ष, अपना होने से यह हेतु, जैसे ज्ञानादिक यह उदाहरण ज्ञानादिक जैसे

चोइओ ॥ तओनमी रायरिसी, देविंद इणमब्बवी ॥ ८ ॥ महिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे ॥ पत्तपुप्फफलोवए, बहूणं बहुगुणे सया ॥ ९ ॥ वाएण

हेतु पांच वचन रूप हेतु और एक वचन रूप कारन सहित वचन सुनकर (अब यहां पांच प्रकार हेतु भिन्न २ करते हैं—तुम्हारी प्रव्रज्या का लेना सो अयोग्य है यह पक्ष क्योंकि आक्रन्दादि शब्द होते हैं यह हेतु हुआ जैसे जीव को प्रहार करने आक्रंदादि दारुण शब्द होते हैं वैसे ही तुमारी प्रव्रज्या से दारुण शब्द होते हैं यह उदाहरण और जिस से आक्रंदादि दारुण शब्द होवे वैसे धर्मार्थी पुरुषों को ग्रहण नहीं करना, यह उपनय, और तुम्हारी प्रव्रज्या जीव वध रूप होने से ग्रहण करना उचित नहीं सो पक्ष समाप्ति ऐसे पांच वचन का हेतु और आक्रंदादि दारुण शब्द से अनेक जीवों को दुःख होवे इस से तुम्हारी प्रव्रज्या कल्याण करनेवाली नहीं है यह एक कारण,) नमीराजर्षि देवेन्द्र से ऐसा बोले ॥८॥ मिथिला नगरी के उद्यान में १ पत्र पुष्प व शीतल छायावाला, पंखी प्रमुख अनेक जीवों का गणकर्ता और अनेक गुणों से रमणीक ऐसा एक वृक्ष था अब अहा विप्र ! वह वृक्ष वायु से एकदा टूट पडा जिस से उस पर बैठनेवाले पक्षी

१ अपनी वस्तु की स्थापना और दूसरे की वस्तु की उत्थापना सो पक्ष, २ जिस वस्तु से अपना पक्ष सिद्ध करे सो हेतु, वस्तु सिद्ध करने के लिये जो दृष्टांत देवे सो उदाहरण, जिस से हेतु व उदाहरण दोनों सिद्ध होवे सो उपनय जिस हेतु व उदाहरण को उपनय से अपनी वस्तु सिद्ध करके स्थापना और अन्य वस्तु निकालना सो पक्ष समाप्ति.

॥ १६ ॥ एयमट्ठ निसामित्ता,, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमिरायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥ १७ ॥,२ ॥ पागार कारइत्ताण, गोपुरट्टा लगाणिय ॥ उस्सूलग सयग्घीओ, तओ गच्छासि खत्तिया ॥ १८ ॥ एयमट्ठ निसामित्ता, हेऊ कारण

वाले मुनि को सदैव सुख है (यहां पर मेरा कुच्छ नहीं है सो नमीराय का पक्ष अकेला होना सो हेतू नेस सिद्ध यह उदाहरण, जो एकाकी होते है उन को कुच्छ नहीं होता है सो उपनय, इस से ज्ञानादि सिवाय हमारा कुछ नहीं है सो पक्ष समाप्ति इस से हमारी प्रव्रज्यां कल्याण कारी है यह कारन ऐसा कहकर इन्द्र के हेतुकी व कारणकी उत्थापना की यह पांच वचन रूप हेतु और एक वचन रूप कारन मानना) ॥१६॥प्रश्नोत्तर एसा नमीराजर्षि का वचन सुनकर हेतु व कारन से प्रेरणा हुआ इन्द्र नमीराजर्षि को पुनः इस प्रकार प्रश्न करने लगा ॥ १७ ॥ अहो क्षत्रिया मिथिला नगरी के चारों ओर कोट शोभित स्थान द्वारों उन के रूपन कपाटों मजबूत भर्गल, कोट के मध्य में बुरज, कोट के चारों ओर ऊंडी खदान और कोट के बुरजों पर शतघ्नी (तोप) इत्यादि तैयार करवाकर फीर दीक्षा लेना (यहां कोट वगैरह तैयार करवाना सो पक्ष, तुम क्षत्रिय हो सो हेतू राज्य की रक्षा के लिये सो उदाहरन आप क्षत्रिय होते हैं सो दया के लिये कोट वगैरह बनवाते हैं यह उपनय वैसे ही तुम को कोट वगैरह बनवाना सो पक्ष समाप्ति कोट वगैरह बनाये बिना क्षत्रियपना होवे नहीं यह कारन जानना) ॥ १८ ॥

मूल

माणविक्खइ ? ॥ १२ ॥ एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमीरायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी ॥ १३ ॥ सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो नत्थि किंचण ॥ मिहिलाए डज्झमाणीए न मे डज्झइ किंचण ॥१४॥ चत्तपुत्तकळत्तस्स, निव्वावारस्स भिक्खुणो ॥ पियं न विज्जइ किंचि, अप्पियं पि न विज्जई ॥ १५ ॥ बहुं खु मुणिणो भद्दं अणगारस्स भिक्खुणो॥सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगंत मणुपस्सओ

अर्थ

जो वस्तु अपनी है उस की रक्षा करना यह उपनय और इस से मंदिरादिक अपनी वस्तु की अवश्य रक्षा करना सो पक्षसमाप्ति इस मंदिरादिक का रक्षण नहीं करनेवाला अपनी वस्तु की रक्षा नहीं कर सकता है इस से विवेकी अपनी वस्तु का रक्षण करे यह कारण यह पांच वचन रूप हेतु और एक वचन का कारण मानना) ॥१२॥ देवेन्द्र का ऐसा वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेराये हुए नमीराजर्षि देवेन्द्र को इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ १३ ॥ मैं तो सुख पूर्वक रहता हूं और सुख पूर्वक ही जीता हूं जिस से मंदिरादिक में मेरा कुछ भी संबंध नहीं है यह मिथिला नगरी जल रही है इस से मेरा कुछ भी नहीं जलता है जिस साधुने पुत्र कलत्रादि का त्याग किया है और सब व्यापार से जो निवर्ता है उस साधु को कोई वस्तु प्रिय नहीं है वैसे ही अप्रिय भी नहीं है ॥ १५ ॥ सर्वथा प्रकार से आरंभ परिग्रह रहित एकत्व अकेलपना देखनेवाले, घर रहित व भिक्षा से आजीविका करने

॥ २२ ॥ एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी ॥ २३ ॥ ३ ॥ पासाए कारइत्ताणं, वद्धमाण गिहाणिय ॥ वालग्ग पोइयाओय, तओ गच्छसि खत्तिया ॥ २४ ॥ एयमट्ठं निसामित्ता हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमीरायरिसी, देविन्द इणमब्बवी ॥ २५ ॥ संसयं खलु

॥२३॥ प्रश्नोत्तर ३॥ ऐसा सुनकर हेतु व कारन से प्रेराया हुआ शक्रेन्द्र नमीराजर्षी से इस प्रकार पुन प्रश्न करने लगा ॥ २४॥ अहो क्षत्रिय ! राज्य योग्य शिखर बंध प्रासाद, बहुत मजले वाले गवाक्षादि युक्त सामर्थ्य घर बस ही चांदनी सहित चोबारे घर और तलाब में महेल वगैरह बनवाकर फिर जाना यहां पर प्रासादिक बनवाना यह पक्ष, क्रीडा रसिक होने से यह हेतु प्रद्युम्न का उदाहरण, जो जो क्रीडा रसिक होते हैं वे प्रासादिक कराते हैं यह उपनय, वैसे ही तुम को ऐसे प्रासादिक बनाना चाहिये यह पक्ष समाप्ति और प्रासादि बनाये विना क्रीडा में आनंद होवे नहीं यह कारन यों पांच वचन रूप हेतु व एक वचन रूप कारन जानना ॥ २४ ॥ शक्रेन्द्र का ऐसा अर्थ सुनकर नमीराजर्षी देवेन्द्र से इस प्रकार बोलने लगे ॥ २५ ॥ जो मार्ग में घर बनाता है उस के मन में संशय रहता है कि मुझे आगे घर मीलेगा या नहीं परंतु मेरे मन मे संशय नहीं है क्यों कि जहां में जाने की इच्छा करता हूं वहां मेरा सिद्धि रूप शाश्वत घर बनाता हूं यहां सिद्धि रूप शाश्वत घर बनाना सो यहां

अर्थ

शोइओ ॥ तओ नमीरायरिसी देवेन्दं इणमब्बवी ॥ १९ ॥ सर्द्ध नगरं किच्चा, तव संवर मग्गलं ॥ खंती निउण पागारं, तिगुत्त दुप्पधंसयं ॥ २० ॥ धणुं परक्कमं किच्चा, जीवं च इरियं सया ॥ धिइं च केयणं किच्चा सच्चेण पलिमंथए ॥ २१ ॥ तव नाराय जुत्तेण, भित्तूण कम्म कंचुयं ॥ मुणी विगय संगामो, भवाओ, परिमुच्चए

शक्रेन्द्र का ऐसा वचन सुनकर हेतु व कारन से प्रेराये हुए नमीराजर्षी शक्रेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे ॥ १९ ॥ मैंने श्रद्धा रूपी नगर का क्षमा रूप कोट, तप रूप द्वार, संवर रूप कपाट म[illegible] मन निरूंधन रूप खाई, वचन योग निरूंधन रूप अर्गल काया योग निरूंधन रूप शतघ्नी बनाये हैं इस से मेरा कोट नगर का कोई पराभव नहीं कर सकता है ॥ २० ॥ वैसे ही संयम मार्ग में पराक्रम करने रूप धनुष्य इर्यादि पांच समिति रूप धनुष्य की पीनच धर्म रूप धनुष्य की मूठ और सत्य रूप धनुष्य का बंधन है ॥ २१ ॥ लौकिक संग्राम रहित साधु पूर्वोक्त प्रकार का धनुष्य धारकर तप रूप बाण धारन से कर्म रूप वैरी के समूह को विदारके संसार से मुक्त होवे (यहां जो आप कोट करा सो यह क्षत्रियपना होन से हेतु भरनात्मिक का दृष्टांत भरत राजाने कोट बनाया यह उपनय इस से हमन भी कोट वगैरह बनाये है सो धर्म की समाप्ति कोट वगैरह बिना बनाये क्षत्रियपना होवे नहीं, इस से कोट वगैरह बनाकर हम क्षत्रिय बने हैं तुमने जो पूर्वोक्त प्रकार के कोट वगैरह बनाने का कहा उस से मोक्ष नहीं इस से कोट वगैरह बनवाना यह तुम्हारा हेतु असत्य है)

पजुञ्जइ॥अकारिणोऽत्थ बज्झन्ति, मुच्चइ कारओ जणो ॥ ३० ॥ एयमट्ठं निसामित्ता
हेऊ कारण चोइआ ॥ तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी ॥ ३१ ॥ ५ ॥
जे कोइ पत्थिवा तुब्भं, नानमंति नराहिवा ॥ वसे ते ठावइत्ताण, तओ गच्छसि
खत्तिया ॥ ३२ ॥ एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमीरायरिसी

दंड मिलता है और अपराधी चोरी कर्म करनेवाला दंड से मुक्त रहते हैं [यहां पर हम ऐसा अन्याय वा
का कार्य क्षेम नहीं कर सकते हैं यह प१ अनुचित होने से हेतु, चोर के उदाहरण से अपराधी मुक्त हो
जाता है और निरपराधी को दंड मिलता है यह उपनय और नगर क्षेम होवे नहीं सो निगमन नगर क्षेम किये
बिना ही है घमरामपना नहीं होता है यह कारण सो हेतु व कारण जानना॥३०॥प्रश्नोत्तर का ऐसा नमीराजर्षि
का वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित नमीराजऋषि को देवेन्द्र पुनः कहने लगा॥३१॥अहो नराधिप! जो कोई
राजा तेरी आज्ञा में नहीं है अथवा तो तुझे नहीं नमते हैं उन को वश में करके पीछे जाना [यहां शत्रुओं
को नमाना सो पक्ष, नराधिप होने से यह हेतु, भरतादिक का उदाहरण जो नराधिप होवे वह शत्रुओं को
नमावे यह उपनय इस से तुम को भी वैरी को नमाना चाहिये यह निगमन वैरी को नमाये सिवाय
नराधिपतिपना होवे नहीं यह कारण सो हेतु व कारन जानना ॥ ३२ ॥ देवेन्द्र का ऐसा वचन सुनकर

सूत्र

सो कुणइ जा मग्गे कुणई घर ॥ जत्थेव गंतु मिच्छेज्जा तत्थ कुव्वेज्ज सासय ॥२६॥ एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमिरायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥ २७ ॥ ४ ॥ आमोसे लोमहारेय, गंठिभेए य तक्कर ॥ नगरस्स खेमं काऊण, तओ गच्छसि खत्तिया ॥ २८ ॥ एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमीरायरिसी देविंद इणमब्बवी ॥ २९ ॥ असइं तु मणुस्सेहिं, मिच्छा दंडो

अर्थ

कीड़ा के रसिकपना से यह हेतु भरतादिक का दृष्टांत कीड़ा के रसिक शाश्वत घर बनाते हैं सो उपनय, मार्ग में भी वैसे ही करता हूं सो निगमन शाश्वत घर बनाये बिना कीड़ा का रसिकपना होवे नहीं सो कारन ॥ २६ ॥ प्रश्नोत्तर ॥ ४ ॥ नमीराजर्षी का ऐसा वचन सुनकर हेतु व कारन से प्रेरापा हुवा देवेन्द्र नमीराजर्षी को इस प्रकार कहने लगा ॥ २७ ॥ हे क्षत्रिय ! मार्ग में लूटने वाले प्राण हरन करने वाले गठरी छोर कर लेजाने वाले इत्यादि प्रकार के चोरों के उपद्रव से नगर की रक्षा किये पीछे जाना यहां चोरों को निकाल कर नगर की रक्षा करना यह पक्ष धर्मराज्य होने से हेतु, भरतादिक का दृष्टांत चोरों को निकाले बिना धर्मपना होवे नहीं यह उपनय इस से तुम को नगर की रक्षा करना निगमन व नगर को क्षेम किये बिना धर्म राज्य होवे नहीं यह कारन ऐसे पांच वचन रूप हेतु व एक वचन रूप कारन जानना ॥२८॥ ऐसा वचन सुनकर हेतु कारन से प्रेराए हुए नमीराजर्षी इस प्रकार बोलने लगे ॥२९॥ अहंकार व अज्ञानता से मनुष्यों बारंबार मिथ्या दंड करते हैं इस से मिथ्यात्विको

पजुभइ॥अकारिणोऽत्थ बज्झनि, मुच्चइ कारओ जणो ॥ ३० ॥ एयमट्ठं निसामित्ता हेऊ कारण चोइआ ॥ तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी ॥ ३१ ॥ ५ ॥ जे कोइ पत्थिवा तुब्भं, नानमंति नराहिवा ॥ वसे ते ठावइत्ताण, तओ गच्छसि खत्तिया ॥ ३२ ॥ एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमीरायरिसी

दंड मिलता है और अपराधी चोरी कर्म करनेवाला दंड से मुक्त रहते हैं [यहां पर हम ऐसा भज्ञा का कार्य क्षेम नहीं कर सकते हैं यह पक्ष अनुचित होने से हेतु, चोर के उदाहरण में अपराधी मुक्त हो जाता है और निरपराधी को दंड मिलता है यह उपनय और नगर क्षेम होवे नहीं सो निगमन नगर क्षेम किये बिना ही है धर्मराजपना नहीं होता है यह कारण यों हेतु व कारण जानना॥३०॥प्रश्नोत्तर का ऐसा नमीराजर्षि का वचन सुनकर हेतु व कारण से प्रेरित नमीराजऋषि देवेन्द्र पुनःकहने लगा॥३१॥अहो नराधिप!जो कोई राजा तेरी आज्ञा में नहीं है अथवा तो तुझे नहीं नमते हैं उन को वश में करके पीछे जाना [यहां शत्रुओं को नमाना सो पक्ष, नराधिप होने से यह हेतु, भरतादिक का उदाहरण जो नराधिप होवे वह शत्रुओं को नमावे यह उपनय इस से तुम को भी वैरी को नमाना चाहिये यह निगमन वैरी को नमये सिवाय नराधिपतिपना होवे नहीं यह कारण यों हेतु व कारन जानना ॥ ३२ ॥ देवेन्द्र का ऐसा वचन सुनकर

सूत्र

देविंदं इणमब्बवी ॥ ३३ ॥ जो सहस्स सहस्साण, संगामे दुज्जए जिणे ॥ एगो जिणेज्ज अप्पाण एस से परमो जओ ॥ ३४ ॥ अप्पाण मेव जुज्झाहि, किंते जुज्झेण बज्झओ ॥ अप्पाण मेव मप्पाण, जइत्ता सुहमेहए ॥ ३५ ॥ पचिंदियाणि कोहं, माण मायं तहेव लोहंच ॥ दुज्जय चेव अप्पाण, सव्व अप्पेजिए जियं ॥३६॥

अर्थ

हेतु व कारन सहित नमीराजर्षी इस प्रकार कहने लगे ॥ ३३ ॥ हजार को हजार गुना करने से दश लक्ष होवे ऐसे दश लक्ष दुर्जय सुभटों को संग्राम में जीतते हैं परंतु अपना आत्मा को जो तप संयम से जीतता है वह उन से उत्कृष्ट विजेता है ॥ ३४ ॥ इस से अपने आत्मा के साथ युद्ध करने वाले का अन्य बाहिर के युद्ध से क्या प्रयोजन है? ज्ञान आत्मा व चारित्र आत्मा से अज्ञान व कषाय आत्मा को जो जीतता है वह मोक्ष का सुख प्राप्त करता है ॥ ३५ ॥ पांच इन्द्रियों क्रोध, मान माया, लोभ और दुराचारी आत्मा को जीतना दुष्कर है ऐसा आत्मा का जिसने जय किया है इसने सब का जय किया है. यहां अंतरंग क्रोधादि शत्रुओं को नमाये हैं यह पक्ष, नराधिपपना से यह हेतु, भरतादिक का उदाहरण, जो नराधिप होवे सो वैरी को नमावे यह उपनय वैसे ही तुम को भी नमाना यह पक्ष समाप्ति तुमने परमार्थ जाने सिवाय बाह्य वैरी का जीतने का कहा, यह तुम्हारा हेतु व कारन अयोग्य है यों पांच वचन रूप हेतु व छठा वचन रूप कारन जानना यहां नमीराजर्षिने देवेन्द्र के हेतु व कारन की

एयमट्ठ निसामित्ता हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमिरायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥ ३७ ॥ ६ ॥ जइत्ता विउले जन्ने, भोइत्ता समण माहणे ॥ दच्चा भोच्चा य जि- ट्ठाय, तओ गच्छसि खत्तिआ ॥ ३८ ॥ एयमट्ठ निसामित्ता हेऊ कारण चोइओ तओ नमीरायरिसी देविन्द इणमब्बवी ॥ ३९ ॥ जो सहस्स सहस्साण मासे

इ कैसा का ॥ ३६ ॥ पूर्वोक्त प्रकार नमीराजर्षि का अर्थ सुनकर हेतु व कारन से प्रेराया हुवा देवेन्द्र इस प्रकार कहने लगा ॥ ३७ ॥ अब सम्यक्त्व की परीक्षा करते हैं—अश्वमेध आदि महा यज्ञ करके, श्रमण ब्राह्मण को जिमाकर सुवर्ण भूमि गौ इत्यादिक का दान देकर के, पश्चात् पांचों इन्द्रियों के भोग भोगकर, ज्येष्ठपना अर्थात् पद को करने योग्य कार्य करके फीर अहो क्षत्रिय ! तु जा यहां पश्चात् धर्म करना यह पक्ष, प्राणियों की प्रीतिपना से यह देते प्राणियों को जीमने से सब जीवों का सरस होवे यह उदाहरन जो जो पश्चात् धर्म करते है वे सुखी होते है यह उपनय इस से आप को भी वैसा करना यह पक्ष समाप्ति यज्ञ नहीं करो तथा ब्राह्मणादिक को नहीं जिमाने से प्राणी को प्रीतिपना होवे नहीं यह कारन यों हेतु व कारन जानना ॥ ३८ ॥ देवेन्द्र का उक्त अर्थ श्रवण कर हेतु व कारन से प्रेराए हुए नमीराजर्षी देवेन्द्र का इस प्रकार कहने लगे ॥ ३९ ॥ जो कोई एक २ मास में दश २ लाख गायों का दान करे इस से कुछ भी दान किये बिना चारित्रावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जिस को

सूत्र

मासे गव दए तरसवि सजमो सेओ अदिंतस्स वि किंचण ॥४०॥ एयमट्ठ निसामित्ता हेऊ कारण चोइओ ॥ तओ नमि रायरिसिं देविंदो इणमब्बवी ॥ ४१ ॥७॥ घोरासम चइत्ताण, अन्नं पत्थेसि आसम ॥ इहेव पोसहरओ ॥ भवाहि मणुयाहिवा

अर्थ

सब आरंभ विरमण रूप चारित्र भावे सो श्रेष्ठ है यहां पर संयम अंगीकार करना यह पक्ष, प्राणियों का अप्रतीत नहीं होने से यह हेतु, अहिंसा के उदाहरन से प्राणियों को अप्रतीत होवे वैसा पदार्थी करे नहीं यह उपनय श्रेणी में भी फर्क नहीं यह पक्ष समाप्ति निर्णय कार्य किये बिना प्राणीको अप्रतीतपना होवे नहीं यह कारन ऐसा पांच वचन रूप हेतु व एक वचन रूप कारन से नमीराजर्षिने अपने पक्षकी स्थापना की यहां शक्रेन्द्र में निमराजा की परीक्षा की ॥ ४० ॥ पूर्वोक्त प्रकार के वचन सुनकर देवेन्द्र नमीराज को इस प्रकार कहने लगे ॥ ४१ ॥ अहो नराधिप! गृहस्थाश्रम का निर्वाह करना अति भयंकर है. क्यों कि १ ब्रह्मचर्याश्रम २ गृहस्थाश्रम ३ वानप्रस्थाश्रम और ४ सन्यस्ताश्रम इन चार आश्रमों में गृहस्थाश्रम सबको आधारभूत है. इससे अपना परका यों दोनों का साधन करने के लिये गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है शूरवीर पुरुषों ही उनका पालन कर सकते हैं तो आप जैसे शूरवीर हो करके भी इसका पालन नहीं कर सकते हो और सहज से गृहस्थाश्रम त्याग कर भिक्षा वृत्ति अंगीकार करते हो. अहो मनुष्याधिप! गृहस्थाश्रम में ही रहो और सामायिक व पौषधोपवासादि मनुष्य की क्रिया करते रहो यही आप को

केसा पंडुरया हवंति ते ॥ से फासबले य हायई, समय गोयम मा पमायए ॥ २९ ॥
परिजूरइ ते सरीरयं केसा पंडुरया हवंतिते ॥ से सव्वबले य हायई, समय गोयम
मा पमायए ॥२६॥ अरई गंड विसूइया आयंका विविहा फुसंति ते॥विहडइ विद्ध
सइ ते सरीरयं समय गोयम मा पमायए ॥ २७ ॥ वोच्छिंद सिणेह मप्पणो, कुमुय
सारइयं व पाणियं ॥ से सव्वसिणेह वज्जिए, समय गोयम मा पमायए ॥ २८ ॥
चिच्चाण धणं च भारियं पव्वइओ हि सि अणगारियं ॥ मा वंतं पुणो वि आविए,

कर्ण का बल भी क्षीण होता जाता है वैसे ही चक्षु घ्राण जिव्हा, स्पर्श और सब इन्द्रियों का बल क्षीण
होता है, इस लिये अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥२१ २६॥ अरति चिन्ता कच्छमाच्छादि
गड गुम्बड विशूचिका और विविध प्रकार के रोग तेरे शरीर को स्पर्श कर रहे हैं उस से ही तेरे शरीर
बल का विध्वंस होता है इस लिये अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ २० ॥ जैसे कमल
शरद ऋतु के पानी को छोडकर अलिप्त रहता है वैसे ही राग द्वेष रूप आत्मा का त्याग कर सब स्नेह
को त्यजता हुआ अहो गौतम ! तू समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ २८ ॥ धन स्त्रियादि का त्याग कर
घर रहित अनगार बन भिक्षावृत्ति से आजीविका करनेवाले बनकर पुन पीछा उस स्नेह जाल के बंधनमें

सूत्र

समय गोयम मा पमायए ॥ २९ ॥ अवउज्झिय मित्तबंधव विउल चेव धणोह सचय ॥ मा त विइय गवेसए समय गोयम मा पमायए ॥ ३०॥ न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सइ मग्गदेसिए ॥ संपइ नेयाउए पहे, समय गोयम मा पमायए ॥ ३१ ॥ अवसोहिय कटगापह, ओइण्णोसि पह महालय ॥गच्छसि मग्ग विसोहियं समय गोयम मापमायए ॥३२॥ अबले जह भारवाहए मा मग्गे विसमे वगाहिया॥

अर्थ

नहीं पडे, इस प्रकार रहने में अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ २ ॥ मित्र बंधव व विपुल धन संचय कि जिस का त्याग किया है उस धनादिक की पुनः वांच्छा नहीं करने में अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥३०॥ सांप्रत काल में जिन (तीर्थंकर) नहीं दिखते हैं परंतु बहुत जीवोंको मुक्ति देनेवाला जिनेन्द्र का मार्ग दिखता है✽ऐसा न्यायकारी मार्ग की प्राप्ति होने पर अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ ३१ ॥ कटक पंथ रूप कुमार्ग का त्याग कर महा पंथ रूप मुक्ति मार्ग को अंगीकार किया है, अब चारित्र का पालन करता हुआ मोक्ष मार्ग में आवेगा इस से अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद नहीं करना ॥ ३२ ॥ जैसे कोई निर्बल भारवाहक प्रदेश में बहुत द्रव्य कमाकर अपने घर आता था भार का वजन बहुत होने से तथा चोरों डर से विषम मार्ग में चलने लगा परंतु वैसे

✽ यह कथन पांचवे आरे को उद्देश कर कहा गया है अर्थात् पांचवे आरे में तीर्थंकर का दर्शन नहीं है

पच्छा पच्छाणुतावए, समय गोयम मा पमायए ॥ ३३ ॥ तिण्णो हु सि अण्णव मई किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ॥ अभितुरपारं गमित्तए, समय गोयम मा पमायए ॥ ३४ ॥ अकलेवरसेणि मूसिया, सिद्धिं गोयम लोय गच्छसि ॥ खेम च सिवं अणुत्तर, समये गोयम मा पमायए ॥ ३५ ॥ बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गामगए नगरेव संजए ॥ संतिमग्गं च वूहए, समय गोयम मा पमायए ॥ ३६ ॥ बुद्धस्स निसम्म

मार्ग में भार उठा सका नहीं और वहां ही डालकर अपने घर आकर पश्चाताप करने लगा वैसे ही संयम रूप भार को डालकर तेरे पश्चाताप करना नहीं पडे इस लिये अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ ३३ ॥ तू संसार रूप महा समुद्र तीर कर उस के किनारे पर आकर खडा है अब मुक्ति प्राप्त करने में क्यों विलम्ब करता है ? इस लिये अहो गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ ३४ ॥ अहो गौतम ! संयम स्थान में क्षपक श्रेणी रूप सीढी पर चढकर भय प्रकार के उपद्रव रहित क्षेम कल्याणवाली प्रधान सिद्ध गति को तू प्राप्त करेगा इस लिये समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ ३५ ॥ ग्राम अथवा नगर में विचरते हुए तत्त्वज्ञ व शीतलीभूत साधु शांति (दया) मार्ग का उपदेश करते हैं इस लिये अहो गौतम ! इस में तू समय मात्र का प्रमाद मत कर ॥ ३६ ॥ इस प्रकार तीर्थंकर भगवान

सूत्र

भासिय सुकहिय मट्ठपओव सोहियं ॥ रागदोसं य छिंदिया, सिद्धिगइगए गोयमे ॥ १७ ॥ त्तिबेमि॥ इति दुमपत्तय दसम मज्झयणं सम्मत्त ॥१०॥ * *

अर्थ

का अच्छी तरह से सुशोभित पद व अर्थ श्रवण करके और राग द्वेष का छेदन करके श्री गौतम स्वामी मुक्ति में गये ॥ १७ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू ! जैसा मैंने श्री वीर भगवान से श्रवण किया है वैसे ही तुझे कहता हूं यह वृक्ष के पत्र का दृष्टान्त का दशवा अध्ययन हुवा ॥ १० ॥ * *

॥ बहुश्रुत नामकं एकादश मध्ययनम् ॥

संजोग विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ॥ आयारं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥ १ ॥ जे यावि होइ निव्विज्जे थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ॥ अभिक्खणं उल्लवई, अविणीए अबहुस्सुए ॥ २ ॥ अह पंचहिं ठाणेहिं जेहिं सिक्खा न लब्भई ॥ थंभा कोहा पमाएणं, रोगेण आलस्सेण य ॥ ३ ॥ अह अट्ठहिं, ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चई ॥ अहस्सिरे सयादंते, न य मम्म मुदाहरे ॥ ४ ॥ नासीले न विसीले,

दसवे अध्ययन में प्रमाद त्याग का कहा जो प्रमाद का त्याग करेगा वह बहुसूत्री होगा इस से इग्यारहवे अध्ययन मे बहुसूत्री का कथन करते हैं बाह्य व आभ्यंतर यों दो प्रकार के संयोगों से रहित व निर्ग्रंथ भिक्षा करने वाले अनगार का आचार में अनुक्रम से कहूंगा सो तुम दत्तचित्त से श्रवण करो ॥ १ ॥ जो पुरुष १ विद्या रहित होवे, काम शास्त्रादि कनिष्ठ ज्ञान होवे, २ अभिमानी होवे ३ रसना को लोलुप होवे, ४ जिसने इन्द्रियों का निग्रह नहीं किया है वैसा होवे और ५ वारंवार असंबद्ध भाषा बोलने वाला होवे, वह अविनीत व अबहुसूत्री कहता है॥ २॥ १ मान २ क्रोध, ३ प्रमाद ४ रोग और ५ आलस्य, इन पांच स्थानक सेवनेवाले को आसेवना व ग्रहणा ऐसी दो प्रकार की शिक्षा की प्राप्ति होवे नहीं ॥ ३ ॥ आठ स्थानक सेवनेवाले आसेवना व ग्रहण यों दोनों प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं जिन के नाम—१ बहुत हसने

नसिया अइ लोलुए ॥ अकोहणे सच्चरए सिक्खासीले त्ति वुच्चइ ॥ ५ ॥ अह चउदसहिं ठाणेहिं, वट्टमाणे उ संजए ॥ अविणीए वुच्चइ सो उ, निव्वाण च न गच्छइ ॥ ६ ॥ अभिक्खणं कोही भवइ, पबन्धं च पकुव्वइ ॥ मेत्तिज्जमाणो वमइ, सुयं लद्धूण मज्जइ ॥ ७ ॥ अविपाव परिक्खेवी, अविमित्तेसु कुप्पई ॥ सुप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे भासइ पावयं ॥ ८ ॥ पइण्णवाई दुहिले, थद्धे लुद्धे अनिग्गहे ॥

वाला न होवे २ इन्द्रियों का दमन करने वाला होवे ३ किसी का मर्म प्रकाशता न होवे, ४ देश व्रत मत्याख्यानादि का भंग करने वाला न होवे, ५ सर्वव्रत महाव्रत का भंग करने वाला न होवे ६ रसना का लालुपी न होवे ७ क्रोधी होवे नहीं और ८ सत्य वचन बोलने वाला होवे ॥ ५-५ ॥ संयम में प्रवर्तता हुवा भी निम्नोक्त चउदह कारन से अविनीत कहाता है और वह मोक्ष में नहीं जाता है इन के नाम कहते हैं—१ बारंबार क्रोध करे २ बहुत काल तक क्रोध रखे, ३ मित्रों साथ कृतघ्नता करे ४ श्रुत ज्ञान प्राप्त करने में अभिमान करे, ५ अपना किया हुवा दोष दूसरे पर डाले ६ हित शिक्षा देनेवाले मित्र पर भी क्रोध करे, ७ अपने मित्र के सन्मुख मधुर वचन बोले और पीछे उस की बुराइ करे, ८ असंबंध वचन बोले, ९ प्रत्येक के साथ द्रोह करे, १० अभिमानी होवे, ११ रसी लंपटी होवे १२ अजितेन्द्रिय होवे, १३ साधुओं के आहारादि का संविभाग करे नहीं और १४ सब को

असंविभागी अवियत्ते, अविणीए त्ति वुच्चई ॥ ९ ॥ अह पन्नरसहिं ठाणेहिं, सुवि-
णीए त्ति वुच्चइ ॥ नीयावत्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ॥ १० ॥ अप्पं चाहि
क्खिवइ, पबन्धंचन कुव्वई ॥ मेत्तिज्जमाणो भयइ, सुयं लद्धुं न मज्जई ॥ ११ ॥
नय पाव परिक्खेवी, नय मित्तेसु कुप्पइ ॥ अप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासई
॥ १२ ॥ कलह डमरवज्जिए, बुद्धे अभिजाइगे ॥ हिरिमं पडिसंलीणे, सुविणीए त्ति

अप्रीतकारी होवे इन चवदह दुर्गुण वाला अविनीत मोक्ष की प्राप्ति नहीं करसकता है ॥ ६० ॥
जो साधु निम्नोक्त पनरह स्थानक में प्रवर्तता होवे वह सुविनीत कहाता है—१ गुरु से नीचे आसन
बैठे, २ गमनागमन का बैठने का व भाषा का चपल होवे नहीं, ३ माया कपट रहित होवे, ४ इन्द्रजालादि
कुतूहल करे नहीं ५ तिरस्कार युक्त वचन बोले नहीं, ६ क्रोध की वृद्धि करे नहीं ७ कृतघ्नी होवे
नहीं अर्थात् अन्यकृत उपकार मानने वाला होवे ८ श्रुत ज्ञान प्राप्त कर बहुसूत्री होने का
अभिमान करे नहीं, ९ अपना अपराध दूसरे पर डाले नहीं १० मित्र पर क्रोध करे नहीं, ११
मित्रने ज्यादा अपराध किया होवे तो भी उस की निंदा करे नहीं १२ क्लेशकारी वचन बोले नहीं तथा
मिथ्या आडंबर करे नहीं १३ बुद्धिमान होवे १४ लज्जावान होवे और १५ गुरु के समीप सदैव
मर्यादा सहित व इन्द्रियों का संवर कर रहे इन पनरह सद्गुण संपन्न जो होवे उसे सुविनीत कहना

सूत्र

मुचइ ॥ १३ ॥ वसे गुरुकुले निच्चं जोगवं उवहाणवं॥ पियंकरे पियंवाई से सिक्ख लद्धु मरिहइ ॥ १४ ॥ जहा संखम्मि पयं, निहियं दुहओ वि विरायइ ॥ एवं बहुस्सुए भिक्खू धम्मो कित्ती तहासुयं ॥ १५ ॥ जहा से कंबोयाण, आइण्णे

अर्थ

॥ १० १३ ॥ जो गुरु के समीप सदैव रहता है, मन वचन व काया के योगों को गुरु की आज्ञा में प्रवर्ताता है आयंबिलादि तप कि जो सूत्रपठन की आदि अंत में उपधान होता है सो करता है और प्रियकारी वचन बोलने से सबको प्रियकारी होता हुवा आसेवन और ग्रहणा यों दोनों प्रकार की शिक्षा को प्राप्त कर सकता है अर्थात् बहुत सूत्रों का ज्ञाता होता है फिर वह जगत में किस प्रकार शोभा पाता है उस की सोलह उपमा आगे कहते हैं ॥ १४ ॥ जैसे दुग्ध अपने स्वभाव से तो निर्मल है परंतु शंख के आश्रय रूप गुण से अधिक सुशोभित होता है और उस में रहा हुवा दुग्ध कदापि नहीं बिगड़ता है, वैसे ही धर्म कीर्ति व आगम ये तीन पदार्थ अपने स्वभाव से उत्तम सुशोभित हैं परंतु बहुश्रुत साधु में रहने से आश्रय गुण से अधिक शोभा देते हैं उन का वहां विनाश नहीं होता है यह पहिली उपमा कही॥ १५॥जिस प्रकार कम्बोज देश कि उत्तम जाति वाले मातपिता के संयोगसे उत्पन्न हुए श्रेष्ठ शिक्षक से शिक्षा पाये हुए, विनयादि गुण वाले किसी प्रकार के भयंकर शब्द व श्रवण करने पर त्रास नहीं पाते वत्र प्रकार से पीछे हटे नहीं चलने में अति वेग वाले अपने गुणों से अपन

कंथए सिया ॥ आसे जवेण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ १६ ॥ जहा इण्ण समारूढे, सूरेदढ परक्कमे ॥ उभओ नंदिघोसेण, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ १७ ॥ जहा करेणु परिकिण्णे, कुंजरे सट्ठिहायणे ॥ बलवंते अप्पडिहए, एवं हवइ बहुस्सुए

स्वामी को वश में करने वाले होते हैं वैसे ही विनय विवेकादि गुण सपन्न पाखंडियों के पाखंड से क्षुब्ध नहीं होने वाले वाक् प्रहार से पीछे नहीं हटने वाले और सद्भाव व सब सम्यक् आचार से सुशोभित भव्य जनों का बहुसूत्री वल्लभ लगता है ॥ ३ ॥ १६ ॥ जैसे महा पराक्रमी सभ्य आकीर्णादि उत्तम जाति के अश्व पर आरूढ हुवा दोनों तरफ वादिंत्र के घोष से सुशोभित नदी जनों के आशिर्वाद से बधाया हुवा किसी भी शत्रु से पराभव पाता नहीं वैसे ही यह सूत्री साधु भी श्रुत ज्ञान रूप अश्व पर आरूढ बने हुए स्वाध्याय रूप वादित्र के नाद सहित चारों तीर्थ के आशिर्वाद से बधाते हुए और परवादी रूप शत्रु से पराभव नहीं पाए हुए शोभते हैं ॥ ३ ॥ १७ ॥ जैसे साठ वर्ष की प्रौढ अवस्था को प्राप्त हुवा महा बलवान व हथणियों के परिवार से परवरा हुवा हाथी किसी वैरी हाथी से पराभव नहीं पाते; वैसे ही बहु सूत्री रूप हाथी ज्ञानाभ्यास की प्रौढता को प्राप्त हुवे वाक् चातुरी रूप बल से किसी से पराभूत होवे नहीं और चार बुद्धि रूप हथणियों के परिवार से परवरे हुए शोभते हैं ॥ ४ ॥ १८ ॥

सूत्र

॥ १८ ॥ जहा से तिक्खसिंगे, जायखंधे विरायइ ॥ वसहे जूहाहिवई हवइ बहुस्सुए ॥ १९ ॥ जहा से तिक्खदाढे, उदग्गे दुप्पहंसए ॥ सीहेमियाण पवरे, एव हवइ बहुस्सुए ॥ २० ॥ जहा से वासुदेवे सम्ख चक्क गदाधरे ॥ अप्पडि

अर्थ

जैसे तीक्ष्ण शृंग और पुष्ट स्कन्धवाला वृषभ (बैल) गायों के व्रज में अपना अधिपतिपना करके शोभता है तैसे बहुसूत्री रूप वृषभ निश्चय व्यवहार रूप दोनों शृंग कर तथा स्वसमय पर समय के ज्ञान रूप शृंग कर, आचारांगादि सूत्र के ज्ञान रूप पुष्ट स्कन्ध कर संयम रूप भार के निर्वाहक चतुर्विध संघ के यूथ में शोभते हैं ॥ ॥ १९ ॥ जैसे सिंह तीक्ष्ण दाढों और पराक्रम के गर्जारव शब्द कर किसी से भी पराभव नहीं पाया हुवा मृगादि पशुओं का अधिपतिपना करता शोभता है तैसे ही बहुसूत्री रूप सिंह नैगमादि सात नय रूप तीक्ष्ण दाढों कर, देशना के गर्जारव कर क्षमादि गुणों से किसी से भी पराभव नहीं पाते हुवे परवादी रूप पशुओं के परिवार से परिवरे शोभते हैं ॥ ॥ २० ॥ जैसे शंख चक्र गदा खड्ग रथ कौस्तुभ मणि धनुष्य बाण इन सात रत्नों के धारक अप्रतिहत वैरीयों से पराभव नहीं पाने ऐसे बलके धारक वासुदेव शोभते हैं तैसे ही बहुसूत्री रूप ज्ञान-शंख का निर्घोष करते दर्शन चक्र से मिथ्या मतका निकंदन करते चारित्र गदा से पाप वैरी को हनते शील रूप महारथ पर स्वार हुवे, दायकांगी वाणी रूप कौस्तुभ मणि का प्रकाश करते धैर्य रूप धनुष्य में तप रूप बाण लगाकर पाखंडियों रूप पर सेना को

हयमले जोहे एव हवइ बहुस्सुए ॥७॥२१॥ जहा से चाउरंते चक्कवट्टी महिड्ढिआ, चोद्दस रयणाहिवई एव हवइ बहुस्सुए ॥८॥२२॥ जहा से सहस्सक्खे, वज्ज पाणी पुरंदरे ॥ सक्के देवाहिवई, एव हवइ बहुस्सुए ॥९॥२३॥ जहा से तिमिर विद्धंसे,

भगाते हुवे बाद में किसी से भी पराभव नहीं पाते हुवे शोभते हैं ॥ ७ ॥ २१ ॥ जैसे तीनों दिशा में लवण समुद्र उत्तर में भरत क्षेत्र की हद के अन्त तक राज के कर्ता, सात एकेन्द्रिय सात पचन्द्रिय रत्न नवनिधि चतुरंगिनी सेना आदि महा ऋद्धि के धारक चक्रवर्ती महाराजा शोभते हैं तैसे ही बहुसूत्री रूप चक्रवर्ती चारों गति का अन्त कर चादा पूर्व रूपी चादे रत्न युक्त नव तत्त्व के ज्ञान रूपी नव निधान युक्त अठावीस प्रकार की महाऋद्धि युक्त, ज्ञान दर्शन चारित्र तप रूप चतुरंगिनी सेना युक्त शोभते हैं ॥ ८ ॥ २२ ॥ जैसे एक हजार आँखों * का धारक, वज्र नामक महा आयुध का धारक दैत्यों का विदारने वाला प्रथम देवलोक का आधिपति पना करते इन्द्र शोभते हैं, तैसे ही बहुसूत्री साधु श्रुतज्ञान रूप हजार चक्षु कर तपाप्रधान रूप वज्र के धारक कर्म दैत्यों के विदारक चारों तीर्थ के पूज्य सम्प्रदाय का अधिपतिपना करते शोभते हैं ॥ ९ ॥ २३ ॥ जैसे अन्धकार का नाश

* पांच सो सामानिक देव सदैव पास सभा में बैठने से उन को हजार आंखों इन्द्र की रक्षा रूप होने से १००० आंखों इन्द्र की ही गिनी है.

सूत्र

उन्ट्ठि ते दिवायेरे ॥ जलंते इव तेएण, एव हवइ बहुस्सुए ॥ १० ॥ २४ ॥ जहा से उडुवइ चंदे नक्खत्त परिवारिए ॥ पडिपुण्णे पुण्णमासीए एव हवइ बहुस्सुए ॥ ११ ॥ ॥ २५ ॥ जहा से सामाइयाण, कोट्ठागारे सुरक्खिए ॥ नाणाधन्न पडिपुण्णे एव

अर्थ

करने वाला सूर्य हजार किरणों कर प्रकाशित ज्यों ज्यों आकाश में ऊंचा चढे त्यों त्यों विशेष प्रकाश मान बनता अन्धकार का दाबता स्वयं के तेज प्रताप कर शोभता है तैसे ही बहुसूत्रीजी रूप सूर्य विविध प्रकार के शास्त्र रूप किरणों कर ग्रामादि रूप आकाश में विचरते हुवे मिथ्यात्व अन्धकार का नाश करते हुवे संयम के तप के प्रताप रूप तेज को बढाते हुवे स्वय की शुभ लेश्या रूप तेज कर शोभते हैं ॥ १० ॥ २४ ॥ जैसे नक्षत्रादि के परिवार से परिवरा उडुपति चन्द्रमा शरद पूर्णिमा की रात्रि को सोले ही कला सम्पूर्ण कर शोभता है तैसे ही बहुसूत्री जी रूप चन्द्रमा शिष्यादि के परिवार कर मूल गुण उत्तर गुण की विशुद्धता कर जैन शासन रूप पूर्णमासी को सोलह उपमा रूप सोलह कला कर शोभते हैं ॥ ११ ॥ २५ ॥ जैसे कोष्ठागार (अनाज का भंडार) सघन द्वारों कर उपद्रवी मनुष्य मूषकादि के प्रवेश रहित चौवीस प्रकार के धान्य से भरा हुवा बहुत लोगों को आधार भूत शोभता है तैसे ही बहुसूत्री रूपी कोष्ठागार निश्चय व्यवहार रूप द्वार कपाटों से युक्त अंगोपांगादि

हवइ बहुस्सुए ॥ २६ ॥ जहा सा दुमाण पवरा, जम्बू नाम सुदसणा ॥ आणाढियस्स देवस्स, एव हवइ बहुस्सुए ॥२७॥ जहा सा नईण पवरा, सलिला सागरगमा ॥ सीया नीलवत पवहा, एव हवइ बहुस्सुए ॥२८॥ जहा से नगाण पवरे, सुमह मदरे गिरी ॥

चोवीस प्रकार के धान्य से भरे हुवे प्रमाद रूप चूहे के उपद्रव रहित चारों तीर्थ के आधारभूत शोभते है ॥ १२ ॥ २६ ॥ जैसे सर्व वृक्षों में प्रधान जम्बू वृक्ष (अपर नाम-सुदर्शन वृक्ष) अनेक अन्य वृक्षों के परिवार कर जम्बूद्वीप के मालक अनाढी देवता के निवासस्थान रूप शोभता है तैसे ही बहुसूत्री रूप जम्बू वृक्ष सब जनों को प्रिय कारक दर्शनवाले अनेक साधुओं के परिवार से परिवरे धर्म के मालक तीर्थंकर के ज्ञान के निवासस्थान रूप सूत्र ज्ञान रूप अमृत फल के दाता शोभते हैं ॥ १३ ॥ २७ ॥ जैसे नीलवंत पर्वत से निकली हुई निर्मल पानी की भरी हुई पांचलाख नदीयों के परिवार से परवरी सब नदीयों में बडी सीता नदी समुद्र में आकर मिली हुइ शोभती है वैसे ही बहुसूत्रीजी रूप सीता नदी उत्तमकुल रूप नीलवंत पर्वत से निकले हुवे श्रुतज्ञान रूप निर्मल पानी कर भरे हुवे चारों तीर्थ के परिवार से परिवरे हुवे मुक्ति रूप समुद्र में आकर मिलते हुवे शोभते हैं ॥ १४ २८ ॥ जैसे सर्व पर्वतों में बडा पर्वत शल्यनिवारण संजीवनी वर्ण संहारिणी, विषहरनी, शस्त्र निवारनी, भूतदमन, नागदमन आदि अनेक प्रकार की औषधीयों कर मेरु पर्वत महामाहात्म्यप्रधान रत्नमय शोभता है वैसे ही बहुसूत्री रूपी मेरु पर्वत सर्व साधु में ऊंच गुन के धारक लब्धी रूप

नाणोसहिनमलिए एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २९ ॥ जहा से सयमूरमणे, उदही अक्खओ द० ॥ नाणारय ण पडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ ३० ॥ (काव्य) समुद्द गंभीर समा दुरासया अचक्किया केणइ दुप्पहंसया ॥ सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो, खवित्तु कम्म गइमुत्तमं गया ॥ ३१ ॥ (गाथा) तम्हा सुय महिट्ठिज्जा, उत्तमट्ठगवेसए ॥ जेण

सौरभी कर संयुक्त परवादी रूपी मास्कर भर्ता त जैन शासन रूप पृथ्वी के मध्य में रहे शोभते हैं ॥ १८ ॥ २९ ॥ जैसे सब समुद्रों में बड़ा आध रज्जु प्रमाणे विस्तार वाला अनेक रत्नों कर सयमूरमण समुद्र शोभता है वैसे ही बहु सूत्री भी सब साधु में ज्ञान रूप अमय पानी कर अतिशय रूप रत्नों कर शोभते हैं ॥ १९ ॥ ३० ॥ यों १६ शुभोपमा युक्त अनेक हेतु दृष्टांत नयादी कर रहस्य के जान सिद्धान्त के ज्ञान कर पूर्ण भरे हुवे, समुद्र समान गंभीर, किसी भी परवादी से कदापि पराभव नहीं पावें ऐसे, परिषहादि सम्यक् प्रकार से सहने वाले छ ही काय जीवों के रक्षक ऐसे बहु सूत्री साधु श्रुत ज्ञान से कर्मों का क्षय कर गये काल में मोक्ष गये वर्तमान में जाते हैं और अनागत में जावेंगे ॥ ३१ ॥ इसलिये मुमुक्षु जीवों सूत्र ज्ञान में अपनी आत्मा को स्थापन करे, सूत्र पढ कर उस से अपना आत्म को परम प्राप्ति का उत्तम अर्थ सिद्ध हो उस की गवेषना करे, जिस से अपना आत्मा को तथा

सूत्र

अर्थ

प्पाण परंचेव, सिद्धिं सपाउणेज्जासि ॥ ३२ ॥ त्तिबेमि ॥ इति बहुस्सुय एकादस मज्झयण सम्मत्त ॥११॥ * * * * * *

अम्य अनर्थों के आत्मा को मोक्ष गति प्राप्त कराने, यों सुधर्मा स्वामीजीने जंबू स्वामी से कहा ॥ इति बहुत सूत्री के गुन कथन रूप इग्यारहवा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ ११ ॥

॥ हरिएसवल नामकं द्वादश मध्ययनम् ॥

ग्यारहवे अध्ययन में बहुसूत्री के गुण कहे बहुसूत्री होते हैं वे देवों के पूज्यनीय होते हैं इस से बारहवे अध्ययन में इस का कथन करते हैं ॥ गाथा ॥ न कुलं मत्थि पहाणं, हरिएस बलस्स किं कुले आसी ॥ मायंपिभा तवेणं सुराविवं पज्जुवासंति ॥ १ ॥ जगत में कुल का कुच्छ भी विशेपत्व नहीं है परतु धर्म का ही है क्यों कि हरकेशी मुनि मातंग कुल के होने पर भी तपस्वी होने से देवताने भी उन की सेवा की है ॥ कथा ॥ मथुरा नगरी के शंख राजा संयम अंगीकार कर तले २ का उग्र तप करते हुवे विचर रहे थे एकदा गजपुर नगर में अष्टम तप के पारने के लिये गोचरी करने निकले तब वहां के पुरोहितने मिथ्या द्वेष से मुनि को परिषह देने के लिये विद्याबल से चलने की भूमि अत्यंत उष्ण कर दी परंतु मुनि के तप तेज से कुच्छ भी पराभव हुवा नहीं ऐसा देखकर पुरोहितने जैन धर्मका प्रभाव माना और दीक्षा अंगीकार की परंतु अपने कुल व रूप का अभिमान करते हुवे नीच कुल व कुरूप का बंध किया. उस की आलोचना निंदा किये बिना काल कर सौधर्म देवलोक में देवता हुवा वहां से चवकर गंगा नदी के किनारे स्मशान का रक्षक कोष्टक नामक स्मशान का चांडाल की गोरी नामक स्त्री की कुक्षि में पल्लवित आम्र का स्वप्न देकर पुत्रपने उत्पन्न हुवा सवा नव मास में पुत्र का जन्म हुवा उस का हरे रंगवाला वलिष्ठ शरीर देखकर हरिकेशी व हरिएसबल ऐसे दो नाम दिये गये। इस का कुच्छ

देखकर बहुत लोग दुर्गछा करने लगे जिस से अपरोष में आकर मदेश जाते मार्ग में बहुत से लोगों को सर्प की घात करते हुए और दुमाई को कुच्छ भी नहीं करते हुए देखे तब उसने पूछा कि इस सर्प को क्यों मारते हो और दुमोइ को क्यों नहीं मारते हो ? लोगोंने कहा कि यह सर्प विषमय है और इस दुमोई को विष नहीं है यह सुन यह विचार करने लगा कि जहां किसी प्रकार का विष है वहां दुःख नहीं है यों विचार करते २ जाति स्मरण ज्ञान हुवा और पूर्व भव में संयम का आराधन किया जाना जैस ही यहां पर भी स्वत' की बुद्धि से संयम अंगीकार किया जिन शासन के अधिष्ट देवने इस को वहां साधु लिंग दिया मास २ खमन की तपश्चर्या करते हुवे विचरने लगा एकदा वानारसी नगरी में तिंदुक वृक्ष के नीचे मास खमन के तप सहित संयम व तप से आत्माको भावते हुए यह मुनि विचर रहे थे उन के तप के प्रभाव से तिंदुक यक्ष मुनि का सेवक बना एकदा मास खमन के पारनेके दिन हरकेशी मुनि उस यक्ष के देवल में ध्यानस्थ खडे थे वहां कोशल राजा की पुत्री भद्रा अपनी सखियों सहित खलने आई थी वहां उन साधु को कुरूप देखते ही वह राजपुत्री दुर्गछा करती हुइ वक्र मुख करके मुनि पर थूकने लगी कि तुरत ही तिंदुक यक्ष क्रोधातुर हो कर उस का मुख वक्र करदिया तब वह राजपुत्री रुदन करने लगी यह सुनकर राजा प्रधान वगैरह वहां आये और सब वृत्तांत सुना इस पर स सर साधु जी से पुत्री के अपराध की क्षमा मांगने लगे उस समय तिंदुक यक्ष मुनिके शरीर में,

सूत्र

सोवागकुलसंभूओ गुणुत्तरधरो मुणी ॥ हरिएसबलो नाम आसि भिक्खु जिइंदिओ ॥ १ ॥ इरिएसणभासाए उच्चारसमिईसु य ॥ जओ आयाणनिक्खेवे, संजओ सुसमाहिओ ॥ २ ॥ मणगुत्तो वयगुत्तो कायगुत्तो जिइंदिओ ॥ भिक्खट्ठा

कथा

प्रवेश कर कहने लगा कि तुम्हारी पुत्री मुझे देवो तो अच्छी होवे यक्ष निरुपाय से ऐसा स्वीकार किया और यक्ष मुनि के शरीर से निकल गया इधर राजपुत्री मुनि के पास आइ तब मुनि बोले कि-हम निस्पृह हैं स्त्री स्पर्श करना हमारा धर्म नहीं है राजा वगैरह ने भी उन मुनिका उस स्त्रीका स्वीकारने का बहुत आग्रह किया परन्तु मुनि वमनवत् स्त्री का त्यागकर और उस दिन आहार का भी त्याग कर वहां से अन्य स्थान जाकर ध्यानस्थ रहे इधर राजा वगैरह चिंतातुर हुए कि इस कन्याका अब क्या करना? तब पुरोहित कहने लगा कि ऋषिपत्नी ब्राह्मण की हो सकती है इस से राजाने वह कन्या पुरोहित को दी उस का पाणिग्रहण करने के लिये पुरोहितने यज्ञ करवाया अब इस के आगे का कथन सूत्र द्वारा कहते हैं—चांडाल कुल में उत्पन्न हुवा ऐसा हरकेशी बल नामक निर्ग्रंथ भिक्षा करने वाला, इन्द्रियों को जीतने वाला व ज्ञानादिक उत्तम गुण धारन करने वाला साधु हुवा ॥ १ ॥ ईर्या समिति भाषा समिति एषणा समिति आदान निक्षेपना, समिति और उच्चारादि परिस्थापनीय समिति इन पांच समिति से यत्नावंत संयति हरकेशी मुनिने समाधि मार्ग में अपने आत्मा को स्थापन किया ॥ २ ॥ वैसे ही मन गुप्ति, वचन गुप्ति व काया गुप्ति इन तीनों गुप्ति सहित

बंभइज्जम्मि, जन्नवाडमुवट्ठिओ ॥ ३ ॥ तं पासिऊण एज्जंत, तवेण परिसोसियं ॥ पंतोवहि उवगरणं, उवहसति अणारिया ॥ ४ ॥ जाइमय पडिथद्धा, हिंसगा अजिइंदिया ॥ अबंभचारिणोबाला, इणवयणमब्बवी ॥ ५ ॥ (काव्य) कयरे आगच्छइ दित्तरूवे, काले विकराल फोक्कनासे ॥ ओमचेलए पंसु पिसायभूए, सकरदूसं परिहरिय कंठे ॥ ६ ॥ कयरतुमं एरथ अदंसणिज्जे, काए व आसा इहमागओसि ॥ ओमचेलगापंसु पिसायभूया, गच्छक्खलाहि किमिहट्ठिओसि ॥ ७ ॥

जितेन्द्रिय मुनि ग्रामानुग्राम फिरते भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते उस यज्ञ पाडा में पहुँचे ॥ ३ ॥ तप से जिन का शरीर शुष्क हो गया है वैसे, और प्रांत (असार) उपकरणादि प्रमुख उपाधि वाले हरकेशी मुनि को आते हुए देखकर वे ब्राह्मणादि अनार्य उन को उपहास्य करने लगे ॥ ४ ॥ ब्राह्मण जाति के अभिमान करने वाले हिंसा करने वाले, अजितेन्द्रिय और अब्रह्मचारी ऐसे अज्ञानी मुनि को निम्नोक्त प्रकार बोलने लगे ॥५॥ अरे! अत्यंत कुरूप वाला काले वर्ण वाला, विकराल रूप वाला चपटीनासिका वाला असार वस्त्र वाला,रजसे भरा हुआ पिशाच समान और उकरडे पर डालने जैसा वस्त्र कंठमें रखने वाला ! ॥ ६ ॥ अरे! ऐसा अदर्शनीय तू कौन है ? और किस आशा से तू यहां आया है ? अरे असार वस्त्रधारी, रज से मलिन बने हुए वस्त्रवाला व पिशाचभूत रूपवाला ! तू हमारी दृष्टि से दूर हो !

सूत्र

जक्खोतहिं तिंदुगरुक्खवासी, अणुकंपओ तस्स महामुणिस्स ॥ पच्छायइत्ता नियग-सरीरं, इमाइं वयणाइ मुदाहरित्था ॥ ८ ॥ समणोअहं संजओ बंभयारी, विरओ धणपयण परिग्गहाओ ॥ परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले अन्नस्स अट्ठा इहमागओमि ॥ ९ ॥ वियारिज्जइ खज्जइ भुज्जई य अन्नंपभूयं भवयाणमेयं ॥ जाणाहि मे जायण जीविणोति सेसावसेसं लभओ तवस्सी ॥ १० ॥ उवक्खडं भोयण माहणाणं,

अर्थ

तू यहां पर क्यों खडा रहा है ? ॥ ७ ॥ (यों सुन मुनि फिरने लगे तब) हरकेशी मुनि की भक्ति वश से साता उपजानेवाला तिंदुक वृक्ष निवासी यक्ष ब्राह्मणों के यह वचन श्रवण कर हरकेशी मुनि के शरीर में प्रवेश कर इस प्रकार कहने लगा ॥ ८ ॥ मैं श्रमण (साधु) हूं स्वयमेव आत्मा को दुष्ट व्यापार से बचाने से मैं संयती हूं स्त्री सेवनादिक के त्याग से ब्रह्मचारी हूं धन, पचन, पाचन व परिग्रह से मैं निवृता हूं और भिक्षा काल होने से दूसरे के लिये बना हुवा ऐसा आहार के लिये मैं यहां पर आया हूं ॥ ९ ॥ यह प्रत्यक्ष तुम्हारे यहां बहुत पक्वान्नादि बने हुए हैं जिस से तुम स्वयं खाते हो और अन्य को भी देते हो ऐसा देख कर मैं यहां आया हूं यह तो तुम जानते ही हो कि मेरी उपजीविका याचना करने से ही होती है इस से जो कुच्छ शेष रहजाय उस का लाभ तुमारी तरफ से तपस्वी का होना चाहिये ? ॥ ११ ॥ यह श्रवण करने लगे—इस यज्ञ पाडे में जो भोजन पकाके

अत्तट्ठियं सिद्धमिहेग पक्खं ॥ न ऊवयं एरिसमन्नपाणं, दाहामि तुज्झं किमिहं ठिओसि ॥ ११ ॥ थलेसु बीयाइ ववंति कासगा, तहेव निन्नेसुय आससाए ॥ एयाए सद्धाए दलाहिमज्झं, आराहए पुण्णमिणं खु खित्तं ॥ १२ ॥ खेत्ताणि अम्हं विदिया-णिलोए, जहिंपकिण्णा विरुहंति पुण्णा ॥ जे माहणा जाइविज्जोववेया, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥ १३ ॥ कोहोय माणोय वहोय जेसिं, मोसं अदत्तंच परिग्गहं च ॥

के संस्कार वाला पक्वान्न भोजन वगैरह तैयार हुवा है वह मात्र ब्राह्मणों के लिये ही है दूसरे को देने के लिये नहीं है इसलिये इस में से हम तुझ कुच्छ भी नहीं देंगे तू व्यर्थ क्यों खडा है? ॥ ११ ॥ तब यक्षाधिष्ठित मुनि कहने लगे—अहो विप्रों! जैसे कृषिकार शुभ फल की प्राप्ति होगी इस इच्छा से ऊंची भूमि में और नीची भूमि में यों दोनों प्रकार की भूमि में बीज बोता है, वैसे ही श्रद्धा से ऊंच नीच का भेद नहीं रखते हुए मुझे पुण्य रूप क्षेत्र जानकर दो अर्थात् दान करो ॥ १२ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि इस लोक में जिस खेत रूप याचक को देने से जन्मांतर में जो पुण्य फल होता है उन क्षेत्रों को हम अच्छी तरह जानते हैं जो ब्राह्मण जाति व विद्या से सहित होते हैं वे ही क्षेत्र शोभित व प्रतीतकारी हैं अर्थात् ब्राह्मण सिवाय अन्य पुण्य क्षेत्र नहीं है ॥ १३ ॥ तब यक्षाधिष्ठित मुनि कहने लगे अहो विप्रो! जो क्रोध, मान सहित हैं, जो हिंसा करने वाले हैं, मृषा

सूत्र

सेमाहणा जाइविज्जाविहूणा, ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं ॥ १४ ॥ तुब्भेत्थ भो! भारधरा गिराण, अट्ठं न जाणाह अहिज्ज वेए ॥ उच्चावयाइं मुणिणो चरंति, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥ १५ ॥ अज्झावयाणं पडिकूल भासी, पभाससे किं तु सगासि अम्हं ॥ अवि एयं विणस्सउ अन्नपाणं, न य णं दाहामु तुमं नियंठा ॥ १६ ॥ समितीहि मज्झं सुसमाहियस्स गुत्तीहिगुत्तस्स जिइंदियस्स ॥ जइ मे न दाहित्थ

अर्थ

बोलने वाले, चोरी करने वाले मथुन सेवन करने वाले परिग्रह रखने वाले हैं वे ब्राह्मण जाति व विद्या रहित हैं और वैसे सब पापकारी हैं अर्थात् वैसे ब्राह्मणों को देना सो अतीव पाप क्षेत्र है ॥ १४ ॥ और भी अहो विप्रो! इस लोक में तुम वेद संबंधी वाणी के भारवहन करने वाले हो, क्यों की तुम वेद का अध्ययन करते हुए भी परमार्थ नहीं जानते हो परंतु ऊंच नीच व मध्य कुल में जो मुनि भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते हैं वे ही शोभनिक पुण्य क्षेत्र हैं ॥ १५ ॥ तब ब्राह्मण बोले—रे निग्रन्थ! तू हमारे सन्मुख हमारे से उपाध्याय का अवर्णवाद बोलता है और हमारे पास ही याचना करता है इस से हमारा यह अन्न पान सड़ जायगा तो भी उकरड़ी पर डाल देंगे परंतु तुझे कदापि देंगे नहीं ॥ १६ ॥ तब यक्षाधिष्ठित मुनि बोले मैं पांच समिति युक्त व तीन गुप्ति से गुप्त हूं, पांचों इन्द्रियों जीतने वाला हूं, इस तरह सर्व प्रकार

अह्देसणिज्जं, किमित्थ जण्णाण लहित्थलाह ॥ १७ ॥ के इत्थ खत्ता उवजोइयावा, अज्झावयावा सहखंडिएहिं ॥ एयंतु दंडेण फलेण हंता, कंठम्मि घेतूण खलेज्जजो णं ॥ १८ ॥ अज्झावयाणं वयणसुणेत्ता, उद्धाइया तत्थ बहु कुमारा ॥ दंडेहिं वित्तेहिं कसेहि चेव समागया तं इसि तालयंति ॥ १९ ॥ रन्नो तहिं कोसलियस्स धूया भद्दत्ति नामेण अणिंदयंगी ॥ त पासिया संजयहम्ममाणं, कुद्धे कुमारे परिनिव्ववेइ

से साधारण वंत ऐसा जो मैं हूं मुझे को तुम एषणिक आहार पानी नहीं दोगे तो तुम को यज्ञ का क्या लाभ हो सकेगा ? ॥१७॥ ऐसा उन का वचन सुनकर ब्राह्मण कोपातुर होगये और इस प्रकार कहने लगे- अरे यहां कोई क्षत्रिय याग के पास रहने वाले अथवा विद्यार्थी सहित उपाध्याय क्या है ? यदि होवे तो इस साधु को दंडे से, विल्वादिक के फल से मारकर अथवा इस का गला पकडकर यज्ञ पाडे से बाहिर निकाल दो ॥ १८ ॥ इस प्रकार अध्यापक के वचन सुनकर उद्धत बने हुए ब्राह्मणादिक के कुमारों कि जो वहां अभ्यास कर रहे थे वे एकत्रित हो कर दंड छडी चाबुक वगैरह लेकर मुनि को मारने दौडे ॥ १९ ॥ उस समय मनोहर अंगवाली कोशलीक राजा की भद्रा नाम की पुत्री उस संयती को मारने धावे कुमारों को देखकर उन के क्रोध को शांत करने के लिये इस प्रकार कहने लगी ॥ २० ॥

सूत्र

॥ २० ॥ देवाभिओगेण निओइएण दिन्ना सु रन्ना मणसा न झाया ॥ नरिंद देविंद भिवंदिएण, जेणामिवंता इसिणा स एसो ॥ २१ ॥ एसोउसो उग्गवो महप्पा, जिर्तिदिओ सजओ बंभयारी॥जो मे तया नेच्छइ दिज्जमाणिं पिठणा सय कासलिएण रन्ना ॥ २२ ॥ महाजसो एसो महाणुभावो, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ॥ मा एय हीलेह अहीलणिज्जं, मा सव्वे तेएण भेनिद्दहेज्जा ॥२३॥ एयाइ तीसे वयणाइ सोच्चा, पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइ ॥ इसिस्स वेयावडियट्ठयाए, जक्खाकुमारे विणिवारयंति

अर्थ

महा कुमारों ! यह ऋषि वे ही है कि जिन का देवता की प्रेरणा से मेरे पिताने मुझे इन को अर्पण की थी परंतु इ नेि मेरी मन से भी वांच्छा की नहीं और वमन किये हुवे आहार समान मेरा त्याग किया नर नरेन्द्र व देवेन्द्र के पूज्यनीय यही ऋषीश्वर है ॥ २१ ॥ यह उग्र तप करनेवाले, जितेन्द्रिय, संयमी व घोर ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले महात्मा हैं इन को खुद मेरे पिता कोसलीक राजाने मुझे दी परंतु मेरी इच्छा मात्र की नहीं ॥ २२ ॥ और भी यह ऋषि महा यशस्वी अत्यंत शक्तिवाले घोर व्रताचरण करने वाले और घोर पराक्रम करनेवाले हैं इन की हीलना मत करो यह साधु निन्दा करने योग्य नहीं है रखे यह अपन तप तेज से तुम सब को जलाकर भस्म कर देवे ॥ २३ ॥ उस सोमदेव पुरोहित की भद्रा भाषा उक्त उत्तम वचन श्रवण करके मुनि की सेवा में रहा हुवा तिंदुक यक्ष उन [illegible]

॥ २४ ॥ ... (गाथा) गिरिं नहेहिं खणह,
रुहिरं वमंते, पासित्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो ॥ २५ ॥ ... जे भिक्खूं अवमण्णह ॥ २६ ॥
अयं दंतेहिं खायह ॥ जायतेय पाएहि हणह,
(काव्य) आसिविसो उग्गतवो महेसि, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ॥ अगणिव

निवारने लगा ॥ २४ ॥ तब वह यक्ष घोर भयंकर रूप धारन करके उस यज्ञ पाडे के ऊपर आकाश में खडे रहकर उन बालकों को ताडना की जिस से वे बालकों भूमि पर लम्बे पड गये उन के मुख में से रुधिर निकलने लगा अपनी हितशिक्षा का स्वीकार नहीं करने से दुःख पावे हुवे कुमारों को देखकर वह भद्रा राज पुत्री इस प्रकार कहने लगी ॥ २५ ॥ तुम कि जो साधु का अपमान करते हो यह नख से पर्वत खोदने जैसा करते हो दांत से लोहमय चने खाने के जैसा करते हो, और पॉव से अग्नि बुझाने के जैसा करते हो अर्थात् नखों से पर्वत खोदने से पर्वत का कुच्छ भी नुकशान नहीं होता है परंतु नख ही टूट जाते हैं दांतों से लोह के चने चावने से दांत ही टूटते हैं और पॉव से अग्नि बुझाने से पॉव ही जलजाते हैं वैसे ही ऋषि का अपमान करने से ऋषि का कुछ भी नुकशान नहीं है परतु तुम्हारा ही है ॥२६॥ यह ऋषीश्वर उग्रतप करने वाले, घोर व्रत व घोर पराक्रम करने वाले असीविष सर्प समान कोपित हुवी माम से भीभूत करने समर्थ है ऐसे ऋषीश्वर को जो कोई भोजन काल में दुःख देवे है वे जैसे पतंगिये

सूत्र

॥ २० ॥ देवाभिओगेण निओइएण दिन्ना सु रन्ना मणसा न झाया ॥ नरिंद देविंद भिवदिएण, जेणामिवंता इसिणा स एसो ॥ २१ ॥ एसोऽसो उग्गतवो महप्पा, जिइंदिओ संजओ बंभयारी॥जो मे तया नेच्छइ दिज्जमाणिं पिउणा सयं कोसलिएण रन्ना ॥ २२ ॥ महाजसो एसो महाणुभावो, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ॥ मा एय हीलेह अहीलणिज्जं, मा सव्वे तेएण भेनिद्दहेज्जा ॥२३॥ एयाइ तीसे वयणाइ सोच्चा, पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइं ॥ इसिस्स वेयावडियट्ठयाए, जक्खाकुमारे विणिवारयंति

अर्थ

महा कुमारों ! यह ऋषि वे ही है कि जिन को देवता की प्रेरणा से मेरे पिताने मुझे इन को अर्पन की थी परंतु इन्होंने मेरी मन से भी वांछा की नहीं. और वमन किये हुवे आहार समान मेरा त्याग किया यह नरेन्द्र व देवेन्द्र के पूज्यनीय यही ऋषीश्वर हैं ॥ २१ ॥ यह उग्र तप करनेवाले, जितेन्द्रिय, संयमी व घोर ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले महात्मा हैं इन को खुद मेरे पिता कौशलीक राजाने मुझे दी परंतु मेरी इच्छा मात्र की नहीं ॥ २२ ॥ और भी यह ऋषि महा यशस्वी अत्यंत शक्तिवाले घोर व्रताचरण करनेवाले और घोर पराक्रम करनेवाले हैं इन की हीलना मत करो यह साधु निन्दा करने योग्य नहीं है रखे यह अपने तप तेज से तुम सब को जलाकर भस्म कर देवे ॥ २३ ॥ उस सोमदेव पुरोहित की भार्या रूप उत्तम वचन श्रवण करके मुनि की सेवा में रहा हुवा तिंदुक यक्ष [illegible]

खमाह भंते ! ॥ महप्पसाया इसिणो हवंति, न हु मुणी कोवपरा हवंति ॥ ३१ ॥ पुव्विं च इण्हिं अणागयं च, मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ ॥ जक्खहु वेयावडियं करेंति, तम्हा हु एएहिं हया कुमारा ॥ ३२ ॥ अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा, तुब्भे न वि कुप्पह भूइपन्ना ॥ तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो, समागया सव्व जणेण अम्हे ॥ ३३ ॥ (गाथा) अच्चेमु ते महाभाग, न ते किंचि न अच्चिमो ॥

बालकोंने आप की जो हीलना निंदा की है उस के अपराध की आप क्षमा करें क्यों कि ऋषियों प्रसन्न चित्तवाले व महा भाग्यवंत होते हैं, मुनीश्वर को कदापि क्रोध होवे ही नहीं ॥ ३१ ॥ इस समय मुनि के शरीर में वह यक्ष नहीं होने से शुद्धि में आये हुए हरकेशी मुनि ब्राह्मणों के ऐसे वचन सुनकर कहने लगे कि अहो विप्रों ! मुझे अतीत, वर्तमान व अनागत काल में किसी पर द्वेष नहीं है (तब ब्राह्मणों कहने लगे कि अहो महानुभाव ! इन कुमारों की ऐसी खराब अवस्था किसने की ? तब मुनि बोले) अहो महानुभाव ! मेरी वैय्यावृत्य करनेवाला यक्षने इन कुमारों को मारकर काष्ट जैसे कर दिये हैं ॥ ३२ ॥ तब ब्राह्मण बोले अहो सूत्र अर्थ व क्षांति आदि धर्म के ज्ञाता व शीर्घ प्रज्ञावान महामुने ! आपने कोप नहीं किया तो भी हम आप के चरणों का शरण अंगीकार करते हैं ॥ ३३ ॥ अहो महानुभाव ! हम आप के सब अंगोपांग पूजते हैं आप के चरणरजादिक वगैरह कुच्छ भी अपूज्यनीय नहीं है

सूत्र

पक्खर पयगसणा जे भिक्खुग भत्तकाले वहेह ॥ २७ ॥ सीसेण एय सरणं उवेह समागया सव्वजणेण तुम्हे ॥ जइ इच्छह जीवियं वा धणवा, लोग पि एसो कुविओ डहेज्जा ॥ २८ ॥ अवहेडियं पिट्ठिसउत्तमगे पसारिया बाहुअकम्मचेट्ठे॥ निज्झेरियच्छे रुहिर वमते उड्ढमुहे निग्गए जीहनेत्ते ॥ २० ॥ ते पासिया खडिय कट्ठभूए विमणो विसण्णो अह माहणे सो ॥ इसिं पसाएइ सभारियाओ, हील च निंद च खमेह भते ! ॥ ३० ॥ बालेहि मुढेहि अयाणएहिं, ज हीलिया तस्स

अर्थ

आग्नि में पड़कर भस्म होते हैं वैसे ही उन के तप तेज से भस्म होजाते हैं ॥ २७ ॥ यदि जीवितव्य की इच्छा करते हो तो तुम सब मिलकर इन ऋषीश्वर के पांव में जाकर पड़ो नहींतर कूपित बने हुवे ये सब लोक को जला देंगे ॥ २८ ॥ उस समय यज्ञ करते हुवे ब्राह्मणों भी बाहिर आवे और देखते हैं तो उन पर हुवे बालकों के मस्तक मरडाये हुवे पीठ तक गये हैं दोनों बाहु पसारकर मुख में से रक्त का वमन करते हुए फटी हुई आंखों, मुख से बाहिर निकली हुई जिव्हा सहित श्वसन चलनादि जीवितव्य की चेष्टा रहित पड़े हैं ॥२९॥ वहां पड़े हुए कुमारों को काष्ठभूत देखकर दुःखित मनवाले ब्राह्मण अतीही खेदित हो कर और मग भार्या सहित ऋषि को प्रसन्न करने के लिये कहने लगे कि अहो भगवन् ! हमने जो आप की हीलना निंदा की है पर हमारे अपराध की आप क्षमा करो ॥ ३० ॥ अहो भगवन् ! मूढ अज्ञानी

खमाह भंते ! ॥ महप्पसाया इसिणो हवंति, न हु मुणी कोवपरा हवंति ॥ ३१ ॥ पुव्विं च इण्हिं अणागयं च, मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ ॥ जक्खहु वेया वडियं करेंति, तम्हा हु एएहिं हया कुमारा ॥ ३२ ॥ अत्थं च धम्मं च वियाण माणा, तुब्भे न वि कुप्पह भूइपन्ना ॥ तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो, समागया सव्व जणेण अम्हे ॥ ३३ ॥ (गाथा) अच्चेमु ते महाभाग, न ते किंचि न अच्चिमो ॥

बालकोंने आप की जो हीलना निंदा की है उस के अपराध की आप क्षमा करें क्यों कि ऋषियों प्रसन्न चित्तवाले व महा माहात्म्यवंत होते हैं, मुनीश्वर को कदापि क्रोध होवे ही नहीं ॥ ३१ ॥ इस समय मुनि के शरीर में वह यक्ष नहीं होने से शुद्धि में आये हुए हरकेशी मुनि ब्राह्मणों के ऐसे वचन सुनकर कहने लगे कि अहो विप्रों ! मुझे अतीत, वर्तमान व अनागत काल में किसी पर द्वेष नहीं है (तब ब्राह्मणों कहने लगे कि अहो महानुभाव ! इन कुमारों की ऐसी खराब अवस्था किसने की ? तब मुनि बोले) अहो महानुभाव ! मेरी वैय्यावृत्य करनेवाला यक्षने इन कुमारों को मारकर काष्ट जैसे कर दिये हैं ॥३२॥ तब ब्राह्मण बोले अहो सूक्ष्म अर्थ व क्षांति आदि धर्म के ज्ञाता व धैर्य प्रज्ञावान महामुने ! आपने कोप नहीं किया तो भी हम आप के चरणों का शरण अंगीकार करते हैं ॥ ३३ ॥ अहो महानुभाव ! हम आप के सब अंगोपांग पूजते हैं आप के चरणरजादिक वगैरह कुच्छ भी अपूजनीय नहीं है

भुंजाहि सालिमं कूरं, नाणा वंजण संजुयं ॥ २१ ॥ (काव्य) इमं च मे अत्थि पभूयमन्नं, तं भुंजसु अम्ह अणुग्गहट्ठा ॥ बाढंति पडिच्छइ भत्तपाणं मासस्स ओ पारणए महप्पा ॥ १५ ॥ तहियं गंधोदय पुप्फवासं, दिव्वा तहिं वसुहाराय वुट्ठा ॥ पहयाओ दुंदुहीओ सुरेहिं, आगासे अहोदाणं च घुट्ठं ॥ २६ ॥ सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो न दीसई जाइविसेस कोई ॥ सोवागपुत्तं हरिएस साहुं जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा ॥ ३७ ॥ किं माहणा जोइसमारभंता, उदएण सोहिं बहिया विमग्गह ॥

विविध प्रकार के शाक सहित ये चाँवल पके हुए हैं इने ग्रहण कर आप भोगवे ॥ १४ ॥ हमारे पर अनुग्रह कर के हमारे यहां हुवे अशनादि जो हुए हैं उसे आप ग्रहण करो इस प्रकार उन ब्राह्मणों का अत्याग्रह देख कर महात्मा हरकेशी मुनाने उन के वहां से मास खमन के पारने के लिये शुद्ध निर्दोष आहार पानी आदि ग्रहण किये ॥ १५ ॥ उस समय देवताने उस यज्ञ पाडा में सुगंधी जल, सुगंधी पुष्प व सुवर्ण द्रव्य की वृष्टि की और आकाश में देवदुंदुभी-वादित्र बजाकर अहो दान महादान की उद्घोषणा की ॥ १६ ॥ ऐसा देखकर ब्राह्मणों कहने लगे कि-यह तप का महिमा प्रत्यक्ष में दिख रहा है परंतु किसी जाति की विशेषता नहीं देखाती है ! यह हरकेशी मुनि चांडाल कुल में उत्पन्न हुए हैं परंतु इन की कैसी ऋद्धि व महिमा है !! ॥ १७ ॥ इस समय ब्राह्मणों

जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं, न त सुदिट्ठ कुसला वयंति ॥ ३८ ॥ कुस च जूवं तणकट्ठमग्गिं, सायं च पायं उदगं फुसंता ॥ पाणाइ भूयाइ विहेडयंता, भुज्जो वि मंदा पगरेह पावं ॥ ३९ ॥ कहं च रे भिक्खु वयं जयामो, पावाइ कम्माइ पुणोल्लयामो ॥ अक्खाहि नो संजय जक्खपूइया कहं सुजट्ठं कुसला वयंति ॥ ४० ॥ छज्जीवकाए असमारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा ॥ परिग्गहं इत्थिओ माणमायं, एवं

को प्रतिबोध देने के लिये मुनि उपदेश करने लगे अहो ब्राह्मणों! अग्नि का आरंभ क्यों करते हो? पानी से बाह्य शुद्धि की गवेषणा क्यों करते हो? बाहिर की विशुद्धि की जो गवेषणा करते हैं उन को कुशल पुरुषोंने [तीर्थंकरोंने] अच्छा नहीं कहा है ॥ ३८ ॥ दर्भ, यज्ञ स्तंभ, तृण, काष्ठ व अग्नि इन को स्पर्श करते हो और संध्याकाल व प्रातःकाल यों दोनों समय पानी को स्पर्श करते हो अर्थात् स्नान करते हो इस तरह करने में प्राण व भूत की हिंसा करते हुए अहो मंद पुरुषों तुम पुनः पाप क्यों करते हो? ॥ ३९ ॥ तब ब्राह्मण कहने लगे कि-अहो भिक्षु! हम किस तरह चलें और कैसी क्रिया कर कि जिस से हमारे पाप कर्म दूर होवे? अहो यक्ष के पूज्यनिक मुनि! कुशल पुरुषों (तीर्थंकरों) ने अच्छा यज्ञ क्या कहा है सो कहो ॥ ४० ॥ तब हरकेशी मुनि कहने लगे कि-षट्जीवनिकाय का आरंभ करे नहीं, मृषा वाद बोले नहीं, चोरी करे नहीं, परिग्रह रखे नहीं वैसे ही स्त्री सेवन भी करे नहीं मान माया को छोड़ परिहार

परिणाय चरंति दंता ॥ ४१ ॥ सुसवुडो पंचहि संवरेहिं इह जीविय अणव
कखमाणो ॥ वोसट्टकाओ सुचइचदेहो, महाजय जयति जन्नसिट्टं ॥ ४२ ॥ के ते
जोई केय ते जोई ठाण का ते सुया कंच ते कारिसंग ॥ एहा य ते कयरा संति
भिक्खू कयरेण होमेण हुणासि जोई ॥ ४३ ॥ तवो जोई जीवो जोइठाण, जोगा
सुया सरीर कारिसंग ॥ कम्मेहा संजम जोगसंती, होमहुणामि इसिण पसत्थं॥४४॥

से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग कर दमितेन्द्रिय साधु विचरे ॥ ४१ ॥ पांच संवर से पांच आश्रव का रुंधन करने वाले असंयम रूप जीवितव्य नहीं वांछने वाले ममता नहीं करने से काया का जिनों ने त्याग किया है, शरीर की शुश्रूषा नहीं करने से शरीर को त्यागने वाले व महा कर्म रूप शत्रु को जीतने वाले ऐसे साधु जो हैं वेही उत्तम यज्ञ करते हैं ॥ ४२ ॥ तब विप्र कहने लगे कि-अहो मुनि ! तुमारे यज्ञ में कौनसी अग्नि है, ! अग्नि का स्थानक कौनसा है ! अग्नि में घृत का क्षेपन करने का चाटुवा कौनसा है ' ईंधन कौनसा है ! अग्नि को संधुकने का संधुकर्ण कौनसा है ! शांति पाठ रूप मंत्र कौनसा है ! और आहुति कौनसी है ! ॥ ४३ ॥ तब साधु बोले हमारे यज्ञ में तपरूप अग्नि है जीवरूप अग्नि स्थान है मन वचन काया के शुभ योगों की प्रवृत्ति रूप चाटू है, शरीर रूप कारिस (गोर) है आठ कर्म रूप ईंधन है, और संयम व्यापार रूप शांति पाठ है यदपि योंने इस प्रकार

के ते हरए के यते सतितिरथे कहिं सिणाओ व रय जहासि? ॥ आइक्ख नासजय जक्ख पूइया, इच्छामो नाउ भवओ सगाओ ॥ ४५ ॥ धम्मे हरए बभे संतितित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे ॥ जहिं सिणाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइ भूओ पजहामि दोसं ॥ ४६ ॥ एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं, महा सिणाण इसिण पसत्थ ॥ जहिं सिणाया विमला विसुद्धा, महारिसी उत्तम ठाणं पत्ता॥ ४७ ॥ इति हरिएसिज्ज नाम दुवालस मज्झयण सम्मत्त ॥ १२ ॥ • • •

के पक्ष की प्रशंसा की है, इस स हम भी इस का सेवन करते हैं ॥ ४४ ॥ फिर ब्राह्मण बोले—अहो यक्ष के पूज्यनीय संयत ! तुमारे स्नान करन का द्रह कौनसा है, ! संसार से तीरन का पुण्य क्षेत्र तीर्थ कौनसा है ! और किस प्रकार स्नान करके अपना मैल दूर करते हो ! हम इतना अप आप के पास से जानना चाहते हैं सो कृपा करके कहो ॥ ४५ ॥ तब मुनि कहने लगे अहो विप्रो ! अहिंसा धर्म रूप द्रह है ब्रह्मचर्य रूप पुन्यक्षेत्र तीर्थ है मिथ्यात्वादि मेल रहित शुक्लादि लेश्या है, ऐसे धर्म रूप द्रह में स्नान करने से आत्मा कर्म मेल से कलंक रहित शुद्ध होवे इस तरह मैं शीतलीभूत बना हुवा सब कर्म रूप दोष का त्याग करता हूं ॥ ४६ ॥ ऐसा स्नान तत्त्वज्ञानीने कहा है, ऐसा उत्तम स्नान की ऋषीश्वरोंने प्रशंसा की है, ऐसे स्थान में स्नान करने से निर्मल विशुद्ध बनकर जीवों उत्तम मोक्ष स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ ४७॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मास्वामीने अपने शिष्य श्री जम्बूस्वामी से कहा कि जिस प्रकार मैंने सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह हरिकेशीबल नामक बारहवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ १२ ॥

इस के बाद ईम चाणना चंदन के तेल का एक बिंदु संभूति मुनि के चरण में पड़ा इस से शीतलता होने से चक्षु खोलकर उस के सामने देखा उस का रूप देख मोहित होकर नियाना किया कि मेरे इस तप का फल होवे तो मुझे ऐसा ही स्त्री रत्न मीले वहां से दोनों आयुष्य पूर्ण कर सौधर्म देवलोक में देवता हुए वहां आयुष्य का क्षय होने से एक चित्त का जीव पुरिमताल नगर में किसी ईभ्य के वहां पुत्र पने उत्पन्न हुआ, और संभूति का जीव कंपिल पुर नगर में ब्रह्मभूति राजा की चलणी रानी की कुक्षि में चौदह स्वप्न देकर पुत्र पने उत्पन्न हुआ इस का नाम ब्रह्मदत्त दिया ब्रह्मभूत राजा को असाध्य रोग होने से अपने चारों मित्रों को राज्य दिया और कहा कि अब यह ब्रह्मदत्त वय योग्य होवे तो उसे राज्य देना चारों मित्र में से प्रथम दीर्घ राजा राजा की रक्षा करने रहा वह चुलनी रानी से लुब्ध बना अन्तःपुर में आने जाने लगा और एकदा काक व हंसनी का जोड़ा देखकर दीर्घ राजा सन्मुख बोला कि रे काक ! तूने बहुत अयोग्य कार्य किया है, इस से तुझे देहांत दंड दूंगा दीर्घ राजा यह समज गया और चुलनी रानी से जाकर बोला कि तेरा पुत्र अपन को कदाचित् दुःखदायी होगा इस लिये मैं तो मेरे स्थान जाता हूं चुलनी मोह मुग्ध बनकर बोली कि मैं ब्रह्मदत्त को मार डालूंगी आप चिंता मत करो, फिर रानीने एक लक्षागृह बनाया और ब्रह्मदत्त का लग्न करवाकर वहां ही सुलाकर उसे जलाने का निश्चय किया यह बात प्रधान द्वारा उसने जानी और गांव के बाहिर किसी स्थान से एक सुरंग खोदवाकर लाख के महेल में निकाली और प्रधानने अपना पुत्र वरधनु को ब्रह्मदत्त के पास रखा

ब्रह्मदत्त के मोहल में सोने जाने पर चुलनी रानीने महेल को अग्नि लगा दिया तब प्रधान पुत्र उस जाग्रत कर बोला कि सावधान होवो ! महेल चारों तरफ जल रहा है अब क्या करना ! प्रधान पुत्रने कहा कि आप यहां पर लात प्रहार करो कि जहां सुरंग है यहां से अपन सुरक्षित निकल सकेंगे कुमारने वैसे ही किया और सुरंग में से होते हुए दूर निकल गये दीर्घ राजा को इस बात की मालुम होने से उस को मारने के लिये कितने ही प्रयत्न किये परंतु कुछ उपाय चला नहीं देशाटन में ब्रह्म दत्तने अनेक राजपुत्रियों के साथ पाणिग्रहण किया और बहुत राजा की सेना सहित कंपिलपुर आया दीर्घ राजा को मारकर अपना राज्य लिया पीछे से चक्रादि चौदह रत्न की प्राप्ति हुई छे खण्ड राज्य का साधन किया एकदा नाटक देखते देवलोक में देखा हुवा नाटक का स्मरण हुवा यों विचारते वहां जातिस्मरण ज्ञान हुवा अपने पूर्व के पांच भव देखे परंतु पांच भव तक साथ रहनेवाले को इस समय देखा नहीं अब इन की तलाश करने के लिये आधा पद बनाया "गोप दासों मृगोहंसो मयंगामरो यथा" ऐसा पद बोलकर बोला कि इस को जो कोई पूरा करेगा उस को आधा राज्य देऊंगा बहुत लोगोंने श्लोक याद किया प्रत्येक स्थान बोलने लगे उस समय चित्त मुनि अवधिज्ञान से अपने भाइ को जानकर उन से मिलने के लिये, उग्र विहार करते हुवे कांपिल पूर नगर के बाहिर उद्यान में आकर बिराजमान हुवे थ यहां चडस का चलाने वाला वैसे यही आधाश्लोक बोलता हुवा चडस चलाता था सो उस मुनिने सुना और शेष पद पूर्ण करदिया उसराध एगा षष्टयोजातिन्यान्य मान्नि मुक्तयो

मूल

जाइ पराइआ खलु कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि ॥ चुलणीए बंभदत्तो, उववन्नो पउम गुम्माओ ॥ १ ॥ कपिल्ले संभूओ चित्तो पुणजाओ पुरिमतालम्मि ॥ सेट्ठिकुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥ २ ॥ कपिल्लम्मिय नयरे समा

अर्थ

॥ १ ॥ ऐसा उत्तराध सुनकर वह चउस चलान वाला चक्रवर्ती के पास गया और यह सुनाया चक्रवर्ती यह सुन आश्चर्य चकित हुआ कि क्या मेरा भाइ ऐसा ऋषिकार हुआ है यों वह मूर्च्छित हो कर पृथ्वीपर गिरगया तब लोगों उसे पकड कर मारने लगे, वह बोला कि गाँव के बाहिर कोइ साधु है उसने मुझे यह कहा है ऐसा सुन चक्रवर्ती सावधान हुए और चतुरंगिनी सेना सहित साधुजी के दर्शन के लिये निकले, वहां जाकर कहने लगे कि मेरा पूरा श्लोक करने वाले को आधा राज्य देऊंगा ऐसा मेरा नियम है इस तरह आप ने यह श्लोक पूर्ण किया है इस से आप मेरा आधा राज्य लो ऐसा सुन मुनि व राजा को परस्पर जो संवाद हुआ है वह आगे इस अध्ययन में सूत्र द्वारा कहते हैं पूर्व भव में जाति से पराभव पाये हुए हस्तिनापुर नगर के बाहिर संभूति मुनिने नियाना किया वहां से आयुष्य पूर्ण कर प्रथम देवलोक में नलिनीगुल्म विमान में उत्पन्न हुवा और वहां से चवकर संभूति का जीव कपिलपुर नगर में ब्रह्मभूति राजा की चुल्लनी रानी की कुक्षि में ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीपने उत्पन्न हुवा और चित्त का जीव पुरिमताल नगर में इभ्यशेठ के यहां पुत्रपने उत्पन्न हुवा वह स्थविरों के पास से धर्म श्रवण कर दीक्षित हुवा ॥ १ ॥ २ ॥ कंपिल्ल पुर नगर के उद्यान में चित्त व स-

गया, धोवि चित्तसभूया ॥ सुहदुक्ख फल विवाग कहति ते इक्कमिक्कस्स ॥ ३ ॥
चक्कवट्टि महिड्ढिओ, बभदत्तो महायसो ॥ भायर बहुमाणेण, इम वयण मब्बवी
॥ ४ ॥ आसिमो भायरा दोवि अन्नमन्न वसाणुगा ॥ अन्नमन्न मणुरत्ता, अन्नमन्न
हितेसिणो ॥ ५ ॥ दासा दसण्णे आसी मिय कालिंजरे नगे ॥ हसा मयगतीरे,
सोवागा कासि भूमिए ॥ ६ ॥ देवाय देवलोगम्मि, आसि अम्हे महिड्ढिया ॥
इमा नो छट्ठिया जाई, अन्नमन्नेण जा विणा ॥ ७ ॥ कम्मा नियाण पयडा, तुमे

संभूत ये दोनों भाइ परस्पर मिले और सुख दुःख के जो फल भोगवे उस का परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥ ३ ॥ महा ऋद्धि का धारक बारहवा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती अपने भाइ से बहुत मान पूर्वक इस प्रकार बोलने लगा ॥ ४ ॥ अहो भ्रात ! पीछे के भव में अपन दोनों भाइ थे अपन दोनों साथ रहते थे, परस्पर दोनों में प्रीति बहुत थी और एक दूसरे का हित इच्छनेवाले थे ॥ ५ ॥ पहिले भव में दशारण देश में अपन दास थे, दूसरे भव में कालिंजर पर्वत में मृग हुए, तीसरे भव में मृतगंगा किनारे पर अपन दोनों हंस हुए और चौथे भव में काशी नगर में चांडाल हुए ॥ ६ ॥ पांचवे भव में देवलोक में महा ऋद्धि के धारक अपन दोनों देव हुए और इस छठे भव में अपन अलग २ हुए ॥ ७ ॥ तब चित्त मुनि कहने लगे—हे राजन् ! सनत्कुमार नामक चौथा चक्रवर्ती की सुनंदा स्त्री रत्न को देखकर भोग

गाहाणुगीया नरसघमज्झे ॥ ज भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इह ज्जयंते समणो मि जाओ ॥ १२ ॥ उच्चोयए महु कक्केय बंभे, पवेइया आवसहायरम्मा॥ इम गिह चित्त धणप्पभूय पसाहि पचाल ग/णवेय ॥ १३ ॥ नट्टेहि गीएहि य वाइएहिं, नारीजणाई परिवारयंतो ॥ भुजाहि भोगाइ इमाइ भिक्खू, मम रोयइ पव्वज्जाह दुक्ख ॥ १४ ॥ त पुव्व नेहेण कयाणुराग नराहिव कामगुणेसु गिद्ध ॥ धम्म-स्सिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इम वयण मुदाहरित्था ॥ १५ ॥ (गाथा)

यति कांति वगैरह बहुत था ॥११॥ अहा राजन् ! एकदा हमारे यहां कोई साधु पधारे उन के दर्शन के लिये गये मनुष्य क समुदाय में वचन थोडा व अर्थ बहुत ऐसी गाथा उन साधुन कही ऐसी गाथा में साधु ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुन सहित जिन वचन में उद्यमवन्त होय गृह या ऐसा मैं भी सुनकर वैरागी हो सयति बना ॥ १२ ॥ तब ब्रह्मदत्त बोला–अहो चित्त ! उच्च उदय, मधु कर्क और ब्रह्म इन पांच नाम के अत्यन्त रमणीय देवता के बनाये हुए महेल है उन में रहकर बहुत द्रव्य का व्ययकर बत्तीस प्रकार के नाटक सहित छे राग तीस रागनी मनपचास वादित्र व स्त्रियों के वृन्द से परिवरे हुवे आप पांचाल देश का राज्य करो, यही बात मुझे पसंद है और यह साधुपना तो मुझ दुःखदायी दिखता है ॥ १३ – १४ ॥ पूर्व भव के स्नेह से राग करने वाले व काम भोग में मूर्च्छित ऐसे नराधिप ब्रह्मदत्त को उस का हित

सूत्र

राग विचिंतिया॥तसि फलविवागेण॥ विप्पओग मुवागया॥८॥सच्चसोयप्पगडा कम्मा मए पुराकडा॥ ते अज्ज परिभुंजामो किं तु चित्ते वि स तहा॥९॥ (काव्य) सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं कडाण कम्माण न अत्थि मोक्खो॥ अत्थेहि कम्मेहि य उत्तमेहिं, आया मम पुण्ण फलोववेए॥१०॥ जाणाहि संभूय महाणुभागं, महिड्ढियं पुण्ण फलोववेयं॥ चित्तंपि जाणाहि तहेव रायं, इड्ढी जुइ तस्स वियप्पभूया॥११॥ महत्थरूवा वयणप्पभूया,

अर्थ

भोगने के विचार से तुमने निदान रूप कर्म किया इस से अपन दोनों अलग २ उत्पन्न हुए हैं और वियोगी बने हैं॥८॥ तब ब्रह्मदत्त बोले कि अहो मुने! मैंने गत जन्म में संयमाचरण कर माया रहित सत्यवंत बनकर पवित्र तपादि कर्तव्य किये हैं और इस का फल यह प्रत्यक्ष मुझे मिल रहा है परन्तु मेरे साथ मेरे भ्राता ! तुमने क्रिया की तो उस का फल कहां गया! अर्थात् गत जन्म में भिक्षुक थे और वर्तमान में भी भिक्षुक हो॥९॥ तब चित्त मुनि कहने लगे—हे ब्रह्मदत्त! मनुष्य जो २ पुण्य करते हैं उन का फल उन के अवश्य उदय में आते हैं क्यों कि किये हुए कर्म को भोगवे बिना मोक्ष नहीं है. द्रव्य से तथा शब्दादि काम भोग से मेरा आत्मा भी पुण्य फलवाला है यह तू अवश्य जान॥१०॥ हे संभूति! (पूर्व जन्म के नाम से) जिस प्रकार तू तेरा आत्मा को महात्म्यपना महर्द्धिकपना व पुण्यफल युक्त मानता है वैसे ही हे राजन्! चित्त मुनि को तू जान अर्थात् वे

सो दाणिसि राय महाणुभागो, महिड्ढिओ पुण्णफलोववेओ ॥ चइत्तु भोगाइ असासयाइ आदाणहेउ अभिणिक्खमाहि ॥ २० ॥ इह जीविए राय असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइ अकुव्वमाणो ॥ से सोयइ मच्चुमुहोवणीए धम्म अकाऊण परम्मिलोए ॥ २१ ॥ जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चूनरं नेइ हु अंतकाले ॥ न तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मसहरा भवंति ॥ २२ ॥ न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा ॥ एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ॥ २३ ॥ चेच्चा दुपयं च चउप्पयं च, खेत्तं गिहं

राजन् ! अधुना तू महा महात्म्यवाला, महा ऋद्धिवाला व पुण्यफल सहित है इस से इन अशाश्वत कामभोगों का त्याग कर मोक्ष के हेतु से तू निकल अर्थात् चारित्र अंगीकार कर ॥ २० ॥ हे राजन् ! मनुष्य का जीवितव्य अशाश्वत है, इस मे धर्म अथवा पुण्य नहीं करनेवाला मृत्यु मुख में पडा हुवा अथवा दूसरे लोक में गया हुवा पश्चाताप करेगा ॥ २१ ॥ जैसे सिंह मृग का पकडकर मार डालता है वैसे ही काल मनुष्य को अंत काल में ले जाता है अर्थात् मारता है उस मरण समय पर उस के माता पिता, भ्राता वगैरह कोई भी उस को बचा नहीं सकते हैं ॥ २२ ॥ ज्ञाति, मित्र वर्ग पुत्र व बांधव वगैरह कोई भी दुःख का विभाग नहीं कर सकते हैं परन्तु दुःख का अनुभव करनेवाला जीव अकेला ही है और कर्म करनेवाले के साथ ही कर्म जाते हैं ॥ २३ ॥ मनुष्यादि द्विपद, गवादि चतुष्पद, खुली भूमि

सूत्र

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंबणा ॥ सव्वे आभरणा भारा सव्वे कामा दुहावहा ॥ १६ ॥ (कव्या) बालाभिरामेसु दुहावहेसु न तं सुहं कामगुणेसु राय ॥ विरत्त कामाण तवोहणाणं, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं ॥ १७ ॥ नरिंद जाई अहमा नराणं, सोवागजाई दुहओ गयाणं ॥ जहिं वयं सव्व जणस्स वेसा, वसीय सोवाग निवेसणेसु ॥ १८ ॥ तीसेय जाईइ उ पावियाए, वुच्छामु सोवाग निवेसणेसु ॥ सव्वस्स लोगस्स दुगंछणिज्जा, इहं तु कम्माइं पुरे कडाइं ॥ १९ ॥

अर्थ

देखकर धर्म में आसक्त चित्त मुनि इस प्रकार बोलने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! सब गीत गान विलाप समान है और सब नृत्य विटम्बना समान है सब आभरण भारभूत हैं और सब काम भोग दुःख के दाता हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! काम भोग से विरक्त बने हुवे तप रूप धनवाले व शील गुन में रक्त साधु को जो सुख मिलता है वह सुख अज्ञानियों को अभिराम परंतु दुःख देनेवाले ऐसे काम भोग में नहीं मिलता है ॥ १७ ॥ अहो नरेन्द्र ! मनुष्य जाति में सब से नीच जाति चांडाल की है वहां अपन दोनों उत्पन्न हुए थे और वहां सब लोक को निन्दनीक व अप्रतीतकारी बने हुए अपन रहते थे ॥ १८ ॥ पाप करने वाले ऐसे चांडाल के घर में रह हुए सब लोगों को निन्दनीय हुए थे अब इस भव में जो उत्तम जाति व ऋद्धि पाये हैं वह पूर्व भव में शुभ कर्म किया उस का (संयम का) ही फल है ॥ १९ ॥ हे

काम भोगेसु गिद्धेणं, नियाणमसुहं कडं ॥ २८ ॥ तस्स मे अपडिकतस्स, इमएयारिस फल ॥ जाणमाणो वि ज धम्म, कामभोगेस मुच्छिओ ॥ २९ ॥ [काव्य] नागो जहा पकजलावसन्नो, दट्ठुथलं नाभिसमेइ तार ॥ एव वय कामगुणेसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्ग मणुव्वयामो ॥ ३० ॥ अच्चेइ कालो तूरन्ति राइओ, न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा ॥ उविच्च भोगा पुरिस चयन्ति दुम जहा खीणफलं व पक्खी ॥ ३१ ॥ जइ तंसि भोगे चइउ असत्तो, अज्जाइ कम्माइ करेहि राय ॥

नरपति को देखकर मैने काममोग में गृद्ध बनकर नियाणा किया-असत्त किया ॥ २८ ॥ इस की आलोचना प्रति मण मैने नहीं किया जिस का यह फल मैं भोग रहा हूं और धर्म को जानता हुआ भी काम भोग में मूर्छित हो रहा हूं ॥२९॥ जैसे हाथी पानी व कीचड़ पक तलाव में खुता हुआ किनारा देख सकता है परंतु वहां पर नहीं पहुंच सकता है वैसे ही मैं काममोग में लुब्ध बना हुआ सयम योग को प्राप्त नहीं कर सकता हूं ॥ ३० ॥ तब चित्त मुनि कहने लगे अहो राजन्! रात्रि दिन रूप काल शीघ्र ही चला जाता है और पुरुषों को भोग नित्य नहीं है वे जैसे फल रहित वृक्ष का पक्षी त्याग करते हैं वैसे ही भोग भी पुरुषों को त्याग करते हैं ॥ ३१ ॥ हे राजन्! यदि तूं भोग का त्याग करने में असमर्थ हो तो जीवदयादि आर्य कर्म का आचरण कर गृहवास रूप धम में रहकर

मूल

धण धन्नं च सव्वं ॥ सकम्मबीओ अवसो पयाइ पर भव सुन्दर पावगं वा ॥ २४ ॥ तं एक्कं तुच्छ सरीरगंसे,चिईगय दहिय उ पावगेण ॥ भज्जा य पुत्तावि य नायओय, दायारमन्नं अणुसंकमंति ॥२५॥ उवणि ई जीविय मप्पमायं वण्णं जरा हरइ नरस्स राय ॥ पंचालराया वयणं सुणाहि माकासि कम्माइ महालयाइ ॥ २६ ॥ अहं पि जाणामि जहेह साहू, जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं ॥ भोगा इमे संगकरा हवंति, जे दुज्जया अज्जो अम्हारिसेहिं ॥ २७ ॥ हत्थिणपुरंमि चित्ता, दट्ठूण नरवइं महिड्ढियं ॥

अर्थ

केवल इसी प्रकार धन, धान्य इन सबको छोड़कर अपने किये कर्म साथ लेकर प्राणी अच्छे या बुरे कर्म अनुसार अच्छी व बुरी गति में जाता है ॥ २४ ॥ जब जीव रहित शरीर को अग्नि की चिता में डालकर भस्म कर देते हैं तब भार्या पुत्र ज्ञाति वगैरह दूसरा दातार के पीछे जाते हैं अर्थात् एक को छोड़कर दूसरे का सेवन करते हैं ॥ २५ ॥ अहो राजन् ! जैसे आयुष्य निरंतर क्षय होता है वैसे अवधिय मरण करते वैसे मरण से जीव सदैव मरते हैं और वर्णादिक को वृद्धावस्था हरन करती है अहो पांचाल देश के अधिपति ! ऐसे वचन सुनकर महा आरंभ और रौद्र कृत्य का आचरन तू मत कर ॥ २६ ॥ तब ब्रह्मदत्त राजा कहने लगा कि अहो चित्त साधु ! आप मुझे जो उपदेश करते हो वह अच्छी तरह मैं जानता हूं ये भोग मुझे अति बंध करने वाले व अंतराय देने वाले हैं परंतु मेरे जैसे अज्ञानी को यह काम भोग छोड़ना अति दुष्कर है ॥ २७ ॥ अहो चित्त ! हस्तिनापूर नगर में महर्द्धिक,

चित्तो वि कामेहि विरत्तकामो, उदग्ग चारित्त तवो महेसी ॥ अणुत्तरं सजमं पालइत्ता अणुत्तर सिद्धिगइं गओ ॥ ३५ ॥ त्तिबेमि ॥ इति चित्तसभूइज्ज णामतेरसम अज्झयणं सम्मत्तं ॥ १३ ॥ * * * * *

विचारा कि ब्रह्म दत्त ने हम को भ्रष्ट करने के लिये ऐसा किया है इस से इन के वैर का बदला अवश्य लेना ऐसा विचार से उस का वेर लेने के लिए तपास कर रहा था एकदा वह जंगल में गया था वहां उस ब्राह्मणने किसी भिक्षु को कंकर मार वृक्ष के अनेक पत्र का छेद करते देखा उस से उस के पास जाकर ब्राह्मणने कहा की जब ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बाहिर निकले तब तू इस तरह कंकर मार कर उन की दोनों आंखों तोड डाल उस ने वह स्वीकार किया और वैसे ही ब्रह्मदत्त की आंखों भी फोड डाली इस से राजपुरुषोंने उस भिक्षु को पकडा और मार मारा तब उसने सब ब्राह्मन की वात कह दी इस पर से राजा को बहुत क्रोध हुवा और ब्राह्मणों का संहार करने की आज्ञा दी वैसे ही सदैव पांचसो ब्राह्मणों की आंख अपने पांव नीचे कुचर डालने का निश्चय किया प्रधान समय सूचक था इस से वह आंखों के स्थान गुंदा ला देता था और उन को वह सदैव कुचल डालता था ऐसे अशुभ अध्यवसाय सहित वह काल के अवसर में काल कर सातवी नरक में अप्रतिष्ठान नरकावास में उत्पन्न हुवा और चित्त मुनि काम भोग से विरक्त बन कर उत्तम चारित्र व तप अंगीकार कर महर्षि बनकर व प्रधान संयम पालकर अनुत्तर सिद्ध गति में गये, ॥ ३५ ॥ यह मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं, इति चित्त व सभूति नामका तेरवा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ १३॥
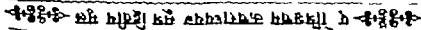
सूत्र धम्मीठिओ मव्व पयाणुकम्पी तो होसि देवो इओ विउव्वी ॥ ३२ ॥ न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धि, गिद्धासि आरंभ परिग्गहसु मोह कओ एत्तिउ विप्पलावो गच्छा मिराय आमंतिओसि ॥ ३३ ॥ पंचाल राया वि य बंभदत्तो साधुस्स तस्स वयण अकाउ ॥ अणुत्तरे भुंजिय काम भोगे, अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो ॥ ३४ ॥

अर्थ भा स। जीवों की दया करने वाला होगा तो भी यहां से चवकर परलोक में देवता होगा ॥ ३२ ॥ जब राजा को प्रतिबोध लगा नहीं तब मुनि कहने लगे कि हे राजन ! भोग का त्याग करने की तेरी बुद्धि नहीं है और आरंभ परिग्रह में गृद्ध बना हुवा है इस से मैंने मेरी साथ यह जो प्रलाप किया यह मिथ्या किया अब अहो राजन् ! मैं यहां से चलाजाता हूं ॥ ३३ ॥ पांचाल देश का अधिपति ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती चित्तमुनि के वचन का अनादर कर और अनुत्तर काम भोग भोगवकर सातवी नरक के अनुत्तर अप्रतिष्ठान नरकावास में उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थितिपने उत्पन्न हुवा ॥ ३४ ॥ ब्रह्म-दत्त राजाने परदेश में भ्रमण करते किसी ब्राह्मण को राज्य मीलने पर वचन मांगने का कहा था जब ब्रह्मदत्त का राज्य मीला तब वह ब्राह्मण वहां आया और उन के राज्य में प्रति दिन एक घर जीमने का मांगा राजाने पहिले दिन उस ब्राह्मण के आग्रह से अपने वहां अपने खाने का क्षीरादि व भोजन उस ब्राह्मण को व उन के कुटुम्ब को जीमाया परंतु उन का वे पाचन नहीं करसके नहीं और महादुःख पाये तीन चार दिन पीछे शुद्धि में आये तब ब्राह्मणने

चिंता मत करो, तुम को दो पुत्र होंगे परंतु बाल्यावस्था से ही संयम अंगीकार करेंगे, तुम उन को बचपन से ही साधु की संगति करवाकर ज्ञानाभ्यास करवाना यों कह कर दोनों देव स्वस्थान गये कालांतर से उन को पुत्र हुए, तब भृगु परोहितने विचार किया कि इन को साधु का दर्शन मात्र नहीं होने देना चाहिये, जिस से उन को साधुपने का विचार ही आ सकेगा नहीं ऐसा विचार कर एकांत में चोर पल्ली में आकर रहे और पुत्रों को समजाया कि जो पुरुष मुखपर वस्त्र का खन्ड बांधते हैं हाथ में झपरी रखते हैं, नीचे देखकर चलते हैं ऐसा जो होते हैं वे घातक होते हैं वे बालकों को पकड कर लेजाते हैं और मार डालते हैं ऐसा समझाने से वे बालक अज्ञानतासे साधु से दूरही रहने लगे एकदा व दोनों बालक वन में खेलने गये थे उसवक्त कोइ साधु मार्ग भूलने से उस चोर पल्ली में आगये पुरोहितने उन को आहार पानी दिया और कहा कि हमारे पुत्र साधु के द्वेषी हैं वे आप को देखकर परिषह देंगे इसलिये आप यहां रहना नहीं, परंतु आगे पधार कर आहार पानी करना साधुने ऐसा सुन आगे विहार किया इधर दोनों बालक वन में से खेलकर घरकी तरफ आरहे थे, वे साधु को देखकर भयभीत होके वृक्षपर चढगये वे साधु भी उस वृक्ष तले आये और चारों ओर देखा कि यहां कोइ नहीं है इससे उस ही वृक्ष नीचे आहार पानी करने बैठे वहां वस्त्रादिक की प्रति लेखना की यह सब कुमारोंने सूक्ष्म दृष्टि रखकर देखा परंतु उन के पास न तो शस्त्र दृष्टिगत हुए और न मांसादि देखा मात्र आहार देखते हैं वो अपने घर की ही रसोइ मालूम हुई यह देख उन का भय दूर हो गया और ऐसा रूप अपन को पूर्व परिचित है ऐसा

॥ इक्षुकार नामकं चतुर्दश मध्ययनम् ॥

तेरहवे अध्ययन में नियाना करने का फल कहा पन्द्रहवे अध्ययन में नियाना नहीं करनेवाले का फल कहते हैं गत अध्ययन में चार गोपालकने मुनि के पास दीक्षा अंगीकार की थी जिस में से दो साधुने धर्म की दुगंछा की इस से चित्त व संभूति हुए, जिन का कथन तो कहा अब जो दो गोपाल शुद्ध चारित्र पाल रहे थे वे वहां से काल कर देवलोक में गये और देवलोक से चवकर क्षितिप्रतिष्ठ नगर में किसी इभ्य श्रेष्ठि के वहां दोनों पुत्रपने उत्पन्न हुए वहां पर दूसरे चार व्यवहारी के साथ मित्रता हुई और छ ही जनोंने साथ दीक्षा ली उन छ में से चारने माया कपट रहित संयम पाला और दोने माया कपटका सेवन किया वे छ ही काल के अवसर में काल कर सौधर्म देवलोक में नलिनी गुल्म विमान में देवतापने उत्पन्न हुए और दोने माया कपट का सेवन किया था। स वे ही उस ही देवलोक में देवीपने उत्पन्न हुए गोपालक के दो जीव को छोडकर बाकी के चार जीव वहां से चवकर इक्षुकार नगर में एक इक्षुकार राजा हुआ, दूसरा कमलावती रानीपने हुआ तीसरा भृगुपुरोहित हुआ और चौथा भृगु पुरोहित की स्त्री पने हुआ भृगु पुरोहित को पुत्र नहीं होने से अहर्निश चिंता में रहते थे अब इधर देवलोक में रहे हुवे दो देवता का आयुष्य छ मास शेष रह गया तब अवधि ज्ञान से अपने उत्पत्ति स्थान देखा वे दोनों वहां से निकल कर भृगु पुरोहित के पास आकर कहने लगे कि तुम

चिंता मत करो, तुम को दो पुत्र होंगे परंतु बाल्यावस्था से ही संयम अंगीकार करेंगे तुम उन का बचपन से ही साधु की संगति करवाकर ज्ञानाभ्यास करवाना यों कह कर दोनों देव स्वस्थान गये कालांतर से उन को पुत्र हुए तब भृगु पुरोहितने विचार किया कि-इन को साधु का दर्शन मात्र नहीं होने देना चाहिये, जिस से इन को साधुपने का विचार ही आ सकेगे नहीं ऐसा विचार कर एकांत में घोर पल्ली में आकर रहे और पुत्रों को समजाया कि-जो पुरुष मुखपर वस्त्र का खण्ड बंधते है हाथ में चमरी रखते हैं, नीचे देखकर चलते हैं ऐसे जो होते है वे घातक होते हैं वे बालकों को पकड कर लेजाते हैं और मार डालते है ऐसा समजाने से वे बालक अज्ञानतासे साधु से दूर ही रहने लगे एकदा व दोनों बालक वन में खेलने गये थे उस वक्त कोइ साधु मार्ग भूलने से उस घोर पल्ली में आगये पुरोहितने उन को आहार पानी दिया और कहा कि हमारे पुत्र साधु के द्वेषी हैं वे आप को देखकर परिषह देंगे इसलिये आप यहां रहना नहीं,परंतु आगे पधार कर आहार पानी करना साधुने ऐसा सुन आगे विहार किया इधर दोनों बालक वन में से खेलकर घरकी तरफ आरहे थे, वे साधु को देखकर भयभीत होके वृक्षपर चढगये वे साधु भी उस वृक्ष तले आये और चारों ओर देखा कि यहां कोइ नहीं है इससे उस ही वृक्ष नीचे आहार पानी करने बैठे वहां उन्होंने आदिक की भूमि लक्षना की यह सब कुमारोंने नीचे दृष्टि रखकर देखा परंतु उन के पास न तो शस्त्र दृष्टिगत हुए और न मांसादि देखा और आहार देखते हैं तो अपने घर की ही रसोइ मालुम हुई यह देख उन का भय दूर हो गया और ऐसा रूप अपने को पूर्व परिचित है ऐसा

सूत्र

देवा भवित्ताण पुरे भवम्मि, केई चुया एगविमाणवासी ॥ पुरे पुराणे उसुयार नामे, खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ॥ १ ॥ सकम्म सेसेण पुराकएण कुलेसु दग्गेसु य ते पसूया ॥ निव्विण ससार भया जहाय जिणिंदमग्गं सरण पवन्ना ॥ २ ॥ पुमत्तमा गमम्कुमार दोवि पुरोहिओ तस्स जसाय पत्ती ॥ विसालकित्तीय तहे सुयारो, रायत्थ

अर्थ

विचार करने लगे विचार करतेर जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुवा और अपनापूर्व भव देख कर वैरागी बनकर नीचे उतरे मुनिराज को नमस्कार कर अपना सब वृत्तांत सुनाया और कहा कि-आप इसुकार नगर में ठहरना हम मात पिता की आज्ञा लेकर यहां आवेंगे और दीक्षा लेंगे मुनिने कहा जैसे तुम को सुख होवे वैसा करो दोनों कुमारों यहां से घर आये और मातपिता से संवाद किया चक्र चार और राजा व रानी यों छे ही ने संयम लिया इस का कथन आगे सूत्र द्वारा करते हैं— पीछे के भव में देवता बनकर नलिनीगुल्म विमानवासी कितनेक देवता वहां से चवकर बहुत पुराना व ऋद्धिवंत देवलोक समान रमणीय व दर्शनीय ऐसा इसुकार नगर में उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ पूर्व भव में किए हुए धर्म कर्म भोगवने शेष रह जाने से उत्तम कुल में उत्पन्न हुए और संसार के भय से उद्विग्न बने हुए भोगों का छोडकर तीर्थंकर भाषित मार्ग का शरण अंगीकार किया ॥ २ ॥ दो ब्राह्मण के पुत्र, एक पुरोहित, और उस की यशा भार्या ये चार ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए और विस्तीर्ण कीर्ति

देवी कमलावई य ॥ ३ ॥ जाईजरामच्चुभयाभिभूया, बहिं विहारामि निविट्ठ चित्ता ॥ ससारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा, दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥ ४ ॥ पिय पुत्तगा दोन्निव माहणस्स, सकम्म सीलस्स पुरोहियस्स ॥ सरित्तु पोराणिय तत्थ जाई तहा, सुचिण्ण तव सजम च ॥ ५ ॥ ते कामभोगेसु असज्जमाणा माणुस्सएसु जे यावि दिव्वा ॥ मोक्खाभिकखी अभिजायसड्ढा, ताय उवागम्म इमं उदाहु ॥ ६ ॥

वाले इसुकार राजा व कमलावती रानी ये दोनों क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए यों छ जीव इसुकार नगरी में पूर्व पुण्योदय से उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ प्रथम दो पुत्र को कैसे वैराग्य हुवा सो कहते हैं जन्म जरा व मृत्यु के भय से अभिभूत बने हुए व मोक्ष में जिनने चित्त स्थापन किया है वैसे दोनों कुमार साधु को देखकर संसार चक्र से अपने आत्मा को मुक्त करने के लिये काम भोगों से विरक्त हुए ॥ ४ ॥ अपने यज्ञ व्यवहारिक पद् कर्म में सावधान भृगु पुरोहित के दोनों प्रिय पुत्र को जातिस्मरण ज्ञान होने से पूर्व भव में निदान रहित जो तप संजय का आचरण किया था उस का स्मरण हुआ ॥ ५ ॥ वे मनुष्य व देवलोक के कामभोगों में अनासक्त बने हुए, मोक्ष की अभिलाषावाले व तत्त्व की श्रद्धा करने वाले ऐसे दोनों पुत्र पिता के पास आकर,

सूत्र

असासयदट्टु इम विहारं बहुअंतरायं न वीहमाऊ ॥ तम्हा गिहंसि न रई लभामो, आमंतयामो चरिस्समुमोणं ॥ ७ ॥ अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं तवस्स वाघाय करं वयासी ॥ इमं वय वेयविआ वयंति जहा न होई असुयाण लोगो ॥ ८ ॥ अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे पुत्ते परिठ्ठप्पगिहंसि जाया॥भोच्चाणभोए सहइत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥ ९ ॥ सोयग्गिणा आयगुणिंधणेण, मोहाणिला

अर्थ

इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥ अहो तात ! यह मनुष्य जन्म अशाश्वत है और इस में भी रोगादिक अनेक प्रकार की अंतराय आती है और आयुष्य भी लम्बा नहीं है इस से हम को घर में रहते किसी प्रकार का आनंद नहीं मिलता है अहो तात ! हम आप को कहते हैं कि-अब हम चारित्र अंगीकार करेंगे ॥ ७ ॥ ऐसा पुत्रों का वचन सुनकर उन भाव मुनियों के तप में व्याघात होवे वैसा वचन पुरोहित कहने लगा जिस को पुत्र नहीं है उस को स्वर्ग की गति नहीं है * ऐसा अपने वेद में कहा है, ॥ ८ ॥ अहो पुत्रों ! वेद का अभ्यास कर ब्राह्मणों को जीमा कर, घर में ज्येष्ठ पुत्र को छोड कर और स्त्रियों के साथ भोगव भोग कर फिर तुम अटवी में रहने वाले प्रशस्त मुनि बनो ॥९॥ यह पुरोहित

* अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैवच नैवच ॥ तस्मात्पुत्र मुखंदृष्ट्वा पश्चाद्धर्मसमाचरेत् ॥ १ ॥ अर्थात् अपुत्रीय को स्वर्ग नहीं मील सकता है इसलिये पुत्र का मुख देखकर पश्चात् धर्माचरण करना

पज्जलणा हिएण ॥ सतत्तभाव परितप्पमाणं, लालप्पमाणं बहुहा बहु च ॥ १० ॥
पुरोहियं तं कमसो ऽणुणंत, निमतयतं च सुए धणेणं ॥ जहक्कम कामगुणेहि चेव,
कुमारगा ते पसमिक्ख वक्क ॥ ११ ॥ वेया अहीया न भवति ताण,भुत्ता दिया निंति
तमतमेणं ॥ जायाय पुत्ता न हवति ताण, को णाम ते अणुमन्नेज्जएय ॥ १२ ॥
खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा, अनिगामसोक्खा, पगामदुक्खा ॥ ससारमोक्खस्स

आत्मा के रागादिक गुणरूप ईंधन वाली व मोहरूप पवन से प्रज्वलित शोक रूप अग्नि से सर्वथा प्रकार से तप्त बना हुवा व मोहनीय कर्म के वश हो विलाप करता हुआ उक्त प्रकार से अति दीन वचन बोला ॥ १० ॥ अपने दोनों पुत्र को धनादिक से काम भोगों की आमंत्रणा करते हुवे पुरोहित को वे दोनों कुमार इस प्रकार विचार कर बोलने लगे ॥ ११ ॥ अहो तात ! वेदों के अभ्यास करने से जीवों को शरण नहीं होता है ब्राह्मणों को जीमाने से मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है वैसे ही पुत्रादिक की प्राप्ति होने से भी त्राण शरण नहीं होता है अर्थात् यह इसलोक व परलोक यों दोनों लोक से मुक्त नहीं कर सकते हैं इस से अहो तात ! हम इस का कैसे स्वीकार करे ? ॥ १२ ॥ अहो तात ! ये काम भोग क्षणमात्र सुख देनेवाले व बहुत काल दुःख देनेवाले हैं इस से इन में सुख तो अल्प है और दुःख बहुत है और भी जीव को मुक्ति में नहीं जाने देने से ये काम भोग अनर्थ की खदान है और प्राप्त काम

सूत्र

असासयदट्ठु इम विहार बहुअंतराय न दीहमाऊ ॥ तम्हा गिहंसि न रई लभामो, आमंतयामो चरिस्सामु मोणं ॥ ७ ॥ अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं, तवस्स वाघाय करं वयासी ॥ इमं वय वेयविआ वयंति, जहा न होई असुयाण लोगो ॥ ८ ॥ अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया॥भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥ ९ ॥ सोयग्गिणा आयगुणिंधणेण, मोहाणिला

अर्थ

इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥ अहो तात ! यह मनुष्य जन्म अशाश्वत है और इस में भी रोगादिक अनेक प्रकार की अंतराय आती है और आयुष्य भी लम्बा नहीं है इस से हम को घर में रहते किसी प्रकार का आनंद नहीं मिलता है अहो तात ! हम आप को कहते हैं कि-अब हम चारित्र अंगीकार करेंगे ॥ ७ ॥ ऐसा पुत्रों का वचन सुनकर उन भाव मुनियों के तप में व्याघात होवे वैसा वचन पुरोहित बोलने लगा जिस को पुत्र नहीं है उस को स्वर्ग की गति नहीं है * ऐसा अपने वेद में कहा है, ॥ ८ ॥ अहो पुत्रों ! वेद का अभ्यास कर ब्राह्मणों को जीमा कर, घर में ज्येष्ठ पुत्र को छोड कर और स्त्रियों के साथ भोगव भोग कर फिर तुम अटवी में रहने वाले प्रशस्त मुनि बनो ॥ ९ ॥ वह पुरोहित

* मनुष्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैवच नैवच ॥ तस्मात्पुत्र मुखंदृष्ट्वा पश्चाद्धर्मसमाचरेत् ॥ १ ॥ अर्थात् अपुत्रीय को स्वर्ग नहीं मिल सकता है इसलिये पुत्र का मुख देखकर, धर्माचरण करना

पज्जलणा हिएण ॥ सतत्तभाव परितप्पमाणं, लालप्पमाणं बहुहा बहु च ॥ १० ॥ पुरोहिय तं कमसो ऽणुणंतं, निमतयतं च सुए धणेणं ॥ जहक्कम कामगुणेहि चेव, कुमारगा ते पसमिक्ख वक्क ॥ ११ ॥ वेया अहीया न भवति ताण, मुत्ता दिया निति तमतमेण ॥ जायाय पुत्ता न हवति ताण, को णाम ते अणुमन्नेज्जएय ॥ १२ ॥ खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा, अनिगामसोक्खा, पगामदुक्खा ॥ ससारमोक्खस्स

आत्मा के रागादिक गुणरूप ईंधन वाली व मोहरूप पवन से प्रज्वलित शोक रूप अग्नि से सर्वथा प्रकार से तप्त बना हुवा व मोहनीय कर्म के वश हो विलाप करता हुआ उक्त प्रकार से अति दीन वचन बोला ॥ १० ॥ अपने दोनों पुत्र को धनादिक से काम भोगों की आमंत्रणा करते हुवे पुरोहित को वे दोनों कुमार इस प्रकार विचार कर बोलने लगे ॥ ११ ॥ अहो तात ! वेदों के अभ्यास करने से जीवों को शरण नहीं होता है ब्राह्मणों को जीमाने से मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है वैसे ही पुत्रादिक की प्राप्ति होने से भी प्राण शरण नहीं होता है अर्थात् यह इसलोक व परलोक यों दोनों लोक से मुक्त नहीं कर सकते हैं इस से अहो तात ! हम इस का कैसे स्वीकार करे ? ॥ १२ ॥ अहो तात ! ये काम भोग क्षणमात्र सुख देनेवाले व बहुत काल दुःख देनेवाले हैं इस से इन में सुख तो अल्प है और दुःख बहुत है और भी जीव को मुक्ति में नहीं जाने देने से ये काम भोग अनर्थ की खदान है और मात्र काम

सूत्र

त्रिपक्खभूया, खाणी अणत्थाण हु कामभोगा ॥ १३ ॥ परिव्वयंते अनियत्तकामे, अहो य राओ परितप्पमाणे ॥ अन्नप्पमत्ते,धणमेसमाणे पप्पोत्तिमच्चुं पुरिसे जरं च ॥ १४ ॥ इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि, इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं ॥ त एवमेवं लालप्पमाणं, हराहरंति त्ति कहं पमाए ॥ १५ ॥ धणं पभूयं सहइत्थियाहिं, सयणा तहा कामगुणा पगामा । तवं कए तप्पइ जस्स लोगो तं सव्व साहीण मिहेव तुब्भं ॥ १६ ॥ धणेण किं धम्मधुराहिगारे सयणेणवा कामगु

अर्थ

भोगों से नहीं निवर्तनेवाला अहोरात्रि परिताप सहन करता घबराता हुवा इधर उधर भटकता ही रहता है स्वजनादिक में आसक्त बना हुवा व धन की गवेषणा करने वाला पुरुष मृत्यु व जरा को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ अहो पिताजी ! इस जगत में तृष्णा से पीडित हुए जीवों यही लालपाल करते हैं कि—यह सुवर्णादि मेरे हैं परंतु रत्नादि नहीं है यह गृह वगैरह मैंने कराये हैं परंतु महेल वगैरह नहीं कराये हैं ऐसे करनेवाले का आयुष्य रात्रि दिन रूप चार हरण करके उसे परलोक में ले जाता है तो ऐसा जानकर क्या धर्म में प्रमाद करना उचित है ! अर्थात प्रमाद नहीं करना ॥ १५ ॥ तब भृगु पुरोहित कहने लगा अहो पुत्र ! लोक जिस की प्राप्ति के लिये तप करते हैं वह सब तुम को यहां पर ही मील गया है जैसे कि तुम को बहुत धन है स्त्रियों भी हैं बांधव प्रमुख स्वजन भी हैं और यथेच्छ कामभोगों भी है ॥ १६ ॥ तब पुत्र बोलने लगे कि अहो तात ! जैसे बैल के स्कंध पर धुरा रखने से वह भार का वहन कर सकता है वैसे ही धर्म रूप भार वहन करने में धन, स्वजन अथवा काम भोग

णेहिन्चेव ॥ समणा भविस्सामु गुणोहधारी, बहिं विहारा अभिगम्मभिक्ख ॥ १७ ॥
जहा य अग्गी अरणी असंतो, खीरे घय तेल्लमहा तिलेसु॥ एमेव ताया सरीरंसि सत्ता,
समुच्छई नासइ नावचिट्ठे ॥ १८ ॥ नोइंदिय गेज्झ अमुत्तभावा अमुत्तभावावि य
होइ निच्चो ॥ अज्झत्थहेउ निययस्स बंधो संसारहेउंच वयंतिबंध ॥ १९ ॥ जहा
वयं धम्ममजाणमाणा, पावंपुरा कम्ममकासिमोहा ॥ ओरुब्भमाणा परिरक्खयंता,

से क्या होता है ? इस से अप्रतिबंध विहारी बनकर भीक्षा से आजीविका करने वाले हम श्रमण
बनेंगे ॥ १७ ॥ अब पिता परलोक की नास्ति रूप कथन करने लगा अहो पुत्र ! जैसे अरणी में
अविद्यमान अग्नि उत्पन्न होती है जैसे दूध में अविद्यमान घृत उत्पन्न होता है और जैसे तिल में
अविद्यमान तेल उत्पन्न होता है वैसे ही स्त्री पुरुष के संयोग से पांच भूत मील कर अविद्यमान जीव
उत्पन्न होता है और इस शरीर का नाश होने से जीव का भी नाश हो जाता है ॥ १८ ॥ तब पुत्र इस
का उत्तर देने लगे—जीव आत्मा अरूपी होने से इन्द्रियों का ग्राह्य नहीं है यह अमूर्त व शाश्वत है
यह आत्मा मिथ्यात्वादि हेतु से बंधाता है और उन कर्मों के फल को भोगने के लिये चतुर्गति रूप
संसार में परिभ्रमण करता है ॥ १९ ॥ जिस प्रकार हम इतने दिन धर्म के अनजान होने से तुम्हारे
बंधन में बंधा रहे थे, तुमने हम को रोक रखे थे और अब तक हम जो पाप कर्म कर रहे थे उन पाप

सूत्र

तं नेवमुज्जोविसमायरामो ॥ २० ॥ (गाथा) अब्भाहयमि लोगमि, सव्वओ परिवारिए ॥ अमोहाहिं पडंतीहिं गिहासि न रइंल्मे ॥ २१ ॥ केण अब्भाहओ लोगो केण वा परिवारिओ ॥ का वा अमोहावुत्ता जायाचिंतावरो हुमे ॥ २२ ॥ मच्चु णाऽब्भहओ लोगो, जराए परिवारिओ ॥ अमोहा रयणी वुत्ता एवं ताय विजाणह ॥ २३ ॥ जा जा वच्चइ रयणी न सा पडिनियत्तई ॥ अहम्मकुणमाणस्स, अफला जति राईओ ॥ २४ ॥ जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ॥ धम्म

अर्थ

रों का अब हम आचरण नहीं करेंगे ॥२०॥ यह मनुष्य लोक पीडित हो रहा है यह लोक चारों ओर घेराया हुवा है और इस में अमोघधारा वाली शस्त्र की वृष्टि हो रही है, ऐसे लोक में रहने से हमे आनंद नहीं मीलता है ॥ २१ ॥ अब पिता कहने लगा कि अहो पुत्र ! किस से लोक पीडित हो रहा है, किस से लोक घेराया हुवा है कौनसे शस्त्र की धारा अमोघ पडरही है ? अहो पुत्र ! मैं चिंतातुर हूं, इस लिये मुझे कहो ॥ २२ ॥ तब पुत्र कहने लगे कि मृत्यु से लोक पीडित हो रहा है और जरा [वृद्धावस्था] से घेराया हुवा है, रात्रि दिन रूप तीक्ष्ण शस्त्र की अमोघ धारा पडरही है अहो तात ! ऐसे तुम जानो ॥ २३ ॥ जो रात्रि दिन जाते हैं वे पीछे नहीं आते हैं इस से अधर्म करने वाले के रात्रि दिन विफल जाते हैं ॥ २४ ॥ जो जो रात्रि दिन जाते हैं वे पीछे नहीं आते हैं इस से धर्म करने वाले

च कुणमाणस्स, सफलाजाति राइओ ॥ २५ ॥ एगओ संवसित्ताण, दुहओ सम्मत्त सजुया ॥ पच्छा जाया गमिस्सामो भिक्खमाणा कुले कुले ॥ २६ ॥ जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं जस्स अत्थि पलायण ॥ जो जाणइ न मरिस्सामि, सो हु कखे सुए सिया ॥२७॥ (काव्य) अज्जेव धम्म पडिवज्जयामो जहिं पवन्ना न पुणब्भवामो अणागयं नेव य अत्थिकिंची, सद्धाखम णे विणइत्तु राग ॥ २८ ॥ पहीणपुत्तस्स हु

के रात्रि दिन सफल जाते हैं ॥ २५ ॥ तब पिता कहने लगा कि–अधुना तुम हम सब सम्यक्त्व सहित देशवृत्ति पना अंगीकार कर गृहवास में रहें और वृद्धावस्था प्राप्त होने पर संयम अंगीकार करके प्रत्येक कुल में भिक्षा की याचना करते हुए विचरेंगे ॥ २६ ॥ तब पुत्र कहने लगे अहो तात ! जिस को मृत्यु के साथ मित्राचारी है, जो मृत्यु आनेपर भग सकता होवे और जो जानता होवे कि मैं मरूंगा ही नहीं वही भविष्य काल में मैं धर्म करूंगा ऐसा करसके ॥ २७ ॥ इस लिये अहो पिताजी ! हमारी मृत्यु से न तो मीति है, न भगने की शक्ति है और न हम अमर हैं जो विषय सुख पहिले नहीं पाया होवे तो उन से प्रेम करे, परंतु विषय सुख हम को पहिले अनंती वार मील चुके हैं इस से हमारा कुच्छ भी कल्याण हुआ नहीं इस से इन को छोडकर जिस धर्म को अंगीकार करने से पुनर्भव होवे नहीं वैसा धर्म हम आज ही अंगीकार करेंगे ॥ २८ ॥ पुत्रों को इस प्रकार विरक्त बने हुए जानकर वैरागी

सूत्र

नत्थि वासो वासिट्ठि भिक्खायरियाइ कालो ॥ सहाहि रूक्खो लहइ समाहिं, छिन्नाहि साहाहि तमेवखाणुं ॥ २९ ॥ पखा विहुणो जहेव पक्खी भिच्चविहीणोव्व रणे नरिंदो ॥ विवन्नसारो वणिओव्व पोए, पहीण पुत्तो मि तया अहंपि ॥ ३० ॥ सुसंभिया कामगुणा इमेते सपिण्डिया अग्गरस प्पभूया॥भुंजामु ता कामगुणप्पगामं पच्छागमिस्सामु पहाणमग्गं ॥ ३१ ॥ भुत्तारसा भोइजहाइ णे वओ, नजीवियट्ठा पजहामि भोए, ॥

अर्थ

बना हुआ पुरोहित अपनी स्त्री से कहने लगा—हे वाशिष्टे ! (वशिष्ठ गोत्र धारन करने वाली) मुझे व्रत ग्रहण कर भिक्षा वृत्ति करने का समय वर्तता है, क्योंकि शाखा प्रतिशाखा से वृक्ष सुशोभित दीखता है और शाखा न होनेसे ठूंठ दीखता है, वैसे ही पुत्र रहित मुझे गृह वास मे रहना उचित नहीं है ॥ २९ ॥ जैसे पंख बिना पक्षी सुशोभित नहीं दीखता है संग्राम के अग्र में रहा हुआ राजा सेवक बिना भिखारी बना हुआ नहीं शोभता है और द्रव्य बिना का व्यापारी जहाजों मे नहीं शोभता है वैसे ही मैं भी पुत्र बिना गृहवास में रहा चिंताग्रस्त होने से नहीं शोभता हूं ॥ ३० ॥ तब पुरोहित की स्त्री कहने लगी—(पुत्र जाते होवे तो जाने दो परंतु) हमने यह कामभोग भोगवने योग्य शयनासन वस्त्र भूषणादि का संग्रह कर हम भगा रखे हैं वैसे ही विविध प्रकार के पक्वान्न रसवती पाक, आदि का संग्रह किया है इस को अपन अच्छी तरह भोगव कर फिर भव भुक्त भोगी बनेंगे और वृद्धावस्था प्राप्त होगी तब अपन दोनों दीक्षा रूप प्रधान मार्ग अंगीकार करेंगे ॥ ३१ ॥ तब पुरोहित

[illegible] अकामं न सुहं न दुक्खं [illegible] ॥ ३२ ॥ मा हु तुमं सोयरियाण संभरे जुण्णो व हंसो पडिसोयगामी ॥ भुंजाहि भोगाइ मए समाणं

लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं,संचिक्खमाणो चारिस्सामिमाण ॥३२॥ मा हु तुम
सोयरियाण समरे, जुण्णो व हसो पडिसोगाउमी ॥ भुजाहि भोगाइ मए समाण,
दुक्ख सुभिक्खायरिया विहारो ॥ ३३ ॥ जहा य भोई तणुय भुयगो निम्मोयणिं
हिच पलेइ मुत्तो, एमेव जाया पयहातिभोए, तेह कह नाणुगमिस्समेक्को ॥ ३४ ॥
छिंदित्तु जाल अबल वरोहिया मच्छा जहा कामगुण पहाय ॥ धोरेय सीला तवसा

बोला—अहो भद्रे ! जिस वय में भोग भोगते हैं वह अवस्था अब चली जाती है मैं असंयम रूप जीवितव्य के लिये इन भोगों का त्याग नहीं करता हूं परंतु संयम पालने के लिये इन भोगों का त्याग कर लाभ अलाभ, सुख अथवा दुःख जो होवे उन में समान भाव रखता हुवा संयमाचरण करूंगा ॥३२॥ तब यशा भार्या बोली जैसे वृद्ध हंस प्रतिश्रोत [नदी के पूर सन्मुख] में चलता हुवा बड़ा दुःखी हो कर बड़ा पश्चाताप करता है वैसे ही तुम दीक्षा लेकर शोक करोगे कि मैंने दीक्षा वृथा अंगीकार की इस से तुम मेरे साथ भोग भोगवों क्यों की अप्रतिबंध विहार रूप भिक्षा चर्या का व्रत अति कठिन है ॥ ३३ ॥ तब पुरोहित कहने लगा—जैसे सर्प अपने शरीर पर की कांचली का त्याग कर चला जाता है वैसे ही अपने दोनों पुत्र सब भोगों का त्याग कर जाते हैं तो मैं अकेला उन के अनुगामी क्यों नहीं होऊं ॥ ३४ ॥ जैसे रोहित जाति वाला मत्स्य अपनी तीक्ष्ण पूछ से जीर्ण

सूत्र

उदारा, धीरा हु भिक्खायरिय चरति ॥ ३५ ॥ नहेव कुंचा समइक्कमता, तयाणि जालाणि दलित्तु हसा ॥ पलेंति पुत्ता पईय मज्झ ते ह कह नाणुगमिस्स मेक्का ॥ ३६ ॥ पुरोहिय त ससुय सदार, ॥ सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहाय भोए ॥ कुडुम्ब सार विउलुत्तम च, राय अभिक्ख समुवाय देवी ॥ ३७ ॥ (गाथा) वतासी

अर्थ

जाल तोडकर चला जाता है वैसे ही ये दोनों पुत्र मोह रूपी जाल का छेदन कर जाते हैं और योगी जैसे समान तप संयम रूप महा भार उठाने में प्रवर्तते हैं तो क्या मैं इन के जितनी भी दृढता नहीं कर सकूंगा ! अर्थात् मैं भी व्रत अंगीकार करूंगा ॥ ३८ ॥ अब यशा भार्या भी वैरागीनी बन विचारने लगी जैसे क्रौंच पक्षीयों व हंस पक्षियों जालको छोडकर आकाश में विचरते है और बहुत देशोंका उल्लंघन करते हैं वैसे ही मेरे दोनों पुत्र व पति मोह माया रूप जाल का छेदन कर देशांतर में विचरने वाले बने हैं तो मुझ अकेली को घर में रहकर क्या करना है! मुझे उन के साथ ही जाना उचित है ॥३६॥ पुत्र के पास से धर्म सुनकर पुरोहित उन के दो पुत्र व पुरोहित की भार्या यह चारों भोगों को छोडकर कर दीक्षा अंगीकार करते हैं और इन का धन इक्षुकार राजा अपने राज्य भंडार में लाता है ऐसा सुनकर कमलावती रानी राजा के पास आकर कहने लगी ॥ ३७ ॥ अहो राजन् ! जो पुरुष

पुरिसो राय, नसो होइ पसंसिओ ॥ माहणेण परिच्चत्त, धण आदाउ मिच्छासि ॥ ३८ ॥ सव्व जग जइ तुम्ह सव्व चावि धण भवे ॥ सव्व पि ते अपज्जत्त, नेव ताणाय त तव ॥ ३९ ॥ मारिहासि राय जया तयावा मणोरमे कामगुणे पहाय ॥ एक्को हु धम्मो नर देवताण, नाविज्जई अन्नमि हेह किंचि ॥ ४० ॥ (काव्य) नाह रमे पक्खिणि पजरेवा, सताण छिन्ना चरिस्सामि मोण ॥ अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा परिग्ग

वमन किया हुआ आहार ग्रहण करे वह प्रशंसनीय होवे नहीं ऐसे ही आप ब्राह्मण के त्यागे हुवे धन की इच्छा करते हैं सो आप को उचित नहीं है ॥ ३८ ॥ कदाचित जगत का सब द्रव्य तुम को मील जाय तो भी धनादिक से तुमारी तृष्णा पूर्ण होसकती नहीं है ऐसे ही हे राजन् ! उक्त धनादि तुम को मृत्यु से बचाने समर्थ नहीं है ॥ ३९ ॥ अहो राजन् ! इन मनोहर काम भोगों का त्याग कर किसी समय भी तुम मर जावोगे इस समय अहो नरदेव ! धर्म सिवाय अन्य कुच्छ भी तुम को शरण भूत नहीं होगा ॥ ४० ॥ (तब राजा बोला कि जब तुझे इतना ज्ञान है तो इस राज्य में क्यों बैठी है, तब रानी बोली) हे राजन् ! जैसे पींजरे में पूराइ हुई पक्षिनी आनद नहीं मानती है, वैसे ही मैं भी तेरे राज्य में रही हुई आनद नहीं मानती हूं अब मैं आरंभ परिग्रह का त्याग कर सरल कृत्य करने वाली, विषय कषाय रूप मांस रहित, किसी वस्तु की इच्छा नहीं करती हुइ स्नेह रूप तांत

सूत्र

उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरंति ॥ ३५ ॥ नहेव कुंचा समइक्कमंता, तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा ॥ पलेंति पुत्ता पईय मज्झ, ते हं कहं नाणुगमिस्स मेक्का ॥ ३६ ॥ पुरोहियं तं ससुयं सदारं, ॥ सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहाय भोए ॥ कुडुम सारं विउलुत्तम च, रायं अभिक्ख समुवाय देवी ॥ ३७ ॥ (गाथा) वतासी

अर्थ

जाल तोडकर चला जाता है वैसे ही ये दोनों पुत्र मोह रूपी जाल का छेदन कर जाते हैं और धोरी बैलके समान तप संयम रूप महा भार उठाने में प्रवर्तते हैं तो क्या मैं इन के जितनी भी दृढता नहीं कर सकूंगा ! अर्थात् मैं भी व्रत अंगीकार करूंगा ॥ ३५ ॥ अब यशा भार्या भी वैरागीनी बन विचारने लगी जैसे क्रौंच पक्षीयों व हंस पक्षियों जालको तोडकर आकाश में विचरते हैं और बहुत देशोंका उल्लंघन करते हैं वैसे ही मेरे दोनों पुत्र व पति मोह माया रूप जाल का छेदन कर देशांतर में विचरने वाले बनते हैं तो मुझे अकेली को घर में रहकर क्या करना है! मुझे उन के साथ ही जाना उचित है ॥३६॥ पुत्र के पास से धर्म सुनकर पुरोहित उन के दो पुत्र व पुरोहित की भार्या यह चारों भोगों को छोडकर कर दीक्षा अंगीकार करते हैं और इन का धन इक्षुकार राजा अपने राज्य भंडार में लाता है ऐसा सुनकर कमलावती रानी राजा के पास आकर कहने लगी ॥ ३७ ॥ अहो राजन् ! जो पुरुष

पुरिसो राय, नसो होइ पससिओ ॥ माहणेण परिच्चत्त, धण आदाउ मिच्छासि ॥ ३८ ॥ सव्व जग जइ तुह सव्व चावि धण भवे ॥ सव्व पि ते अपज्जत्त, नेव ताणाय त तव ॥ ३९ ॥ मारीहासि रायं जया तयावा मणोरम कामगुणे पहाय ॥ एक्को हु धम्मो नर देवताण, नाविज्जई अन्नमि हेह किंचि ॥ ४० ॥ (काव्य) नाह रमे पक्खिणि पजरेवा, सताण छिन्ना चरिस्सामि मोण ॥ अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा, परिग्ग

रमन किया हुआ आहार ग्रहण करे वह प्रशंसनीय होवे नहीं ऐसे ही आप ब्राह्मण के त्यागे हुवे धन की इच्छा करते हैं सो आप को उचित नहीं है ॥ ३८ ॥ कदाचित जगत का सब द्रव्य तुम को मील जाय तो भी धनादिक से तुमारी तृष्णा पूर्ण होसकती नहीं है ऐसे ही हे राजन् ! उक्त धनादि तुम को दुःख से बचाने समर्थ नहीं है ॥ ३९ ॥ अहो राजन् ! इन मनोहर काम भोगों का त्याग कर किसी समय भी तुम मर जावोगे इस समय अहो नरदेव ! धर्म सिवाय अन्य कुच्छ भी तुम को शरण भूत नहीं होगा ॥ ४० ॥ (तब राजा बोला कि जब तुझे इतना ज्ञान है तो इस राज्य में क्यों बैठी है, तब रानी बोली) हे राजन् ! जैसे पींजरे में पूराइ हुई पक्षिनी आनद नहीं मानती है, वैसे ही मैं भी तेरे राज्य में रही हुई आनद नहीं मानती हूं अब मैं आरंभ परिग्रह का त्याग कर सरल कृत्य करने वाली, विषय कषाय रूप मांस रहित, किसी वस्तु की इच्छा नहीं करती हुई स्नेह रूप तांत

सूत्र

उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरंति ॥ ३५ ॥ नहेव कुंचा समइक्कमंता, तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा ॥ पलेंति पुत्ता पईय मज्झं ते हं कहं नाणुगमिस्स मेक्का ॥ ३६ ॥ पुरोहियं तं ससुयं सदारं, ॥ सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहाय भोए ॥ कुडुंब सारं विउलुत्तमं च, रायं अभिक्खं समुवाय देवी ॥ ३७ ॥ (गाथा) वतासी

अर्थ

जाल तोडकर चला जाता है वैसे ही ये दोनों पुत्र मोह रूपी जाल का छेदन कर जाते हैं और धोरी वैलके समान तप संयम रूप महा भार उठाने में प्रवर्तते हैं तो क्या मैं इन के जितनी भी दृढता नहीं कर सकूंगा ? अर्थात् मैं भी व्रत अंगीकार करूंगा ॥ ३५ ॥ अब यशा भार्या भी वैरागीनी बन विचारने लगी जैसे क्रौंच पक्षीयों व हंस पक्षियों जालको तोडकर आकाश में विचरते हैं और बहुत देशोंका उल्लंघन करते हैं वैसे ही मेरे दोनों पुत्र व पति मोह माया रूप जाल का छेदन कर देशांतर में विचरने वाले बनते हैं तो मुझे अकेली को घर में रहकर क्या करना है ! मुझे उन के साथ ही जाना उचित है ॥३६॥ पुत्र के पास से धर्म सुनकर पुरोहित उन के दो पुत्र व पुरोहित की भार्या यह चारों भोगों को छोडकर कर दीक्षा अंगीकार करते हैं और इन का धन इक्षुकार राजा अपने राज्य भंडार में लाता है ऐसा सुनकर कमलावती रानी राजा के पास आकर कहने लगी ॥ ३७ ॥ अहो राजन् ! जो पुरुष

निरामिसा ॥ ४६ ॥ गिद्धोवमे उ नच्चाणं, कामे ससार वड्ढणे ॥ उरगो सुवण्ण पासव्व सकमाणो तणुचरे ॥ ४७ ॥ नागोव्व बधण छित्ता अप्पणो वसहिं वए ॥ एय पच्छ महाराय, उसुयारि त्ति मे सुय ॥ ४८ ॥ चइत्ता विउल रज्जं, कामभोगे य दुच्चए, निव्विसया निरामिसा, निन्नेहा निप्परिग्गहा ॥ ४९ ॥ सम्मं धम्म वियाणित्ता, चच्चाकामगुणे वरे ॥ तव पगिज्झहक्खाय, घोर घोरपरक्कम्मा ॥ ५० ॥ एव

रहित पक्षि को कोई दुःखी नहीं करता है वैसे ही विषय कषाय रूप मांस को छोडकर अपन विचरेंगे ॥ ४६ ॥ इन गीध पक्षी के दृष्टांत से कामभोगों को ससार की वृद्धि करनेवाले जानकर जैसे सर्प गरुड पक्षी से डरता हुआ चलता है तैसे ही अपन भी पाप से डरते हुए चलेंगे ॥ ४७ ॥ अहो इषुकार राजन्! मैंने सुना है कि जैसे हस्ती अपना बंधन तोडकर विंध्याचल अटवी में जाकर स्वतंत्रता पूर्वक गमन करता है वैसे ही धीर पुरुष मोह रूप शृंखला को तोडकर मोक्ष रूप विंध्याचल अटवि में सुख पूर्वक विचरते हैं अहो राजन्! ऐसा तुम भी करो ॥ ४८ ॥ कमलावती रानी के ऐसे वचन सुनकर इषुकार राजा प्रतिबोध पाया और राज्य व बहुत कठिनता से त्याग सके ऐसे काम भोगों का त्याग कर विषयवासना, धन रूप आमिष, स्नेह व परिग्रह रहित बने ॥ ४९ ॥ घोर पराक्रम करने वाले उक्त छे ही पुरुषोंने धर्म जानकर, व श्रेष्ठ काम भोगों का त्याग कर तप व घोर

सूत्र

हाग्म नियत्त दोसा॥ ४१ ॥ (गाथा) दवग्गिणा जहा रण्णे डज्झमाणेसु जतुसु॥ अन्ने सत्ता पमोयति, रागद्दोस वसगया ॥ ४२ ॥ एवमेव वय मूढा, काम भोगेसु मुच्छिया ॥ डज्झमाग न बुज्झामो, रागदोसग्गिणा जग ॥ ४३ ॥ भोगे भेचा वमित्ताय लहु भू विह रिणो॥ आमोयमाणा गच्छति, दिया कामकमा इव ॥ ४४ ॥ इमे य बद्धा फदंति मम हत्थज मागया वयच सत्ता कामेसु, भविस्सामो जहा इमे॥ ४५ ॥ सामिस कुल्लं दिस्स बज्झमाण निरामिसं ॥ आमिसं सव्व मुज्झित्ता, विहरिस्सामो

अर्थ

छेदन कर संयम अंगीकार करूंगी ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार अटवि मे दवाग्नि से जलते हुए जतुओं देखकर उस से दूर रहे हुवे अन्य जीव राग द्वेष होने से आनंदित होते हैं; वैसेही काम भोग में गृद्ध बने हुए अपन मूढ राग द्वेष रूप अग्नि से जलता हुआ जगत को नहीं जानते हैं और प्रतिबंध में बन्धा रहे हैं ॥ ४२ ४३ ॥ परंतु जो विवकी होते है वे जिस प्रकार पक्षियों आकाश में स्वेच्छाचारी होते हैं वैसे ही व भी भोग ले हुए भोगों का त्याग कर यथाविध साधु के आचार मे हर्ष पाते हुए अप्रतिबंध विहार करते हैं ॥ ४४ ॥ यह शब्दादिक काम भोग की सामग्री तुमारे व हमारे हाथ में जो आई है और उस में आसक्त बने हुए है परंतु यह अस्थिर हैं अर्थात् इन का अवश्य तजना पडेगा इसलिये ये जिस प्रकार पुरोहित वगैरहने किया वैसे ही अपन को करना उचित है ॥ ४५ ॥ प्रत्यक्ष में देखो-जो मांस टूकडा सहित गीध पक्षी होता है उसे के पीछे अन्य कितने पक्षियों लगते हैं और दु:खी करते हैं परंतु मांस

निरामिसा ॥ ४६ ॥ गिद्धोवमे उ नच्चाण, कामे ससार वड्ढणे ॥ उरगो सुवण्ण पासेव्व सकमाणो तणुंचरे ॥ ४७ ॥ नागोव्व बधण छित्ता अप्पणो वसहिं वए ॥ एय पच्छ महाराय, उसुयारि त्ति मे सुर्य ॥ ४८ ॥ चइत्ता विउल रज्ज, कामभोगे य दुच्चए, निव्विसया निरामिसा, निन्नेहा निप्परिग्गहा ॥ ४९ ॥ सम्मं धम्म वियाणित्ता, च्चाकामगुणे वरे ॥ तव पगिज्झहक्खाय, घोर घोरपरक्कमा ॥ ५० ॥ एव

रहित पक्षि को कोई दुःखी नहीं करता है वैसे ही विषय कषाय रूप मांस को छोडकर अपन विचरेंगे ॥ ४६ ॥ इन गीध पक्षी के दृष्टांत से कामभोगों को संसार की वृद्धि करनेवाले जानकर जैसे सर्प गरुड पक्षी से डरता हुआ चलता है तैसे ही अपन भी पाप से डरते हुए चलेंगे ॥ ४७ ॥ अहो इषुकार राजन्! मैंने सुना है कि जैसे हस्ती अपना बंधन तोडकर विंध्याचल अटवी में जाकर स्वतंत्रता पूर्वक गमन करता है वैसे ही धीर पुरुष मोह रूप शृंखला को तोडकर मोक्ष रूप विंध्याचल अटवी में सुख पूर्वक विचरते हैं अहो राजन्! ऐसा तुम भी करो ॥ ४८ ॥ कमलावती रानी के ऐसे वचन सुनकर इषुकार राजा प्रतिबोध पाया और राज्य व बहुत कठिनता से त्याग सके ऐसे काम भोगों का त्याग कर विषयवासना, धन रूप आमिष, स्नेह व परिग्रह रहित बने ॥ ४९ ॥ घोर पराक्रम करने वाले उक्त छे ही पुरुषोंने धर्म जानकर, व श्रेष्ठ काम भोगों का त्याग कर तप व घोर

ते कसमो धुत्ता स े धम्मपरायणा ॥ जम्म मच्चु भउव्विग्गा, दुक्खस्सत गवेसिणो ॥ ५१ ॥ सासणे विगयमोहाण, पुव्विं भावण भाविया ॥ अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्सत मुवागया ॥५२॥ राया सह देवीए माहणो य पुरोहिओ ॥ माहणी दारगा चेव, सव्व त परिनिव्वुडा ॥५३॥ त्तिबेमि ॥ उसुयारिज्जं चउदसमज्झयण ॥ १४ ॥

व्रत का आचरन किया ॥ ५० ॥ इस तरह वे छे ही जीव क्रमशः बोध पा के धर्म में परायण पने जन्म मरण के भय के उद्विग्न पने और दुःख के अंत की गवेषणा करने वाले हुए ॥ ५१ ॥ जिन शासन में मोह रहित पुरुषों, अपने पूर्व जन्म को जाति स्मरण ज्ञान से जानकर भावित आत्मा होने से वैराग्य पाय और बहुत अल्प समय में सब दुःखों का अंत किया मोक्ष पाये ॥५२॥ १ इषुकार राजा २ कमलावती रानी, ३ भृगु पुरोहित ४ यशा भार्या ५ देवभद्र और ६ यशोभद्र ये दोनों कुमार यों छ ही जीव कर्म रूप दावानल बुझाकर शीतली भूत बने ॥ ५३ ॥ यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि अहो जम्बू ! जैसा मैने सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह इषुकार नामक चौदवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

* *

॥ सभिक्षु नामक पञ्चदश मध्ययनम् ॥

मोणं चरिस्सामि समिच धम्म, सहिए उज्जुकडे नियाण छिन्ने ॥ सथव जहिज्ज अकाम कामे, अन्नायएसी परिव्वए स भिक्खू ॥ १ ॥ राओवरय चरेज्ज लाढे, विरए वेयवियायरक्खिए ॥ पण्णे अभिभूय सव्वदसी, जे कम्हि वि न मुच्छिए स भिक्खू ॥ २ ॥ अक्कोसवह विइत्तुधीरे, मुणीचरे लाढे नियमायगुत्ते ॥

पन्द्रहवे अध्ययन में निदान रहित करनी करने का कहा ऐसी करनी साधु को होती है इसलिये इस पन्नरहवे अध्ययन में साधु का आचार कहते हैं जो कोई शुद्धमन से श्रुत धर्म व चारित्र धर्म अंगीकार करके अन्य साधुओं के साथ सरल स्वभावी व नियाणा रहित बनकर संसारिक स्वजन संबंधियों का परिचय का त्याग करे और कामाभिलाप रहित अज्ञात कुल में आहार की गवेपणा करता हुवा विचरे वही भिक्षु कहाता है ॥ १ ॥ प्रधान साधु रागद्वेष से निवर्त कर विचरे सूत्र का ज्ञाता, बनकर अपने आत्मा को दुर्गति से बचाने वाला, प्रज्ञावान, परिषह जीतकर सर्वदर्शी बने हुवे जो कोई किसी वस्तु में मूर्च्छित होवे नहीं वही भिक्षु है ॥ २ ॥ देशांतर में विहार करते किसी स्थान कोइ आक्रोश वचन से निभत्सना करे तथा कोइ प्रहार करे सब अपने कर्मोदय रूप है ऐसा जानकर उन

सूत्र

ते कमसो बुद्धा सव्वे धम्मपरायणा ॥ जम्म मच्चु भउव्विग्गा, दुक्खस्सत गवेसिणो ॥ ५१ ॥ सासणे विगयमोहाण, पुव्विं भावण भाविया ॥ अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्सत मुवागया ॥५२॥ राया सह देवीए माहणो य पुरोहिओ ॥ माहणी दारगा चेव, सव्वे ते परिनिव्वुडा ॥५३॥ त्तिबेमि ॥ उसुयारिज्जं चउदसमज्झयणं ॥ १४ ॥

अर्थ

व्रत का आचरन किया ॥ ५० ॥ इस तरह वे छे ही जीव क्रमशः बोध पा के धर्म में परायण बने जन्म मरण के भय के उद्विग्न बने और दुःख के अंत की गवेषणा करने वाले हुए ॥ ५१ ॥ जिन शासन में मोह रहित पुरुषों, अपने पूर्व जन्म को जाति स्मरण ज्ञान से जानकर भावित आत्मा होने से वैराग्य पाय और बहुत अल्प समय में सब दुःखों का अंत किया मोक्ष पाये ॥५२॥ १ इक्षुकार राजा २ कमलावती रानी, ३ भृगु पुरोहित ४ यशा भार्या ५ देवभद्र और ६ यशोभद्र ये दोनों कुमार यों छ ही जीव कर्म रूप दावानल बुझाकर शीतली भूत बने ॥ ५३ ॥ यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि अहो जम्बू ! जैसा मैंने सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह इक्षुकार नामक चौदवा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ १४ ॥

* *

॥ सभिक्षु नामक पञ्चदश मध्ययनम् ॥

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं, सहिए उज्जुकडे नियाण छिन्ने ॥ सथव जहिज्ज अकाम कामे, अन्नायएसी परिव्वए स भिक्खू ॥ १ ॥ राओवरय चरेज्ज लाढे, विरए वेयवियायरक्खिए ॥ पण्णे अभिभूय सव्वदसी, जे कम्हि वि न मुच्छिए स भिक्खू ॥ २ ॥ अक्कोसवहं विइत्तु धीरे, मुणीचरे लाढे नियमायगुत्ते ॥

चउदहवे अध्ययन में निदान रहित करनी करने का कहा ऐसी करनी साधु को होती है इसलिये इस पन्नरहवे अध्ययन में साधु का आचार कहते हैं जो कोई शुद्धमन से श्रुत धर्म व चारित्र धर्म अंगीकार करके अन्य साधुओं के साथ सरल स्वभावी, व नियाणा रहित बनकर संसारिक स्वजन संबंधियों का परिचय का त्याग करे और कामाभिलाष रहित अज्ञात कुल में आहार की गवेषणा करता हुवा विचरे वही भिक्षु कहाता है ॥ १ ॥ प्रधान साधु रागद्वेष से निवर्त कर विचरे सूत्र का ज्ञाता, बनकर अपने आत्मा को दुर्गति से बचाने वाला, प्रज्ञावान, परिषह जीतकर सर्वदर्शी बने हुवे जो कोई किसी वस्तु में मूर्च्छित होवे नहीं वही भिक्षु है ॥ २ ॥ देशांतर में विहार करते किसी स्थान कोई आक्रोश वचन से निभर्त्सना करे तथा कोई प्रहार करे सब अपने कर्मोदय हुए हैं ऐसा जानकर उन

मूल

अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे जेकसिणं अहियासए स भिक्खू ॥ ३ ॥ पंत सयणासण भइत्ता, सीउण्हं विविहं च दसमसगं॥ अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जेकसिण अहियासए सभिक्खू ॥ ४ ॥ नो सक्कइ मिच्छई न पूय, नो य वंदणग कओ पसंस ॥से संजए सुव्वए तवस्सी, सहिएआयगवेसए स भिक्खू ॥ ५ ॥ जेण पुण जहाइ जीविय, मोह वा कसिण नियच्छई ॥ नरनारिं पजहे सया तवस्सी, न य कोऊहल उवेइ स

अर्थ

कर्मों को क्षय करने का उत्तम अवसर प्राप्त हुवा जानकर क्रोध करे नहीं, असंयम से आत्मा को गोपवे अपना मन स्थिर रखे, संसार के झगडे में पडे नहीं, विषवाद करे नहीं, वैसे ही अहंकार करे नहीं, आकुल व्याकुल होवे नहीं इस तरह जो समभाव से सब आक्रोशकारी वचन व ताडन सहन करे वही साधु कहाता है ॥३॥ प्रांत (बचे हुवे) शयनासन का सेवन करके शीत उष्ण व विविध प्रकार दंश मच्छर के परिषह को आकुल व्याकुल चित्त रहित व विषवाद रहित जो सहन करे वही भिक्षु कहाता है ॥ ४ ॥ जो सत्कार, पूजा वंदन और प्रशंसा की वांच्छा करे नहीं और जो संयति सुव्रति तपस्वी ज्ञान क्रिया सहित व आत्मगवेषक होवे वही भिक्षु कहाता है ॥५॥ जिन स्त्री पुरुषों की संगति करने से संयम रूप जीवितव्य की घात होवे तथा कषाय नो कषाय रूप संपूर्ण मोहनीय कर्म की उत्पत्ति होवे उन स्त्री पुरुषों का परिचय करे नहीं वैसे ही संसार अवस्था

भिक्खू ॥ ६ ॥ छिन्नं सर भोममतलिक्खं, सुमिण लक्खणदंडवत्थु विज्ज ॥ अग वियार सरस्स विजयं जे, विज्जाहिं न जीवति स भिक्खू ॥ ७ ॥ मंत मूल विविह विज्जचितं, वमण विरेयण धूम णेत्तसिणाणं ॥ आउरे सरण तिगिच्छं च, त परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥ ८ ॥ खत्तियगेण उग्गराय पुत्ता, माहण भोइय विविहाय

में भोगवे हुव भोगों का स्मरण भी करे नहीं, वही भिक्षु कहाता है ॥ ६ ॥ १ वस्त्रादि वस्तु अथवा अंगोपांग छेदन की विद्या २ पक्षियों अथवा मनुष्य के स्वर जानने की विद्या ३ भूकंप अथवा भूमि के लक्षण जानने की विद्या ४ खगोल (ग्रहचारादि) विद्या, ५ शुभाशुभ स्वप्न के फल जानने की विद्या, ६ स्त्री पुरुष आदि के शुभाशुभ लक्षण जानने की विद्या, ७ काष्ट के लक्षण अथवा काष्ट से अन्य वस्तु बनाने की विद्या, ८ घरादि बनाने की विद्या ९ अंगस्फुरण का ज्ञान, १० सातस्वर से गायन करने की विद्या, इत्यादि पापविद्या से जो कोई अपनी आजीविका करे नहीं उसे साधु कहना ॥ ७ ॥ १ व्यंतरादिक के मंत्र, २ जडीबूटी आदि मूल ३ औषधोपचार ४ वमन कराने का औषध, ५ विरेचन जुल्लाब का औषध, ६ धूम्रपान कराने की विद्या अथवा गुदा द्वार को धूम्र देकर रोगादि निवृत्ति के उपाय, ७ वस्त्रादिक को धूप देना ८ आंख का अंजन करना ९ पुत्रादिक के लिये स्नान कराना इत्यादि वैद्यक शास्त्र का अभ्यास करना रोगादिक से पीडित हो मात पिता आदि का स्मरण करना इतने कामों का प्रत्याख्यान करके जो कोई संयम मार्ग में प्रवर्ते उस साधु कहना ॥ ८ ॥ क्षत्रिय के समुह, कोतवाल, राजपुत्र, ब्राह्मण, राजा,

सूत्र

सिप्पिणो ॥ नो तेसिं वयइ सिलोग पूयं, त परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू ॥ ९ ॥ गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा, अप्पव्वइएण व संथुया हविज्जा ॥ तेसिं इहलोइय फलट्ठा जो संथवं न करेइ स भिक्खू ॥ १० ॥ सयणासण पाणभोयणं, विविहं खाइम साइमं परेसिं ॥ अदए पडिसेहिए नियंठे, जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू ॥ ११ ॥ जं किंचि आहार पाणं जायं, विविहं खाइम साइमं परेसिं ॥ जो तं तिविहेण नाणुकंपे मणवयकाय सुसंवुडे स भिक्खू ॥ १२ ॥ आयामगं चेव

अर्थ

प्रधान, भोगी पुरुष और चित्रकारादि विविध प्रकार की कला में कुशल पुरुषों की प्रशंसा व पूजा करना अनर्थ का कारण मान जो परिहरे उसे साधु कहना ॥ ९ ॥ दीक्षा अंगीकार किये पहिले किसी गृहस्थ को देखे होवे अथवा दीक्षा लिये पीछे किसी गृहस्थ को देखे होवे तो उन का परिचय इस लोक के फल की प्राप्ति के लिये जो करे नहीं उसे साधु कहना ॥ १० ॥ शयन, आसन, भोजन व विविध प्रकार के खादिम स्वादिम की गृहस्थ के पास याचना करे और वह देवे नहीं तो उस पर जो द्वेष करे नहीं, उसे साधु कहना ॥ ११ ॥ जो गृहस्थ के घर से अशन पानी पक्वान्न मुखवास विविध प्रकार के ग्रहण करके अपने स्वधर्मी साधुओं का संविभाग करे मन वचन व काया के योगों का वैसा ही आस्रव तथा कषाय इत्यादि के स्थान का सम्यक् प्रकार से गोप कर रखे उसे साधु कहना ॥ १२ ॥ जो ओसामन में के दाने,

जत्रायणंच, सीय सावीर च जवोदगं च ॥ न हीलए पिंडनीरसंतु पंतकुलाई परिव्वए स भिक्खू ॥ १३ ॥ सद्दा विविहा भवाति लोए, दिव्वा माणुस्सगा तिरिच्छा ॥ भीमा भय भेरवा उदारा, सोचा न विहिज्जई स भिक्खू ॥१४॥ वाद विविह समिच्च लोए, सेयाणुगए य कोवियप्पा, पन्ने अभिभूय सव्वदसी, उवसंते अवहेड० स भिक्खू ॥ १५ ॥ असिप्प जीवी अगिहे अमित्त, जिइंदिए सव्वओ विप्पमुक्को ॥

जव का भोजन ठंडा आहार, ओसामण रूक्ष शुष्क यव का भोजन काजी आदि का पानी इत्यादि निरस आहार पानी प्राप्त होने पर उस की निंदा करे नहीं उसे साधु कहना ॥ १३ ॥ इस लोक में अनेक प्रकार के द्वेष उत्पन्न करनेवाले दुःखकारी महा कठिन व अत्यंत रौद्र ऐसे देव मनुष्य तिर्यंच के शब्द सुनकर जो धर्म ध्यान से चलित होवे नहीं उसे साधु कहना ॥ १४ ॥ इस लोक में तर्क शास्त्र व्याकरण शास्त्र आदि पठन करनेवाले बहुत पाखंडी लोगों शास्त्र के परमार्थ के अज्ञान हो परस्पर अनेक प्रकार का विवाद करते हैं ऐसे क्लेश में नहीं पडते हुवे उन के तरफ से जो परिषह होवे उसे समभाव से सहे परंतु किसी प्रकार से उन को पीडा उत्पन्न करे नहीं स्वत के आत्मा को आगम का ज्ञाता मानकर सदैव उपशांत बनकर सदैव ज्ञान दर्शन व चारित्र में रमण करे उसे साधु कहना ॥ १५ ॥ सर्वथा प्रकार से घर की ममत्व का त्याग कर बाह्य आभ्यंतर परिग्रह से मुक्त बनकर चित्रकार प्रमुख की कला से उपजीविका करे नहीं और

सूत्र

सिप्पिणो ॥ नो तेसिं वयइ सिलोग पूर्य, त परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू ॥ ९ ॥ गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा, अप्पव्वइएण व सथुया हविज्जा ॥ तेसिं इहलोइय फलट्ठा जो सथव न करेइ स भिक्खू ॥ १० ॥ सयणासण पाणभोयण, विविह खाइम साइम परेसिं ॥ अदए पडिसेहिए नियठे, जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू ॥ ११ ॥ ज किंचि आहार पाण जाय, विविहं खाइम साइमं परेसिं ॥ जो त तिविहेण नाणुकपे, मणवयकाय सुसंवुडे स भिक्खू ॥ १२ ॥ आयामग चेव

अर्थ

प्रधान, भोगी पुरुष और क्षित्रियादि विविध प्रकार की कला में कुशल पुरुषों की प्रशंसा व पूजा करना अनर्थ का कारण जान जो परिहरे उसे साधु कहना ॥ ९ ॥ दीक्षा अंगीकार किये पहिले किसी गृहस्थ का देखे होवे अथवा दीक्षा लिये पीछे किसी गृहस्थ को देखे होवे या उन का परिचय इस लोक के फल की प्राप्ति के लिये जो करे नहीं उसे साधु कहना ॥१०॥ शयन, आसन भोजन व विविध प्रकार के खादिम स्वादिम की गृहस्थ के पास याचना करे और वह देवे नहीं तो उस पर जो द्वेष करे नहीं, उसे साधु कहना ॥ ११ ॥ जो गृहस्थ के घर से अशन पानी पक्वान्न मुखवास विविध प्रकार के प्राप्त करके अपने स्वधर्मी साधुओं का संविभाग करे मन वचन व काया के योगों का वैसा ही आश्रव तथा कषाय उत्पत्ति के स्थान का सम्यक् प्रकार से गोप कर रखे उसे साधु कहना ॥ १२ ॥ जो ओसामन में के दाने,

जवोदणच, सीय सोवीर च जवोदग च ॥ न हीलए पिंडनीरसंतु पंतकुलाई परिव्वए स भिक्खू ॥ १३ ॥ सद्दा विविहा भवंति लोए, दिव्वा माणुस्सगा तिरिच्छा ॥ भीमा भय भेरवा उदारा, सोच्चा न विहिज्जई स भिक्खू ॥१४॥ वाद विविह समिच्च लोए, सेयाणुगए य कोवियप्पा, पन्ने अभिभूय सव्वदसी, उवसते अवहेडए स भिक्खू ॥ १५ ॥ असिप्प जीवी अगिहे अमित्त, जिइंदिए सव्वओ विप्पमुक्को ॥

जव का भोजन ठंडा आहार ओसमान रूखसुक्क यव का भोजन कांजी आदि का पानी इत्यादि निरस आहार पानी प्राप्त होने पर उस की निन्दा करे नहीं उसे साधु कहना ॥ १३ ॥ इस लोक में अनेक प्रकार के द्वेष उत्पन्न करनेवाले दुःखकारी महा कठिन व अत्यंत रौद्र ऐसे देव मनुष्य तिर्यंच के शब्द सुनकर जो धर्म ध्यान से चलित होवे नहीं उसे साधु कहना ॥ १४ ॥ इस लोक में तर्क शास्त्र व्याकरण शास्त्र आदि पठन करनेवाले बहुत पाखंडी लोगों शास्त्र के परमार्थ के अजान हो परस्पर अनेक प्रकार का विवाद करते हैं ऐसे क्लेश में नहीं पडते हुवे उन के तरफ से जो परिषह होवे उसे समभाव से सहे परंतु किसी प्रकार से उन को पीडा उत्पन्न करे नहीं स्वतःक आत्मा को आगम का ज्ञाता मानकर सदैव उपशांत बनकर सदैव ज्ञान दर्शन व चारित्र में रमण करे उसे साधु कहना ॥ १५ ॥ सर्वथा प्रकार से घर की ममत्व का त्याग कर बाह्य आभ्यंतर परिग्रह से मुक्त बनकर चित्रकार प्रमुख की कला से उपजीविका करे नहीं और

सूत्र

अणुक्कसाई लहुअप्पभक्खी, चिच्चा गिहं एगचरे स भिक्खू ॥ १६ ॥
त्तिबेमि ॥ इति भिक्खूनामं पचदस मज्झयण सम्मत्त ॥ १५ ॥

अर्थ

मल्प भोजनादि से इन्द्रियों का जय कर कषायों को उपशांत कर अभिमान व राग द्वेष रहित जो विचरे उसे साधु कहना ॥ १६ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि जैसे मैंने श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह भिक्षु नामक पन्दरहवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ १८ ॥

॥ ब्रह्मचर्य समाधि स्थानक नामक षोडश मध्ययनम ॥

(गाथा) सुय मे आउस तेण भगवया एवं मक्खाय, इह खलु थेरेहिं भगवतेहिं दसबंभचेर समाहिठाण पण्णत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म-सजमबहुले सवर बहुले, समाहि बहुले, गुत्ते, गुत्तिदिए, गुत्तबभयारी, सयाअप्पमत्ते विहरेज्जा ॥ कयरे खलु ते थेरेहिं भगवतेहिं दसबंभचेर समाहि ठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म सजम बहुले संवर बहुले समाहि बहुले गुत्ते, गुत्तिदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरज्जा? ॥इमे खलु ते थेरेहिं भगवतेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा पण्णत्ता,

पन्नरहवे अध्ययन में साधु के गुन कहे साधु होते हैं वे ब्रह्मचारी होते हैं इस लिये इस सोलवे अध्ययन में ब्रह्मचर्य का कथन करते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि अहो आयुष्मन जम्बू' मैंने सुना है कि भगवान ने इस प्रकार कहा है श्री स्थविर भगवान ने ब्रह्मचर्य में समाधि रहने के दस स्थानक कहे हैं इन का सुनकर व अवधार कर संयम को वृद्धि करने वाले संवर की वृद्धि करन वाले, समाधि की वृद्धि करने वाले मन वचन काया के योगों का गोपन करने वाले, गुप्त इन्द्रियों वाले व गुप्त ब्रह्मचर्य पालने वाले, संयमी सदैव अप्रमादि बनकर विचरे अहो-स्थविर भगवान ने ऐसे दस ब्रह्मचर्य में समाधि के स्थान कौनसे २ कहे हैं कि जिन को सुनकर व अवधार कर संयम संवर व समाधि की वृद्धि करने वाले, तीनों योगों का गोपन करने वाले, गुप्तेन्द्रिय, व गुप्त ब्रह्मचारी सदैव अप्रमत्तपने विचरे ?

सूत्र

अणुक्कसाई लहुअप्पभक्खी चिच्चा गिहं एगचरे स भिक्खू ॥ १६ ॥ त्तिबेमि ॥ इति भिक्खुनाम पचदस मज्झयण सम्मत्त ॥ १५ ॥

अर्थ

अल्प भोजनादि से इन्द्रियों का जय कर कषायों को उपशांत कर अभिमान व राग द्वेष रहित जो विचरे उसे साधु कहना ॥ १६ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि जैसे मैंने श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह भिक्षु के धर्म नामक पन्नरहवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ १० ॥

दीहकालियंवा रोगायक हवेज्जा, केवलि
भेयवा लभेज्जा, उम्मायंवा पाउणिज्जा,, पण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा॥ तम्हा नो इत्थि पसु पडग संसत्ताइ सयणासणाइ सेविज्जा ॥ १ ॥ नो इत्थीण कह कहित्ता भवति से निग्गथे। त कहमिति चे ? आयरियाह निग्गथस्स खलु इत्थीण कह कहमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे सकावा, कंखावा वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा भेदवा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीह कालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा।

पालता हूं जिस का फल मुझे मीलेगा या नहीं यह व्यर्थ कष्ट तो नहीं है ऐसे व्रत के फल में शंका होगा, ४ इस विचार से मन से ब्रह्मचर्य का विनाश होवे ५ विषय की अभिलाषा होने से चित्त मन उन्मादी बने, ६ विषय की बहुत अभिलाषा होने से अनेक प्रकार के दीर्घ काल रहे वैसे रोग की प्राप्ति होवे और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्ट होवे इस तरह के दुर्गुण को जानकर स्त्री पशु व नपुंसक सहित स्थानक पाट पाटला का सेवन करने वाला होवे नहीं ॥ १ ॥ दूसरा स्थान-जो स्त्री के श्रृंगार की कथा करे नहीं उसे साधु कहना प्रश्न स्त्री के श्रृंगार की कथा करनेवाले को साधु क्यों नहीं कहना ? उत्तर-जो ब्रह्मचारी स्त्री के श्रृंगार की कथा करेगा उस के ब्रह्मचर्य में १ शंका, २ कांक्षा ३ वितिगिच्छा, ४ संयम का भंग ५ उन्माद की प्राप्ति ६ दीर्घ काल का रोग और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्टता इन सात दुर्गुणों की प्राप्ति होगी ऐसा जान

सूत्र

जे भिक्खू सोचा निसम्म-संजम बहुले,संवर बहुले समाहि बहुले, गुत्ते, गुत्तिंदिए, गुत्तबम्भचारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥ तंजहा विवित्ताइ सयणासणाइ सेवेज्जा से निग्गंथे । नो इत्थी पसु पंडग-संसत्ताइ सयणासणाइ सेवित्ता भवति से निग्गंथे तं कहमितिचे ? आयरियाह निग्गंथस्स खलु इत्थि पसु पंडग संसत्ताइ सयणासणाइ सेवमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संकावा, कंखावा वितिगिच्छावा समुप्पज्जिज्जा

अर्थ

उत्तर—ये निम्नोक्त दश ब्रह्मचर्य में समाधि स्थानक कहे हैं कि जिन को सुनकर संयम संवर व समाधि की वृद्धि करने वाले गुप्त गुप्तेन्द्रिय व गुप्त ब्रह्मचारी सदैव अप्रमत्तपने विचरे तद्यथा—जिस स्थान स्त्री, पशु पंडग रहता होवे उस स्थान में वैसे ही शय्या आसन पाट पाटले आदि जो भोगते नहीं उसे साधु कहना परंतु स्त्री पशु पंडगवाला शयन, आसन, पाट पाटला वगैरह का सेवन करते होवे उसे साधु नहीं कहना प्रश्न-स्त्री पशु पंडग सहित स्थानक पाट पाटला का सेवन किस कारन नहीं करना ? उत्तर जो साधु निर्ग्रंथ स्त्री पशु व नपुंसक सहित स्थानक पाट पाटले का सेवन करेगा, उस ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का पालन करने में शंका होगा कि मैं ब्रह्मचर्य पालूं या नहीं अथवा अन्य को भी उस के ब्रह्मचर्य पालन में शंका होगा कि यह स्त्री आदि के संसर्ग में रहता है तो क्या ब्रह्मचर्य पालता होगा या नहीं २ स्त्री आदि के साथ व्यभिचार सेवन करने की इच्छा होगी, ३ (

दीहकालियं वा रोगायंक हवेज्जा, केवलि

भेदवा लभेज्जा, उम्मायंवा पाउणिज्जा,, दीहकालियंवा रोगायक हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा॥ तम्हा नो इत्थि पसु पडग संसत्ताइ सयणासणाइ सेविज्जा ॥ १ ॥ नो इत्थीण कह कहित्ता भवति से निग्गथे। त कहमिति चे ? आयरियाह निग्गथस्स खलु इत्थीण कह कहमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे सकावा, कखावा वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा भेदवा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीह कालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा।

पालता हूं जिस का फल मुझे मीलेगा या नहीं यह व्यर्थ कष्ट तो नहीं है ऐसे व्रत के फल में शंका होगा, ४ इस विचार से मन से ब्रह्मचर्य का विनाश होवे ५ विषय की अभिलाषा होने से चित्त मन उन्मादी बने, ६ विषय की बहुत अभिलाषा होने से अनेक प्रकार के दीर्घ काल रहे वैसे रोग की प्राप्ति होवे और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्ट होवे इस तरह के दुर्गुण को जानकर स्त्री पशु व नपुसक सहित स्थानक पाट पाटला का सेवन करने वाला होवे नहीं ॥ १ ॥ दूसरा स्थान-जो स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं उसे साधु कहना प्रश्न स्त्री के शृंगार की कथा करनेवाले को साधु क्यों नहीं कहना ? उत्तर-जो ब्रह्मचारी स्त्री के शृंगार की कथा करेगा उस के ब्रह्मचय में १ शंका, २ कांक्षा, ३ वितिगिच्छा, ४ संयम का भंग ५ उन्माद की प्राप्ति ६ दीर्घ काल का रोग और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्टता इन सात दुर्गुनों की प्राप्ति होगी ऐसा जान

सूत्र

जे भिक्खू सोच्चा निसम्म-संजम बहुले,सवर बहुले समाहि बहुले, गुत्ते, गुत्तिंदिए, गुत्तबम्भयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥ तजहा विवित्ताइ सयणासणाइ सेवेज्जा से निग्गथे । नो इत्थी पसु पडग संसत्ताइ सयणासणाइ सेवित्ता भवति से निग्गथे तं कहमितिचे ? आयरियाह निग्गथस्स खलु इत्थि पसु पडग ससत्ताइ सयणासणाइ सेवमाणस्स बभयारिस्स बंभचेरे सकावा, कखावा वितिगिच्छावा समुपज्जिज्जा

अर्थ

उत्तर—ये निम्नोक्त दश ब्रह्मचर्य में समाधि स्थानक कहे हैं कि जिन को मनकर संयम, सवर व समाधि की वृद्धि करने वाले गुप्त गुप्तेन्द्रिय व गुप्त ब्रह्मचारी सदैव अप्रमत्तपने विचरे तद्यथा—जिस स्थान स्त्री, पशु पंडग रहता होवे उस स्थान में वैसे ही शैय्या आसन पाट पाटले आदि जो भोगव नहीं उसे साधु कहना परंतु स्त्री पशु पंडगवाला शयन, आसन, पाट पाटला वगैरह का सेवन करते होवे उसे साधु नहीं कहना प्रश्न-स्त्री पशु पंडग सहित स्थानक पाट पाटला का सेवन किस कारन नहीं करना ? उत्तर जो साधु निर्ग्रंथ स्त्री पशु व नपुंसक सहित स्थानक पाट पाटले का सेवन करेगा, उस ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का पालन करने में शंका होगा कि मैं ब्रह्मचर्य पालू या नहीं अथवा अन्य को भी उस के ब्रह्मचर्य पालन में शंका होगा कि यह स्त्री आदि के संसर्ग में रहता है तो क्या ब्रह्मचर्य पालता होगा या नहीं २ स्त्री आदि के साथ व्यभिचार सेवन करने की इच्छा होगा, ३ विचिकित्सा में ब्रह्मचर्य

निग्गंये। त कहमिति चे ? आयरियाह—निग्गंथस्स खलु—इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइ मणोरमाइ आलोएमाणस्स निज्झाएमाणस्स बभयारिस्स यभचेरे सका वा कंखावा वितिगिच्छा वा समुपज्जिज्जा,भेद वा लभेज्जा उम्मायवा पाउणिज्जा,दीह कालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा, । तम्हा नो इत्थीण इंदियाइ मणोहराइ मणोरमाइ आलोएत्ता निज्झाएज्जा ॥ ४ ॥ नो इत्थीणं कुडुंतर सि वा, दुसतरसि वा,भित्तंतरसि वा,कुइयसद्द वा,रुइयसद्द वा,गीयसद्द वा, हसिय सद्दवा, थणियसद्द वा, कंदियसद्द वा, विलवियसद्द वा, सुणेत्ता भवति, से निग्गंथे

स्त्री के मनोहर अंगोपांग निरखे उसे साधु क्यों नहीं करना? उत्तर—जो ब्रह्मचारी स्त्री के मनोहर मनोरम अंगोपांग नीरखेगा उस के १ शंका २ कांक्षा, ३ वितिगिच्छा, ४ व्रतभग, ५ उन्माद, ६ दीर्घ काल का रोग और ७ धर्म से भ्रष्टता यह सात दुर्गुनों की प्राप्ति होती है ऐसा जान साधु को स्त्री के अंगोपांग नहीं देखना ॥ ४ ॥ पांचवा स्थानक—ब्रह्मचारी मैथुन सेवन के समय होते हुवे स्त्री के कोकिल जैसे शब्द, रुदन के शब्द, गीत गायन के शब्द हास्य, स्नेह लुब्ध के शब्द, आक्रंद के शब्द, पति के विरह से व्याकुलता के शब्द, सिसकिसाट के शब्द, इत्यादि कामोत्पादक शब्द पाषाणादिक की

सूत्र

तम्हा नो इत्थि कहं कहेज्जा ॥ २ ॥ नो इत्थीण सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरित्ता भवइ से निग्गथे । त कहमितिचे ? आयरियाह निग्गथस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागयस्स बभयारिस्स बभचेरे-सकावा, कखावा, वितिगिच्छावा समुप्पज्जिज्जा भेदवा लभेज्जा उम्मायवा पाउणिज्जा, दीहकालियवा रोगायक हवेज्जा केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा । तम्हा नो इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरेज्जा ॥ ३ ॥ नो इत्थीण इदियाइ मणोहराइ मणोरमाइ आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवति से

अर्थ

कर साधु स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं ॥ २ ॥ तीसरा स्थानक-स्त्री के साथ एक आसन पर बैठे नहीं * उसे निर्ग्रंथ कहना प्रश्न-स्त्री के साथ एक आसन पर ब्रह्मचारी को क्यों नहीं बैठना ? उत्तर-जो ब्रह्मचारी स्त्री के साथ एक आसन पर बैठेगा उस को उक्त प्रकार १ शंका, २ कांक्षा, ३ विति गिच्छा, ४ व्रत भंग ५ उन्माद, ६ दीर्घ काल का रोग, और ७ केवली प्रणीत धर्म से भ्रष्टता यों सात दुर्गुनों की प्राप्ति होती है ऐसा जान निर्ग्रंथ स्त्री के साथ एक आसन पर बैठे नहीं ॥ ३ ॥ चौथा स्थानक-स्त्री के मनोहर व मनोरम स्तन जघन वगैरह अंगोपांग जो निरखे नहीं उसे निर्ग्रंथ कहना जो

* जहां स्त्री बैठकर उठ गई होवे उस स्थान पर एक मुहूर्त वक्त तक बैठे नहीं

पुव्वकीलिय अणुसरित्ता हवइ से निग्गथे । त कहमिति चे ? आयरियाह—निग्गथस्स खलु इत्थीणं पुव्वरय पुव्वकीलियं अणुसरेमाणस्स बभयारिस्स बभचेरे संकावा कखावा वितिगिच्छावा समुपज्जिज्जा, भेय वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा, । तम्हा नो इत्थीणं पुव्वरय पुव्वकील्यि अणुसरेज्जा ॥ ६ ॥ नो पणीय आहार आहारित्ता हवइ से निग्गथे । त कहमिति चे ? आयरियाह—निग्गथस्स खलु पणीय आहार आहारेमाणस्स बभयारिस्स बभचेरे सकावा कखावा वितिगिच्छावा

रति सेवन व काम क्रीडा किया होवे उस का जो स्मरण करे नहीं उसे साधु कहना प्रश्न—पहिले स्त्री के साथ रति सेवन किये हुवे का स्मरण करे उसे साधु क्यों नहीं कहना ? उत्तर—जो ब्रह्मचारी प्रथम भोगावस्था में स्त्री आदि के साथ रति सेवन व काम क्रीडा की होवे उसे याद करेगा, तो उसे १ शंका २ कांक्षा, ३ वितिगिच्छा, ४ व्रतभंग ५ उन्माद, ६ दीर्घ काल का रोग, और ७ धर्म से भ्रष्टता होगा ऐसा जानकर निर्ग्रंथ पूर्वकृत रति व काम क्रीडा का स्मरण करे नहीं ॥६॥ सातवा स्थानक-जो सदैव घृतादिवाला स्निग्ध आहार करे नहीं उसे साधु कहना प्रश्न-ब्रह्मचारी सदैव सरस आहार क्यों करे नहीं ? उत्तर-ब्रह्मचारी सदैव सरस स्निग्ध आहार करेगा उसे १ संका,

सूत्र

। त कहमितिचे? आयरियाह—निग्गथस्स खलु इत्थीण कुड्डतरंसि वा, दूसतरंसि वा भित्तरंसि वा कुइयसद्दवा, रुइयसद्दवा, गीयसद्द वा हसियसद्द वा थणियसद्द वा, कंदियसद्द वा, विलवियसद्द वा, सुणेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संकावा कंखावा विति-गिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा भेदवा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंक हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा नो इत्थीण कुड्डतरंसि वा, दूसतरंसि वा भित्तरंसि वा, कुइयसद्दं वा, रुइयसद्द वा, गीयसद्द वा, हसियसद्दं वा, थणियसद्द वा कंदियसद्द वा, विलवियसद्द वा सुणमाणे विहरेज्जा ॥५॥ नो इत्थीण

अर्थ

भित्ति के अंतर से, टट्टी व वस्त्रादिक के पडदे के अंतर से जो सुने नहीं उसे निर्ग्रन्थ कहना प्रश्न—ऐसा क्यों कहा ? उत्तर जो कोई निर्ग्रन्थ स्त्री के कोकिला जैसे शब्द, रोने के शब्द गीत गायन के शब्द हास्य स्नेह व भय के शब्द, आक्रंदकारी शब्द, और विलापात के शब्द वगैरह, पडदे व भित्ति के अंतर से सुनते हैं उन के ब्रह्मचर्य में १ शंका २ कांक्षा ३ वितिगिच्छा, ४ व्रत भंग, ५ उन्माद, ६ दीर्घ काल का रोग और ७ धर्म से भ्रष्टता होता है इन सात दुर्गुनों को जानकर निर्ग्रन्थ को स्त्री के उक्त प्रकार के शब्द श्रवण नहीं करते हुवे विचरना ॥ ५ ॥ पांचवा स्थानक—संसार अवस्था में स्त्री के साथ

बंभचेररओ थीण, चक्खुगिज्झं विवज्जए ॥ ४ ॥ कुइत रुइत गीत हसित थणिय कदिय ॥ बमचेररओ थीण, सोयगिज्झ विवज्जए ॥ ५ ॥ हास कीड रइं दप्प, सहसावित्ता सिणाणि य ॥ बभचेर रओ थीण, णाणुचिंते कयाइवि ॥ ६ ॥ पणिय भत्तपाण तु, खिप्पं मय विवड्ढण ॥ बभचेर रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥ ७ ॥ धम्म लद्ध मित काल, जत्तत्थ पणिहाणव ॥ नाइमत्त तु भुजिज्जा, बभचेर रओ सया ॥ ८ ॥ विभूस परिवज्जेज्जा, सरीरपरिमडण ॥ बभचेर रओ भिक्खु, सिंगारत्थ न

का आकार इतना सराग दृष्टि से देखे नहीं ब्रह्मचय में रक्त साधु स्त्री का कोकिला जैसे शब्द रुदन के, गीत के, हसने के स्नेह लुब्धता के आक्रंद के वगैरह कण को गृद्ध करे ऐसे शब्दोंका त्याग करे ॥५॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु संसार अवस्था में स्त्री के साथ हास्य कामक्रीडा रति सेवन किया होवे स्त्री को त्रास उपजाया होवे और साथ भोजन किया होवे उस की चिंतवना मात्र भी करे नहीं ॥ ६ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु विषय की वृद्धि करने वाला स्निग्ध आहार सदैव करे नहीं ॥ ७ ॥ ब्रह्मचय में रक्त साधु-साधु का धर्म निर्वाह करने के लिये निर्दोष आहार मिले उसे गृद्धता रहित क्षुधा ि तना आहार कर परतु मर्यादा स अधिक आहार करे नहीं ॥ ८ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु स्नान करना, केशसंमार्जन करना

सूत्र

च्छावा समुपज्जिजा, भेदंवा लभेजा, उम्मायवा पाउणिज्ज। दीहकालियवा रोगायक हवेज्जा, केवलि पण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा । तम्हा नो सद रूव रस गंध फासाणु-वाती भवेज्जा, दसमे बंभचेर समाहि ठाणे भवति ॥१०॥ भवति इत्थ सिलोगा— (गाथा) ज विवित्त मणाइण्णं, रहिय इत्थिजणेण य ॥ बंभचेरस्स रक्खट्ठा, आलयतु निसेवए ॥ १ ॥ मणपल्हाय जणणी, कामरागविवड्ढणी ॥ बंभचेर रओ भिक्खू थीकहं तु विवज्जए ॥ २ ॥ समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं ॥ बंभचेर रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥ ३ ॥ अंगपच्चंग संठाणं, चारुल्लविय पेहियं ॥

अर्थ

ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा वितिगिच्छा, व्रत भंग, उन्माद दीर्घ काल का रोग और धर्म से भ्रष्टता होगी ऐसे सात दुर्गुणों जानकर इन्द्रियों के विषय के भोक्ता बने नहीं ॥ १० ॥ यह दश ब्रह्मचर्य के समाधि स्थानक हुए अब आगे इन दशों का कथन संक्षेप से गाथा द्वारा कहते हैं ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये स्त्री पशु पंडग रहित स्थानक का सेवन करे ॥ १ ॥ मन को आनंद करनेवाली विषय राग बढान वाली स्त्री संबंधी शृंगार प्रमुख की कथा ब्रह्मचर्य में रक्त मुनि करे नहीं ॥ २ ॥ और ब्रह्मचर्य में रमण करने वाला साधु स्त्री साथ का संसर्ग व उस के साथ वारंवार वार्तालाप का त्याग करे ॥ ३ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु स्त्री का मनोहर बोलना, कटाक्ष से देखना, स्त्री के स्तन, मुख मस्तकादिक

संभचेररओ थीण, चक्खुगिज्झं विवज्जए ॥ ४ ॥ कुइत रुइत गीत, हसित थणिय कंदिय ॥ बंभचेररओ थीण, सोयगिज्झं विवज्जए ॥ ५ ॥ हास कीड रई दप्प, सहसावित्ता सिणाणि य ॥ बंभचेर रओ थीण, णाणुचिंते कयाइवि ॥ ६ ॥ पणियं भत्तपाण तु, खिप्पं मय विवड्ढण ॥ बंभचेर रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥ ७ ॥ धम्म लद्ध मित काल, जत्तत्थं पणिहाणव ॥ नाइमत्त तु भुंजिज्जा, बंभचेर रओ सया ॥ ८ ॥ विभूसं परिवज्जेजा, सरीरपरिमंडण ॥ बंभचेर रओ भिक्खू, सिंगारत्थं न

कर आकार इतना सराग दृष्टि से देखे नहीं ब्रह्मचर्य में रक्त साधु स्त्री का कोकिला जैसे शब्द रुदन के, गीत के, हसने के स्नेह लुब्धता के आक्रंद के वगैरह कण को गृद्ध करे ऐसे शब्दोंका त्याग करे ॥५॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु संसार अवस्था में स्त्री के साथ हास्य कामक्रीडा रति सेवन किया होवे स्त्री को त्रास उपजाया होवे और साथ भोजन किया होवे उस की चिंतवना मात्र भी करे नहीं ॥ ६ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु विषय की वृद्धि करने वाला स्निग्ध आहार सदैव करे नहीं ॥ ७ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु-साधु का धर्म निर्वाह करने के लिये निर्दोष आहार मिले उसे गृद्धता रहित क्षुधा जितना आहार कर परतु मर्यादा से अधिक आहार करे नहीं ॥ ८ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु स्नान करना, केशसंमार्जन करना

सूत्र

धारए ॥ ९ ॥ सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य ॥ पंचविहे कामगुणे, निच्चसो परिवज्जए ॥ १० ॥ आलओ थीजणाइण्णो थीकहा य मणोरमा ॥ संथवो चेव नारीणं, तासिंदिय दरिसणं ॥ ११ ॥ कुइयं रुइयं गीयं, सहभुत्ता सिणाणिय ॥ पणीयं भत्त पाणं च अइमायं पाण भोयणं ॥ १२ ॥ गत्त भूसण मिट्ठं च काम भोगा य दुज्जया ॥ नरस्सत्त गवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥ १३ ॥ दुज्जए काम भोगे य निच्चसो परिवज्जए ॥ संकाठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं ॥ १४ ॥

अर्थ

वगैरह शरीर का शृंगार करे नहीं ॥ ९ ॥ ब्रह्मचर्य में रक्त साधु कामगुन के उत्पादक शब्द, रूप, गंध रस व स्पर्श का सेवन करे नहीं ॥ १० ॥ अब यही दश स्थानक विशेष संक्षेप से कहते हैं १ स्त्री सहित स्थान में रहना २ स्त्री की मनोरम कथा करना ३ स्त्री का परिचय ४ स्त्री की इन्द्रियों का निरीक्षण, ५ विषयसमय के रुदन गीत वगैरह शब्द सुनना, ६ पहिले की हुई हास्य क्रीडा का स्मरण करना ७ सरस आहार करना, ८ मर्यादा उपरांत भोजन करना, ९ शरीर की विभूषा करना और १० दुर्जय पांच प्रकार के शब्दादिक काम भोग ये दश बोल आत्मा को तालपुट विष समान आत्म गुण के घातक हैं ॥ ११-१३ ॥ इसलिये इन दुर्जय काम भोगों को एकाग्र चित्तवाला साधु सदैव वर्जे वैसे ही ब्रह्मचर्य में रक्त साधु इन शंका के स्थान का त्याग करे ॥ १४ ॥ इस प्रकार धर्म रूप रथ चलाने वाले सारथी समान साधु व

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइम धम्म सारही ॥ धम्मारामेरए दते, बभचेर समाहिए ॥ १५ ॥ देव दाणव गधव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा ॥ बभयारिं नमसति, दुक्करं जे करति त ॥ १६ ॥ एस धम्मे धुवे निचे, सासए जिण देसिए ॥ सिद्धा सिज्झति चाणेण, सिज्झिस्सति तहावरे ॥ १७ ॥ त्तिबेमि ॥ इति बभचेर समाहि–ठाण सोलस्समज्झयण सम्मच ॥ १६ ॥ * * * * *

ध्यानरूप बगीचे में रमन करते मस्त बने और इन्द्रियों को दमन करते ब्रह्मचर्य में समाधि भाव युक्त धर्मध्यान में रमन करे ॥ १५ ॥ जिस ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना अति दुष्कर है ऐसे व्रत को पालन करने वाले ब्रह्मचारी साधु को वैमानिक देव दानव-ज्योतिषी देव, भुवनपति देव, गंधर्व, राक्षस किन्नरादि वाणव्यंतर यों सब देवता नमस्कार करते हैं ॥ १६ ॥ यह ब्रह्मचर्य रूप धर्म ध्रुव है सदैव शाश्वत है ऐसे ब्रह्मचर्य पालनेवाले गत काल में अनंत सिद्ध हुए, वर्तमान में संख्यातें सिद्ध होते हैं और अनागत में अनन्त सिद्ध होंगे ॥ १७ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि अहो जम्बू! जैसा मैंने सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह ब्रह्मचर्य समाधि नामक सोलहवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

॥ पावसमणिज्ज सप्तदश अध्ययनम् ॥

सूत्र

(काव्य) जेकेइ उ पव्वइए नियठे, धम्मं सुणित्ता विणओववन्ने ॥ सुदुल्लहं लहिउ बोहिलाभं विहरज्ज पच्छा य जहा सुहंतु ॥ १ ॥ सेज्जा दढा पाउरणमि अत्थि, उप्पज्जइ भोत्तु तहेव पाउ ॥ जाणामि जं वट्टइ आउसोत्ति किं नाम काहामि सुएण भंते ॥ २ ॥ (गाथा)—जेकेई पव्वइए निद्दासील पगामसो ॥ भोच्चा पेच्चा सुह सुवइ, पाव समणे त्ति वुच्चई ॥ ३ ॥आयरिय उवज्झाएहिं,सुय विणय च गाहिए॥

अर्थ

सोलहवे अध्ययन में ब्रह्मचर्य की गुप्ति का कथन किया उस का पालन पापी साधु नहीं कर सकता है इस लिये सतरहवे अध्ययन में पापी साधु का कथन करते हैं—जो कोई साधु निर्ग्रंथ प्रथम विनय मार्ग संयम धर्म सुनकर और अति दुर्लभ ऐसा समकित (भाव संयम) प्राप्त कर फिर शिथिलाचारी बनकर जैसे शरीर का सुख होवे वैसे विचरे ॥ १ ॥ उसे गुरु हित शिक्षा देवे तो वह कहे कि—अहो पूज्य ! मुझे तो रहने को अच्छा स्थान मिलता है, पहिनने को वस्त्र मिलते हैं, खानेपीने को अच्छा आहार पानी मिलता है और श्रीआदिक पदार्थ जिस तरह वर्तते हैं वह मैं जानता हूं तो अब शास्त्राभ्यास करके क्या करना है ? ॥ २ ॥ अब ऐसे साधु के कर्तव्य कहते हैं—जो कोई प्रव्रजित बनकर बहुत निद्रा लेवे और आहार पानी करके बहुत काल तक सुख से सोता रहे उसे पाप श्रमण (साधु) कहते हैं॥ ३॥ आचार्य उपाध्याय के पास से

ते चेव खिंसई बाले, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ४ ॥ आयरिय उवज्झायाण, सम्मं न पडितप्पई ॥अप्पडिपूयए थद्धे पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ५ ॥ सम्मद्दमाणो पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ॥ असजते सजय मन्नमाणा, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ६ ॥ सथार फलग पीढ, निसेज्ज पायकबल ॥ अप्पमज्जिय मारुहति पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ७ ॥ दवदवस्स चरति पमत्तय अभिक्खण ॥ उल्लघणे य चण्डेय, पाव समणे त्ति वुच्चई ॥ ८ ॥ पडिलेहेति पमत्ते, अवउज्झइ पायकबल ॥ पडिलेहा

श्रुत व विनय मार्ग का अभ्यास कर उन में प्रवीण हुए पीछे वही अज्ञानी उन आचार्यादि की हीलना निंदा करे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥४॥ जो कोइ अभिमान में मस्त बना हुवा आचार्य उपाध्याय व गुरुवादिक की शुद्ध मन से सेवा करे नहीं और उन की पूजा श्लाघा करे नहीं उस को पाप श्रमण कहते हैं ॥ ५ ॥ जो कोई द्वीन्द्रियादि त्रस प्राणी धान्य बीज तृणादि हरिकाय को पांव से दाबता हुवा चले इस प्रकार असंयम करता हुवा भी स्वतः को संयति माने उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ ६ ॥ संथारा, (बीछोना)पाट, पाटला शैय्या व कम्बल को विना पूंजे उपभोग में लेवे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ ७ ॥ जो कोई साधु बहुत शीघ्रता से चले, ईर्या समिति में प्रमादी होवे, बारंवार यथा कर्म क्रिया करने का उल्लंघन करे और क्रोधी होवे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ ८ ॥ जो प्रमादी बन पडिलेहना करते कुछ देखे कुछ न

सूत्र

अणाउत्ते, पावसमण त्ति वुच्चई ॥९॥ पडिलेहेइ पमत्ते, से किंचि हु निसामिया ॥ गुरु परिभावए निच्च, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १० ॥ बहुमाई य मुहरी थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ॥ असंविभागी अचियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ११ ॥ विवादंच उदीरेइ, अहम्मे अत्तपन्नहा ॥ वुग्गहे कलहे रत्ते पाव समणे त्ति वुच्चई ॥ १२ ॥ अथिरासणे कुक्कुइए जत्थ तत्थ निसीयई ॥ आसणम्मि अणाउत्ते, पाव समणे त्ति वुच्चई ॥ १३ ॥ ससरक्खपाए सुवइ, सेज्जं न

अर्थ

देखे, कम्बल पात्रादि उपकरण जहां तहां डाल देवे और प्रतिलेखना में असावधान होवे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥९॥ जो परिलेखना करता हुवा बातों करे अथवा बातों सुनता हुवा उपयोग शून्य हो प्रतिलेखन करे गुरु के वचन का पराभव करे, और सदैव असाता उत्पन्न करे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १० ॥ जो बहुत मायावी बहुत बोलनेवाला (वाचाल) अभिमानी, रसलुब्ध, अजितेन्द्रिय असंविभागी, और अप्रीतिकारी होवे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ ११ ॥ जो विवाद की उदीरणा करे अधर्मी होवे, अपनी प्रज्ञा से दूसरे की घात करनेवाला होवे, और क्लेश में रक्त होवे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १२ ॥ जो हलनचलते अस्थिर आसन पर बैठे, कचकचाट होवे वैसे आसन पर बैठे और सावधान पना रहित आसन पर बैठे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १३ ॥ सचित्त रज से भरे हुवे पांव को बिना पूंजे तथा

पडिलेहइ ॥ सयारए अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १४ ॥ दुद्ध दही विगईओ, आहारेइ अभिक्खणं ॥ अरते य तवोकम्मे पाव समणे त्ति वुच्चई ॥ १५ ॥ अत्थ तम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खणं ॥ चोइओ पडिचोएइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १६ ॥ आयरिय परिच्चाई, परपासंड सेवए ॥ गाणंगणिए दुब्भूए पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १७ ॥ सय गेहं परिचज्ज, परगेहसि वावरे ॥ निमित्तेण य ववहरइ पाव समण त्ति वुच्चई ॥ १८ ॥ सन्नाइ पिंड जेमेइ, नेच्छइ सामुदाणिय ॥ गिहिनिसेज्ज

बिछोने को भी विना पूंजे उस पर सोजावे वैसे ही स्थानक की पूंजना प्रतिलेखना करे नहीं उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १४ ॥ जो दुग्ध दधि प्रमुख विगय का वारंवार आहार करे और तपश्चर्या करने में अरति धारन करे, उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥१५॥ सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यंत वारंवार आहारादि भक्षण किया करे और गुरु वगैरह शिक्षा देवे तो सामने बोले उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १६ ॥ जो सद्गुरु की संगति छोडकर पासत्थियों की संगति करे अपनी उत्तम संप्रदाय का त्याग कर अन्य की संप्रदाय में जावे और बहुत लोग निंदा करे वैसा कर्तव्य करे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १७ ॥ अपना स्थान छोडकर अन्य संसारी पुरुषों के घरादि में लुब्ध बनकर फिरे ज्योतिषी वगैरह निमित्त प्रकाशे उसे पाप श्रमण कहते हैं ॥ १८ ॥ स्वज्ञाति के आहार की इच्छा करे परंतु सामुदानिक आहार की गवेषणा करे नहीं; गृहस्थ की शय्या,

सूत्र

राया, सिग्घमागम्म सो तहिं ॥ हए मिए उ पासित्ता, अणगारं तत्थ पासइ ॥ ६ ॥ अह राया तत्थ संभंतो, अणगारो मणा हओ ॥ मए उ मंद पुण्णेणं, रसगिद्धेण घण्णुणा ॥ ७ ॥ आसं विसज्जइत्ताणं अणगारस्स सो निवो ॥ विणएण वंदए पाए भगवं एत्थ मे खमे ॥ ८ ॥ अह मोणेण सो भगवं अणगारे झाणमस्सिते ॥ रायाणं न पडिमंतेइ, तओ राया भयद्दुओ ॥ ९॥ संजओ अहमस्मीति, भगवं वाहराहि मे, ॥ कुद्धे तेएण अणगारे, डहेज्ज नर कोडिओ ॥ १० ॥ अभओ पत्थिवा तुब्भं,

अर्थ

भी वहां आया वहां हनाया हुवा मृग को और एक अणगार को देखा ॥ ६ ॥ तब वह राजा संभ्रांत बन कर विचार करने लगा कि मैं लुब्ध व मंदपुण्य था। मैंने इस मुनि के मृग को मार डाला ॥ ७ ॥ राजा ने तत्काल घोडे पर से नीचे उतर कर मुनि के पांव में विनय पूर्वक वंदना नमस्कार किया और कहा अहो भगवन्! मृग वध रूप मेरे अपराध की क्षमा करो ॥ ८ ॥ उस समय मुनि मौन सहित धर्म ध्यान में लीन हो रहे थे इस से राजा को पीछा उत्तर दिया नहीं तब राजा विशेष भयभीत हुवा, ॥ ९ ॥ अहो भगवन्! मैं संयति राजा हूं मुझ से वार्तालाप तो आप बोलाओ, क्यों कि क्रुद्ध बने हुए अनगार अपने तेज से क्रोडों मनुष्य को जलाते हैं ॥ १० ॥ उक्त वचन

१ संयति राजा को पहिले साधु की समीप का प्रभाव होने से घायल हुवा मृग मुनि के पास आकर पडा देखकर अनुमान से ऐसा समझा कि यह मृग मुनि का ही होगा

अभयदाया भवाहि य ॥ अणिच्चे जीव लोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि ॥ ११ ॥
जया सव्वं परिच्चज्ज गतव्वमवसस्स ते ॥ अणिच्चे जीव लोगम्मि, किं रज्जम्मि
पसज्जसि ॥ १२ ॥ जीवियं चेव रूवं च, विज्जु संपाय चंचलं ॥ जत्थ तं मुज्झसी-
राय, पेच्चत्थं नावबुज्झसि ॥ १३ ॥ दाराणिय सुया चेव, मित्ता य तह बंधवा ॥
जीवंतमणुजीवंति, मयंनाणुव्वयंति य ॥ १४ ॥ नीहरंति मयं पुत्ता, पितरं परम दुक्खिया ॥
पितरावि तहा पुत्ते बंधुरा, तवं चरे ॥ १५ ॥ तओ तेणज्जिए दव्वे दारे य
परिरक्खिए ॥ कीलंतिन्ने नरा राय, हट्ठतुट्ठ मलंकिया ॥ १६ ॥ तेणावि जं कयं

सुनकर व राजा को भयभीत जानकर ध्यान पारकर मुनि बोले) हे पार्थिव ! तझे अभय है और
तू भी अभयदाता हो इस अनित्य मनुष्य लोक में जीव हिंसा में क्यों आसक्त होता है ॥ ११ ॥ जब
कभी सब का परित्याग कर परवश बनकर जाना तो है तो इस अनित्य लोक में तथा राज्य में क्यों आसक्त
हो रहा है ॥ १२ ॥ हे राजा ! यह जीवितव्य व रूप विद्युत्पात समान चंचल है इस में तू मुग्ध
बनकर परलोक को नहीं जानता है ॥ १३ ॥ स्त्री, पुत्र, मित्र व बंधव वगैरह जहां लग घर का
स्वामी जीता है वहां लग ही उस के सहाय से अपनी आजीविका करते हैं परन्तु
मरगये पीछे उस के साथ वे नहीं जाते हैं ॥ १४ ॥ जगत की यह रीति है कि महा दुःखी
बने हुए पुत्र भी मृत पिता को ले जाते हैं, पिता पुत्र को ले जाता है, भाई भाइ को ले जाता है, औ

सूत्र

कम्म, सुहं वा जइ वा दुहं ॥ कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छती उ परं भवं ॥ १७ ॥
सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अंतिए ॥ महया संवेगनिव्वेदं, समावन्नो
नराहिवो ॥ १८ ॥ संजओ चइउं रज्जं, निक्खंतो जिणसासणे ॥ गद्दभालिस्स
भगवओ, अणगारस्स अंतिए ॥ १९ ॥ चिच्चा रट्ठं पव्वइए, खत्तिए परिभासइ ॥

अर्थ

स्मशान में जला देते हैं ऐसा जानकर हे राजन् ! तप का आचरन कर ॥ १५ ॥ घर के स्वामीने जो धन उपार्जन किया था और जिस स्त्री की रक्षा की थी, उस स्वामी के मरे पीछे उस धन व दारा से हृष्ट हुए व आभरणालंकार अलंकृत बनकर अन्य पुरुषों क्रीडा करते हैं अर्थात् उन के ही वस्त्राभरण से अलंकृत बनकर अन्य पुरुषों उस स्त्री ही स्त्री के साथ क्रीडा करते हैं ॥ १६ ॥ और वह मृत पुरुष अपने शुभाशुभ किये हुये कर्मों सहित दूसरे भव में जाता है ॥ १७ ॥ अनगार के पास से ऐसा धर्म सुनकर वह संयती राजा संवेग (वैराग्य) और निर्वेद (काम भोग में अरुचि) को प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ उस संयती राजाने अपना राज्य का त्याग कर गर्दभाली अनगार के पास जिन शासन की दीक्षा अंगीकार की ॥ १९ ॥ संयती राजाने इस प्रकार राज्य छोडकर अपने गुरु के पास आसेवना व ग्रहणा रूप ज्ञान की और आचार की शिक्षाका अभ्यास कर गुरु आज्ञा से एकल विहारी हुए. विहार करते मार्ग में क्षत्रिय राजर्षि मिले वह संयती

सूत्र

॥ जहाते दीसईरूवं, पसन्नं ते तहा मणो ॥ २० ॥ किं नामे ? किं गोत्ते ? कस्स-ट्ठाए व माहणे ॥ कह पडियरसी बुद्धे ? कहं विणीएत्ति वुच्चसी ? ॥ २१ ॥ संजओ नाम नामेण, तहा गोत्तेण गोतमो ॥ गद्दभाली ममायरिया, विज्जाचारण पारगा ॥ २२ ॥ किरियं अकिरियं विणयं, अण्णाणं च महामुणी ॥ एएहिं चउहिं

अर्थ

मुनि को कहने लगे अहो मुनि ! जैसे तुम्हारा प्रसन्नकारी रूप है वैसा ही तुम्हारा मन है ॥ २० ॥ अब उन से प्रश्न करने लगे—अहो मुनि ! १ तुम्हारा नाम क्या है ? २ तुम्हारा गोत्र क्या है ? ३ किस लिये तुम साधु बने ? ४ तुम किस गुरु के शिष्य हो ? और ५ विनीत शिष्य किस को कहना ? यों पांच प्रश्न पूछे ॥ २१ ॥ अब संयति मुनि उस क्षत्रिय राजर्षि को इस प्रकार उत्तर देने लगे—१ संयति मेरा नाम है २ गौतम मेरा गोत्र है, ३ विद्या चारित्र में पारगामी गर्द्दभाली मेरे गुरु धर्माचार्य हैं (४ हिंसा के मार्ग से बचाने के लिये साधु बना हूं और गुरु की सेवा करे सह विनीत शिष्य है) इस तरह पांचों प्रश्न का उत्तर दिया ॥ २२ ॥ अब गुरु के पास से प्राप्त किया हुवा ज्ञान संयति मुनि क्षत्रिय राजर्षि को बताने लगे—१ क्रियावादी ज्ञान बिना क्रिया को ही प्राधान्यपना माननेवाले इस के १८० भेद हैं २ अक्रियावादी क्रिया को नहीं माननेवाले, इस के ८४ भेद हैं, ३ विनयवादी मात्र विनय से मोक्ष माननेवाले इस के ३२ भेद हैं, और ४ अज्ञानवादी-अज्ञानता को ही श्रेष्ठ स्थापन करनेवाले इस के

सूत्र

कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं ॥ कम्मुणा तेण संजुत्तो गच्छती उ परं भवं ॥ १७ ॥ सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अंतिए ॥ महया संवेगनिव्वेदं, समावन्नो नराहिवो ॥ १८ ॥ संजओ चइउं रज्जं, निक्खंतो जिणसासणे ॥ गद्दभालिस्स भगवओ, अणगारस्स अंतिए ॥ १९ ॥ चिच्चा रट्ठं पव्वइए, खत्तिए परिभासइ ॥

अर्थ

श्मशान में जला देते हैं ऐसा जानकर हे राजन्! तप का आचरन कर ॥ १५ ॥ घर के स्वामीने जो धन उपार्जन किया था और जिस स्त्री की रक्षा की थी उस स्वामीके मरे पाछे उस धन व दारा से हृष्ट तुष्ट व आभरणालंकार अलंकृत बनकर अन्य पुरुषों क्रीडा करते हैं अथात् उन के ही वस्त्राभरण से अलंकृत बनकर अन्य पुरुषों उस की ही स्त्री के साथ क्रीडा करते हैं ॥ १६ ॥ और वह मृत पुरुष अपने शुभाशुभ किये हुए कर्मों सहित दूसरे भव में जाता है ॥ १७ ॥ अनगार के पास से ऐसा धर्म सुनकर वह संयती राजा संवेग (वैराग्य) और निर्वेद (काम भोग में अरुचि) को प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ उस संयती राजाने अपना राज्य का त्याग कर गर्दभाली अनगार के पास जिन शासन की दीक्षा अंगीकार की ॥ १९ ॥ संयती राजाने उक्त प्रकार राज्य छोडकर अपने गुरुके पास आसेवना व ग्रहणा रूप ज्ञान की और आचारकी शिक्षाका अभ्यास कर गुरु आज्ञा से एकल विहारी हुए। विहार करते मार्ग में क्षत्रिय राजर्षि मिले वह संयती

वाले वो ईश्वर को कर्ता मानते हैं और मीमांसक मतवाले आत्मा को सर्व व्यापी मानते हैं दोनों कहते हैं कि-पृथ्वी, पानी, अग्नि वायु और आकाश इन पांच के संयोग से शरीर की उत्पत्ति होती है, इस में ईश्वर का तेज पडता है इस से सब क्रिया होती है जब ईश्वर अपना तेज खींच लेते हैं तब पांचों भूत भिन्न २ होकर अपने स्वभाव में लीन हो जाते हैं इस से जीव को पुण्य पापादि कोई भी क्रिया नहीं लगती है; नरक स्वर्ग वगैर कुछ भी नहीं है इस मतावलम्बी उक्त काल, स्वभाव नियत कर्म और पुरुषार्थ इन पांच को मानकर छट्ठा यदृच्छा अर्थात् अकस्मात्, को मानते हैं यों ९ वस्तु मीलने से तीसरी वस्तु की उत्पत्ति मानते हैं; जैसे दुध में खटाई मीलने से दही बने, यहां जीवादिक नव पदार्थ में से पुण्य पाप ये दो पदार्थ छोडकर शेष सात पदार्थ को बारह भेद पर उतारते हैं कि उक्त सातों पदार्थ अपनी इच्छा से हैं परंतु काल से नहीं है,२ पर की इच्छा से हैं परंतु काल से नहीं है ३ कोई कहते अपनी इच्छा से है परंतु स्वभाव से नहीं है ४ कोई कहते हैं कि अन्य की इच्छा से है परंतु स्वभाव से नहीं है ५ अपनी इच्छा से है परंतु नियत से नहीं है ६ पर की इच्छा से है नियत से नहीं है ७ अपनी इच्छा से है कर्म से नहीं है ८ अन्य की इच्छा से परंतु कर्म से नहीं है ९ अपनी इच्छा से है उद्यम से नहीं है, १० परकी इच्छा से उद्यम से नहीं ११ अपनी इच्छा से यदृच्छासे नहीं, १२ अन्य की इच्छा से यदृच्छासे नहीं यों सातों पदार्थ को बारह गुना करने से ८४ होते हैं यह अक्रियावादी का कथन हुआ २ विनयवादी का कथन करते हैं विनयवादी विनय को ही सब से

अर्थ

९७ भेद हैं यों चारों के सब मिलकर ३६३ पाखंडी के मत मानना क्रियावादी के १८० भेद करते हैं। १ कालवादी, २ स्वभाववादी ३ नियतवादी ४ कर्मवादी और उद्यमवादी इस में कालवादी कहता है कि सब वस्तु काल से होती है-तीर्थंकरादि उत्तम पुरुष काल में होते हैं कालमें स्त्री गर्भ धारन करती है काल से पुत्र होता है, वगैरह सब काल से ही होता है ऐसा स्वभाववादी कहता है कि सब वस्तु स्वभाव से होती है भव्य का स्वभाव मोक्ष में जाने का है और अभव्य का स्वभाव परिभ्रमण करने का है मयूर पंख को चित्रता अग्नि की उष्णता पानी की शीतलता, वगैरह, सब स्वभाव से ही होते हैं तब नियतवादी कहता है कि-सब वस्तु की भवितव्यता से होती है भवितव्यता को कोई भी नहीं टार सकता है कर्मवादी कहता है कि सब वस्तु कर्म से ही होती है देव नरक मनुष्य तिर्यंच सब कर्माधीन है वगैरह और उद्यमवादी कहता है कि सब वस्तु उद्यम से ही होती है जगत में कला कौशल्यता सो उद्यम से प्रगट हुइ है कि इतना तप संयम में उद्यम करने से ही मुक्ति मीलती है यों पांचों वादियों १ जीव २ अजीव ३ पुण्य ४ पाप ५ आश्रव ६ संवर ७ निर्जरा ८ बंध और ९ मोक्ष इन नव पदार्थों का चार प्रकार से मानते हैं १ कितनेक कहते हैं कि यह २ ही अपनी इच्छा से नित्य है कितनेक कहते हैं कि अपनी इच्छा से अनित्य है, कितनेक कहते हैं कि ये नव ही पर की इच्छा से नित्य है और ४ कितनेक कहते हैं कि यह पर की इच्छा से अनित्य है यों नव पदार्थ का चौगुने करने से ३६ होते हैं, और उक्त ३६ को पांच वादी से पांच गुना करने से १८० क्रिया वादी के भेद होते हैं यह क्रिया वादी का कथन हुवा ॥ अब अक्रियावादी का कहते हैं—मिथ्यात्वि का

सूत्र

ठाणेहिं, मेयण्णे किं पभासई ॥ २३ ॥ इति पाउकरे बुद्धे नायए परिनिव्वुए ॥ विज्जा चरण संपन्ने, सच्चे सच्च परक्कमे ॥ २४ ॥ नडंति नरए घोरे जे नरा पाव

अर्थ

मेद्र मानते हैं वे कहते हैं कि १ सूर्य का, २ राजा का ३ ज्ञानी का, ४ साधु का ५ वृद्ध का, ६ धर्म का ७ माता का और ८ पिता का इन आठों का मन, वचन व काया से और दान देकर विनय करे यों आठ को चार गुना करने से विनयवादी के ३२ भेद होते हैं ४ अज्ञानवादी के ६७ भेद होते हैं वे कहते हैं कि-जो पाप अज्ञानावस्था में होवे उस के पाप की निवृत्ति हो सकती है जैसे अज्ञान में किसी को पांव लगने से वह गुना माफ कर देता है इस से अज्ञानी ही रहना अच्छा है नरक स्वर्ग वगैरह किसने देखे हैं कि जिस से शास्त्रोक्त कथन सत्य माने इस के ६७ भेद कहते हैं— १ कौन जाने सत्य है २ कौन जाने असत्य है, ३ कौन जाने जीव का सदा सत्यपना है ४ असत्यपना है, ५ अवाच्यपना है ६ सद्वाच्यपना है और ७ असद्वाच्यपना है यों नव पदार्थ के साथ इन सात को गुना करने से ६३ होते हैं इस में १ सत्यपना २ असत्यपना, ३ सदसत्यपना और ४ वाच्यपना ये चार मिलाने से ६७ होते हैं इस प्रकार ३६३ पाखंडियों के मत्त के ज्ञान क्षायिक ज्ञान क्षायक चारित्र के धारक सत्यवादी कर्म रूप अरि पुष्पाकर शीतीभूत बने हुए श्री ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर स्वामीने द्वादश विध परिषद् में उक्त ३६३ मत प्रसिद्ध करे हैं ॥ २३-२४ ॥ जो असत्य वक्तव्यता

शास्त्रोद्धार प्रारम्भ　　　　वीराब्द २४४२ ज्ञान पंचमी

इति

उत्तराध्ययन सूत्र

समाप्तम्

शास्त्रोद्धार समाप्ति　　　　वीराब्द २४४६ विजयादशमी

सूत्र

भवमागते ॥ अप्पणो य परेसिं च, आउ जाणे जहा तहा ॥ २९ ॥ नाणारुइं च छंदच, परिवज्जेज्ज संजए ॥ अणट्ठा जे य सव्वत्था इइ विज्जामणु संचरे ॥ ३० ॥ पडिक्कमामि पसिणाणं परमतेहिं वा पुणो ॥ अहो उट्ठिए अहोराय, इति विज्जा तवंचरे ॥ ३१ ॥ जं च मे पुच्छसि काले सम्मं सुद्धेण चेयसा ॥ ताइं पाउकरे

अर्थ

पायली की उपमा से महा पायली रूप दश सागरोपम का आयुष्य था ॥ २८ ॥ इस पांचवे ब्रह्म देवलोक से चवकर यहां मनुष्य भव में मैं आया हूं और मेरा यहां का यथातथ्य आयुष्य जानता हूं ॥ २९ ॥ अहो क्षत्रिय राजर्षि! जो क्रियावादी प्रमुख मिथ्यात्वियों की बहुत प्रकार की रुचि बहुत प्रकार की कल्पना, बहुत प्रकार के अभिप्राय हैं उन को साधु सर्वथा प्रकार वर्जे, यही विद्या संयम युक्त बना मुनि संयम मार्ग में प्रवृत्ति करे ॥ ३० ॥ अहो क्षत्रिय राजर्षिन्! ज्योतिषी निमित्तादिक के प्रभाव देने से तथा गृहस्थों के गुप्त वार्तालाप से निवर्त कर सदैव सावधान बनकर अहर्निश संयम व तप में उद्यमी बना हूं यह मेरा विनय मार्ग है और इस प्रकार ही अन्य पवित्र महा पुरुष प्रवर्तते हैं ॥ ३१ ॥ तब क्षत्रिय राजर्षि संयति मुनि के वार्तालाप से संतुष्ट होकर कहने लगे कि आपने द नों

[1] चारकोस का लम्बा चौड़ा व ऊंडा पाले में देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्रके मनुष्य का बाल [illegible] में [illegible] पद के नहीं उससे भरे और हजार वर्ष में एक बाल [illegible] यह पाला खाली हो जाय एक पल्योपम ऐसे कोड़ा कोड़ पाला खाली होवे उसे वर्ष का एक सागरोपम का महा पाला.

मौन रहा परंतु उस नमुची प्रधानने अपना हठाग्र छोडा नहीं तब निरुपाय से उस की इच्छानुसार चक्र-
वर्तीने सात दिन का राज्य नमुची प्रधान को दिया उसने यज्ञ का प्रारंभ किया सब लोग निजराना
करने आये परंतु सुव्रताचार्य आये नहीं ऐसा देख सुभट के साथ बुलवाय आचार्य वहां आये तब
नमुची बोला तुम मेरे राज्य में रहकर मुझे ही नमस्कार नहीं करते हो इस से मेरे राज्य से बाहिर निकल
जाओ आचायने बहुत समजाया परंतु वह समजा नहीं तब आचार्य स्वस्थान आये और बोले कि यदि
विष्णुकुमार श्रमण इस समय पर होते तो ठीक होता एक साधु बोला कि मेरु पर्वत पर वे तप कर
रहे हैं उन के पास जाकर सब बात मैं विदित कर सकता हूं परंतु पीछा आने की मेरी शक्ति नहीं है
आचार्य बोले कि विष्णु कुमार ही तुम को ले आवेगा विद्या के प्रभाव से मेरु पर्वत पर जाकर विष्णु
कुमार मुनि से सब बात निवेदन की तत्काल विष्णु कुमार उस साधु सहित आये अपने संसार के भाई
चक्रवर्ती से मिले और ऐसा अनुचित कार्य के लिये उपालंभ दिया तब चक्रवर्ती बोले मैं वचन से
बंधाया हूं सात दिन तक कुच्छ नहीं बोल सकता हूं आगे देख लेवूंगा तब वह विष्णुकुमार मुनि
नमुचि के पास आये सब परिषद् चक्रवर्ती का भाई जानकर उपस्थित हुई, नमुची भी भयभीत हुवा
मुनि बोले-तेरा छ खण्ड में राज्य है हम कहां जावे ? तब उसने कहा कि मात्र तुम्हारे लिये तुम मांगो
इतना स्थान देता हूं, अन्य साधु के लिये नहीं मुनिने क्रोधावेश में तीन पांव जमीन मांगी नमुचीने
वह स्वीकार की, उस ही समय वैक्रेय लब्धि से एक लाख योजन का रूप बनाकर एक पांव जम्बुद्वीप

॥ ४१ ॥ एगच्छत्तं पसाहित्ता महिमाण निरुवमो ॥ हरिसेणो मणुस्सिदो, पत्तोगइ मणुत्तर ॥ ४२ ॥ अन्निआरायसहस्साहिं सुपरिच्चाइ दमचरे ॥ जयनामो

का जगती पर, व एक पांव पुष्ट हिमवंत पर्वत पर रखकर कहे कि अब तीसरा पांव कहां रखूं? नमुची भयभीत हो गया मुनिने तीसरा पांव उस के मस्तक पर रखा और वह मरकर पाताल में गया तत्प श्चात् चक्रवर्ती अपने अन्तःपुर सहित आये विष्णु कुमार की बहिन भी आई और मधुर स्वर से स्तुति करने लगी फिर विष्णुकुमार मुनि क्रोध उपशमाकर अपना मूल रूप बनाकर आचार्य पास आये और आयालोचन से शुद्ध बनकर तप संयम का आचरन करते उन को केवल ज्ञान प्राप्त हुवा छ हजार वर्ष केवल पर्याय पाल कर मोक्ष गये महा पद्म चक्रवर्ती भी दीक्षा अंगीकार कर तीस हजार वर्ष का आयुष्य पालकर मोक्ष में गये

सब शत्रुओं के मान का मर्दन करने वाले हरिषेण चक्रवर्तीने छ खण्ड पृथ्वी में एक क्षत्र राज्य किया ऐसा मनुष्येन्द्र भी दीक्षा ले मोक्ष गया ॥ ४२ ॥ यहां पर दशवा हरिषेण चक्रवर्ती की कथा कहते हैं—कंपिलपुर नगर के महाहरी राजा की मेरा रानी को चउदह स्वप्न सहित पुत्र हुआ उस का नाम हरिषण दिया इसने भी भरत क्षेत्र के छ खण्ड का राज्य किया और दीक्षा लेकर दश हजार वर्ष का आयुष्य पालकर मोक्ष में गया यह हरिषण चक्रवर्ती की कथा हुई॥

सहस्रों राजाओंका परिवार युक्त ऐसा जयसन चक्रवर्ती जिनेन्द्र भाषित संयम मार्ग अंगीकार कर दीक्षा

जिणक्खायं, पत्तोगइमणुत्तरं ॥ ४३ ॥ दसण्णरज्ज मुदितं, चइत्ताण मुणीसरे ॥
दसण्णभद्दो निक्खंतो सक्खं सक्केण चोइओ ॥ ४४ ॥ करकंडू कालिंगेसु,

गया ॥४३॥ कथा–राजगृही नगरी के समुद्र विजय राजा की विजया रानी को चउदह स्वप्न सहित पुत्र हुआ उसका नाम जयसेन दिया कालान्तर में चक्रवर्ती की सब ऋद्धि प्राप्त हुए पीछे उस को छोड़कर दीक्षा अंगीकार की केवल ज्ञान प्राप्त किया और सब मीलकर तीन हजार वर्ष का आयुष्य भोगव कर मोक्ष में गया ॥*॥

अब आगे अन्य राजाओं का कथन करते हैं—शक्रेन्द्र की प्रेरणा प्रेराया हुआ दशारन देशका त्याग कर दशारनभद्र राजाने संयम अंगीकार किया ॥ ४४ ॥ यहां दशारन भद्र राजा की कथा कहते हैं—दशारन देश के दशारन पुर नगर का दशारन भद्र राजा श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी का अनुरागी था सदैव भगवान के समाचार सुने पीछे भोजन करता था एकदा भगवान दशारन पुर पधारे और वन पालक ने खबर दी राजा बहुत खुशी हुआ और वनपालक को इनाम में साढी बारा लाख रुपये दिये सब नगर को सुशोभित बनाया और लोगों से कहा अपनी २ शक्ति अनुसार सब सजाई कर भगवान के दर्शन को लिये चलो यदि किसी के पास द्रव्य न होवे तो भंडार में से

* इन में आठवा सुभूम व बारवा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति का कथन नहीं किया, क्यों की इन दोनोंने संयम अंगीकार नहीं किया, इसलिये वे सातवीं नरक में गये हैं यहां तो जो मोक्ष में गये उन दशही चक्रवर्ति का ही कथन किया गया है

हो राजा अपने १८ हजार हाथी २४ लाख घोडे, २१ हजार रथ, १ हजार पालखी, ९१ क्रोड पदाति, १६ हजार ध्वजा और ५०० रानियों के शुभ ठाठपाठ से और स्वयं भी वस्त्राभूषण से सुसज्जित बनकर अपने पाटवीय हस्ति पर आरूढ हो कर छत्र चामर सहित प्रजाजनों के आशिर्वाद सहित भगवान क दर्शन के लिये निकला इस ठाठ से निकलते हुए उन को गर्व हुआ कि जिस प्रकार मैं भगवान के दर्शन के लिये जाता हूं वैसे अन्य कोई नहीं गया होगा उस समय शक्रेन्द्र भी भगवान के वन्दन के लिये आये थे उन्होंने अवधि ज्ञान से दशारनभद्र का अभिमान जाना तिर्थंकर भगवान के दर्शन को जाते अभिमान करना अनुचित जान कर, उस के मान का मर्दन करने के लिये हाथी की सेना के अधिपति देव को आज्ञा की उस देवने आकाश में ६४ हजार हाथी वैक्रेय कर मेघाडम्बर समान राजा की सारी सेना आच्छादित कर दी हाथीयों के दीव्य भूषण दामनी जैसे चमकने लगे और गजों का गुलगुलाट शब्द महा मेघ समान गर्जने लगा उन में एक २ हाथी को ५०० मुख एक मुख पर आठ दंतशूल, एक दंतशूल पर आठ २ बावडियों एक २ बावडी में आठ २ कमल, एक २ कमल की एक लाख पांखडियों, एक पांखडी पर बतीस प्रकार के नाटक, कमल के बीच की कर्णिका पर इन्द्र भवन, जिस में इन्द्र का सिंहासन, ईशान कौन में चौरासी हजार सामानिक के चौरासी हजार सिंहासन पूर्व में आठ अग्रमहिषियों के आठ हजार सिंहासन यों सब परिवार जानना इस प्रकार सब हाथियों में से मात्र एक हाथी नीचे उतारा इस हाथी को देखने अन्य सब लोक भग गये फक्त दशारनभद्र राजा रहगया

पंचालेसु यदुम्महो ॥ नमीराया विदेहेसु गंधारेसुयनग्गई ॥ ४५ ॥ नमीनमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ ॥ चइऊण गेहवइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ

मद चिन्ताग्रस्त हो विचारने लगा कि मेरा मान कैसे रहे ! अब संयम सिवाय और कोई उपाय नहीं है ऐसा विचार कर भगवान के पास जाकर संयम अंगीकार कर साधु समुदाय में बैठे इन्द्र भगवान को नमस्कार कर साधुओं को नमस्कार करने लगा तो दशारनभद्र को साधु बने हुए देखे इन्द्र उन को बारंवार धन्यवाद दे अपना अपराध क्षमा कर स्वस्थान गया दशारनभद्र मुनिराज अपने कर्मोंका क्षय कर मोक्ष गये ॥ * ॥

*

१ कलिंग देश का करकंडु राजा २ पांचाल देश दुमइ राजा, विदेह देश का नमीराजा, और गांधार देश का निग्गइ राजा इन चारों प्रत्येक बुद्धने साथ ही दीक्षा अंगीकार की, साथ ही केवल ज्ञान पाये और साथ ही मोक्ष गये ॥४६॥ इन चार में से संयम में आत्मा नमाने वाले नमीराजर्षी को साक्षात् शक्रेन्द्र चलित करने आये तथापि वे विदेह देश व गृहादि का त्याग कर संयम मार्ग में स्थित रहे ॥४७॥ इन में से नमीराजर्षी की कथा तो इसके नवमे अध्ययन में कही गई है शेष तीन प्रत्येक बुद्ध का कथन कहते हैं करकंडु राजा कालिंग देश की चंपानगरी के दधिवाहन राजा की रानी व चेडा राजा की पुत्री पद्मावतीको गर्भ के तीसरे मास में दोहद हुआ कि पुरुष का पोषाक पहिन कर

बेपन पास रखे तो सातवे दिन राजा होवे यह बात एक ब्राह्मण व करकण्डु यों दोनों ने सुनी ब्राह्मण उस बांस को लेकर चला करकण्डु बोला कि–मेरे स्मशान का वृक्ष चोरने वाला तू कौन दोनों में बड़ा क्लेश होगया लोगोंने करकण्डु को समझाया तब करकण्डु बोला कि–इस वृक्ष से सातवे दिन में मुझे राज्य मीलनका है लोगों हसते हुए बोलने लगे कि–जा तुझे राज्य मीले तबएक गांव ब्राह्मण को भी देना उसने यह बात मानी अब गांव के लोग चांडाल पर नाराज होगये जिस से करकंडु उस वृक्ष को लेकर परदेश में निकला सातवे दिन कंचनपुर के बाहिर आकर वृक्ष सिराने दे सोता उस समय उस गाव का राजा अपुत्रिया मर जाने से सामंतो ने पांच द्रव्य प्रगट किये हाथी की सुंड में पुष्पमाला लटकादी उस के पीछे सब परिवार निकला वह हस्ती जहां करकंडु सोता था वहां आया उस को उठाकर उस के गले में पुष्प माला डाली शिर पर कलश ढोला सुंड से उठा कर अपनी पीठ पर चढाया कुल देवने पुष्प वृष्टि की करकंडु का पुण्य प्रभाव देख सब आश्चर्य पाये राज्यारोहन किया और सुख पूर्वक राज्य पालता विचरन लगा अब उस ब्राह्मण को खबर होते ही वह करकंडु राजा के पास आया और बोला कि मैं कलिंग देश में रहता हूं इस से उस देश में मुझे एक ग्राम दो करकंडुने कलिंग देश की चंपा नगरी के दधिवाहन राजा पर अपनी मुद्रा सहित एक पत्र इस ब्राह्मण को एक गाम देने का लिखा और साथ सुभट भेजा दधिवाहन राजा हसकर बोले कि क्या चांडाल को राज्य मिलने से वह मदमस्त

बन गया है ऐसा कहकर उनके सुभटों को निकाल दिये सुभटोंने करकंडु राजा से कहा करकंडु कोपित बनकर अपनी चतुरंगिनी सेना सहित युद्ध करने आया दधिवाहन राजाने उस का सामना किया यह समाचार पद्मावती आर्याजीने सुना और उपकार का कारन जानकर अपनी गुरुनी की आज्ञा लेकर करकंडु के पास आई करकंडुने नमस्कार कर आनेका कारन पूछा सब सच वृत्तांत कहा फिर वहां से दधिवाहन राजा पास आई और अपना गर्भ का सब वृत्तांत कहा कि—यह तुम्हारा ही पुत्र है यों दोनों पुत्र पिता को मीलाये दधिवाहन राजा इस करकंडु को राज्य देकर संयम लेकर मोक्ष में गये करकंडु राजा एकदा गोकुल देखने गया था वहां एक बच्छडे का सुन्दराकार देख उस पर प्रेम उत्पन्न हुआ, और कहा कि इस को खूब दुग्ध पान कराना अच्छी तरह पालना और स्वतंत्र फिरने देना इस तरह अच्छा खान पान मीलने से वह एक बडा सांड बन गया और राजा के महेल नीचे रहने लगा जब उस को वृद्धावस्था प्राप्त हुई तब शिथिल शरीर होने से वह पृथ्वीपर गिर पडा और कोई भी उस के पास आवे नहीं राजाको यह देखकर वैराग्य भाव प्राप्त हुआ कि इस उदारिक शरीर की यही रचना है यों स्वयं प्रति बोध पाकर दीक्षा धारन कर विचरने लगे यह करकंडु राजा की कथा हुई ॥७॥

तीसरा प्रत्येक बुद्ध दुमोह राजा की कथा कहते पांचाल देश के कपिलपुर नगर का जय राजा महल के लिये भूमि खोदवाते थे जिस में से एक चमत्कारिक मुकुट निकला उसे धारन करने से राजा के दो मुख दीखने लगे जिस से लोगों इस राजाको दुमोह नाम से बुलाने लगे उज्जयनी नगरी के चंद्रप्रद्योतन राजा को इस बात की मालूम हुई और अपना लोहजंघ दूत द्वारा वह मुकुट देने को कहलाया दुमोह राजाने कहा कि

हे पुन्यहीन ' दूसरे की वस्तु देख ललचाता है तो मेरे चार रत्न-१ अग्निभिरुरथ, २ लोहजंघ दूत ३ अनिलागिरी हस्ती और ४ शिवादेवी रानी ये मुझे देदो दूतने यह समाचार अपने राजा से कहा इस पर से यह क्रुद्ध बनकर दो लाख गयी पांच लाख घोडे, दो लाख रथ सात क्रोड पदाति यों चतुरंगिनी सेना लेकर आया दुमोह राजा भी चतुरंगिनी सेना सहित सन्मुख आया दोनों को परस्पर युद्ध हुवा चण्डप्रद्योतन राजा हारगया, उस को पकड कर दुमोह राजा अपने राज्य में लाया और उस को अपनी कन्या देकर उज्जैनी पहुंचा दिया दुमोह राजा के राज्य में सो २ वर्ष में इन्द्र महोत्सव होता था इस के लिये इन्द्र स्तंभ सुसज्जित किया जाता था, बहुत लोग उस की पूजा करते थे अन्यदा वह स्तंभ जीर्ण होकर गिर गया और लोग उसे जलाने लेगये यह देख दुमोह राजा को वैराग्य प्राप्त हुवा कि जहां तक पुण्य है वहां तक उस की पूजा होती है पुण्य क्षय होने पर इस स्तंभ जैसी रचना होजाती है यों स्वयं प्रतिबोध पाकर दीक्षा लेकर विचरने लगे यह तीसरा प्रत्येक बुद्ध दुमोह की कथा हुइ ॥

अब चौथा प्रत्येक बुद्ध निगाइ राजा की कथा कहते हैं-गांधार देश के पुंडरवर्धन नगर का सिंहरथ राजा ने सोदागर के पास से नये घोडे खरीदे उस की परीक्षा के लिये यह अश्वारूढ बनकर फिराने लगा उस घोडे की लगाम खींचते पवनवेग से जाता हुआ बारह योजन की भयंकर अटवी में ले गया राजाने वृक्ष की शाखा पकड लगाम छोड दी कि वह घोडा वहां ही खडा रह गया राजा को अपना दोष मालुम हुआ कि यह घोडा उलटी लगाम का है ऐसा मुझे मालुम नहीं होने से दोनों को व्यर्थ दुःख हुआ राजाने

गया दूसरा मूर्ख राजा का साला कि जो मध्य बजार में घोडा फिराता है, और किसी को नहीं दखता है तीसरा मूर्ख प्रधान कि जिसने इस चित्रसभामें गुरु गुरानका भेद समजे बिना ही सबको जगहका समविभागकर दिया और चौथा मूर्ख तुम कि जो इसने मनुष्यके बीचमें चित्रित मयूरको सत्य मयूर मानकर उसे पकडने लगे ऐसा सुन राजाने उस कन्या को विदुषी (बुद्धि मती) जान उससे पाणिग्रहण किया प्रथम रात्रि में जब राजा उस के शयन मंदिरमें आया व पूर्व संकेत अनुसार मदनका दासी बोली रानी जी कोइ कथा कहो रानीने कहा राजा सो जायेंगे तब कहूंगी राजा कपट निद्राकर सो गया तब रानीने कहा कि वसंत पुर नगर में एक देवने एक हाथ के मंदिर में चार हाथ की प्रतिमा रखी मदना दासी बोली यह किस तरह? रानीने कहा आज मुझे निद्रा आती है कल कहूंगी राजा सुनकर विस्मित हुआ और इस का अर्थ सुनने के लिये दूसरे दिन भी उसही रानीके मंदिरमें आया राजा के कपट निद्रामें सोते पर दासीने कल का अर्थ पूछा, तब रानीने कहा कि वह देव एक हाथ का था और प्रतिमा चार भुजवाली (चतुर्भुज) की मानी गई थी पुनः दासीने कहा कि और कोई कथा कहो तब रानीने कहा कि किसीने एक चार को संदूक में डालकर पानी में बहा दिया आगे किसीने संदूक निकाली और पूछा कि तुझे कितने दिन से संदूक में डाला है? तब उसने कहा कि तीन दिन हुए हैं दासीने प्रश्न किया कि उस चार को तीन दिन की कैसे मालूम हुई? रानीने कहा आज मुझे निद्रा आती है कल कहूंगी राजा इस प्रश्न का उत्तर सुनने के लिए तीसरे दिन भी वहां आया और कपट निद्रा में सो गया रानीने दासी के प्रश्न का उत्तर कहा

यहां फिरते २ एक सात भूमिका या । महेल देखा उस में आकर देखता है तो एक महारूपवती कन्या रही है उसे देख आश्चर्य चकित हुआ कन्याने अपने आसन से उठकर राजा का सत्कार सन्मान किया राजा उस का हाल पूछने लगा कि तू यहां अकेली कैसे है ? कन्याने कहा कि—मेरा पाणिग्रहण किये पाछे में सब कहूंगी राजाने उस से गधर्व लग्न किया और स्नान पान कर भोग विलास कर सुख पूर्वक दोनों बैठे यह कन्या कहने लगी कि क्षितिप्रतिष्ठ नगर के जितशत्रु राजाने चित्रसभा बनाने के लिये वहां के चित्रकारों को बुलाये और सारी सभा चारों चित्रकारों को सम विभाग में बांट दी तीन चित्रकार तो अपने परिवार सहित आकर काम करते थे परन्तु चौथा वृद्ध चित्रांगद नामक चित्रकार को मात्र एक कन्या कनकमंजरी नाम की परिवार में थी इस से वह अहर्निश यहां ही रहकर अपना कार्य किया करता था एकदा उस की कन्या उस चित्रकार के लिये भोजन लेकर आरही थी, वहां राजा का सांढ घोडा फिराता हुआ मध्य बजार में आ गया था चित्रकार की कन्या यह देख कर पीछे सरक गई और राजा गया बाद भोजन लेकर अपने पिता के पास आई और भोजन रखा तब चित्रकार दिशा जाने को गया इतने में कन्याने एक मयूर अपने पिता के चित्राम के स्थान बनाया राजा भी उस दिन वहां चित्रसभा देखने आया और चित्रित मयूर को सच्चा मयूर ही जानकर पकड़ने झपट मारते भींत की ठोकर लगी जिस से नख टूट गये तब वह कन्या हसकर बोली कि चौथा मूर्ख भी यह दृष्ट मिला है राजाने उस से पूछा कि चार मूर्ख कौन २ हैं ! तब वह बोली कि प्रथम मूर्ख मेरा पिता कि जब मैं भोजन लाई तब वह दिशा जाने का

आत्मनिंदा किया करती थी इस को यताकर राजा से कहा कि यह आप को मन में करने का कामन कर रही है राजाने कान लगाया तो इस प्रकार यह सुनने लगा ' तू चित्रकार की पुत्री है न कि राजा की रानी, तुझे किसी बात का अभिमान नहीं चाहिये नम्रता पूर्वक सब से मिल कर रहना " ऐसा सन राजा सतुष्ट हुवा और उसे पटरानी बनाई कालान्तर से मिथ्याचार्य का उपदेश सुनकर राजा रानी दोनोंने व्रत अंगीकार किया आयुष्य का अंत देखकर संथारा किया और काल के अवसर में कालकर दोनों देवलोक गये वहां से कनकमंजरी का जीव चवकर वैताढ्य पर्वत पर तोरणपुर नगर में कनक माला नाम की राजपुत्री हुई एकदा वासव विद्याधरने उस का रूप देखकर हरन की और यह महल बनाकर इस में रखी पीछे से कनकमाला का भाई आया और वासव से युद्ध किया दोनों मृत्यु पाये कनकमाला भाई के लिये विलापात कर रही थी इतने में एक विद्याधर आकर कहने लगा कि मैं तेरा पूर्व जन्म का पिता चित्रांगद चित्रकार का जीव हूं तैने मेरे अंत समय में मुझे धर्म की सहाय दीथा जिस प्रकार से मैं विद्याधर हुवा हूं मेरा चित्रगत नाम है तू चिंता मत कर यहां सिंहरथ राजा आवेगा वह तेरा पति होगा यों कहकर वह चलागया और उन के कहने पर से मैं आप की मार्ग प्रतीक्षा करती बैठी थी आपने पधारकर मेरे मनोरथ फलित कर दिये तत्पश्चात् एक मास वहां रहकर कनक माला की गगन गामिनी विद्या से विमान में बैठ कर राजा अपने राज्य में आया वारंवार विमान में बैठ कर गमनागमन करने से उस राजा का नाम निग्गइ दिया एकदा वन क्रीडा करने जाते मनोहर आम्र वृक्ष

कि उस को वेजरेका स्मर आता था ३ फिर दासीने काइ नावन कथा कहने का कहा तब रानीने कहा कि किसी राजाने कितनेक सोनार को अंध भूमारे में बैठा कर दीपक के प्रकाश दागिना बनाया तब पूछा कि—रात्रि हुई कि नहीं? तब एक सोनार बोला नहीं हुई तब दासीने पूछा कि अंध भूआर में उसे कैसे मालुम हुवा? रानीने उस का उत्तर दूसरे दिन देने का कहा राजा उस दिन भी यहां आया रानीने आगे के प्रश्न का उत्तर दिया कि वह सोनार रात्रि अंधा था ४ पुनः रानीने कथा कही कि एक गुरुजी के पास चार लड्डु थे जिन में से एक स्वतने खाया, दूसरा पहिले चेले को दिया तीसरा दूसरे को दिया और चौथा चौथे को दिया दासीने कहा यह कैसे? रानीने कहा इस का उत्तर कल दूंगी उस दिन राजा वहां सोनेको आया तब रानीने कहा कि तीसरे का नाम चौथमल था ५ एक शेठ के भंडार में से एक चोर तीसरे भाग का धन ले गया, दूसरा आधा और तीसरा सब ले गया तीनों मिले और देखा तो सबके पास बराबर धन निकला तो वह धन कितना था? दासीने कहा आप ही कहो? रानीने कलका उत्तर देने कहा राजाभी उत्तर सुननेका रा ी के सदैव यहां आया करता था तब रानीने कहा कि सब मिलकर छ सोनैये थे पुनः रानीने कहा कि एक ऊंट बडा वृक्ष देखकर उस को खाने गया प रं उस का मुह वहां पहुंचा नहीं तब उसपर मलमूत्र कर चल गया दासीने पूछा यह किस तरह? रानीने कल उत्तर देने का कहा उस दिन राजा भी वहां आया और रानीने उत्तर कहा कि वह वृक्ष कूवे में था इस तरह राजा सदैव यहां ही आने लगा तब अन्य शोकिनी रानियों उस के छिद्र देखने लगी पर रानी सदैव मध्यान्ह में एकांत में बैठकर

आत्मनिंदा किया करती थी इस को पचाकर राजा से कहा कि यह आप को वश में करने का ... रही है राजाने कान लगाया तो इस प्रकार यह सुनने लगा ' तू चित्रकार की पुत्री है न कि राजा की रानी, तुझे किसी बात का अभिमान नहीं चाहिये नम्रता पूर्वक सब से मिल कर रहना " ऐसा सुन राजा संतुष्ट हुवा और उसे पटरानी बनाई कालान्तर से निमग्नाचार्य का उपदेश सुनकर राजा रानी दोनोंने व्रत अंगीकार किया आयुष्य का अंत देखकर संथारा किया और काल के अवसर में कालकर दोनों देवलोक गये वहां से कनकमंजरी का जीव चवकर वैताढ्य पर्वत पर तोरणपुर नगर में कनक माला नाम की राजपुत्री हुई एकदा वासव विद्याधरने उस का रूप देखकर हरन की और यह महल बनाकर इस में रखी पीछे से कनकमाला का भाई आया और वासव से युद्ध किया दोनों मृत्यु पाये कनकमाला भाई के लिये विलापात कर रही थी इतने में एक विद्याधर आकर कहने लगा कि मैं तेरा पूर्व जन्म का पिता चित्रांगद चित्रकार का जीव हूं तैने मेरे अंत समय में मुझे धर्म की सहाय दीथी जिस प्रभाव से मैं विद्याधर हुवा हूं मेरा चित्रगत नाम है तू चिंता मत कर यहां सिंहरथ राजा आवेगा वह तेरा पति होगा यों कहकर वह चलागया और उन के कहने पर से मैं आप की पास प्रतीक्षा करती बैठी थी आपने पधारकर मेरे मनोरथ फलित कर दिये तत्पश्चात् एक मास वहां रहकर कनक माला की गगन गामिनी विद्या से विमान में बैठकर राजा अपने राज्य में आया वारंवार विमान में बैठ कर गमनागमन करने से उस राजा का नाम निगइ दिया एकदा वन क्रीडा करते जाते मनोहर आम्र वृक्ष

कि उस को तेमरेका ज्वर आता था ३ फिर दासीने कोई नवीन कथा कहने का कहा तब रानीने कहा, कि किसी राजाने कितनेक सोनार को अंध भूमारे में बैठा कर दीपक के प्रकाश दागिना बनावात पूछा कि—रात्रि हुई कि नहीं ? तब एक सोनार बोला नहीं हुई तब दासीने पूछा कि अंध भुमार में उसे कैसे मालुम हुवा ? रानीने उस का उत्तर दूसरे दिन देने का कहा राजा उस दिन भी वहां आया रानीने आगे के प्रश्न का उत्तर दिया कि वह सोनार रात्रि अंधा था ४ पुनः रानीने कथा कही कि एक गुरुजी के पास चार लड्डु थे जिन में से एक स्वतःने खाया, दूसरा पहिले चेले को दिया तीसरा दूसरे को दिया और चौथा चौथे को दिया दासीने कहा यह कैसे ? रानीने कहा इस का उत्तर कल दूंगी उस दिन राजा वहां सोनेको आया तब रानीने कहा कि तीसरे का नाम चौथमल था ५ एक शेठ के भंडार में से एक चोर तीसरे भाग का धन ले गया, दूसरा आया और तीसरा सब ले गया तीनों मिले और देखा तो सबके पास बराबर धन निकला तो वह धन कितना था ? दासीने कहा आप ही कहो ? रानीने कलका उत्तर देने कहा राजाभी उत्तर सुननेका राग के सदैव वहां आया करता था तब रानीने कहा कि सब मिलकर छ सोनैये थे पुनः रानीने कथा की-एक ऊंट बडा वृक्ष देखकर उस को खाने गया परंतु उस का मुंह वहां पहुंचा नहीं तब उसपर मलमूत्र कर चल गया दासीने पूछा यह किस तरह ? रानीने कल उत्तर देने का कहा उस दिन राजा भी वहां आया और रानीने उत्तर कहा कि वह वृक्ष कूवे में था इस तरह राजा सदैव वहां ही आने लगा तब अन्य सोकनी रानियों उस के छिद्र देखने लगी वह रानी सदैव मध्यान्ह में एकांत में बैठकर

उस ने प्रथम एक गुटिका खाइ जिस से उस का शरीर सुवर्ण समान हो गया और उस का नाम सुवर्ण गुटिका रखा फिर दूसरी गुटिका खा कर चंद्र प्रद्योतन राजा का स्मरण किया वह अनिलगिरि हाथी पर चढ़कर आया और उसे ले गया उदायन राजा को इस बात की मालूम हुइ इस से चौदह हजार मुकुटबंध राजाओं को साथ लेकर आया और चंद्र प्रद्योतन राजा का संग्राम में पराजय कर बंधन से बांध कर ले चला मार्ग में चतुर्मास लगने से एक स्थान छावनी डाल कर रहा संवत्सरी का दिन आने से उदायन राजाने पौषध किया रसोये ने चंद्र प्रद्योतन राजा से पूछा कि आप के लिये क्या रसोइ बनाऊं? चंद्रप्रद्योतन राजाने आज रसोइ के पूछने का कारन पूछा तब उसने कहा कि उदायन राजाने संवत्सरी पर्व होने से पौषध किया है इस से आप की इच्छानुकुल भोजन बनाने का है चंद्रप्रद्योतन राजाने विचारा कि आज मुझे यह विष देकर मार डालेंगे इस से उस ने भी उपवास करने का कहा और उदायन राजा के पास जाकर आप भी पौषध लेकर बैठ गया संध्या को संवत्सरी प्रतिक्रमण करके उदायन राजा चंद्रप्रद्योतन से खमाने लगे तब वह उदायन राजा से बोला कि मुझे तो कैद कर रखा है और खमाते हो उदायन राजाने उसे सुवर्ण गुटिका दासी के साथ पाणिग्रहण कराया उज्जयनी भेज दिया उदायन राजा वीतभय पाटन आये एकदा उदायन राजा को पौषध में भगवान के दर्शन की अभिलाषा हुइं भगवान भी विचरते २ वहां पधार गये, उदायन राजा बडी धूमधाम से वंदन करने निकला देशना सुन कर वैरागी बना और विचार किया कि मेरा अभीच कुमार मुझे बहुत ही प्रिय है

॥ ४६ ॥ एते नरिंदवसभा, निक्खता जिणसासणे ॥ पुत्ते रज्जे ठवेऊण, सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥ ४७ ॥ सोवीररायवसभो, चइत्ताण मुणीचरे ॥ उदायणो पव्वइओ॥ पत्तोगइमणुत्तरं ॥ ४८ ॥ तहेव कासीराया, सेओ सच्चपरक्कम ॥ कामभोगे

देखकर मंजरी तोडी पीछे से सब सनाने पत्र शाखा वगैरह तोडकर वृक्ष को ठुंठा बना दिया राजाने पीछे आते वही वृक्ष देखा और वैराग्य पाया यौवनादि संपदा से ही शरीर की शोभा है इस से भावित हो कर दीक्षा अंगीकार कर विहार किया ये चारों प्रत्येक बुद्ध साथ ही दीक्षा लेकर शिवजी के चोमुख मंदिर में अलग २ रहे फिर परस्पर वार्तालाप हुआ चारों केवल ज्ञान पाकर मोक्ष गये

राजाओं में वृषभ समान पूर्वोक्त राजाओंने अपने पुत्र को राज्य देकर जिन मार्ग में दीक्षा अंगीकार की और संयम में सावधान हुए ॥ ४७ ॥ सिंधु सोवीर देश का धारी बैल समान उदायन राजाने राज्य का त्याग कर दीक्षा अंगीकार की और वह मोक्ष गति को प्राप्त हुवा ॥ ४८ ॥ यहां उदायन राजा की कथा कहते हैं—सिंधु सोवीर देश के वीतभयपाटण में उदायन राजा रहता था उस की प्रभावती रानी व कुब्जा दासी थी एकदा गांधार देश का कोई श्रावक यहां आया और वह यहां बीमार पडा कुब्जा दासी ने उस की अच्छी तरह सेवा भक्ति की जिस पर से उस श्रावक ने संतुष्ट हो दो गुटिका दी जिस में से एक गोली खाने से मनोहर रूप होवे और दूसरी गोली खाने से इच्छित पुरुष मील सके

परिघज पहण कम्ममहावर्ण ॥ ४९ ॥ तहेव विजओ राया, अणट्ठाकिचि पव्वए ॥ रज्जतु गुणसमिद्ध पयहिंसु महायसो ॥ तहेवुग्ग तवकिच्चा, अव्वाक्खित्तेण चेयसा ॥ महब्बलारायरिसी आदाय सिरसासिर ॥ ५१ ॥ कहं धीरो अहेऊहिं, उम्मत्तो माहिंचरे ॥ एतविससमादाय, सूगदढ परक्कमा ॥ ५२ ॥ अच्चत नियाणखमा, सच्चाभे भासियावई ॥ अतरिंसु तरतेगे, तरिस्संति अणागया ॥५३॥

भोगों का त्याग कर सयम अंगीकार कर कर्म रूप महा घन का नाश किया ॥ ४९ ॥ वैसे ही महा यशस्वी व विमल कीर्तिवाला विजय नाम का दूसरा बलदेव राजाने भी न्याय करने के गुन से अधिक शब्दादिक गण से मनोहर ऐसा राज्य का त्याग कर प्रव्रज्या अंगीकार की ॥ ५ ॥ ऐसे ही उग्र तपश्चर्या करनेवाला महाबल राजर्षिने अव्यग्र चित्त से महा परिश्रम से केवल ज्ञान रूप लक्ष्मी प्राप्त की ॥ ५१ ॥ जब पूर्वोक्त पुरुषों इस तरह प्रवज्या अंगीकार कर मोक्ष में गये तब धीर पुरुष मिथ्यात्वियों के हेतु से उन्मत्त बनकर किस लिये विचरे अर्थात् उन्मत्त बनकर नहीं विचरे और इसी कारन से पूर्वोक्त भरतादिकने ज्ञान सहित शुद्ध क्रिया अंगीकार कर जैन मार्ग स्वीकार किया ॥ ५२ ॥ समकितादिक कारन से कर्म रूप मेल नष्ट करनेवाली जिनागम रूप वाणी मैंने कही. इस का अवलम्बन कर अतीत काल में अनंत जीव मुक्ति में गए, वर्तमान में मुक्ति में जाते हैं और अनागत में मुक्ति में जावेंगे ॥५३॥

पति में इस को राज्य दूगा तो वह उस में लुब्ध बन कर नरकगामी होगा और पुत्र के साथ ऐसा करना मुझे उचित नहीं है इस विचार से केशी कुमार नामक भाणेज को राज्य देकर उदायन राजाने दीक्षा अंगीकार की अभीच कुमार को आश्चर्य हुवा कि मेरे में क्या अपलक्षण है कि जिस से मुझे छोड कर भाणेज को राज्य दिया इस से क्रोधित हो कर चंपा नगरी में मासीका पुत्र भाइ कूणिक राजा के पास जाकर रहा रागद्वेष से उदायन राजा को वंदना करना छोड दिया उदायन राजर्षीने अगयारह अंग कंठस्थ किये और भगवान की आज्ञा लेकर एकल विहारी हो विचरते वीतभय पाटन आये केशी राजाने यह समाचार सुनकर विचार किया कि न मालूम इन का मन राज्य में ललचाया हो और राज्य लेने आये हो इस से गांव में ऐसी आज्ञा फिराइ कि कोइ भी उदायन साधु को रहने के लिये स्थान देवे नहीं यदि देगे तो उस के जान मालका नुकशान होगा राजा के डर से उदायन मुनि को किसीने ठहरने दिया नहीं मात्र एक कुंभारने नीडर बन कर अपनी झोंपडी रहने दी पर मन राजा चुप हो गये परन्तु राज्य वैद्यों का बोलाकर औषध में विष डालकर उदायन मुनि को वह औषध दिया औषध लेते ही अत्यंत उज्वल वेदना हुई परंतु समभाव से सहन करते क्षपक श्रेणी पर चढकर अंतकृत केवली हो मुक्ति में गये उन की प्रभावती रानी देवी हुइ थी उसने यह हाल जानकर कुपित बन कर धूल की वृष्टि से वीतभय पाटण का नाश कर दिया यह उदायन राजा की कथा हुइ ॥

वैसे ही काशी देश का धनी प्रशंसनीय सातवा नंदन नाम का बलदेव राजाने भी राज्य व काम

॥ मृगापुत्रीय नामक मेकोनविंशतितम मध्ययनम् ॥

सुग्गीवे नयर रम्मे, काणणुज्जाण सोहिए ॥ रायाबलभद्दोत्ति, मिया तस्सग्ग माहिसी ॥ १ ॥ तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्तिविस्सुए ॥ अम्मापिऊणदइए, जुवराया दमीसरे ॥ २ ॥ नदणे सोउपासाए, कीलए सह इत्थीहिं ॥ देवो दोगुंदगो चेव निच्चंमुदितमाणसो ॥ ३ ॥ मणिरयण कोट्टिमतले, पासायालोयणट्ठिओ

अठारवे अध्ययन में भोग व ऋद्धि का त्याग कहा ऐसा त्याग संयमी कर सकते हैं और जो संयमी होते हैं वे सावद्य औषधि नहीं करते हैं यह अधिकार इस उन्नीसवे अध्ययन में कहा है बडे वृक्षों से क्रीडा करने योग्य ऐसा उद्यान से सुशोभित व ऋद्धि समृद्धि से रमणीय सुग्रीव नगर में बलभद्र राजा राज्य करता था उस की मृगावती नाम की पटरानी थी ॥ १ ॥ उन को बलश्री नाम का पुत्र हुवा कि जो मृगापुत्र से विख्यात हुवा * वह मात पिता को प्रिय युवराज व यतीश्वर हुवा ॥ २ ॥ सदैव प्रमुदित मनवाला वह मृगापुत्र प्रासाद पर त्रयास्त्रिंशक देवता जैसे अपनी स्त्रियों साथ क्रीडा करता हुवा विचर रहा था ॥ ३ ॥ मणिरत्न की भूमितलवाला प्रासाद के गवाक्ष में बैठकर मृगा पुत्र नगर के त्रिक

* रानी का दिया नाम बल श्री कुमार था और राजा का दिया नाम मृगापुत्र था

सूत्र

कहिंधीरे अहेऊहिं अप्पाणं परियावसे ॥ सव्वसंगविनिम्मुक्के, सिद्धे भवति नीरए ॥ ५४ ॥ त्तिबेमि ॥ संजइज्जअट्ठारस मज्झयणं सम्मत्त ॥ १८ ॥ * *

अर्थ

जिस से कुहेतु होता होवे उस में धैर्यवन्त पुरुष अपने आत्मा को कैसे स्थापन करे? अर्थात् नहीं करे परन्तु सब कर्म संग से मुक्त बनकर कर्म रूप रज रहित शाश्वत सिद्ध होवे ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि अहो जम्बू! जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहता हूं यह संयति राजा का अठारहवा अध्ययन हुवा ॥ १८ ॥ *

सामण्णं चपुराकय ॥ ९ ॥ विसएसु अरज्जतो रज्जंतो सजमम्मिय ॥ अम्मापियर मुवागम्म, इम वयण मव्ववी ॥ १० ॥ (काव्य) सुयाणि मे पच महव्वयाणि, नरएसु दुक्ख च तिरिक्खजाणिसु ॥ निव्विण्ण कामोमि महण्णवाउ अणु-जाणह पव्वइस्सामि अम्मो ॥ ११ ॥ (गाथा) अम्म ताय मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा ॥ पच्छा कडुयविवागा अणुबन्ध दुहावहा ॥ १२ ॥ इम सरीर अणिच्च असुई असुइसभव ॥ असासयावासमिण दुक्ख केसाण भायण ॥ १३ ॥

पहिले आचरन किया हुवा साधुपना का स्मरण करने लगा ॥ ९ ॥ फिर विषय भोगों में अनासक्त व चारित्र में आसक्त बना हुवा वह मृगापुत्र माता पिता के पास आकर इस प्रकार कहने लगा ॥ १० ॥ अहो मातपिता ! नरक व तिर्यंच में जो दुःख होता है सो तथा साधु के पांच महाव्रत ये पूर्व भव में मैंने सुना है इस से अब मैं इस ससार समुद्र से निवृत्ति करने का कामी हुआ हूं मातपिता ! आप आज्ञा दो कि मैं चारित्र अंगीकार करूं ॥ ११ ॥ अहो मातपिता ! किंपाक फल समान पहिले अच्छा स्वाद वाले और पीछे कटुक फल देने वाले, और निरतर दुःख देने वाले ऐसे काम भोग मैंने भोगवे हैं ॥ १२ ॥ यह शरीर भी अनित्य, अशुचिमय अशुचि उत्पन्न करने वाला, अशाश्वतवासवाला दुःख का कारन भूत और क्लेश का भाजन है ॥ १३ ॥ ऐसा अशाश्वत शरीर में मुझे आनंद नहीं मिलता है

सूत्र

आलोएइ नगरस्स चउक्कतियचच्चरे ॥ ४ ॥ अह तत्थ अइच्छंतं पासई समण संजयं ॥ तवनियम संजम धरं सीलड्ढं गुणआगरं ॥ ५ ॥ तं देहइ मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाएउ ॥ कहिं मन्नेरिसंरूवं दिट्ठपुव्वं मएपुरा ॥ ६ ॥ साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि सोहणे ॥ मोहगयस्स संतस्स, जातीसरणं समुप्पन्नं ॥ ७ ॥ देवलोग चुओसंतो माणुस्सं भवमागओ ॥ सन्निनाणे समुप्पन्ने जाइसरणं पुराणयं ॥ ८ ॥ जातीसरणे समुप्पन्ने, मियापुत्ते महिड्ढिए ॥ सरई पोराणियंजाइं

अर्थ

चौक व चत्वर का अवलोकन कर रहा था ॥ ४ ॥ उस समय तप नियम व संयम को धारन करनेवाले अठारह सहस्रसीलांग रूप ऋद्धिवाले व गुण की खानवाले साधु मुनिराज को मार्ग में जाते हुए देखे ॥ ५ ॥ मृगापुत्र अनिमिष दृष्टि से उस साधु मुनि को देखने लगा और विचारने लगा कि मैंने पहिले एसा रूप किसी स्थान देखा है ॥ ६ ॥ साधु के दर्शन से उस मृगा पुत्र के भाव विशुद्ध होने से व मोहनीय कर्म का उपशम होने से उस को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ संज्ञा * का भव बताने वाला एसा जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होने से मृगा पुत्रने देखा कि मैं देवलोक से चवकर यहां मनुष्य लोक में आया ॥ ८ ॥ जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होने से महर्द्धिक मृगा पुत्र अपनी पहिले की जाति व

* संज्ञी के भव व्यतीत किये होवे तो जाति स्मरण ज्ञानवाला देख सकते हैं

महत तु अप्पाहिज्जो पवज्जई ॥ गच्छतो सो दुही होइ, छुहा तण्हाए पीडिओ ॥१९॥
एव धम्म अकाऊण, जो गच्छइ पर भव ॥ गच्छतो सो दुही होइ वाही रोगेहि
पीडिओ ॥ २० ॥ अद्धाण जो महत तु, सपाहिज्जो पवज्जइ ॥ गच्छतो सो सुही
होइ, छुहातण्हा विवज्जिओ ॥ २१ ॥ एव धम्मपि काऊण, जो गच्छइ पर भव,
गच्छतो सो सुही होई अप्पकम्मे अवेयणे ॥ २२ ॥ जहा गेहे पलित्तम्मि तस्स
गेहस्स जो पहू ॥ सारभडाणि नीणेइ असार अवउज्झइ ॥ २३ ॥ एव लोए
पलित्तम्मि, जराए मरणेणय ॥ अप्पाण तारइस्सामि, तुब्मेहि अणुमन्निओ ॥२४॥

उस में क्षुधा तृषा से पीडित होता हुवा दुःखी होता है वैसे ही धर्म किया बिना जो जीव परभव में जाता है वह वहां व्याधि रोग से पीडित बना हुवा दुःखी होता है ॥ २० ॥ जैसे कोइ पुरुष अपना भाता सहित महा अटवी का पंथ में जाता है और क्षुधा तृषा की बाधा रहित सुखी होता है वैसे ही जीव धर्म करके परभव में जाता है और वहां अल्प कर्म व अल्प वेदना वाला होने से सुखी होता है ॥ २२ ॥ जैसे किसी का घर जलता होवे वो घर का स्वामी अच्छी सार वस्तु बचाने का उपाय करता है और अस्सार वस्तु का त्याग करता है वैसे ही यह लोक जरा व मरण से जल रहा है इस से आप की आज्ञा लेकर मैं मेरे आत्मा को तारूंगा ॥ २३-२४ ॥ अब मातापिता पुत्र को

सूत्र

असासए सरीरम्मि, रइ नोव लभामहं ॥ पच्छा पुरा य चइयव्वे, फेणबुब्बुय सन्निभे ॥ १४ ॥ माणुसत्ते असारम्मि, वाहीरोगाण आलए ॥ जरामरणघत्थम्मि, खणपिन रमामहं ॥ १५ ॥ जम्म दुक्ख जरा दुक्ख रोगाणि मरणाणिय ॥ अहो दुक्खो हु ससारो जत्थ कीसति जतवो ॥ १६ ॥ खेत्त वत्थुं हिरण्णच, पुत्त दार च बन्धवा ॥ चइत्ताण इम देह, गतव्व मवसस्स मे ॥ १७ ॥ जह किंपागफलाण, परिणामो न सुदरा ॥ एव भुत्ताण भोगाण, परिणामो न सुदरो ॥ १८ ॥ अद्धाण जो

अर्थ

ऐसा पानी का परपोटा समान नाशवंत शरीर को पहिले पीछे जब कभी त्यागना है ॥ १४ ॥ व्याधि रोगों का घर समान व जरा मरण से घेराया हुवा इस असार मनुष्यत्व में क्षणमात्र भी आनंद नहीं प्राप्त कर सकता हूं ॥ १५ ॥ जिस संसार में जन्म का दुःख, जरा का दुःख रोग का दुःख, मरण का दुःख है अहो यह संसार सचमुच दुःख मय है और इस में ही प्राणी पीडित होते हैं ॥ १६ ॥ क्षेत्र, वस्तु, हिरण्य, पुत्र, दारा, बंधव और इस शरीर को छोडकर अवश्य परलोक में जाने का है ॥ १७ ॥ जैसे किंपाक फल दीखने में सुंदर व खाने में मीठे हैं परंतु परिणमे पीछे प्राण हरण करने वाला है वैसे ही काम भोग देखने में सुंदर भोगवने में मधुर परंतु आगमिक काल में महा दुःख के दाता होते हैं ॥ १८ ॥ जिस प्रकार कोई पुरुष माता भोजन पान का संग बिना महा अटवी में जाता है

सव्वारंभ परिच्चाओ, निम्ममत्तं सुदुक्करं ॥ ३० ॥ चउव्विहे वि आहारे, ...
वज्जणा ॥ सन्निही संचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करं ॥ ३१ ॥ छुहा तण्हा य सीउण्हं,
दंसमसग वेयणा ॥ अक्कोसा दुक्खसेज्जा य, तणफासा जल्लमेवय । ३२ ॥ तालणा
तज्जणाचेव, वहबंधपरीसहा ॥ दुक्खं भिक्खायरिया, जायणा य अलाभया ॥ ३३ ॥
कावोया जा इमा वित्ती, केसलोओ य दारुणो ॥ दुक्खं बंभव्वयं घोरं, धारेउ य महप्पणा

ग्रह रहित रहना महा दुष्कर है ॥ ३० ॥ रात्रि में अशनादि चारों आहार का त्याग करना, और किसी प्रकार संचय नहीं रखना यह दुष्कर है ॥ ३१ ॥ क्षुधा परिषह तृषा परिषह शीत परिषह, उष्ण परिषह देश मशक परिषह आक्रोश वचन, दुःखकारी उपाश्रय तृण स्पर्श, व मैल का परिषह चपेटादिक ताडन अंगुली से तर्जना, चाबुक वगैरह से मारना याचना करके भिक्षा करना और याचना करते हुवे भी इच्छित वस्तु की प्राप्ति होवे नहीं सो अलाभ परिषह इत्यादि परिषह साधु को सहन करना अति दुष्कर है ॥३२ ३३॥ जिस प्रकार कपोतादि जीवों का छोडकर अनाज के दाने को चुगते हैं वैसी ही वृत्ति साधु की है अर्थात् साधु भी सदोष आहार का त्याग कर निर्दोष आहार ग्रहण कर विचरे केश लोच करना, भी बड़ा दारुण है, व घोर ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करना दुःखदायी है ॥ ३४ ॥ अहो पुत्र ! तुम

सूत्र

से यिंति अम्मापियरो, सामण्ण पुत्त दुक्कर ॥ गुणाण तु सहस्साइ धारेयव्वाइ भिक्खुणा ॥ २५ ॥ समया सव्व भूएसु, सत्तुमित्तेसुवा जगे । पाणातिवाय विरई जावज्जीवाए दुक्कर ॥ २६ ॥ निच्चकाल प्पमत्तेण मुसावाय विवज्जण ॥ भासियव्व हिय सच्च निच्चाउत्तेण दुक्कर ॥ २७ ॥ दत सोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जण ॥ अणवज्जे सणिज्जस्स, गिण्हणा अविदुक्कर ॥ २८ ॥ विरई अबभचेरस्स कामभोग रसन्नुणा ॥ उग्ग महव्वय बभ धारेयव्व सुदुक्कर ॥२९॥ धणधन्न पेसवग्गेसु, परिग्गहविवज्जणा ॥

अर्थ

करने लगे हे पुत्र ! साधुपना पालना अति कठिन है साधुओं को क्षमादि सहस्रों गुणों धारन करना चाहिये ॥ २५ ॥ और भी शत्रु मित्र रूप सब भूतों में समता भाव धारन करना और जावजीव पर्यंत प्राण तिपात से विरति भाव धारन करना चाहिये अहो पुत्र ! यह दुष्कर है ॥ २६ ॥ सदैव अप्रमादी बनकर मृषावाद का त्याग करना और सत्य पथ्य वचन बोलना अति दुष्कर है ॥ २७॥ दंत शोधन के लिये सली मात्र भी बिना दी हुई ग्रहण नहीं करना और शरीर के निर्वाह के लिये आहार आदि भी बयालीस दोष रहित एषणा गवेषणा कर ग्रहण करना भी अति दुष्कर है ॥२८॥ कामभोग के रस को जाननेवाले को अब्रह्मचर्य से विरति और ब्रह्मचर्य रूप घोर उग्र महाव्रत धारन करना अति दुष्कर है ॥ २९ ॥ धन, धान्य व दास में निर्ममत्व धारन करना, सब आरंभ का त्याग करना और परि

वेगतिपट्ठीए, चरित्ते पुत्त दुक्करे ॥ जवा लोहमया चेव चावे यव्वा सुदुक्कर ॥ ३९ ॥
जहा अग्गिसिहा दित्ता पाउ होइ अदुक्करा ॥ तह दुक्कर करेउ जे तरुण्णे समणत्तण
॥ ४० ॥ जहा दुक्ख भरेउ जे होइ वायस्स कोत्थलो ॥ तहा दुक्ख करेउजे,
कीवेण समणत्तण ॥ ४१ ॥ जहा तुलाए तोलेउ, दुक्करो मन्दरो गिरी ॥ तहा
निहुयनीसंक, दुक्कर समणत्तण ॥ ४२ ॥ जहा भुयाहिं तरिओ, दुक्कर रयणायरो ॥
तहा अणुवसन्तेण, दुक्कर दमसागरो ॥ ४३ ॥ भुञ्ज माणुस्सए भोगे, पञ्च लक्खणए

चलता है वैसे ही साधु का इर्या समिति से चलना दुष्कर है और जैसे मोम के दांत से लोहमय चने चाबना दुष्कर है वैसे ही संयम का आचरन करना दुष्कर है ॥ ३९ ॥ जैसे अत्यंत जाज्वल्यमान अग्नि शिखा पीना दुष्कर है वैसे ही तरुण अवस्था में साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४० ॥ जैसे वायु से मन का थेला भरना दुष्कर है वैसे ही कायरों को साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४१ ॥ जैसे तराजु से मेरु पर्वत तोलना दुष्कर है वैसे ही शंका रहित साधुपना पालना कठिन है ॥ ४२ ॥ जैसे रत्नाकर [स्वयं भूरमण] समुद्र भुजा से तीरना दुष्कर है वैसे ही जिस को कषायों का उपशम नहीं है उस को समा रूप सागर तीरना दुष्कर है ॥ ४३ ॥ अहो पुत्र ! उक्त उपमाओं से साधुपना का

मूल

॥ ३४ ॥ सुहोइआ तुमं पुत्ता, सुकुमाला सुम ज्जिओ ॥ न हु सी पभू तुम पुत्ता, रा मण्ण मणु गालिया ॥ ३५ ॥ जावज्जीव मविस्सामो, गुणाण तु महब्भरो ॥ गुरुओ लो भारोव्व जो पुत्ता होइ दुव्वहो ॥ ३६ ॥ आगासे गंगसोउव्व, पडिसोआव्व दुत्तर ॥ वाहाहि सागरो चेव तारियव्वो गुणोयही ॥ ३७ ॥ वालुया कवलो चेव निरस्साए उ संजमे ॥ असिधारागमण चेव दुक्कर चरिओ तवो ॥ ३८ ॥ अही

अर्थ

मनुष्य सम्यक्त्व के व सम्यक्शील के इस क्रम से साधना पालने में तुम समर्थ नहीं हो सकते हो ॥३०॥ हे पुत्र ! साधु के चरण करणादि गुण का भार लोह के भार समान विश्राम रहित जावज्जीव पर्यंत वहन करना अति दुष्कर है ॥ ३७ ॥ जैसे ऊंचे हिमवंत पर्वत पर से पड़ता हुवा गंगा के प्रवाह के सामने जाना दुष्कर है वैसे ही यौवनावस्था में इन्द्रियों से प्रतिकूल प्रवृत्ति करना अति दुष्कर है और जिस प्रकार दोनों भुजा के बल से दो लाख योजन का लवण समुद्र तीरना कठिन है वैसे ही साधु के गुण रूप समुद्र को पार होना कठिन है ॥ ३७ ॥ जैसे रेती का कवल निरस खाना कठिन है वैसे ही विषय सुख रहित संयम का पालना कठिन है जिस प्रकार खड्ग की धारा पर चलना दुष्कर है वैसे ही बारह प्रकार का तप का आचरन करना दुष्कर है ॥ ३८ ॥ अहो पुत्र ! जैसे सर्प एक दृष्टि से

सूत्र

वेगतिपट्ठीए, चरिचे पुत्त दुचरे ॥ जवा लोहमया चेव, चावे यव्वा सुदुक्करं ॥ ३९ ॥ जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउं होइ सुदुक्करा ॥ तह दुक्करं करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं ॥ ४० ॥ जहा दुक्खं भरेउं जे होइ वायस्स कोत्थलो ॥ तहा दुक्खं करेउं जे, कीवेणं समणत्तणं ॥ ४१ ॥ जहा तुलाए तोलेउं, दुक्करो मंदरो गिरी ॥ तहा निहुयनीसंकं, दुक्करं समणत्तणं ॥ ४२ ॥ जहा भुयाहिं तरिओ, दुक्करं रयणायरो ॥ तहा अणुवसंतेणं, दुक्करं दमसागरो ॥ ४३ ॥ भुंज माणुस्सए भोगे, पंच लक्खणए

अर्थ

चलना है वैसे ही साधु को इर्या समिति से चलना दुष्कर है और जैसे मोम के दांत से लोहमय चने चाबना दुष्कर है वैसे ही सयम का आचरन करना दुष्कर है ॥ ३९ ॥ जैसे अत्यंत जाज्वल्यमान अग्नि शिखा पीना दुष्कर है वैसे ही तरुण अवस्था में साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४० ॥ जैसे वायु से मन का थैला भरना दुष्कर है वैसे ही कायरों को साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४१ ॥ जैसे तराजु से मेरु पर्वत तोलना दुष्कर है वैसे ही शंका रहित साधुपना पालना कठिन है ॥ ४२ ॥ जैसे रत्नाकर [स्वय भूरमण] समुद्र भुजा से तीरना दुष्कर है वैसे ही जिस को कषायों का उपशम नहीं है उस को क्षमा रूप सागर तीरना दुष्कर है ॥ ४३ ॥ अहो पुत्र ! उक्त उपमाओं से साधुपना का

मूल

॥ ३४ ॥ सुहाइआ तुमं पुत्ता सुकुमाला सुमज्जिओ ॥ न हु सी पभू तुम पुत्ता, सामण्ण मणुपालिया ॥ ३५ ॥ जावज्जीव मविस्सामो, गुणाण तु महब्भरो ॥ गुरुओ लोहभारोव्व जो पुत्ता होइ दुव्वहो ॥ ३६ ॥ आगासे गंगसोउव्व, पडिसोओव्व दुत्तरो ॥ बाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो गुणोदही ॥ ३७ ॥ वालुया कवलो चेव निरस्साए उ संजमे ॥ असिधारागमण चेव, दुक्करं चरिओ तवो ॥ ३८ ॥ अही

अर्थ

अनुमान समझनवाले व सत्त्वशीलिये हो इस से साधुता पालने में तुम समर्थ नहीं हो सक्ते हो ॥३४॥ अहो पुत्र ! साधु के चरण करणादि गुणों का भार लोह के भार समान विश्राम रहित जावज्जीव पर्यंत वहन करना अति दुष्कर है ॥ ३६ ॥ जैसे ऊंचे पद्म हिमवंत पर्वत पर से पडता हुवा गंगा के प्रवाह के सामने जाना दुष्कर है वैसे ही यौवनावस्था में इन्द्रियों से प्रतिकूल प्रवृत्ति करना अति दुष्कर है और जिस प्रकार दोनों भुजा के बल से दो लाख योजन का लवण समुद्र तीरना कठिन है वैसे ही गुण रूप समुद्र को पार होना कठिन है ॥ ३७ ॥ जैसे रेती का कवल निरस खाना कठिन है वैसे ही विषय सुख रहित संयम का पालना कठिन है जिस प्रकार खड्ग की धारा पर चलना दुष्कर है तैसे ही बारह प्रकार का तप का आचरन करना दुष्कर है ॥ ३८ ॥ अहो पुत्र ! जैसे सर्प एक दृष्टि से

सूत्र

वेगतिपट्टीए, चरित्ते पुत्त दुक्करे ॥ जहा लोहमया चेव, चावे यव्वा सुदुक्कर ॥ ३९ ॥ जहा अग्गिसिहा दित्ता पाउं होइ अदुक्करा ॥ तह दुक्कर करेउं जे, तरुणे समणत्तण ॥ ४० ॥ जहा दुक्ख भरेउ जे होइ वायस्स कोत्थगो ॥ तहा दुक्ख करउजे, कीवेण समणत्तण ॥ ४१ ॥ जहा तुलाए तोलेउ, दुक्करा मन्दरो गिरी ॥ तहा निहुयनीसंक, दुक्कर समणत्तण ॥ ४२ ॥ जहा भुयाहिं तरिओ, दुक्कर रयणायरो ॥ तहा अणुवसंतेण, दुक्कर दमसागरो ॥ ४३ ॥ भुंज माणुस्सए भोग, पंच लक्खणए

अर्थ

चरता है वैसे ही साधु का ग्या समिति रा भ रा दुष्कर है और जैसे मोम के दांत से लोहमय चने चबाना दुष्कर है वैसे ही संयम का आचरण करना दुष्कर है ॥ ३९ ॥ जैसे अत्यंत जाज्वल्यमान अग्नि शिखा पीना दुष्कर है वैसे ही तरुण अवस्था में साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४० ॥ जैसे वायु से मन का थैला भरना दुष्कर है वैसे ही कायरों को साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४१ ॥ जैसे तराजु से मेरु पर्वत तोलना दुष्कर है वैसे ही शंका रहित साधुपना पालना कठिन है ॥ ४२ ॥ जैसे रत्नाकर [स्वयंभूरमण] समुद्र भुजा से तीरना दुष्कर है वैसे ही जिस को कषायों का उपशम नहीं है उस को क्षमा रूप सागर तीरना दुष्कर है ॥ ४३ ॥ अहो पुत्र ! उक्त उपमाओं से साधुपना का

मूल

|| ३४ || सुहाइओ तुमं पुत्ता सुकुमालो सुमज्जिओ || न हु सी पभू तुम पुत्ता, ा मण्ण मणु पालिया || ३५ || जावज्जीव मविस्सामो गुणाण तु महब्भरो || गुरुओ लो भारोव्व जो पुत्ता होइ दुव्वहो || ३६ || आगासे गंगसोउव्व, पडिसोउव्व दुत्तर || बाहाहि सागरो चेव, तारियव्वो गुणोदही || ३७ || वालुया कवलो चेव निरस्साए उ संजमे || असिधारागमण चेव, दुक्कर चरिओ तवो || ३८ || अही

अर्थ

... समजनवाले व मनस्वीलिये हो इस से साधुता पालने में तुम समर्थ नहीं हो सकते हो ||३५|| अहो पुत्र! साधु के चरण करणादि गुण का भार लोह के भार समान विश्राम रहित जावज्जीव पर्यंत ... न करना अति दुष्कर है || ३६ || जैसे ऊंच बहुत हिमवत पर्वत पर से पड़ता हुवा गंगा के प्रवाह के सामने जाना दुष्कर है वैसे ही यौवनावस्था में इन्द्रियों से प्रतिकूल प्रवृत्ति करना अति दुष्कर है और जिस प्रकार दोनों भुजा के बल से दो लाख योजन का लवण समुद्र तीरना कठिन है वैसे ही साधु के ... रूप समुद्र को पार होना कठिन है || ३७ || जैसे रेती का कवल निरस खाना कठिन है वैसे ही विषय सुख रहित संयम का पालना कठिन है जिस प्रकार खड्ग की धारा पर चलना दुष्कर है वैसे ही बारह प्रकार का तप का आचरन करना दुष्कर है || ३८ || अहो पुत्र! जैसे सर्प एक दृष्टि से

वेगतीवद्दीए, चरिचे पुत्त दुक्कर ॥ जवा लोहमया चेव,चावे यव्वा सुदुक्कर ॥ ३९ ॥ जहा अग्गिसिहा दित्ता पाउं होइ अदुक्करा ॥ तह दुक्कर करेउ जे तरुणे समणत्तण ॥ ४० ॥ जहा दुक्ख भरेउ जे होइ वायस्स कोत्थगो ॥ तहा दुक्ख करउजे, कीवेण समणत्तण ॥ ४१ ॥ जहा तुलाए तोलेउ, दुक्करो मदरो गिरी ॥ तहा निहुयनीसक, दुक्कर समणत्तण ॥ ४२ ॥ जहा भुयाहिं तरिओ, दुक्कर रयणायरो ॥ तहा अणुवसतेण, दुक्कर दमसागरो ॥ ४३ ॥ भुज माणुस्सए भोगे, पच लक्खणए

अर्थ

चलता है वैसे ही साधु मार्ग्या समिति रा चलना दुष्कर है और जैसे मोम के दांत से लोहमय चने खाना दुष्कर है वैसे ही सयम का आचरन करना दुष्कर है ॥ ३९ ॥ जैसे अत्यंत जाज्वल्यमान अग्नि शिखा पीना दुष्कर है वैसे ही तरुण अवस्था में साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४० ॥ जैसे वायु से मन का थला भरना दुष्कर है वैसे ही कायरों को साधुपना पालना दुष्कर है ॥ ४१ ॥ जैसे तराजु से मेरु पर्वत तोलना दुष्कर है वैसे ही शंका रहित साधुपना पालना कठिन है ॥ ४२ ॥ जैसे रत्नाकर [स्वय भूरमण] समुद्र भुजा से तीरना दुष्कर है वैसे ही जिस को कषायों का उपशम नहीं है उस को क्षमा रूप सागर तीरना दुष्कर है ॥ ४३ ॥ अहा पुत्र ! उक्त उपमाओं से साधुपना का

सूत्र

गुम ॥ भुच भोगी तओ जाया, पच्छा धम्मं चरिस्ससि ॥ ४४ ॥ सो बेइ अम्मा पियरो, ए मेयं जहा फुडं ॥ इह लोए निप्पिवासस्स, नत्थि किंचिवि दुक्करं ॥४५॥ सारीर माणसा चेव, वेयणाओ अणंतसो ॥ मए सोढाओ भीमाओ, असइं दुक्ख भयाणि य ॥ ४६ ॥ जरामरण कंतारे, चाउरंते भयागरे ॥ मए सोढाणि भीमाणि जम्माइं मरणाणिय ॥ ४७ ॥ जहा इह अगणी उण्हो इत्तोणंतगुणेतहिं ॥ नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए ॥ ४८ ॥ जहा इह इमं सीयं, इत्तो णंत

अर्थ

पालना भावि दुष्कर है, इस लिये यवमान में प्राप्त हुवे शब्द रूप, रस, गंध व स्पर्श ये पांच प्रकार के कामभोग भोगवो फिर भुक्त भोगी हुए पीछे तुम धर्माचरण करना ॥ ४४ ॥ अब मृगापुत्र माता पिता को कहने लगा कि तमने कहा वह सत्य है परंतु इस लोक के निस्पृही मन को कुच्छ भी दुष्कर नहीं है ॥ ४५ ॥ मैंने अनेक बार शारीरिक व मानसिक दुःख भय उत्पन्न करने वाली ऐसी भयंकर वेदना सहन की है ॥ ४६ ॥ चतुर्गति रूप संसार अटवी में जरा मृत्यु रूप महा भयंकर दुःखों से जन्म मरण कर असाता वेदनी अनंत वार भुक्ता है ॥ ४७ ॥ यहां जो अग्नि है उस से अनंत गुनी उष्ण अग्नि नरक में है और [illegible] असाता मैंने भुक्ती है

सूत्र

गुणेताहिं ॥ नरएसु वेयणा सीया, अस्साया वेइयामए ॥ ४९ ॥ कन्दतो कंदुकुंभीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो ॥ हुयासणे जलंतम्मि, पक्कपुव्वो अणंतसो ॥ ५० ॥ महा दवग्गि संकासे, मरुम्मि वइरवालुए ॥ कलम्बवालुयाए य, दड्ढपुव्वो अणंतसो ॥ ५१ ॥ रसतो कंदुकुंभीसु, उड्ढं बद्धो अबन्धवो ॥ करवत्तकरकयाईहिं, छिन्नपुव्वो अणंतसो ॥ ५२ ॥ अइतिक्ख कंटगाइण्णे, तुंगे सिंबलिपायवे ॥ खेवियं पासबद्धेणं कड्ढो कड्ढाहिं दुक्करं ॥ ५३ ॥ महा जंतेसु उच्छू वा, आरसंतो सुभेरवं ॥ पीडितो मि सकम्मेहिं, पाव

अर्थ

॥४९॥ यहां पर जो हिमालयादिमें शीत है इससे अनंत गुनी शीत वेदना नरकमें हैं इसको भी मैंने भुक्ती हैं ॥ ४९ ॥ प्रज्वलित भट्टी पर लोह की कढाइ आदि भाजन तपाकर उस पर मेरे पांव ऊंचे व मस्तक नीचा रखकर मुझे अनंतवार पचाया है ॥५०॥ मरुस्थल जैसी रेती तथा कदंब नामक नदी की रेती जैसा रेती को महा दवाग्नि जैसी बनाकर उस में मुझे अनंत वार भुजा है. ॥ ५१ ॥ बांधव रहित मुझे कुंभी में आक्रंद करता हुवा उगाकर ऊंची वृक्ष की शाखा से बांधा और वहां छोटा व बडी करवती से मेरे शरीर का विदारन किया ॥ ५२ ॥ अति तीक्ष्ण कांटे से व्याप्त सिंबली वृक्ष को ऊंचे बंधन से मुझे बांधकर झोके (झूले) दिये इस से असह्य वेदना भोगनी पडी ॥ ५३ ॥ मेरे अशुभ कर्मोदय से रौद्र भयानक शब्द आक्रंद

सूत्र

कम्मा अणन्तसो॥५४॥कुवतो कोल्सणंहिं सामेहिं सबलेहि य॥पाडिओ फालिओ छिन्नो, विप्फुरंतो अणेगसो ॥५५॥असीहिय अयसिवण्णाहि भल्लीहिं पट्टिसेहि य॥छिन्नो भिन्नो विभिन्नो य ओइण्णो पावकम्मुणा ॥ ५६ ॥ अवसो लोह रहे जुत्तो जलंते समिला जुए ॥चोइओ तत्तजुत्तेहिं रोज्झो वा ज पाडिओ ॥ ५७ ॥ हुयासणे जलन्तम्मि, चियासु महिसो विव ॥ दड्ढो पक्को य अवसो पाव कम्मेहि पाविओ ॥ ५८ ॥ बला सडास तुंडेहि, लोहतुंडेहि पक्खिहिं ॥ विलुत्तो विलवंतोहं, ढंकगिद्धेहि णंतसो

अर्थ

करते हुए मैंने महा दुःखमें अनन्ती वार पीला ॥५४॥सबल जाति के परमाधर्मीने श्वान व सुअरका रूप बना कर कोलाहल करते हुए मुझे जमीन पर डालकर तड़फड़ते हुए मेरा पंजादि से छेदन किया और दांतों से भेदन किया ॥ ५५ ॥ पाप कर्म के उदय से मैं नरक में उत्पन्न हुआ तब अलसी के पुष्प के वर्ण समान खड्ग तथा भाले से छोटे मोटे टुकड़े किये ॥ ५६ ॥ जाज्वल्यमान अग्नि समान लोह रथ जूसरा तथा समिला सहित लोह रथ में मुझे परवश पड़े हुए को जोता फिर उस जोत से बांध कर रोझ पशु का जैसे मार मारे वैसे ही लकड़ियों के प्रहार से मर्म स्थान में मुझे मारा ॥ ५७ ॥ मेरे उपार्जन किये हुवे पाप कर्म से परवश पड़े हुए मुझ जाज्वल्यमान अग्नि की चिता में यज्ञ के भैंसे की तरह अथवा मांस की तरह भड़था किया ॥ ५८ ॥ ढंक कंक आदि मांसाहारी पक्षियों के तीक्ष्ण चोंच वाले रूप बना कर परमाधर्मियों ने सडासी व चिमटे जैसे मुख कर मेरे शरीर का मांस अनन्ती वार नीकाल

सूत्र

॥ ५९ ॥ तण्हाकिलन्तो धावंतो पत्तो वेयरणिं नदिं ॥ जलं पाहिं ति चिंततो खुरधाराहिं विवाइओ ॥ ६० ॥ उण्हाभितत्तो संपत्तो, असिपत्तं महावणं ॥ असिपत्तेहिं पडंतेहिं छिन्नपुव्वा अणगसो ॥ ६१ ॥ मुग्गरेहिं मुसंढीहिं, सूलेहिं मुसलेहिय ॥ गयासं भग्गगत्तेहिं पत्तंदुक्खं अणंतसो ॥ ६२ ॥ खुरेहिं तिक्खधारेहिं छुरियाहिं कप्पणीहि य ॥ कप्पिओ फालिओ छिन्नो उक्कित्तो य अणेगसो ॥ ६३ ॥ पासेहिं कूडजालेहिं मिओवा अवसो अहं ॥ वाहिओ बद्धरुद्धोवा, बहुसो चेव विवाइओ ॥ ६४ ॥ गलेहिं मगरजालेहिं मच्छो वा अवसो अहं ॥ उल्लिओ

अर्थ

॥ ५९ तृषा से पीडित बना हुवा वैतरनी नदी में जाकर पाणी पीऊंगा इस विचार से गया परंतु उसके जैसी धारवाला तीक्ष्ण पानी पग में पडकर अत्यन्त पीडित हुवा ॥ ६० ॥ गरमी के ताप से आक्रान्त व्याकूल बनकर शीतलता के लिये असिपत्र वन में गया उन वृक्षों के पत्र खड्ग की धारा समान मेरे शरीर पर पडने से अनंत वार मेरे शरीर का छेदन हुवा ॥ ६१ ॥ मुझे अनाथ जानकर यम देवताओंने मुद्गल व मुसंढी से मेरे शरीर का अनंती वार भंग किया ॥ ६२ ॥ मेरे शरीर का वृक्ष की छाल जैसे छुरीकी तीक्ष्ण धारा से अनंत वार निकाला और वस्त्र की तरह कैंची से अनंत वार काटा ॥ ६३ ॥ जैसे मृग को पाश में बांधते हैं वैसे ही परवश पडा हुवा मुझे अनंती वार नाग पाश से बंधन से बांधा और श्वासो च्छ्वास का रुंधन कर जीवित से रहित किया ॥ ६४ ॥ मुझे परवशपना से अनेक वार जैसे मच्छ को,

फालिओ गहिओ,मारिओय अणंतसो ॥६५॥ धीवसएहि जालेहिं, लिप्पाहिं सउणो विव॥गहिओ लग्गोबद्धाय मारिओ य अणंतसो ॥६६॥कुहाड फरसुमाईहिं वड्डईहिं दुमो विव ॥ कुट्टिओ फालिओ छिन्नो तच्छिओ य अणतसो ॥ ६७ ॥ चवेडमुट्ठि-माईहिं, कुमारेहिं अयपिव ॥ ताडिओ कुट्टिओभिन्नो चुण्णिओय अणतसो ॥ ६८ ॥ तत्ता इ तम्बलोहाइ तउयाइ सीसायाणि य॥पाइओ कलकलन्ताइ आरसतो सुभेरवं ॥६९॥ तुह पियाइ मसाइ खडाइ सोल्लगाणि य ॥ खाविओ मिसमसाइं, अग्गिवण्णाइ

जाल में पकड़कर मच्छी से मारते हैं वैसे ही पकड़कर मारा ॥ ६५ ॥ जाल रूप पिंजरे में पक्षी की तरह बंध करके सींचाने के रूप से मेरे शरीर को चूंट खाया और मनको मार मारा ॥ ६६ ॥ जिस प्रकार सुथार काष्ठ का छेदन भेदन करता है वैसे ही यम देवोंने मुझे कुहाड़े से काट परशु से छेदा, गाड़ी की धुरी की तरह छूट, यों अनेता बार दुःख दिया ॥ ६७ ॥ जिस प्रकार लोहार लोहे को कूटता है वैसे ही यम देवतान मुझे चपेटे स, मुष्टि से, लता प्रहार से कूट कर सूक्ष्म २ टुकडे २ कर डाले ॥ ६८ ॥ मुझे मरडाट करते को पकड़ कर उकलता हुआ ताम्र कथीर लोहा, सीसा इत्यादि धातु का रस का पान कराया ॥ ६९ ॥ रे दुष्ट ! तुझ मांस बहुत प्रियकारी था सू मांस के मूले कर तल भुंज कर खाता था इस प्रकार वे परमाधर्मी बोलते हुए मेरे शरीर का मांस तोड २ कर बारीक २ टुकडे कर अग्नि वर

वेगसो ॥ ७० ॥ तुहं पिया सुरासीहू मेरओ य महूणि य॥ पाइओ मि जलंतीओ, वसाओ रुहिराणिय॥७१॥निच्च भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य॥परमा दुहसबद्धा, वेयणा वेदिता मए ॥ ७२ ॥ तिव्व चडप्पगाढाओ, घोराओ अइदुस्सहा ॥ महब्भयाओ भीमाओ, नरएसु वेदिता मए ॥ ७३ ॥ जारिसा माणुसे लोए ताता दीसन्ति वेयणा ॥ एत्तो अणन्त गुणिया नरएसु दुक्ख वेयणा ॥ ७४ ॥ सव्वभवेसु असाया वेयणा वेदितामए॥ निमिसतरमित्तंपि जं साता नत्थि वेयणा॥७५॥ तं बितंम्मापियरो,

रूप्य बनाकर अ ती बार मुझे पिलाया ॥ ७० ॥ जे मद्यपान करनेवाले मुझे गुड का, म ए, मधुका पना मदिरा बहुत प्रिय था यों गत जन्म का स्मरण कर मेरे ही शरीर का रुधिर चरबी निकाल कर अग्नि पर उकाल कर मुझे पिलाया ॥७१॥ नरक में सदैव भय भ्रांत उद्वेग युक्त व दुःख से कंपायमान शरीर वाला मैंने अत्यंत दुःखमय वेदना भुक्ति है ॥७२॥ नरक सम्बंधी अति तीव्र वेदना व कष्ट तेत्तीस सागरोपम पर्यंत महा भयंकर वेदना कम्पायमान शरीर सहित मैंने भुक्ति है।७३॥ इस मनुष्य लोक की असाता वेदनी से अनंत गुनी अधिक नरक की असाता वेदनी है ॥७४॥ मेषोन्मेष भी (आंख के टमकार इतना भी) जहां सुख नहीं है वैसी असाता वेदना सब भव में मैंने भुक्ति है॥७५॥तब मृगापुत्र से मात पिता कहने लगे कि

छंदेण पुत्त पव्वया मऊरं।पुण सामण्णे,दुक्ख निप्पडिकम्मया॥७६॥ सो बेइ अम्मापियरो एवमेयं जहा फुडं ॥ पडिकम्म को कुणइ अरण्णे मियपक्खिणं ॥ ७७ ॥ एगभूए अरण्णेवा जहा उ चरई मिगे ॥एवं धम्मं चरिस्सामि संजमेण तवेण य ॥ ७८ ॥ जहा मिगस्स आयंको, महारण्णम्मि जायई ॥ अच्छंतं रुक्खं मूलम्मि को णं ताहे तिगिच्छइ ॥ ७९ ॥ को वा से ओसहं देइ को वा से पुच्छई सुहं ॥को से भत्तं

हे पुत्र ! तूने कहा वह सब सत्य है परंतु साधुपना में जब कभी वेदना होती है और साधु को स वद्य औषध करना नहीं कल्पता है तब तू क्या करेगा ? ॥ ७६ ॥ तब मृगापुत्र बोला—अहो मात पिता ! तुमने कहा सो ठीक है परन्तु जब वनवासी पशु पक्षी बीमार होते हैं तब उन की औषधि कौन करता है ? ॥७७॥ जब जंगल में अकेला मृग फिरता उस ही प्रकार मैं भी संयमी व तपस्वी बन एकाकी धर्माचरण करूंगा ॥ ७८ ॥ जैसे महा अरण्य में मृग को कोई रोग होता है तब वह वृक्ष के मूल में आकर पड़ता है वहां उस की कौन चिकित्सा करता है ? उस को कौन औषधि देता है उस कौन 'सुखी हो' ऐसा पूछता है और उसे कौन भोजन पानी ला देता है ? जब वह मृग स्वस्थ समाधिवाला होता है तब भोजन पानी के लिये वन में व सरोवर में फिरता है वहां वह मृग तृण आदि खाकर व पानी पीकर फिर अपने स्थान जाता है इस प्रकार संयम में रक्त साधु को विविध प्रकार का रोग होवे तो मृग समान चरित्रवाला बन, अप्रतिबंध राग परिषह सहे जब आरोग्य हो तब गोचरी में विचरे ऐसे जो साधु होते हैं वे उस देवलोक की गति अथवा मुक्ति में जाते हैं ॥ ७७-८१ ॥ जैसे अकेला मृग

पाण वा आहारित्तु पणामए ॥ ८० ॥ जया य से सुही होइ, तया गच्छइ गोयरं ॥ भत्त पाणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य ॥ ८१ ॥ खाइत्ता पाणियं पाउं, वल्लरेहिं सरेहि य॥ मिग चारियं चरित्ताणं, गच्छती मिगचारियं ॥ ८२ ॥ एवं समुट्ठिओ भिक्खू एवमेव अणेगए ॥ मिगचरियं चरित्ताण, उड्ढं पक्कमती दिसं ॥८३॥(काव्य) जहामिगे एग अणेगचारी अणगवासे धुवगोयरे य ॥ एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे, नो हीलए नो वि य खिसएज्जा ॥ ८४ ॥ [गाथा] मिगचारियं चरिस्सामि, एवं पुत्ता जहासुहं ॥ अम्मापिईहिं णुन्नाओ, जहाइ उवहिं तहा ॥ ८५ ॥ मियचारियं चरिस्सामि, सव्वदुक्खविमोक्खणि ॥ तुब्भेहिं अब्भणुन्नाओ, गच्छ पुत्त

अर्थ

नवित २ स्थानक में रहे परंतु एक स्थानमें सदैव रहकर अपना निर्वाह नहीं करता है वैसे ही साधु मृगचर्या जैसे अमाते मृग विचरता हुवा तथा गौचरी के लिये निकला हुवा अपनी तथा परकी हीलना निंदा करे नहीं ॥८४॥ मैं मृग समान विचरुंगा ऐसा मृग पुत्र के कहने पर मात पिता कहने लगे कि हे पुत्र! तुम को जैसे सुख होवे वैसे करो इस तरह मातपिता की आज्ञा लेकर मृगापुत्रने सब उपाधि का त्याग किया ॥ ८५ ॥ अहो मातपिता! आप की आज्ञा होवे तो सब दु:ख से मुक्त करने वाली वैसी मृग चर्या मैं अंगीकार

जहागुहं ॥ ८६ ॥ एवं सो अम्मापियरो अणुमाणित्ताण बहुविहं ॥ ममत्तं छिन्दइ ताहे महानागोव्व कंचुकं ॥ ८७ ॥ इड्ढी वित्तं च मिते य, पुत्त दारं च नायओ ॥ रेणुय व पडेलग्ग, निद्धुणित्ताण निग्गओ ॥ ८८ ॥ पंचमहव्वयजुत्तो, पंचहिं समिओ तिगुत्ति गुत्तो य ॥ सब्भिंतर बाहिरओ, तवोकम्मंमि उज्जुओ ॥ ८९ ॥ निम्ममो निरहंकारो निस्संगो चत्तगारवो समो य सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु य ॥ ९० ॥ लाभालाभे सुहेदुक्खे, जीविए मरणे तहा ॥ समो निंदा पसंसासु तहामाणावमाणओ

कहना ऐसा मृगापुत्र के कहने पर मातपिताने कहा जैसा तम को सुख होवे वैसे करो ॥ ८६ ॥ इस तरह मृगापुत्रने मातापिता को अनेक तरह से समजाकर जैसे सर्प अपनी कांचली का त्याग करता है वैसे ही मृगापुत्रने ममत्व का त्याग किया ॥ ८७ ॥ जैसे वस्त्र पर पड़ी हुई रजको झटककर दूर कर देते वैसे ही सुवर्णादिक ऋद्धि, मित्र, पुत्र स्त्री ज्ञाति आदि सर्व का त्यागकर मृगापुत्र निकला ॥८८॥ मृगापुत्र मुनि पांच महाव्रत सहित पांच समिति युक्त तीन गुप्ति से गुप्त और बारह प्रकार के तप में उद्यमवंत बना ॥ ८९ ॥ ममता अहंकार व सकल संग रहित बना तीन गर्व का त्याग किया और त्रस व स्थावर यों सर्व भूतों में सम परिणाम वाला हुआ ॥ ९० ॥ लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवितव्य, मरण

॥ ११ ॥ गारवेसु कसाएसु दण्ड सल्ल भएसु य। नियत्तो हास सोगाओ, अनियाणो अबंधणो ॥ १२ ॥ अणिस्सिओ इहलोए, परलोए अणिस्सिओ ॥ वासीचंदण कप्पो य, असणे अणसणे तहा ॥ १३ ॥ अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवा॥ अज्झप्पज्झाण जोगेहिं, पसत्थ दम सासणे ॥ १४ ॥ एवं णाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य ॥ भावणाहि य सुद्धाहिं सम्मं भावेत्तु अप्पयं॥ १५ ॥ बहुयाणि उ

निंदा प्रशंसा व मान अपमान यों सब समपरिणाम धारण हुआ ॥ २१ ॥ तीन गर्व चार कषाय तीन दंड तीन शल्य सात भय व हास्य व शोक से निवर्ता और बंध तथा नियाण रहित बना ॥ २२ ॥ इस लोक में यश इत्यादि परलोक में देवलोक की ऋद्धि इत्यादिक की इच्छा रहित बनी करें का। चंदनादिक से चरचे अथवा कोई वसोले से छेदे उनपर तथा मान अपमान में समभाव रखने लगे ॥ २३ ॥ मृगापुत्र मुनि जिन शासन में हिंसादिक सर्व अप्रशस्त द्वार से सर्वथा प्रकार निवर्ते और शुद्ध अन्तःकरण से धर्मध्यानादि योगों का व्यापार से प्रशस्त उपशम भाव धारण किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार मृगापुत्र ज्ञान दर्शन, चारित्र तप तथा पांच महाव्रत की पच्चीस भावना से सम्यक् प्रकार आत्मा में निवास किया ॥ २५ ॥ मृगापुत्र मुनि बहुत प्रकार बहुत वर्ष चारित्र का पालन कर अन्त में एक महिने का

॥ महानिर्ग्रन्थीय नामक विंशतितम मध्ययनम् ॥

सिद्धाण नमो किच्चा संजयाण च भावओ ॥ अत्थ धम्म गर्ति तच्च, अणुसिट्ठि सुणेह मे ॥ १ ॥ पभूय रयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो ॥ विहार जत्तं निज्जाओ, मंडिकुच्छिंसि चेइए ॥ २ ॥ नाणा दुम लया इण्ण, नाणा पक्खि निसे-

उन्नीसवे अध्ययन में सावद्य औषधी का त्याग किया तो निर्ग्रंथ औषध करने वाले का बीसवां अध्ययन कहते हैं- हे शिष्य ! सिद्ध भगवंत दो प्रकार के हैं साधक सिद्ध सो अरिहंत और असाधक सिद्ध सो सिद्ध भगवंत इत्यादि तीन प्रकार के—आचार्य उपाध्याय और साधु इन पांचों ही को भाव से नमस्कार करके आत्महितार्थी जीवों की अर्थ सिद्धी रूप धर्म में गति, जिस प्रकार करना उस का यथातथ्य स्वरूप कहता हूं सो यथातथ्य कर अनुक्रम से सुनो ॥ १ ॥ मगध देश का अधिपति बहुत (बहुत) रत्नों का धारक श्रेणिक महाराजा अन्यदा अश्व क्रीडा करने (घोडे फिराने) राजगृही नगरी से निकल कर मंडीकुक्षि नामक बगीचे में गया ॥ २ ॥ वह मंडीरक्षा बगीचा, आम्रादि अनेक प्रकार के वृक्षों, द्राक्षादि अनेक प्रकार की लताओं कर शोभित था तथा अनेक प्रकार के पुष्पों कर वृक्षों क्यारियों से अच्छादित था और हंसादि अनेक प्रकार के पक्षीयों कर सवित था, इत्यादि गुणों कर वह

सूत्र

सेवियं ॥ नाणा कुसुमसंछन्नं उज्जाणं नंदणोवमं ॥ ३ ॥ तत्थ सो पासई साहु, संजयं सुसमाहियं ॥ निसिन्नं रुक्खमूलम्मि सुकुमालं सुहोइयं ॥ ४ ॥ तस्स रूवं तु पासित्ता राइणो तम्मि संजए ॥ अच्चंत परमो आसी अउलो रूव विम्हओ ॥ ५ ॥ अहो वण्णो अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया ॥ अहो खंती अहो मुत्ती, अहो भोग असंगया ॥ ६ ॥ तस्स पाए उ वंदित्ता, काऊण य पयाहिणं ॥ नाइदूर मणासन्ने, पंजली पडिपुच्छइ ॥ ७ ॥ तरुणोसि अज्जो पव्वइओ, भोग कालम्मि

अर्थ

बगीचा नंदन वन समान सुशोभित हो रहा था ॥ ३ ॥ उस बगीचे में एक वृक्ष के नीचे बैठे हुवे सम्यक् प्रकार इन्द्रियों का दमन करने वाले समाधि वन्त ऐसे एक साधु को देखे ॥ ४ ॥ वह राजा-उस साधु का अत्यन्त आश्चर्य कारक अनुपम रूप को देख कर उत्कृष्ट विस्मय को प्राप्त हुवा ॥ ५ ॥ अहो इति आश्चर्य कारक इन साधु के शरीर का वर्ण इन्द्रियों का रूप (आकार), मन की आर्यता सरलता, मृगांक सौम्यता क्षमा निर्लोभता और इस तारुण्यता में भोगों की असंगतीपना यह इन का हरही आश्चर्य कारक है ॥ ६ ॥ यों आश्चर्य चकित मना दोनों हाथ जोड मस्तक पर आवर्तन कर उन के पदारविंद को वन्दन कर नजीक में सन्मुख हाथ जोड कर बैठा हुवा इस प्रकार प्रश्न पूछने लगा ॥ ७ ॥ अहो आर्य तपस्वि ! इस भोगोपभोग भोगवने की तारुण्य अवस्था में चारित्र में सावधान

सूत्र

सजया ॥ उवट्ठितो सि सामण्णे, एतमट्ठं सुणामि ता ॥ ८ ॥ अणाहो मि महाराय, नाहा मज्झ न विज्जई ॥ अनुकंपगं सुहि वावि कांचि नाभिसमेमहं ॥ ९ ॥ ततो सो पहसिओ राया सेणिओ मगहाहिवो ॥ एवं ते इड्ढिमतस्स कहं नाहो न विज्जई ॥ १० ॥ होमि नाहो भयंताणं भोगे भुंजाहि संजया ॥ मित्तनाई परिवुडो माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥ ११ ॥ अप्पणा वि अणाहो सि सेणिया मगहाहिवा ॥ अप्पणा अणा

अर्थ

तपस्वी किस कारन से हुवे, अर्थ-कथन मैं सुनना चाहता हूं? ॥ ८ ॥ तब साधु बोले हे महाराजा! मेरे को योग्य क्षेम कुशलता रूप मेरी अनकम्पा का करने वाला इच्छित सुख को अर्पने वाला किंचित मात्र भी कोई नाथ नहीं होने से मैं अनाथ हूं इस लिये दीक्षा धारन की है ॥ ९ ॥ उक्त मुनि के वचन सुन श्रेणिक राजा हसने लगा और चिन्तवन लगा कि इस प्रकार उत्तम लक्षण व्यंजन रूप सम्पन्न के धारक को किस प्रकार नाथ नहीं होवे? ॥ १० ॥ अहो भय से रक्षन करने वाले साधु जी! मैं तुमारा नाथ होता हूं इस मनुष्य जन्म की प्राप्ति होना बहुत मुश्किल है इस लिये मित्र, ज्ञाति आदि को के साथ परिवरे हुवे मनुष्य सम्बन्धी प्रधान भोग को भोगवो ॥ ११ ॥ तब साधू जी बोले हे मगधाधिपति! तू स्वयं ही अनाथ है तू अपनी आत्मा का ही नाथ नहीं है तो दूसरे का नाथ किस

अणाहो वा नराहिवा ॥ १६ ॥ सुणेहमे महाराय अव्वक्खित्तेण चेयसा ॥ जहा अणाहो भवई, जहा मेयं पवत्तियं ॥ १७ ॥ कोसम्बी नाम नयरी, पुराणपुर भेयणी ॥ तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूय धणसंचओ ॥ १८ ॥ पढमे वए महाराय, अतुला मे अच्छिवेयणा ॥ अहोत्था विउलो दाहो सव्वगत्तेसु पत्थिवा ॥ १९ ॥ सत्थं जहा परमतिक्खं सरीर विवरंतरे ॥ आवीलिज्ज अरीकुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा ॥ २० ॥ तियमे अंतरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडती ॥ इंदासणि

होता है ॥ १६ ॥ इसलिये हे महाराजा ! जिस प्रकार मैं अनाथ हुआ तथा जगत् में जिस प्रकार अनाथ सनाथ होते हैं यह मैं तुझे कहता हूं सो तू दत्तचित्त से श्रवण कर ॥ १७ ॥ बहुत पुरानी अर्थ भेद की उत्पादक कोसंबी नाम की नगरी में प्रभूत धन संचय (बहुत द्रव्य का धारक) था—का मेरा पिता रहता था ॥ १८ ॥ हे पृथ्वीपति महाराजा ! मेरी प्रथम (तारुण्य) अवस्था के आरंभ में ऐसी अतुल्य आंख की वेदना उत्पन्न हुई जिस से सर्व शरीर में दाहज्वर व्याप्त हुआ ॥ १९ ॥ यथा दृष्टांत जैसे कोई वैरी कोपित हो कर अति तीक्ष्ण शस्त्र धारन कर के अन्दर कर्ण आंख नासिकादि का भेदन करे उस जिस प्रकार की वेदना होवे वैसे वेदना मुझे हुई ॥ २० ॥ तथा जिस प्रकार इन्द्र

सूत्र

समापोरा,वेयणा परमदारुणा ॥२१॥ उवट्ठिता मे आयरिया, विज्जा मत तिगिच्छया ॥ अधीया सत्थकुसला मंत मूल विसारया ॥२२॥ ते मे तिगिच्छ कुव्वति, चाउप्पाय जहाहियं ॥ न य दुक्खा विमोयति, एसा मज्झ अणाहया ॥ २३ ॥ पियामे सव्वसारंपि, दिज्जाहि मम कारणा ॥ न य दुक्खाउ मोयति, एसा मज्झ अणाहया ॥ २४ ॥ माया य मे महाराय, पुत्तसोग दुहट्ठिया ॥ न य दुक्खाउ मोयति, एसा

अर्थ

किसी प्रकार कोपित हो शत्रु का प्रहार करने से वह दुःख हो वैसे पर्यंत प्रज्वलित वेदना भोगवता है इस प्रकार मेरे कम्मर के मध्य में तथा मस्तक में दाह ज्वर की महा वेदना हुइ उसे समन्वय मेरे बहुत ही कठिन हो गया ॥ २१ ॥ (अब दूसरा दृष्टान्त से) वात के वैद्य शास्त्र के निपुण वैद्य जड़ी बूटी के जान विचारक प्रवीन औषधोपचार में प्रवीण ऐसे बहुत मेरे लिये आये ॥ २२ ॥ उन वैद्योंने १ औषध कर २ उपचार कर ३ पथ्य कर, और ४ प्रयत्न कर इन चारों प्रकार कर जिस प्रकार बना तैसे ही उस प्रकार करते हुए भी मुझे उस दुःख से मुक्त कर सके नहीं यह मेरा अनाथ पना ॥ २३ ॥ मेरे पिताने मेरे आराम के लिये घर का सारभूत द्रव्य वैद्यादि को दिया तो भी मुझे दुःख से मुक्त करसके नहीं यह मेरा अनाथपना ॥ २४ ॥ हे महाराजा ! मेरी माता भी पुत्र के दुःख कर पीडित

सूत्र

मज्झ अणाहया ॥ २५ ॥ भायरो मे महाराय, सगा जेट्ठ कणिट्ठगा ॥ नय दुक्खा विमोयति एसा मज्झ अणाहया ॥ २६ ॥ भाइणीओ मे महाराय, सगा जेट्ठ कणिट्ठगा ॥ नय दुक्खा विमोयति एसा मज्झ अणाहया ॥ २७ ॥ भारिया मे महाराय अणुरत्ता अणुव्वया ॥ अंसुपुण्णेहिं नयणेहिं, उरं मे परिसिंचई ॥ २८ ॥ अन्नं पाणं च ण्हाणं च गंधमल्ल विलेवणं ॥ मए नायमनायं वा, सा बाला नेव भुंजई ॥ ॥ २९ ॥ खणंपि मे महाराय, पासाओ मे नफिट्टती ॥ नय दुक्खा

अर्थ

दुखनी आर्तवती थी परन्तु वह भी मुझ दुःख से मुक्त करसकी नहीं यह मेरा अनाथपना ॥ २५ ॥ हे महाराज! मेरे छोटे बड़े भाई भी थे वे भी मुझे दुःख से मुक्त कर सके नहीं यह मेरा अनाथपना ॥ २६ ॥ हे महाराजा! मेरे छोटी बड़ी बहिनो भी थी वे भी मुझ दुःख से मुक्त करसकी नहीं यह मेरा अनाथपना ॥ २७ ॥ हे महाराजा! रूपवती मेरा अत्यन्त रागवाली स्त्रियों के सब कार्यों कर अनुक्रम पतिव्रता में रही भी थी वह मेरे दुःख से दुःखित हुई मुझे आंसू भरा आंखों से मेरा हृदय को सिंचती हुई रही थी ॥ २८ ॥ उस स्त्री ने मेरे जानते में तथा अजानते में अशन पानी का भोगवना स्नान करना सुगंधी द्रव्य का सेवन पुष्पमाला कुंकुमादि का विलेपन तिलकादि करना इत्यादि शृंगार छोडदिया था अर्थात् भोगवती नहीं थी ॥ २९ ॥ हे महाराजा!

मूल

समाघोरा, वेयणा परमदारुणा ॥२१॥ उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जा मंत तिगिच्छगा ॥ अधीया सत्थकुसला मंत मूल विसारया ॥२२॥ ते मे तिगिच्छं कुव्वंति चाउप्पायं जहाहियं ॥ न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥ २३ ॥ पिया मे सव्वसारं पि, दिज्जाहि मम कारणा ॥ न य दुक्खाउ मोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥ २४ ॥ माया य मे महाराय, पुत्तसोग दुहट्टिया ॥ न य दुक्खाउ मोयंति एसा

अर्थ

किसी प्रकार कोपित हो वज्र का प्रहार करने से यह दुःख होवे ऐसी पर्यंत प्रज्वलित रूप वेदना होती है इस प्रकार मेरे कम्मर के मध्य में तथा मस्तक में दाह ज्वर भी महा वेदना हुई उसे सहना मुझे बहुत ही कठिन हो गया ॥ २१ ॥ (अब देखिए पीछे से) बहुत से वैद्य शास्त्र के निपुण वैद्य जड़ी बूटी के ज्ञाता विद्याकर मंत्र औषधोपचार में अनुपम ऐसे बड़े मेरे लिये आये ॥ २२ ॥ उन वैद्योंने १ औषध कर २ उपचार कर ३ पथ्य कर, और ४ यत्न कर इन चारों प्रकार कर जिस प्रकार मेरा हित हो उस प्रकार करते हुए भी मुझे उस दुःख से मुक्त करसके नहीं यह मेरा अनाथ पना ॥ २३ ॥ मेरे पिताने मेरे आराम के लिये घर का सारभूत द्रव्य वैद्यादि को दिया तो भी मुझे दुःख से मुक्त करसके नहीं यह मेरा अनाथपना ॥ २४ ॥ हे महाराजा ! मेरी माता भी पुत्र के दुःख कर अति

सूत्र

भूयाणं, तसाण थावराण य ॥ ३५ ॥ अप्पा नदी वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ॥ अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं ॥ ३६ ॥ अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ॥ अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥ ३७ ॥ (काव्य) इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा, तमेगचित्तो निहुओ सुणेहि ॥ नियंठ धम्मं लहियाण वी जहा, सीदंति एगे बहुकायरा नरा ॥ ३८ ॥ जो पव्वइत्ताण

अर्थ

तथा अन्य का आत्मा का त्रस स्थावर सब प्राणीयों का नाथ हुआ ॥ ३५ ॥ दुष्कृत्य करने से अपना आत्मा है नरक की वैतरणी नदी व तथा शामली वृक्ष के दुःख देने वाला होता है और सुकृत्य करने से अपना आत्मा कामधेनू का दूध पिलाने वाला तथा नंदन वन के सुख के बताने वाला होता है ॥ ३६ ॥ इसलिये अपना आत्मा ही कर्म का करता और भोक्ता दुःख सुख का भोक्ता शत्रु व मित्र भी अपना आत्मा ही है अन्य कोई नहीं है ॥ ३७ ॥ हे राजा! (यह मेरा अनाथ पना कहा) अब इस सिवाय अन्य भी जो अनाथ पना है उसे भी स्वस्थ चित्त हो श्रवण कर कितने कायर मनों निर्ग्रन्थ धर्म को-साधुपने को अंगीकार कर उस का निर्वाह न होने से शिथल बनकर जिस प्रकार राजा रनांगन में पराजय पाया पश्चाताप करता है तैसे वह भी पश्चाताप करते हैं ॥ ३८ ॥ जो कोइ अहिंसादि पांच महाव्रत

सूत्र

कुडकहावणे वा ॥ राढामणी वेरुलिय प्पगासे, अमहग्घए होइ य जाणएसु॥ ४२ ॥ कुसील लिंग इह धारइत्ता इसिज्झय जीविय वूहइत्ता ॥ असंजए संजय लप्पमाणे विणिग्घाय मागच्छइ से चिरंपि ॥ ४३ ॥ विसं तु पीय जह कालकूडं, हणइ सत्थ जह कुग्गहीयं ॥ एसो वि धम्मो विसओ ववन्नो, हणइ वेयाल इवाविवन्नो ॥ ४४ ॥ जे लक्खणं सुविण पउजमाणे, निमित्त

अर्थ

होती है, जिस प्रकार खोटा नाणा असार होता है, और जिस प्रकार कांचका टुकडा राढामणि के समान प्रकाश करता हुवा भी जानकर पुरुष (जौहरी) के आगे मूल्य प्राप्त नहीं करसका है, तैसेही अन्त करणम कपट रख कर करणी करने वाला असार जानना ॥ ४२ ॥ इस मनुष्य लोक में जो कोइ साधु के गुन विना रजोहरण मुख वस्त्रिकादि साधु का लिंग भेप धारन कर के अपनी अजीविका-पेटभराई करते हैं असंयति (असाधु) हो कर साधु नाम धराते हैं वे द्रव्यलिंगीयों बहुत काल पर्यंत संसार में दुःख पावेंगे ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार तालपुट (जिस ताल्वे को स्पर्श होते ही मृत्यु प्राप्त होवे ऐसा) विष खाने से प्राण का नाश होता है, तथा जिस प्रकार अविधी (उल्टा) शस्त्र हाथ मे धारन करने से और जिस प्रकार विधिविना वैतालिक मंत्र का जाप करने से मृत्यु निपजती है, तैसे ही विषय पर्यको आराधने वाला वारम्वार मृत्यु पाता है ॥ ४४ ॥ जो साधु चक्रादि लक्षण विचार (सामुद्रिक शास्त्र)

सूत्र

नाहई मच्चुमुह तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥ ४८ ॥ निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स, ज उत्तमट्ठ विवज्जा समेइ ॥ इमे वि से नत्थि परे वि लोए, दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लोए ॥ ४९ ॥ एमेव हा छद कुसीलरूवे, मग्ग विराहित्तु जिणुत्तमाण कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा, निरट्ठसोया परियावमेइ ॥ ५० ॥ सोच्चाण मेहावि सुभासिय इम, अणुसासण नाणगुणोववेय ॥ मग्ग कुसीलाण जहाय सव्व महा नियंठाण वए पहेण ॥ ५१ ॥ चरित्त मायारगुणन्निए तओ, अणुत्तर सजम पालि॰

अर्थ

मृत्यु की वक्त मरा पश्चाताप करेगा ॥ ४८ ॥ जो सयम में रूची रहित बनकर आत्म कल्याण सायक जो सयम का उत्तमार्थ है उस का नाश करता है उस के इस लोक का भी नाश होता है और परलोक का भी नाश होता है अर्थात् दोनों लोक में पश्चाताप करता है ॥ ४९ ॥ कुशीलिया स्वछन्दा चारी जिनेन्द्र भगवान का उत्तमोत्तम मार्ग की विराधना कर जिस प्रकार मांस स्वद ग्रहण की हुइ पक्षिणी दु:खनी होती है उस ही प्रकार यह भोग रसादि में गृद्ध बना हुआ पश्चाताप करेगा ॥ ५० ॥ हे मेधावी (पण्डित) श्रेणिक ! मैंने जो उक्त ज्ञानादि गुणकर युक्त हित शिक्षाओं कही उसे श्रवन कर जो जो कुशीलीयों-अनाचारियों के मार्ग है उस का सर्वथा त्याग कर-कुशीलीयों की गत को छोड कर महानिग्रन्थ के मार्ग में प्रवर्ते सो ही सुखी होगा ॥ ५१ ॥ जो ज्ञानादि गुन कर सम्पन्न

सूत्र

कीकुरल सपगाढे ॥ कुहेडविज्जासवदारजीवी, नगच्छइ सरण तम्मि काले ॥४५॥ तम तमेणेव उ से असलि, सया दुही विप्परिया मुवेति ॥ सधावती नरग तिरिक्ख जोणिं, मोण विराहेत्तु असाहुरूवे ॥ ४६ ॥ उद्देसिय कीयगड नियाग, न मुचइ किं चि अणेसणिज्जं ॥ अग्गीविवा सव्व भक्खी भवित्ता इत्तो चुए गच्छइ कट्टु पाव ॥ ४७ ॥ न तं अरी कण्ठछेत्ता करइ, ज से करे अप्पणिया दुरप्पया ॥ से

अर्थ

स्वप्न विचार निमित्त विद्या मंत्र तंत्र यंत्रादि विद्या आश्रयं उत्पन्न करने कौतुक इन्द्रजाल विद्या पर सब जीवों को अहित के करता होवे है मरणान्त में दुर्गति से बचाने समर्थ नहीं होते है ॥ ४५ ॥ अति अज्ञान रूप अन्धकार में हो साधु के वेष व क्रिया रहित भ्रष्ट यति परलोक में मुनि की आज्ञा से कुछ भी नहीं सके या भी वह चारित्र का विराधक असाधु निरंतर नरक तिर्यंच योनि में परिभ्रमण करेगा ॥४६ ॥ जिस प्रकार अग्नि सर्व भक्षी होती है तैसे ही वह साधु भी उद्देशिक साधु के लिये बनाया खरीद-मोल लाया, नित्यपिंड, इत्यादि दोषों युक्त अनेषणीक आहार आदि किंचित मात्र भी छोडे नहीं ऐसा साधु यहां पाप कर्म की उपार्जना कर दुर्गति में जाता है ॥ ४७ ॥ प्राण का नाश करने वाले वैरी जितना दुःख नहीं करता है उतना दुःख दूर रमा दुराचारी करता है वह गुणविना वत्पापी बना धर्म रहित

सूत्र

ज मे ठिया मग्गे जिणुत्तमाण ॥ ५५ ॥ [गाथा] तं सि नाहो अणाहाणं, सव्व भूयाण संजया ॥ खामेमि ते महाभाग, इच्छामि अणुसासिउ ॥ ५६ ॥ पुच्छिऊण मए तुब्भ, झाणविग्घाओ जो कओ ॥ निमंतिया य भोगेहिं, त सव्व मरिसेहि मे ॥ ५७ ॥ (काव्य) एव थुणित्ताण स रायसीहो, अणगारसीह परमाइ भत्तीए ॥ सओरोहो सपरियणो सबधवो, धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ॥ ५८ ॥ (गाहा)

अर्थ

आप ही सनाथ और सबन्धव बने हो !! ॥ ५५ ॥ अहो सर्व जीवों के रक्षपाल संयति ! तुम ही सब भूत-अनाथ प्राणीयों क नाथ हो, अहो महामाहत्म न् ! मैं आप को खमाता हूं, मेरा अपराध माफ करना और मैं आप की दी हुइ हित शिक्षा को इच्छता हूं !! ॥ ५६ ॥ अहो संयाति ! आप ध्यान में निमग्न बने थे मैने उस में विघ्न किया, आप यौवनावस्था में साधु क्यों हुवे, वगैरा प्रश्न पूछे राज्यादि भोग का आमंत्रण किया इत्यादि जो जो मैने आप के अपराध किये हैं उन सब को आप माफ करो, मैं खमाता हूं !! ॥ ५७ ॥ सब राजाओं में सिंह समान श्रेणिक राजा अपने अन्तःपुर माइबन्ध कुटम्ब परिवार से परिवरा हुआ साधुओं में सिंह समान अनाथी नामक निर्ग्रन्थ की स्तुति गुणग्राम कर के (बोध भव रूप मिथ्यात्व मैल त्याग कर) जिन भणित धर्म में प्रेमानुराग में रक्तबना सम्यक्त्व प्राप्त की फिर

सूत्र

याण ॥ निरासवे सखवियाण कम्मं, उवेइ ठाण विउलुत्तम धुय ॥ २५ ॥ एवुग्ग दंतेवि महातवोधणे, महामुणी महापइन्ने महायसे ॥ महानियण्ठिज्जमिण महासुय, से कहेई महया वित्थरेण ॥ ५३ ॥ [गाहा] तुट्ठोय सेणिओ राया इणमुदाहु कयजली ॥ अणाहत्त जहाभूय, सुट्ठु मे उवदंसिय ॥ ५४ ॥ (काव्य) तुज्झ सुलद्ध खु मणुस्स जम्म, लाभा सुलद्धा य तुमेमहेसी ॥ तुब्भे सणाहा य सबंधवा य,

अर्थ

उपशम यथाख्यात चारित्र का पालन कर आश्रव रहित होता है वो कर्म रूपी रज का क्षय कर के शाश्वत नित्य सदैव स्थिर अत्युत्तम सिद्धस्थानक को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि-हेजम्बू ! महानिर्ग्रन्थ का पंथ दर्शाने वाला यह अध्ययन को कर्म शत्रु को जीतने में दृढ इन्द्रियों के जय करने वाले तपोधनी ब्रह्मवी महामती महायशवंत अनाथी नामक निर्ग्रन्थ ने यह महा श्रुत नामक अध्ययन बहुत विस्तार पूर्वक श्रेणिक राजा को सुनाया ॥ ५३ ॥ उक्त कथन श्रवन कर श्रेणिक राजा संतुष्ट हुआ, दोनों हाथ जोड कर कहने लगा कि अहो महामुने ! आपने मुझे अनाथ पने का स्वरूप सम्यक् प्रकार जैसा था तैसा यथातथ्य अच्छा कहा ॥ ५४ ॥ अहो महा ऋषि आप को मनुष्य जन्म की प्राप्ति और मनुष्य जन्म का लाभ द्रव्य रूप सम्पदा तथा भाव से ज्ञानादि गुण की बहुत अच्छी प्राप्त हुई है श्री जिनेश्वर भगवंत भाषित अत्युत्तम मार्ग को अंगीकार कर उस के स्थिर हो

सूत्र

॥ समुद्र पालीक नामकं एकविंशतितम मध्ययनम् ॥

चंपाए पालिए नाम सावए आसि वाणिए॥ महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो ॥ १ ॥ निग्गंथे पावयणे, सावए सेवि कोविए ॥ पोएण ववहरंते, पिहुंडनगर मागए ॥२॥ पिहुंडे ववहरतस्स वाणिओ देइ धूयरं ॥ त ससत्त पइगिज्झ सदेसमुह पत्थिओ ॥ ३ ॥ अह पालियस्स घरणी, समुद्दमि पसुवती ॥ अह बालए तहिं जाए समुद्दपालित्ति नामए ॥ ४ ॥ खेमेण आगए चंप सावए वाणिए घरं ॥ संवद्धति तस्स

अर्थ

बीसवे अध्ययन में महानिर्ग्रन्थपना का कथन करा जो महानिर्ग्रन्थ होते हैं वे ही भाविद रहित स्थान का सेवन करते हैं सो इस इक्कीस वे अध्ययन में कहते हैं चंपा नगरी में वणिकजाति का पालित नाम का सार्थवाह श्री महावीर भगवान का शिष्य व महात्मा वाला रहता था ॥ १ ॥ वह निर्ग्रन्थ के प्रवचन (शास्त्र) में प्रवीण था वह एकदा जहाज से व्यापार के लिये पिहुंड नगर को गया ॥ २ ॥ वहां पिहुंड नगर में व्यापार करते उस पालित को किसी वणिक ने अपनी कन्या दी वह गर्भवती हुई तब उसे अपनी साथ लेकर अपने नगर को आने लगा ॥३॥ उस पालित की स्त्री को समुद्र में पुत्र प्रसव हुवा जिस पर से उस पुत्र का नाम समुद्रपाल रखा ॥ ४ ॥ वह श्रावक पालित नाम का वणिक कुशल क्षेम

सूत्र

ऊससियरोमकूवो काऊण य पयाहिण ॥ अभिवंदिऊण सिरसा अइयाओ नराहिवो ॥ ५९ ॥ इयरो वि गुणसमिद्धो तिगुत्तिगुत्तो तिदंडविरओ य ॥ विहग इव विप्पमुक्को, विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥ ६० ॥ त्तिबेमि ॥ इति महानियंठिज्ज वीस अज्झयण सम्मत्त ॥२०॥ • • • • • •

अर्थ

हर्षित हो कर रोमराई विकसाय मान होने दोनों हाथ जोड प्रदक्षिणावर्त फिरा कर मस्तक कर अनाथी निर्ग्रन्थ को वंदना नमस्कार कर के अपने स्थान गये ॥ ५९ ॥ ऊपर कहे इत्यादि गुणों सहित तीन गुप्ति गुप्त, तीन दंडसे रहित दोनों प्रकार के संयोग रहित सब प्रकार से मोह रहित होकर पक्षी की तरह विनपद देश में विहार करने लगे ॥ ६० ॥ ऐसा सुधर्मास्वामीने जम्बूस्वामी से कहा ॥ इति महा निर्ग्रन्थ नामका वीसवा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ २० ॥ • • • •

अकक्कसो तत्थ ऽहियासएज्जा रयाइंखेयेज्ज पुरे कयाइं ॥ १८ ॥ पहाय रागं च तदव दोस, मोहं च भिक्खू सतत वियक्खणो ॥ मेरुव्व वाएण अकंपमाणो, परीसहे आयगुत्त सहेज्जा ॥ १९ ॥ अणुन्नए नावणए महेसी, नयावि पूय गरहं च सजए ॥ स उज्जुभावं पडिवज्ज सजए निव्वाण मग्गं विरए उवेइ ॥ २० ॥ अरइरइसहे पहीण संथवे विरए आयहिए पहाणव ॥ परमट्ठपएहिं चिट्ठई छिन्नसोए अममे अकिंचणे ॥ २१ ॥ विविच लयणाइं भएज्जनाइ, निरोवलेवाइ असथडाइ ॥

अर्थ—शीत उष्ण, दंश मशक व अनेक प्रकार के रोग शरीर को दुखित करे परंतु आक्रंद नहीं करता हुआ वह सब सहन करे और अपने पूर्व कृत कर्म का क्षय करे ॥ १८ ॥ विचक्षण मुनि राग द्वेष व मोह का त्याग कर जैसे वायु से मेरुपर्वत चलित होवे नहीं वैसे आत्मा को गोप कर समभावी बनकर अपने कृत कर्म जानकर परिषह सहन करे ॥ १९ ॥ साधु द्रव्य से ऋद्धि वाला व भाव से आममानादिक से ऊंचा न होवे, वैसे ही द्रव्य से दुष्कृत्य कर व भाव से कायरता से नीचा भी होवे नहीं और भी साधु पूजा व निंदा की वांच्छा करे नहीं वैसे ही समुद्र पाल मुनिने सरल भाव अंगीकार किया व ज्ञान दर्शनादिक निवृत्ति मार्ग प्राप्त किया ॥ २० ॥ असंयम में रति व संयम में अरति का नाश कर गृहस्थ का परिचय नहीं करते हुए अपने आत्मा के हितरूप धन आश्रव का निरूंधन कर शोक ममत्व परिग्रह की तृष्णा छेदन कर उत्तम संयम ज्ञानादि में आत्मा को रमाते रहने लगे ॥ २१ ॥ आत्मा तथा पर

सूत्र

वयजोग सुच्चा न असब्भमाहु ॥ १४ ॥ उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा ॥ न सव्व सव्वत्थ ऽभिरोयएज्जा न यावि पूयं गरहं च संजए ॥ १५ ॥ अणेगछंदा इह माणवेहिं, जे भावओ संपगरेइ भिक्खू ॥ भयभेरवा तत्थ उइंति भीमा, दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा ॥ १६ ॥ परीसहा दुव्विसहा अणेगे सीयंति जत्थ बहु कायरा नरा ॥ से तत्थ पत्ते न वहिज्ज भिक्खू संगामसीसे इव नागराया ॥ १७ ॥ सीओसिणा दंसमसा य फासा, आयंका विविहा फुसंति देहं ॥

अर्थ

वन भयंकर शब्दों सुनकर त्रास पावे नहीं वैसे ही अभिमान करे नहीं ॥ १४ ॥ शुभ कर्मों का विपाक अपने कर्म का फल है ऐसा जानकर उस की अपेक्षा करता हुआ विचरे और प्रिय व अप्रिय जो होवे उसे सहन कर मनोज्ञ अमनोज्ञ जो वस्तु मिले उस की अभिलाषा करे नहीं, वैसे ही अपनी प्रशंसा तथा निंदा की वांछा करे नहीं ॥ १५ ॥ इस संसार में जीवों के अनेक प्रकार के अभिप्राय हैं उसका समभाव से ग्रहण कर देवता मनुष्य और तिर्यंच संबंधी महा भयंकर जो परिषह उपसर्ग होवे उसे समदृष्टि समभाव से सहन करते हैं ॥ १६ ॥ जो दुःसह परिषह कहे हैं वे दुःसह और कायर पुरुष इस से दुःखी होते हैं, परंतु जैसे संग्राम में शूरवीर हाथी किसी से भयभीत होवे नहीं, वैसे ही समदृष्टि मुनि परिषह से घबरावे नहीं ॥ २० ॥

॥ रथनेमी नामकं द्वाविंशतितम मध्ययनम् ॥

सोरिय पुरमि नयरे, आसि राया महिड्डिए ॥ वसुदेवो त्ति नामेण, राय लक्खण संजुए ॥ १ ॥ तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा ॥ तासिं दोण्ह दुवे पुत्ता, इट्ठा राम केसवा ॥ २ ॥ सोरियपुरमि नयरे, आसी राया महिड्डिए ॥ समुद्दविजए नाम, राय लक्खण संजुए ॥ ३ ॥ तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ॥ भगवं अरिट्ठनेमित्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥ ४ ॥ सोऽरिट्ठनेमि

इक्कीसवे अध्ययन में स्त्रियादि रहित स्थानक का सेवन करने का कहा स्त्रियादि सहित स्थानक सेवन करने के दोष इस बावीसवे अध्ययन में कहते है सोरीपुर नगर में राजा के उत्तम लक्षण के धारक महर्द्धिक वासुदेव राजा था ॥ १ ॥ उस की रोहिनी व देवकी ऐसी दो स्त्रियों थी इन दोनों में रोहिनी से बलभद्र और देवकी से कृष्ण वासुदेव यों इष्टकारी दो पुत्र का जन्म हुवा ॥ २ ॥ उस ही सोरीपुर नगर में राजा के उत्तम लक्षण युक्त व महर्द्धिक समुद्रविजय नाम का राजा रहता था ॥ ३ ॥ उस की सिवा नामक स्त्री से महा यशस्वी भगवान अरिष्टनेमी का जन्म हुवा वे लोक के नाथ व दमीश्वर हुए ॥ ४ ॥ ये अरिष्टनेमी गांभार्यादि गुण युक्त, एक हजार आठ उत्तम लक्षण धारन करने वाले, गौतम गोत्रीय व

सूत्र

इसीहि चिण्णाइ महायसेहिं काएण, फासेज्ज परीसहाइं ॥ २२ ॥ सन्नाणनाणो वगए महेसी अणुत्तर चरिओ धम्म सचय ॥ अणुत्तरे नाणधरे जसंसी ओभासई सूरिए अतलिक्खे॥२३॥दुविहं खवे ऊणय पुण्णपाव,निरगण सव्वओ विप्पमुक्क तरित्ता समुद्द व महा भवोघं, समुद्दपाले अपुणागम गए ॥ २४ ॥ त्तिबेमि ॥ इति समुद्दपालीयं इक्कविसम अज्झयणं सम्मत्त ॥ २१ ॥ • • •

अर्थ

काया का रक्षक मुनि राग प्रमुख रहित निरूपलेप व स्त्रियादि रहित उपाश्रय का सेवन करे और परिषह सहन करे ऐसे सेवन महातपस्वी ऋषियों ने किया है ॥ २२ ॥ महायशस्वी समुद्र पाल ऋषि ज्ञान युक्त दस प्रकार का यति धर्म का सम्यक् प्रकार से आचरन कर जिस प्रकार आकाश में सूर्य प्रकाशता है वैसे ही उत्तम केवल ज्ञान केवल दर्शन के धारक बने ॥ २३ ॥ ज्ञानावरणीय आदि चार घनघातिक व वेदनीयादि चार अघातिक अथवा शुभ पुण्य व दुःख—पाप इन आठ ही प्रकार के कर्मों का क्षयकर शैलेशी अवस्था को प्राप्त हो काया की चपलता रहित अचल बन महाप्रवाह रूप संसार समुद्र से तीरकर पुनरागमन होवे ऐसी सिद्ध गति को प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जंबूस्वामी से कहने लगे कि जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुम्हे कहता हूं यह इक्कीसवा अध्ययन हुआ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁

गधहत्थि वासुदेवस्स जेट्ठग ॥ आरुढो सोहए अहियं, सिरे चूडामणी जहा ॥१०॥

अह ऊसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिए ॥ दसार चक्केण य सो सव्वओ परिवारिओ ॥ ११ ॥ चउरंगिणीए सेनाए, रइयाए जहक्कमं ॥ तुरियाण सन्निनाएण दिव्वेण गगण फुसे ॥ १२ ॥ एयारिसाए इड्ढीए जुत्तीए उत्तमाइय ॥ नियगाओ भवणाओ, निज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥ १३ ॥ अह सो तत्थ निज्जंतो, दिस्सपाणे भयद्दुए ॥ वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धे सुदुक्खिए ॥ १४ ॥ जीवियंत तु संपत्ते, मंसट्ठा भक्खियव्वए ॥ पासेत्ता से महापन्ने, सारहिं इणं मब्बवी ॥ १५ ॥ कस्स

पर चूडामणि सुशोभित दीखता है वैसे ही वे दीखने लगे ॥ १० ॥ अब ऊंचे छत्र से ऊपर से सुशोभित यादव के समूह से परवारे हुवा यथानुक्रम से चतुरंगिनी सेना सहित गगन को गाजित करे वैसे वादित्र के दीव्य शब्द सहित ऐसी गति व उत्तम कांतिवाले यादव कुल में उत्तम ऐसे श्री अरिष्ट नेमिनाथ भगवान अपने भवन में से निकले ॥ १२-१३ ॥ अब नेमनाथ भगवान उग्रसेन राजा के यहां गये तब उनोंने वाडे में पशुओं को व पिंजरे में पक्षियों को अति पीडित जीवितव्य व मरन भय से घबराते हुए देखे ॥ १४ ॥ मांस खाने के लिये इन प्राणियों को जीवितव्य नाश होने का अवसर प्राप्त आया है ऐसा जान कर नेमीनाथ भगवान अपने सारथी से इस प्रकार बोलने लगे ॥ १५ ॥ यह सब सुख की इच्छा करने

गंधहत्थिं वासुदेवस्स जेट्ठगं ॥ आरूढो सोहए अहियं, सिरे चूडामणी जहा ॥ १० ॥ अह ऊसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिए ॥ दसार चक्केण य सो, सव्वओ परिवारिओ ॥ ११ ॥ चउरंगिणीए सेनाए, रइयाए जहक्कमं ॥ तुरियाण सन्निनाएण दिव्वेण गगणं फुसे ॥ १२ ॥ एयारिसाए इड्ढीए जुत्तीए उत्तमाइय ॥ नियगाओ भवणाओ, निज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥ १३ ॥ अह सो तत्थ निज्जंतो, दिस्स पाणे भयदुए ॥ वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धे सुदुक्खिए ॥ १४ ॥ जीवियंतं तु संपत्ते, मंसट्ठा भक्खियव्वए ॥ पासेत्ता से महापन्ने, सारहिं इणमब्बवी ॥ १५ ॥ कस्स

पर चूडामणि सशोभित दीखता है वैसे ही वे दीखते थे ॥ १० ॥ अब ऊंचे छत्र व चामर से सशोभित दशार्ह के समूह से परवरे हुवा पथ नक्रम से चतुरंगिनी सेना सहित गगन को स्पर्श करे वैसे वादित्र के दीव्य शब्द सहित ऐसी गति व उत्तम कातिवाले यादव कुल में उत्पन्न ऐसे श्री भगवंत नेमीनाथ भगवान अपने भवन से निकले ॥ १२, १३ ॥ अब नेमनाथ भगवान उग्रसेन राजा के यहां गये तब उनोंने वाडे में पशुओं को व पिंजरे में पक्षियों को अति पीडित व स्थान व मरन भय से घबराते हुए देखे। १४॥ मांस खाने के लिये इन प्राणियों के जीवितव्य नाश होने का अवसर पास आया है ऐसा जान कर नेमीनाथ भगवान अपने सारथी से इस प्रकार बोलने लगे ॥ १५ ॥ ये सब सुख की इच्छा करने

भद्दा इम पाणा, एते सव्वे सुहेसिणो ॥ वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धा य अच्छहिं ॥ १६ ॥ अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उपाणणो ॥ तुज्झ विवाह कज्जमि, भोयावेउ बहु जण ॥ १७ ॥ सोऊण तस्स वयण बहुपाणि विणासण ॥ चिंतेइ से महापन्नो, साणुक्कोसे जिए हिओ ॥ १८ ॥ जइ मज्झ कारणा एए, हम्मति सुबहु जिया ॥ नमे एय तु निस्सेस, परलोगे भविस्सइ ॥ १९ ॥ सो कुंडलाण जुयल, सुत्तग च महायसो ॥ आभरणाणिय सव्वाणि, सारहिस्स पणामए ॥ २० ॥ मण

वाले प्राणियों को बाड़े में व पिंजरे में किस लिये रोक कर रखे हैं ॥ १६ ॥ तब सारथी कहने लगा कि ये दीन प्राणी आप के विवाह कार्य में बहुत लोगों का जीमान के लिये रोक रखे हैं ॥ १७ ॥ बहुत प्राणियों का विनाश होगा ऐसा उस सारथी का वचन सुनकर जीवों की महा करुणा वाले व महा महाप्राज्ञ नेमिनाथ भगवान इस प्रकार चिन्तवने लगे ॥ १८ ॥ यदि मेरे लिए ये सब प्राणी मारे जावेंगे तो परलोक में मेरा कल्याण नहीं होगा ॥ १९ ॥ उन महा यशस्वी नेमीनाथ भगवानने कुंडल का युगल, कटि मेखला व सब आभरण उस सारथी को दे दिये ॥ २० ॥ और दीक्षा ग्रहण करने के परिणाम से पीछे रथ अपने घर आये (वर्षीदान दिया) तब लोकांतिक देव उन को

१ सदैव १ ८ सुवर्ण महोर रक्षा दान देते हैं सो १२ महिने में १८८८० • इतना दान देकर फिर तीर्थंकर दीक्षा लेते हैं

परिणामेय कए, देवा य जहोइय समोइण ॥ सव्वड्ढीइ सपरिसा, निक्खमण तस्स काउ जे ॥ २१ ॥ देवमणुस्स परिवुडो सीयारयण तओ समरूढो ॥ निक्खमिय वारगाओ रवययमि ट्ठिओ भगव ॥ २२ ॥ उज्जाण सपत्तो, ओइण्णो उत्तमाउ सागाआ ॥ साहस्सीइ परिवुडो, अह निक्खमईउ चित्ताहिं ॥ २३ ॥ अह स सुगधगधिए तुरिय मउकुचिए ॥ सयमेव लुचइकेसे, पंचमुट्ठीहिं समाहिआ ॥ २४ ॥ वासुदवो य ण भणइ, लुत्त केस जिइदिय ॥ इच्छिय

आने की विधि अनुसार मनुष्य लोक में आकर भगवान से बोले अहो जगत् के नाथ तीर्थ प्रवर्तावो फिर नमीनाथ भगवान का दीक्षा उत्सव सब ऋद्धि व सब परिवार से किया ॥ २१ ॥ देव मनुष्य के परिवार से परवरे हुए रत्न की शीबिका पर आरूढ होकर द्वारिका नगरी से निकल कर रेवत पर्वत पर रहे ॥ २२ ॥ वहां उद्यान में आकर शीबिका से नीचे उतरे और चित्रा नक्षत्र के योग में एक हजार राजकुमार सहित दीक्षा अंगीकार की ॥ २३ ॥ फिर समाधिवंत बनकर सुगंधित कुंचित [वट] पर हुए बालों का अपने हाथ से पंच मुष्टि लोच किया ॥ २४ ॥ केश लोच करने वाले स

१ कृष्णजी के ८ पुत्र, समुद्रविजयजी के ७२ पुत्र कृष्णजी के १६२ भाइ उग्रसेन राजा के ८ पुत्र नमीनाथजी ६ १८ भाइयों दशसन प्रमुख १ , २१० भाइयों पुत्रों, आठ महा राजा, प्रधान, उन का पुत्र और मरत्त यों सब मीलकर १० ० पुरुष हुए

मूल

मीया यसा तहि दहु एगते सजय तय ॥ नाहाहिं काउसगाए यननाणी निमीगइ ॥ २५ ॥ अइ सोवि रायपुतो, समुद्दविजयंगओ ॥ भीय पवेइय दहु इम वक्क उदाहरे ॥ २६ ॥ रहनेमी अ० भद्दे, सुरूव चारुभासिणि ॥ मम भयाहि सुयणु नते पीला भविस्सई ॥ २७ ॥ एहिता भुजिमो भोए माणुस्सं खु सुदुल्लह॥ भुत्तभोगी पुणो पच्छा, जिणमग्ग चरिस्समो ॥ २८ ॥ दट्ठूण रहनेमि त, भग्गुज्जोय पराजियं ॥ राईमई असभंता अप्पाण सवरे तहिं ॥ २९ ॥ अहसा रायवरकन्ना

अर्थ

भयभीत बनी और बाहा से अग को गोपकर धजती हुई वहीं नीचे बैठ गई ॥ ३० ॥ समुद्रविजय का अगजात वह राजपुत्र रहनेमी राजेमती को पूजनी हुई व भयभीत देख कर इस प्रकार बोलने लगी ॥ ३१ ॥ हे भद्र, हे सुरूपे हे मनोहर बोलने वाली ! हे मनोहर शरीर वाली ! मैं रहनेमी हूं तू मेरा सेवन कर तुझे किसी तरह पीड़ा नहीं होगा ॥ ३७ ॥ तू यहां आव अपन भोग भोगवे क्यों कि मनुष्य जन्म दुर्लभ है अपने भुक्त भोगी बनकर जिन मार्ग अंगीकार करेंगे ॥ ३८ ॥ स्त्री परिषह से पराजित बना हुआ व संयम व्यापार से भग्नचित्त वाला ऐसा रथनेमी को देखकर राजेमती ने असंभ्रांत बना स अपना शरीर वस्त्र से ढका ॥ ३९ ॥ तत्पश्चात् वह राज वर कन्या अपने नियम

सुट्ठिया नियमव्वए ॥ जाइं कूलचसीलंच, रक्खमाणी तय वदे ॥४०॥ जइसि रूवेण वेसमणो, ललिएण नलकूबरो ॥ तहावि ते न इच्छामि जइसिसक्खं पुरंदरो ॥ ४१ ॥ पक्खंदे जलियं जोइं, घूमकेउं दुरासयं ॥ नेच्छंति वंतयं भुत्तं, कुले जाया अगंधणे ॥ ४१ ॥ धिरत्थु ते जसोकामी जो तं जीविय कारणा ॥ वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥ ४२ ॥ अहं च भोगरायस्स, तंचसि अंधगवण्हिणो ॥ माकुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर ॥ ४३ ॥ जइतं काहिसि

अर्थ

व व्रत में निश्चल बनी हुइ जाति कुल व शील की रक्षा करती हुइ इस प्रकार बोलने लगी ॥ ४० ॥ यदि तू रूप से वैश्रमण हो अथवा लालित्य से नलकुबेर हो अथवा साक्षात् सुरेन्द्र हो तो भी तेरी वांच्छा मैं कदापि करूं नहीं ॥ ४१ ॥ अगंधन कुल में उत्पन्न हुवा सर्प भस्म सहित दु सह अग्नि में प्रवेश करना वांच्छे परंतु वमन किया हुवा आहार की इच्छा करे नहीं ॥ ४१ ॥ अहो अपयशके कामिन ! तुझे धिक्कार हो क्यों कि मात्र जीवित के लिये वमन की इच्छा करता है इस से तो मरण श्रेय है ॥ ४२ ॥ मैं भोगराजा–उग्रसेन की पुत्री हूं और तू अंधकविष्णु-समुद्रविजय राजा का पुत्र है एसे उत्तम कुल के होकर गंधन कुल के सर्प समान मत होवे इसलिये निश्चल संयम का आचरण कर ॥४३॥

खेविगाति केवली ॥ सव्वं कम्म खविताण सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥ ४८ ॥ एव करेंति संबुद्धा पंडिया पवि क्खणा ॥ विणियट्टंति भोगेसु जहा सो पुरिसोत्तमो ॥ ४९ ॥ त्तिबेमि ॥ इति रहनेमिज्ज अज्झयणं सम्मत्तं ॥ २२ ॥ * * *

अर्थ तप संयम का आचरन कर रहनेमी व राजेमती दोनों केवली हुए और सब कर्मों का क्षय कर प्रधान मोक्ष गति को प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥ जैसे पुरुषोत्तम रथनेमी कामभोगों से निवर्त कर मोक्ष को प्राप्त हुए वैसे ही प्रविचक्षण पंडित व ज्ञानी काम भोगों से निवर्त कर मोक्ष प्राप्त करे ॥ ४९ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहने लगे कि जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहता हूं यह बावीसवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ २२ ॥ * * * *

॥ केशि गौतमिकं त्रयोविंशत्तितम मध्ययनम् ॥

सूत्र

जिणे पासेत्ति नामेण, अरहा लोग पूइओ ॥ संबुद्धप्पाय सव्वन्नू धम्मतित्थयरे जिणे ॥ १ ॥ तस्स लोग पईवस्स, आसिसीसे महायसे ॥ केसी कुमार समणे विज्जा चरण पारगे ॥ २ ॥ ओहिनाण सुए बुद्धे सीससंघ समाउले ॥ गामाणुगामं रीयंते सावत्थिं पुरमागए ॥ ३ ॥ तिंदुयं नाम उज्जाणं, तम्मि नगर मंडले ॥ फासुए सिज्ज संथारे, तत्थ वास मुवागए ॥ ४ ॥ अह तेणेव कालेणं, धम्मतित्थयरे जिणे ॥

अर्थ

बावीसवे अध्ययन में धैर्य धारन करने का कहा संशय से निवृत्त होवे वही धैर्य धारन कर सकते हैं इस लिये इस तेवीसवे अध्ययन में संशय निवृत्ति का कथन करते हैं जिस का आत्मा सब पदार्थ व तत्त्व का ज्ञाता है वैसा कर्मों रूप वैरी जितने वाले सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, धर्मतीर्थ करने वाले सब लोक के पूज्यनीय ऐसे पार्श्वनाथ नाम के अरिहंत हुवे ॥ १ ॥ लोक में प्रदीप समान ऐसे श्री पार्श्व नाथ स्वामी का महा यशस्वी ज्ञान व चारित्र का पारगामी केशीकुमार नामक श्रमण था ॥ २ ॥ वह केशीकुमार श्रमण मतिज्ञान श्रुतज्ञान, व अवधिज्ञान सहित अपने बहुत शिष्य वृन्द से ग्रामानुग्राम फिरते हुवे श्रावस्ती नगरी में आये ॥ ३ ॥ उस श्रावस्ती नगरी में तिंदुक नाम का उद्यान था, उस में प्रासुक शैय्या संथारा आज्ञा पूर्वक लेकर उस ही तिंदुक उद्यान में रहे ॥ ४ ॥ उस ही समय

सूत्र

भगव वद्धमाणो त्ति, सव्व लोगम्मि विस्सुए ॥ ५ ॥ ...

सीसे महायसे ॥ भगव गोयमे नामं, विज्जाचरणपारए ॥ ६ ॥ बारसंग विऊ बुद्धे, सीससंघ समाउले ॥ गमाणुगामं रीयते, से वि सावत्थि मागए ॥ ७ ॥ कोट्ठगं नाम उज्जाणं, तम्मि नगर मण्डले॥फासुए सिज्ज संथारे, तत्थ वास मुवागए ॥ ८ ॥ केसी कुमार समणे, गोयमे य महायसे ॥ उभओ वि तत्थ विहरिंसु, अल्लीण सुसमाहिया ॥ ९ ॥ उभओ सीस संघाणं, संजयाण तवस्सिणं॥तत्थ चिंता समुप्पन्ना, गुणवंताण ताइणं ॥ १० ॥ केरिसो वा इमो धम्मो, इमो धम्मो व केरिसो ॥ आयार धम्म

अर्थ

में सब लोक में प्रसिद्ध धर्म तीर्थंकर भगवान श्री वर्धमान स्वामी विचर रहे थे ॥ ५ ॥ उन लोक प्रदीप को महा यशस्वी ज्ञान व चारित्र का पारगामी भगवान गौतम नामका शिष्य था ॥ ६ ॥ बारह अंग के ज्ञाता, भगवान गौतम स्वामी अपने शिष्य समुदाय सहित ग्रामानुग्राम फिरते हुए श्रावस्ती नगरी में आये ॥७॥ उस नगरी मंडल में कोष्टक नामका उद्यान था वहां प्रासुक शैय्या संथारा ग्रहणकर निवास किया ॥ ८ ॥ सुसमाधिवंत मन वचन काया की गुप्ति से गुप्त और महा यशस्वी केशीकुमार श्रमण व गौतम ये दोनों वहां विचरने लगे ॥ ९ ॥ षट् काया के रक्षपाल संयती तपस्वी व अनेक गुणवंत ऐसे दोनों के शिष्य समुदाय में चिंता उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ चार महा व्रतादि रूप हमारा धर्म कैसा, और यह पांच महा

पणिही इमा वा सा व करिसी॥ ११॥ चाउज्जामोय जो धम्मो इमा जोपचसिक्खिओ। देसिओ वद्धमाणेण, पासेणय महामुणी ॥ १२ ॥ अचेलओ य जो धम्मो, जो इमो सतरुत्तरो ॥ एग कज्जपवन्नाण, विसेसे किंनु कारण ॥ १३ ॥अहते तत्थ सीसाण, विन्नाय पवितक्किय ॥ समागमे कयमई, उभओ केसि गोयमा ॥ १४ ॥ गोयमे पडिरूवन्नू सीससघ समाउले ॥ जेट्ठकुल मवक्खतो तिंदुयं वणमागओ ॥ १५ ॥

अर्थ

प्रवादि रूप इन का धर्म कैसा ? इन की और हमारी आचार धर्म की क्रिया कैसी है ? ॥ ११ ॥ चार महा व्रत रूप धर्म श्री पार्श्वनाथ स्वामीने कहा है और पांच महाव्रत रूप धर्म श्री वर्धमान स्वामीने कहा है ॥ १२ ॥ श्री पार्श्वनाथ भगवान का सचेलक (प्रमाण रहित वस्त्र धारन करने का) और महावीर स्वामी का अचेलक [प्रमाण सहित वस्त्र धारन करने का] धर्म है दोनों का मुक्ति साधन रूप एक कार्य होने पर इतनी विशेषता होने का क्या कारन है ? ॥ १३ ॥ केशी और गौतम दोनोंने अपने २ शिष्य का सशय युक्त अभिप्राय जानकर मीलने का विचार किया ॥ १४ ॥ विनय मार्ग व अवसर के ज्ञाता गौतम स्वामी अपने से ज्येष्ठ कुल वाले केशी स्वामी को जानकर अपने शिष्य के परिवार से तिंदुक उद्यान में आये ॥ १५ ॥ गौतम स्वामी को आते हुए देखकर केशी स्वामी ने अपने सब परिवारसे शुद्ध मन से

१ महावीर स्वामी से पार्श्वनाथ स्वामी पहिले हुए और केशी स्वामी उनके संतानीये थे इस से केशी स्वामी का ज्येष्ठ कुल लिया

केसी कुमार समणे, गोयम दिस्समागय ॥ पडिरूव पडिवत्तिं, सम्म संपडिवज्जई । पलाल फासुय तत्थ, पंचमं कुसतणाणि य ॥ गोयमस्स निसेज्जाए खिप्प सं ॥ १७ ॥ केसीकुमारसमणे, गोयमे य महायसे ॥ उभओ निसण्णा सोहन्ति, चंद सूरसमप्पभा ॥ १८ ॥ समागया बहु तत्थ पासंडा कोउगेणय ॥ गिहत्थाणं च णेगाओ साहस्सीओ समागया ॥ १९ ॥ देव दाणव गंधव्वा, जक्ख रक्खस्स किन्नरा ॥ अदिस्साण च भूयाण, आसी तत्थ समागमो ॥ २० ॥ पुच्छामिते

गौतम स्वामी की सेवा भक्ति की ॥ १६ ॥ फासुक शाली व्रीही, कोद्रव व राल यों चार जात का पराल और पांचवा दर्भ प्रमुख घास वगैरह शीघ्रमेव गौतम स्वामी के बैठने के लिये (बिछा) दिया ॥ १७ ॥ महा यशस्वी केशीकुमार श्रमण व गौतम स्वामी दोनों वहां बैठे तब वे चन्द्र व सूर्य समान दीखने लगे ॥ १८ ॥ वहां कितनेक पाखण्डियों कुतूहल देखने एकत्रित हुए वैसे ही हजारों गृहस्थ भी वहां आये ॥ १९ ॥ देव, दानव गन्धर्व, यक्ष, राक्षस किन्नर और भूत वगैरह अदृश्य बने वहां कौतुक देखने आये ॥ २० ॥ अब केशी स्वामी गौतम स्वामी से कहने लगे कि—अहो महानुभाव ! मैं आप से कोई प्रश्न पूछना चाहता हूं, इस तरह बोलते हुए केशी स्वामी को गौतम स्वामी इस प्रकार

महाभाग, केसी गोयम मब्बवी ॥ तओ केसिं बुवंत तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ २१ ॥ पुच्छ भंते ! जहिच्छं ते, केसी गोयममब्बवी ॥ तओ केसी अणुन्नाए, गोयम इण मब्बवी ॥ २२ ॥ चाउज्जामो इमो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ॥ देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥ २३ ॥ एगकज्ज पवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं ॥ धम्मे दुविहे मेहावि, कहं विप्पच्चओ न ते ॥ २४ ॥ तओ केसिं बुवंत तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ पन्ना समिक्खए धम्मतत्त, तत्तविणिच्छियं ॥ २५ ॥

कहने लगे अहो भगवन ! जैसी आप की इच्छा होवे वैसा पूछो इस तरह आज्ञा लेकर केशी स्वामी गौतम स्वामी से प्रश्न पूछने लगे ॥ २१ २२ ॥ चार महा व्रत रूप धर्म श्री पार्श्वनाथ भगवान ने कहा और पांच महाव्रत रूप धर्म श्री वर्धमान स्वामीने कहा ये दोनों मोक्ष पहुंचने का एक ही कार्य अंगीकार कर प्रवर्तते हैं तो इन में ऐसी विशेषता होने का क्या कारन है ? अहो मेधाविन् ! इस तरह दो प्रकार के धर्म में आप को क्या विभ्रम नहीं होता है ॥ २४ ॥ इस प्रकार बोलते हुए केशी स्वामी को गौतम स्वामी तत्त्व के निश्चय के लिये अपनी बुद्धि से विचार कर इस प्रकार धर्म का तत्त्व कहने लगे ॥ २५ ॥ प्रथम तीर्थंकर के समय में साधु सरल और मूर्ख होते हैं चरिम तीर्थंकर

पुरिमा उज्जुजडाओ, वंकजडाओ पच्छिमा ॥ मज्झिमा उज्जुपन्नाओ, तेण धम्मे दुहाकए

के समय में साधु वक्र और मूर्ख होते हैं बीच के बाइस तीर्थंकर के समय में साधु सरल और प्रज्ञावान होते हैं इस लिये धर्म के दो भेद किये हैं कथा—प्रथम तीर्थंकर के साधु बाहिर जाकर देरसे आने से गुरुने पूछा इतनी देर क्यों लगी तब वे बोले-नृत्य का-नट का तमाशा देखने खडे रहेथे गुरु बोले-साधु को नटका तमाशा नहीं देखना उनोंने वचन प्रमाण किया अन्य दिन देर से आने गुरुजीने से पूछा, तब बोले कि-आज नटनी का तमाशा देखने खडे रहे थे गुरु बोले उस दिन मना किया था ना साधु बोले हमने नटनी का तमाशा देखा नहीं परन्तु नटनी का देखा है गुरु बोले साधु को तमाशा नहीं देखना उनोंने वचन प्रमाण किया था फिर किसी भी प्रकार का तमाशा नहीं देखा मध्य के तीर्थंकर के साधु बाहिर जा देर से आने से गुरुने पूछा तब बोले-नटका तमाशा देखने खडे थे गुरु बोले साधु को नटका तमाशा नहीं देखना आज्ञा प्रमान की अन्यदा नटनी का तमाशा होता देख विचार किया नटनी का तमाशा देखना तो ज्यादती मना हो गया क्यों कि यह तो स्त्री है, ऐसा विचार कर नीची दृष्टी से स्वस्थान आगये अन्तिम तीर्थंकर के साधु देर से आने से गुरुने पूछा तब बोले नटनी का तमाशा देखने खडे थे, गुरु बोले-साधु का तमाशा नहीं देखना साधु बोले-ठीक है अन्यदा देरसे आने से गुरु ने पूछा तब बात को छिपाते हुवे बोले-नट का तमाशा

देखने खडे रहे गुरु बोले उस दिन मना किया था ना ? साधु बोले नटनीके तमाशा की मना की थी नट का तमाशा देखने में क्या पाप है ! क्यों पुरुषों को भी नही देखना ? आंख मीच रखना ? वगैरा बकवाद करने लगे इति॥ ॥प्रथम तीर्थंकर के साधु ईर्यावही का कायोत्सर्ग बहुत देर से पारने से गुरु ने पूछा-आज कायुत्सर्ग में इतनी देर क्यों लगी ? साधु बोले-दया धर्म चिन्तवता था कि आषाढ का महिना आया है पानी की वृष्टि भी हुइ है, मेरे बच्चे जो अब खेती में धान्य बावेंगे सुखी होवेगे ऐसा विचार किया गुरु भी बोले-साधु को सावद्य विचार नहीं करना उनोंने आज्ञा प्रमान की ॥ मध्यम तीर्थंकरों के साधु तो ऐसा विचार करे नहीं ॥ अब अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं के स्वभाव का दृष्टान्त-कोई श्रीमन्त सेठजी दूसरी बक्त किसी ग्रामिण गरीब वणिक की कन्या से पाणिग्रहण कर लाये वह घर का ठाठ देख पति से कहने लगी आप के यहा हजारों रुपये के पगार वाले मुनीम गुमास्ते हैं तो मेरे भाइ को भी रख लेना ! सेठ बोले वे नौकरी योग्य नहीं है इतने पर तू चाहती हो तो घर का काम कराने तेरे पास रखना होतो रख ले दो चार रुपये महिना दे दिया करेंगे सेठानीने उदास हो उसे घर में रखा सेठानीने उस को दुकान पर रखने बहुत आग्रह करने लगी तब सेठजीने उस की बुद्धि की परीक्षा सेठानी को बताने उस स्त्री के भ्रात का बहुत बोलने का स्वभाव होने से उस से सेठजी बोले की किसी के साथे नहीं बोलना उसने आज्ञा प्रमान की अन्यदा वह किसी कारणसे कोठडी में द्वार बंध कर सोता कार्य होने से सेठानीने उसे पुकारा तो कुच्छ उत्तर नहीं दिया बहुत से पुकारने से उत्तर नहीं दिया

तब शेठानीने घबरा कर शेठ को बोलाये शेठजीने भी बहुत पुकारा परंतु उत्तर नहीं दिया तब कमाडो उखाड कर अन्दर देखे तो चुप बैठा है पुछा की इतना इतना पुकारा तो भी क्यों नहीं बोला ? उसने कहा आपने कहा था की सामे नहीं बोलना इसलिये मैं नहीं बोला शेठ हस के बोले अरे ! काम होतो जरूर बोलना उसने आज्ञा प्रमान की अन्यदा शेठ क मन में मकी की राबडी खाने की आइ, तब शेठानीने राबडी बना अपन भाइ से कहा शेठजी को बुला शेठ बहुत लोगों के मध्य में बैठेथे तो वहां जा कर पुकारा, चलो शेठजी राबडी तैयार होगइ है शेठजी शरमिंद हो घर आये और उसे उपालंभ दिया तब वह बोला कि आपने ही कहा था की काम होतो जरूर बोलना, शेठजी मुस्करा कर बोले अरे! काम होतो धीरसे कानमें आकर कहना परन्तु पुकारना नहीं उसने आज्ञा प्रमान की अन्यदा शेठजी के घरमें आग लगी तब शेठानी बोली—अरे जा शेठजीको बोला वह गया धीरे २ शेठजी के पास जाकर बैठा, जब शेठ काम से निवर्ते तब कानमे बोला—चलो ! घर में अंगार लगी है शेठजी बोले—अरे इतनी देर क्यों नहीं पुकारा अब तो घर जलकर भस्म होगया होगा ! वह बोला आपकी आज्ञा प्रमाने वरता हूं तोभी आप हरवक्त मुझे ठपका देवेहो तब शेठ शेठानी से बोले इसे यहां से रवाने कर शेठानी बोली यह तो मूर्ख है परन्तु हरवक्त आपके साथ रखोगे तो होंश्यार होजायगा शेठ परगामजाते उसे साथ लिया और उसका चोरी का स्वभाव होने से बोले देख किसी की कोइ वस्तु पडी होतो उसे हाथ नहीं लगाना उसने आज्ञा प्रमान की आगे जाते शेठजी का दूशाला पडगया उसने उठाया नहीं व

॥ २९ ॥ पुरिमाण दुव्विसोझओ, चरिमाण दुरणुपाल्ओ ॥ कप्पो मज्झिम

सेठजी बोले-अरे मूर्ख ! दुशाला पड़गया उसे उठाकर क्यों नहीं लाया ? वह बोला-आपने मना किया है कि किसी की कोइ वस्तु पड़ी होवो उठाना नहीं इस लिये मैंने नहीं उठाया सेठजी खेदित हो बोले. अरे ! दूसरे का माल नहीं उठाना परन्तु घर का माल तो जरूर उठा लेना यह आज्ञा प्रमान कर घोड़े के पीछेर आता था घोड़ेने लिद की कि तत्काल उसने उसे उठा दुशाले में बांध ली आगे सेठजीने दुशाला मांगा तब सेठ के हाथ में दिया सेठने पूछा इस में क्या बन्धा है वह बोला कि अपने घोड़े की लीद सेठ बोले अरे मूर्ख ! दुशाला का सत्यानाश करडाला यह बोला आपने ही कहा था की अपने घर की वस्तु तो जरूर उठा लेना सेठ बोले ठीक ! तेरे साथ में भी पूरी बना ! रात को सोती वक्त सेठ बोले गामड़ा है होस्यार रहना निगा रखना उसने आज्ञा प्रमान की सब रात सोया नहीं रात को चोर आ घोड़ा लगये परंतु कुछ बोला नहीं फजर सेठजीने पूछा घोड़ा कहां है वह बोला-चोर लगये सेठ-अरे तो मुझे कैसे सावधान किया यह बोला-मुझे तो फक्त निगा रखने की ही आपने आज्ञा दी थी, जगाने का कब कहा था सेठजी पैदल घर को आये, स्त्री से सब बात कही उसे निकाल देया ऐसे अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्र और जड़ होते हैं इति प्रथम प्रश्न ॥ २ ॥ • ॥

॥ २६ ॥ प्रथम तीर्थंकर के साधु को निरतिचारपना स धर्म जानना दुष्कर,

मगाणं तु, सुविसोझो सुपालओ ॥ २७ ॥ साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥ अन्नोवि संसओ मज्झं तं मे कहसु गोयमा ! ॥२८॥ अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो संतरुत्तरो ॥ देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥ २९ ॥ एगकज्ज पवन्नाणं, विसेसे किंनु कारणं ॥धम्मे दुविहे मेहावी, कह विप्पच्चओ न ते ॥ ३० ॥ केसिमेवं वयंतं तु, गोयमो इणमब्बवी॥ विन्नाणेण समागम्म, धम्म साहण मिच्छिय

चरिम तीर्थंकर के समय के साधु को निरातिचारपने धर्म का आचरन करना दुष्कर परंतु बीच के बाइस तीर्थंकर के साधु को धर्म समजना भी सुलभ और उस का आचरना भी सुलभ होता है ॥ २७ ॥ तब केशी स्वामी कहने लगे अहो गौतम ! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है इस से मेरा संशय मीट गया अब दूसरा संशय मुझे रहा है सो अहो गौतम ! उसे आप कहो ॥ २८ ॥ प्रश्न दूसरा केशी स्वामी गौतम स्वामी से पूछने लगे-अहो गौतम! मानोपेत श्वेत वस्त्र रुप अचेल धर्म श्री वर्धमान स्वामीने कहा और मानोपेत रहित अर्थात् वस्त्र की लम्बाइ चौडाइ व मूल्य के प्रमाण रहित धर्म श्री पार्श्वनाथ महा मुनिने कहा तो इस में ऐसी भिन्नता क्यों कही ॥२९॥दोनों का मोक्ष जाने का एक ही उद्देश है तो इतनी भिन्नता होने का क्या कारन है? अहो मेधावित् ! इस द्विविध धर्म में आप को क्या आश्चर्य नहीं होता है ॥ ३० ॥ इस प्रकार बोलते हुवे केशीस्वामी को गौतमस्वामी विज्ञान से सम्यक् प्रकार जानकर इस प्रकार बोलने लगे कि-धर्म साधन करने की इच्छा ! के लिये वस्त्र की आज्ञा भगवानने दी है ॥ ३१ ॥

|| ३१ || पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविह विगप्पणं || जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंगपओयण || ३२ || अह भवे पइन्नाउ, मोक्खसब्भूय साहणा || नाण च दसणं चेव, चरित्त चेव निच्छए || ३३ || साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो || अन्नो वि ससओ मज्झं, त मे कहसु गोयमा || ३४ || अणेगाण सहस्साण मज्झे चिट्ठसि गोयमा || ते य ते अहिगच्छति, कह तेनिज्जिया तुमे || ३५ || एगे जिए

अर्थ

साधु का वेष लोक में प्रतीत करने वाला है वैसे ही साधु के वेष में कदाचित मन सयम से विपरीत प्रवर्ते तो ऐसा विचार भी आजावे कि मैं साधु हूं मुझे अनाचार का सेवन करना अनुचित है इस से संयम का निर्वाह के लिये भी साधु का वेष पहिनने का प्रयोजन है || ३२ || मोक्ष का साधन भूत साधु का वेष व्यवहार नय से है परंतु निश्चय नयसे तो ज्ञान, दर्शन, व चारित्र ही मोक्ष का साधन है ||३३|| तब केशी स्वामी गौतम स्वामी की प्रशंसा करने लगे कि-अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा बहुत अच्छा है इस से मेरे संशय का छेदन हुआ है, अब मुझे और भी संशय है कि जिस का आप कथन करो || ३४ || अब तीसरा केशी स्वामी कहने लगे अहो गौतम ! हजारो शत्रु के बीचे में तुम रहे हो वे ही तुम को जीतने के लिये आते हैं तो तुमने उन शत्रुओं का कैसे जय किया || ३५ || तब गौतम स्वामी बोलने लगे कि

जिया पच, पच जिए जिया पस ॥ दसहा उ जिणिचाण, सव्व सत्तू जिणामहं ॥ ३६ ॥ सत्तू य इइ के वुत्ते, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसीमेवं बुवंतं तु गोयमो इणमब्बवी ॥ ३७ ॥ एगप्प अजिए सत्तू कसाया इंदियाणि य॥ ते जिणित्ता जहा नायं, विहरामि अहमुणी ॥ ३८ ॥ साहु गोयम पन्नाते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥ अन्नोवि संसओ मज्झं त मे कहसु गोयमा ॥ ३९ ॥ दीसंति बहवे लोए, पसबद्धा

एक को जीतने से पांच जीताते हैं पांच को जीतने से दश जीताते हैं और दश को जीतने से सब शत्रुओं को मने जीते हैं ॥ ३६ ॥ तब केशी स्वामी कहने लगे कि वे शत्रु कौन से २ हैं ? इस प्रकार बोलते हुए केशी स्वामी को गौतम स्वामी इस प्रकार बोलने लगे ॥ ३७ ॥ मन की दुष्ट प्रवृत्ति रूप एक आत्मा अजेय शत्रु है इस लिये जिनोंने मन को जीता है उनोंने १ मन व ४ कषाय यों पांच को जीते हैं जिनोंने मन व कषाय यों पांच को जीते है उनोंने पांच इन्द्रियों सहित दश को जीते हैं इन दश को जीतने से सब शत्रुओं का जय होता है इसलिये अहो मुने ! सब शत्रुओं को जीत कर जिस प्रकार जिन शासन का न्याय है इस प्रकार मैं विचर रहा हूं ॥ ३८ ॥ तब केशी स्वामी कहने लगे कि आप की प्रज्ञा बहुत अच्छी है जिस से मेरे संशय का छेदन हुवा है अहो गौतम ! मुझे और भी संशय हुवा है जिस को आप कहो ॥ ३९ ॥ चौथा प्रश्न—अहो मुने ! इस लोक में बहुत से जीव बंधन से बंधाये हुए

सूत्र

सरीरिणो ॥ मुक्कपासो लहुभूओ, कहं तं विहरासि मुणी ॥ ४० ॥ ते पासे सव्वसो छित्ता, निहंतूण उवायओ ॥ मुक्कपासो लहुभूओ, विहरामि अहं मुणी ॥ ४१ ॥ पासाय इइ के वुत्ता, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसिमेव बुवंत तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ ४२ ॥ रागद्दोसादओ तिव्वा, नेहपासा भयंकरा ॥ ते छिंदित्ता जहा नायं ॥ विहरामि जहक्कम ॥ ४३ ॥ साहु गोयम पन्नाते, छिन्नोमे संसओ इमो ॥ अन्नोवि संसओ मज्झं, तंमे कहसु गोयमा ॥ ४४ ॥ अंतोहियय संभूया, लया

अर्थ

प्राप्तिगत होते हैं परंतु तुम उन बंधनों को तोड कर लघुभूत बन कर किस प्रकार विचरते हो ॥ ४० ॥ तब गौतम स्वामी बोले अहो मुने ! किसी उपाय से उस पाश का सर्वथा प्रकार से छेदन कर मुक्त पाश वाला होकर लघुभूत अप्रतिबंध पनकर मैं विचरता हूं ॥ ४१ ॥ तब केशी स्वामी गौतम को कहने लगे कि ये पाश कौनसे २ हैं ? तब गौतम स्वामी केशी स्वामी को इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ४२ ॥ रागद्वेष से उत्पन्न हुवा तीव्र भयंकर स्नेह पाश है, उस का छेदन कर जैसे जैन शासन का न्याय है वैसे यथानुक्रम से मैं विचरता हूं ॥ ४३ ॥ अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा श्रेष्ठ है इस से मेरा संशय का छेदन हुवा है अब अन्य भी मेरा संशय है जिस का आप कहो ॥ ४४ ॥ हृदय

चिट्ठइ गोयमा ॥ फलेइ विसभक्खाणि, सा उ उद्धरिया कहं ॥ ४५ ॥ तं लयं सव्वसो छित्ता, उद्धरित्ता समूलियं ॥ विहरामि जहा नायं, मुक्कोमि विस भक्खणं ॥ ४६ ॥ लया य इइ का वुत्ता, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसिमेवं बुवंत तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ ४७ ॥ भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया ॥ तमुद्धरित्ता जहा नायं, विहरामि जहा सुहं ॥ ४८ ॥ साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नोमे संसओ इमो ॥ अन्नोवि संसओ मज्झं, तमे कहसु गोयमा ॥ ४९ ॥सपज्ज-

पावथा हृदय में एक लता उत्पन्न होकर रही है, जिस को विष समान फल लगते हैं अहो गौतम ! तुमने उस को कैसे निकाल डाली ? ॥ ४५ ॥ गौतम स्वामी कहने लगे कि उस लता को मूल में से ही सर्वथा प्रकार से तोड़ कर मैंने निकाल डाली है और विषमय फल के भक्षण से रहित बना हुआ जैसे जैन शासन का न्याय है उस अनुसार मैं विचरता हूं ॥ ४६ ॥ केशी स्वामी कहने लगे कि यह लता कौनसी है ? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देते हैं ॥ ४७ ॥ इस संसार में तृष्णा रूप भयंकर व भीम फल देने वाली लता है उस को निकाल कर जैसे जैन शासन का न्याय है वैसे सुख पूर्वक मैं विचरता हूं ॥ ४८ ॥ पुनः केशी स्वामी कहने लगे कि आप की प्रज्ञा अच्छी है क्यों कि आपने मेरे संशय का छेदन किया अब मुझे और भी संशय है कि जो आप कहेंगे ॥ ४९ ॥ प्रश्न छट्ठा-केशी स्वामी कहने

सूत्र

लिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा ॥ जे डहति सरीरत्था, कह विज्झाविया तुमे ॥ ५० ॥ महामेहप्पसूयाओ, गिज्झवारि जलुत्तम ॥ सिंचामि सयय देहं, सित्ता नोय डहति मे ॥ ५१ ॥ अग्गीय इइ के वुत्ता, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसिमेवं वयंतं तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ ५२ ॥ कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुयसीलतवो जलं ॥सुयधाराभिहया संता, भिन्नाहु न डहतिमे ॥ ५३ ॥ साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥ अन्नोवि संसओ मज्झं, तमे कहसु गोयमा ॥ ५४ ॥

अर्थ

अहो गौतम! हृदय में जाज्वल्यमान घोर अग्नि रहती है वह शरीर में रही हुई शरीर को जला रही है सो तुमने उसे कैसे बुझाइ ॥५०॥ तब गौतम स्वामी कहने लगे कि मैं महामेघ में से उत्पन्न हुआ पानी में से श्रेष्ठ पानी लेकर निरंतर शरीर पर सिंचन करता हूं इस तरह सिंचन करने से वह अग्नि मुझे नहीं जलाती है ॥ ५१ ॥ तब केशी स्वामी बोले कि वह अग्नि कौनसी है ? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ५२ ॥ अहो केशी मुने ! कषाय रूप अग्नि कही है और श्रुत, शील व तप रूप जल कहा है. श्रुत रूप पानी की धारा से सिंचन कराइ हुइ कषाय रूप अग्नि मुझे नहीं जलाती है ॥ ५३ ॥ अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा अच्छी है इस से मेरे संशय का छेदन हुआ है अब और भी मेरा संशय है जिस का आप निवारण करो ॥ ५४ ॥ अब सायंका केशी स्वामी

अय साहसिओ भीमो, दुट्ठासो परिधावई ॥ जासि गोयम आरूढो, कहंतेण न हीरसि ॥ ५५ ॥ पहावतं निगिण्हामि, सुयरस्सी, समाहिय ॥ न मे गच्छइ उम्मग्ग, मग्गाच पडिवज्जई ॥ ५६ ॥ आसेय इइ के वुचे, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसिमेव वयततु गोयमो इणमब्बवी ॥ ५७ ॥ मणो साहसिओ भीमो दुट्ठासो परिधावई ॥ त सम्मं तु निगिण्हामि धम्म सिक्खाइ कथग ॥ ५८ ॥ साहु गोयम पन्ना ते छिन्नो मे ससओ इमो ॥ अन्नोवि ससओ मज्झ, तमे कहसु गोयमा ॥ ५९ ॥ कुप्पह्म वहवो लोए

अर्थ

बोले कि अहो मुने ! यह साहसिक भयकर दुष्ट अश्व चारों दिशा में दौड रहा है अहो गौतम ! उस पर आरूढ होने से क्या तुम को वह उन्मार्ग में नहीं लेजाता है ? ॥ ५५ ॥ तब गौतम स्वामी कहने लगे कि जब यह घोडा चारों दिशा में दौडता फिरता है तब सिद्धांत रूप लगाम से मैं उस का निग्रह करता हूं इस से वह मुझ उन्मार्ग में नहीं लेजाता है परतु सन्मार्ग ही अंगीकार कराता है ॥ ५६ ॥ केशी स्वामी कहने लगे कि वह अश्व कौनसा है ? तब गौतम स्वामी उस का उत्तर देते हैं ॥ ५७ ॥ मन रूपी साहसिक भयकर दुष्ट अश्व दौड रहा है उस का धर्म की शिक्षा से जातिवत घोडा जैसे सम्यक् प्रकार से निग्रह करता हूं ॥ ५८ ॥ अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा अच्छी है इस से मेरे सशय का छेदन हुआ अब और भी अन्य सशय मुझे रहा है कि जिस का आप निर्णय करें, ॥५९॥ प्रश्न आठवा

सूत्र

लिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा ॥ जे डहति सरीरत्था, कह विज्झाविया तुमे ॥ ५० ॥ महामेहप्पसूयाओ, गिज्झवारि जलुत्तम ॥ सिंचामि समय देह, सित्ता नोय डहति मे ॥ ५१ ॥ अग्गीय इइ के वुत्ता, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसिमेव बयत तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ ५२ ॥ कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुयसीलतवो जलं ॥सुयधाराभिहया संता भिन्नाहु न डहतिमे ॥ ५३ ॥ साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो ॥ अन्नोवि ससओ मज्झ, तमे कहसु गोयमा ॥ ५४ ॥

अर्थ

लगे अहो गौतम! हृदय में जाज्वल्यमान घोर अग्नि रहती है वह शरीर में रही हुई शरीर को जला रही है सो तुमने उसे कैसे बुझाई ?॥५०॥ तब गौतम स्वामी कहने लगे कि मैं महामेघ में से उत्पन्न हुआ पानी में से श्रेष्ठ पानी लेकर निरंतर शरीर पर सिंचन करता हूं इस तरह सिंचन करने से वह अग्नि मुझे नहीं जलाती है ॥ ५१ ॥ तब केशी स्वामी बोले कि यह अग्नि कौनसी है ? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ५२ ॥ अहो केशी मुने ! कषाय रूप अग्नि कही है और श्रुत, शील व तप रूप जल कहा है श्रुत रूप पानी की धारा से सिंचन कराई हुई कषाय रूप अग्नि मुझे नहीं जलाती है ॥ ५३ ॥ अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा अच्छी है इस से मेरे संशय का छेदन हुआ है अब और भी मेरा संशय है जिस का आप निवारण करो ॥ ५४ ॥ अब सातवा-केशी स्वामी

सरणं गई पइट्ठाय, दीव क मन्नसि मुणी ॥ ६५ ॥ अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ ॥ महाउदग वेगस्स, गई तत्थ न विज्जई ॥ ६६ ॥ दीवे य इइ के वुत्ते केसी गोयम मब्बवी ॥ केसीमेवं वयत तु, गोयमो इणमब्बवी॥ ६७ ॥ जरामरणवेगेणं बुज्झमाणाण पाणिण ॥ धम्मो दीवो पइट्ठाय, गई सरणमुत्तम ॥ ६८ ॥ साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो ॥ अन्नो वि, ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा ॥ ६९ ॥ अण्णवंसि महोहंसि, नावा वि परिधावई ॥ जसि गोयमारूढो, कहं पार गमिस्ससि

डूबते हुवे प्राणियों को संसार के प्रविष्टान्त जैसे आधारभूत द्वीप किसको मानते हो ? ॥ ६५ ॥ गोतम स्वामी उत्तर देने लगे कि पानी के बीच में महा आलयवाला एक बडा द्वीप है वहां पर पानी के वेग की गति भी नहीं होती है ॥ ६६ ॥ तब केशी स्वामी कहने लगे कि वह द्वीप कौनसा है ? इस तरह प्रश्न करने वाले केशी स्वामी को गौतम स्वामी बोलने लगे ॥ ६७ ॥ जरामरण पानी के वेग में प्राणियों डूब रहे हैं इस में धर्म रूप द्वीप का ठहरने के लिये उत्तम शरण है ॥ ६८ ॥ केशी स्वामी कहने लगे कि अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा अच्छी है इस से मेरे संशय का छेदन हुवा अब अन्य भी संशय मुझे है सो आप इस का खुलासा करो ॥ ६९ ॥ प्रश्न दसवा—पानी के महा प्रवाह रूप समुद्र में नावा परिभ्रमण कर रही है अहो गौतम ! उस में बैठ कर तुम कैसे समुद्र उत्तीर्ण होते हो ॥७०॥

जेहिं नस्सति जंतुणो ॥ अद्धाणे कह वट्टंते, त न नस्ससि गोयमा ॥ ६० ॥ जेय मग्गेण गच्छति जेय उम्मग्ग पट्ठिया ॥ ते सव्वे वेइया मज्झं, त न नस्सामह मुणी ॥ ६१ ॥मग्गेय इइ के वुत्ते, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसिमेवं वयंततु गोयमो इण मब्बवी ॥ ६२ ॥ कुप्पवयण पासंडी, सव्वे उम्मग्ग पट्ठिया ॥ सम्मग्गंतु जिणक्खाय एस मग्गेहि उत्तमे ॥ ६३ ॥ साहु गोयम पन्नाते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥ अन्नोवि संसओ मज्झ, तमे कहसु गोयमा ॥ ६४ ॥ महा उदग वेगेण, वुज्झमाणाण पाणिण

अर्थ

महा मुन ! इस लोक में बहुत कुपंथ हैं इस से जीवों का विनाश होता है अहो गौतम ! ऐसे मार्ग में रहता हुआ तू क्यों नहीं नष्ट होता है ? ॥६०॥ तब गौतम स्वामी कहने लगे जो कोई सुमार्ग में जाता है और जो कोई कुमार्ग में जाता है वे सब मैंने जाने हैं, इस से अहो मुने ! मैं नष्ट नहीं होता हूं ॥ ६१ ॥ तब केशी स्वामी गौतम स्वामी को कहने लगे कि वे मार्ग कौन से हैं ? इस तरह प्रश्न करने वाले केशी स्वामी को गौतम स्वामी इस प्रकार कहने लगे ॥ ६२ ॥ कुप्रवचन रूप ३६३ कपिलादि पाखंडी ये सब उन्मार्ग में प्रवृत्ति करने वाले हैं और सन्मार्ग में प्रवृत्ति करने वाला एक वीतराग प्रणीत मार्ग श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥ अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा अच्छी है इस से मेरे संशय का छेदन हुआ अब और भी संशय है कि जिस का आप निर्णय करें. ॥ ६४ ॥ अब अवरा-अवर धर्मी के केन के

सूत्र

उज्जोय, सव्वलोगमि पाणिण ॥ ७५ ॥ उग्गओ विमलो भाणू, सव्वलोय पभंकरो ॥ सो करिस्सइ उज्जोय, सव्वलोयमि पाणिण ॥ ७६ ॥ भाणू य इइ के वुत्ते, केसी गोयम मब्बवी केसिमेवं वयत तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ७७ ॥ उग्गओ खीण संसारो, सव्वन्नू, जिण भक्खरो ॥ सो करिस्सइ उज्जोय, सव्वलोयमि पाणिण ॥ ७८ ॥ साहु गोयम पन्नाते, छिन्नो मे ससओ इमो ॥ अन्नोवि ससओ मज्झ तमे कहसु गोयमा ॥ ७९ ॥ सारीर माणसे दुक्खे बुज्झमाणाण पाणिण ॥ खेमसिव

अर्थ

प्राणी रहे हैं तो संपूर्ण लोक में रहे हुए प्राणियों को कौन प्रकाश करेगा ? ॥ ७५ ॥ तब गौतम स्वामी कहने लगे कि सब लोक में प्रकाश करने वाला निर्मल भानु उदित हुवा है वही सब लोक में प्राणियों को उद्योत करेगा ॥ ७६ ॥ तब केशी स्वामी पूछने लगे कि वह सूर्य कौनसा है ? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ७७ ॥ जिस का संसार क्षय हुवा है और जो सर्वज्ञ है वह जिनेश्वर रूप भास्कर उदित हुवा है और वही सब लोक में प्राणियों को उद्योत करेगा ॥ ७८ ॥ तब केशी स्वामी गौतम स्वामी की प्रशंसा करने लगे कि अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा अच्छी है इस से मेरा संशय दूर हो गया है अब और भी मुझे संशय है कि जो आप दूर करें. ॥ ७९ ॥

सूत्र

॥ ७० ॥ जाउ अस्साविणी, नावा नसा पारस्स गामिणी ॥ जा निरस्साविणी नावा, साउ पारस्स गामिणी ॥ ७१ ॥ नावा य इइ का वुत्ता, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसी मेव वयंतं तु, गोयमो इण मब्बवी ॥ ७२ ॥ सरीर माहु नावत्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ ॥ संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ॥ ७३ ॥ साहु गोयम पन्नाते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥ अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥ ७४ ॥ अन्धयार तमो घोरे, चिट्ठति पाणिणो ॥ को करिस्सइ

अर्थ

तब गौतम स्वामी कहने लगे कि नावा दो प्रकार की है जिस नावा में छिद्र से पानी आता है वह नावा समुद्र को पार नहीं जासकती है अर्थात् बीच में डूबती है और जो नावा आश्रव छिद्र रहित है वह नावा समुद्र को पार पहुंच सकती है ॥ ७१ ॥ तब केशी स्वामी पूछने लगे कि वह नावा कौनसी है? तब गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ७२ ॥ संसार रूप समुद्र में शरीर रूप नावा है और जीव उस का नाविक कहा है जो आश्रव रूप छिद्र का निरुंधन करते हैं वे साधु महा पुरुषों संसार समुद्र को तीर कर पार होते हैं ॥ ७३ ॥ अब केशी स्वामी कहने लगे कि आप की बुद्धि अच्छी है आपने मेरा संदेह दूर कर दिया है अब और भी मेरा संदेह है कि जो आप दूर करें ॥ ७४ ॥ महा अन्धकार—जहां दृष्टि का विषय नहीं होवे वैसे महा घोर अंधकार में बहुत

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो॥ नमो ते संसयातीत, सव्वसुत्तमहोयही ॥ ८५ ॥ एवं तु संसए छिन्ने, केसी घोरपरक्कमे ॥ अभिवंदित्ता सिरसा, गोयमं तु महायसं ८६ ॥ पंचमहव्वयं धम्मं, पडिवज्जइ भावओ ॥ पुरिमस्स पच्छिमंमि, मग्गे तत्थ सुहावहे ॥ ८७ ॥ केसी गोयमओ निच्चं तम्मि आसि समागमे ॥ सुयसील समुक्करिसो, महत्थत्थ विणिच्छओ ॥८८॥ तोसिया परिसा सव्वा सम्मग्गं समुवट्ठिया

अर्थ

का छेदन किया है अहो महासमुद्र समान सब शास्त्र के पारगामी व सब संशय रहित ऐसे आप को नमस्कार होवो ॥ ८५ ॥ अब श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार सब संशय का छेदन होने से वह घोर पराक्रम वाले केशी स्वामी महा यशस्वी गौतम स्वामी को मस्तक से नमस्कार करके पश्चिम तीर्थंकर का सुख देने वाला मार्ग में गौतमस्वामी के पास से पांच महाव्रत रूप धर्म भाव से अंगीकार किया ॥ ८७ ॥ केशी स्वामी व गौतम स्वामी का वहां तिंदुक उद्यान में समागम हुआ उनोंने महा सिद्धांत संबंधी चारित्राचार की वृद्धि के लिये तथा अपने शिष्यों के समाधान के लिये निर्णय किया ॥ ८८ ॥ उक्त केशी स्वामी व गौतम स्वामी का संवाद सुनकर दोनों का (२००० साधुओं को) एकत्रित हुए देखकर सब परिषदा संतुष्ट हुई मोक्ष मार्ग के साधन के लिये उद्यमवंत बनी सम्यक्

सूत्र

मब्बावाहं, ठाण किं मन्नसी मुणी ॥८०॥ अत्थि एग धुवट्ठाण, लोगग्गमि दुरारुहं॥ जत्थ नात्थिजरा मच्चु वेयणा वाहिणो तहा ॥ ८१ ॥ ठाणेइइ के वुचे, केसी गोयम मब्बवी ॥ केसीमेव वयततु, गोयमो इण मब्बवी ॥ ८२ ॥ निव्वाणाति अवाहति, सिद्धी लोगग्गमेवय ॥ खेम सिव अणाबाह, ज तरति महेसिणो ॥ ८३ ॥ तठाणं सासय वास, लोयग्गमि दुरारुहा॥ज सपत्ता न सोयति, भवोहत करा मुणी ॥ ८४ ॥

अर्थ

भव पारकता—शारीरिक व मानसिक दुःख से पीडित बने हुए प्राणियों का अव्याबाध कल्याणकारी स्थान तुम कौनसा मानते हो ? ॥ ८० ॥ गौतम स्वामी उत्तर देने लगे कि लोक के अग्र भाग में एक निश्चल स्थानक रहा है कि जहां जाना महा दुष्कर है उस स्थान में जरा, मृत्यु, वेदना व व्याधि नहीं है ॥८१॥ तब केशी स्वामी कहने लगे कि वह स्थान कौनसा है ? तो गौतम स्वामी इस प्रकार उत्तर देने लगे॥८२॥ अहो केशी! उस स्थान का नाम निर्वाण है,कर्म रूपी दावानल को बुझाकर शीतलीभूत बने हुवे जीव वह स्थान प्राप्त कर सकते हैं उन के जन्म जरा मरण के स्वाभाविक दुःख दूर हो जाते हैं ऐसा स्थान महा ऋषीश्वर ही प्राप्त कर सकते हैं ॥ ८३ ॥ वह स्थान सदैव शाश्वत वास वाला व लोकाग्र में रहा हुवा है. उस पर चढना अति दुष्कर है. भव रूपी ओघ के अंत करने वाले मुनि ऐसे स्थान को प्राप्त कर शोच (चिंता) करे नहीं. ॥ ८४ ॥ अहो गौतम ! आप की प्रज्ञा बहुत अच्छी है आपने मेरे सब संशय

॥ अष्ट प्रवचन माता नामक चतुर्विंशतितम मध्ययनम् ॥

अट्ठपवयण मायाओ, समिईगुत्ती तहेवय ॥पचेव सामिईओ, तओ गुत्तीओ आहिया ॥ १ ॥ इरिया भासेसणा दाणे, उच्चारे समिई इय ॥ मणगुत्ती, वयगुत्ती, कायगुत्ती य अट्ठमा ॥ २ ॥ एयाओ अट्ठ समिईओ, समासेण वियाहिया ॥ दुवालसंग जिण-

तेवीसवे अध्ययन में संयम की निवृत्ति करी नि संशयी जिन प्रवचन का आराधन कर सकते हैं इस लिये इस चौवीसवे अध्ययन में आठ प्रवचन कहते हैं श्री तीर्थंकर भगवानने पांच समिति व तीन गुप्ति यों आठ प्रवचन माता * के कहे हैं ॥ १ ॥ इन आठ प्रवचन के नाम कहते हैं–१ ईर्या समिति देखकर तथा प्रमार्जकर चलने का, २ भाषा समिति निर्वद्य वचन बोलने का ३ एषणा समिति-निर्दोष आहार स्थानक वस्त्र पात्र ग्रहण करने का, ४ आदान समिति भंडोपकरण यत्ना से लेना व यत्ना से रखने का, और ५ परिस्थापनीय समिति उच्चारप्रस्रवणादि यत्ना पूर्वक परिठाने का तीन गुप्ति १ मनगुप्ति दुष्ट विचार से मन को रोकना, २ वचन गुप्ति दुष्ट वचन से वचन को रोकना और ३ काया गुप्ति दुष्ट आचार से काया को रोकना यह आठ प्रवचन माता के जानना ॥ २ ॥ यह आठ प्रवचन

* माता शब्द का अर्थ पुष्टि होता है अर्थात् संयम की पुष्टि करने वाले जैसे माता जिस प्रकार माता पुत्र का कल्याण करती है वैसे ही प्रवचन संयम के क्षेम के करने वाले हैं

सूत्र

॥ सधुया ते पसीयतु, भयव केसी गोयमे ॥ ८९ ॥ त्तिबेमि ॥ इति केसीगोयमिज्ज तेवीस अज्झयणं सम्मत्त ॥२३॥ * * * *

अर्थ

प्रकार सत्य मन से मोक्ष मार्ग के दर्शक केशी स्वामी व गौतम स्वामी की स्तुति कर विसर्जन हुई वैसे ही केशी स्वामी व गौतम स्वामी दोनों प्रसन्न हुए यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी को कहने लगे कि जैसा मैंने भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसा ही तुझे कहता हूं यह केशी व गौतम स्वामी का तेवीसवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ २३ ॥ * * * *

सूत्र

पस्साय, माय जत्थ उ पवयण ॥ ३ ॥ आलंबणेण कालेण, मग्गेण जयणायया। चउ कारण परिसुद्धं, संजए इरियरिए ॥ ४ ॥ तत्थआलंबणं नाणं, दंसणं चरण तहा ॥ कालेय दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए ॥ ५ ॥ दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ

अर्थ

माता के भेद संक्षेप से कहे परंतु इन आठों प्रवचनमें भगवान कथित ही द्वादशांगी ज्ञानका समावेश होता है अर्थात् आठ प्रवचन चारित्राचार में है यह ज्ञान व दर्शन विना नहीं होता है इस लिये मोक्ष पथ का दर्शक ज्ञानादि तीनों रत्न तथा द्वादशांग का समावेश इस में हो जाता है ॥ ३ ॥ अब इन आठ प्रवचन में से प्रथम ईर्या समिति का कथन करते हैं १ आलंबन, २ काल, ३ मार्ग ४ यतना इन चार कारनों से संयती साधु ईर्या समिति शुद्ध पालन करे ॥ ४ ॥ इन चार कारनों में प्रथम आलंबन के तीनभेद किये हैं—ज्ञान दर्शन व चारित्र अर्थात् इन तीन का आलंबन, २ ईर्या समिती का काल दिन है, अर्थात् ईर्या समिति का आचार करनेवाले दिन में ही आहार विहार करते हैं परंतु रात्रि में नहीं करते हैं कारनप्रयात् रात्रि में हलन चलन करे तो रजोहरण से पूंजकर करते हैं ३ ईर्या समिति का मार्ग कुपथका त्याग करने का है क्यों की कुपथ में विचरने से दीमक वगैरह के नागरे में से संयम की विराधना होवे और कण्टक होने से आत्मा की विराधना होवे ॥ ५ ॥ ईर्यासमिति का चौथा कारन जो यतना है उसका द्रव्य से क्षेत्र से, काल से, व भाव से इन चारों से विस्तार पूर्वक कथन आगे करता है सो

आहारोवहि सेज्जाए, एए तिन्नी विसोहए ॥ ११ ॥ उग्गमुप्पायण पढमे, बीए सोहेज्जएसण ॥ परिभोयम्मि चउक्क, विसोहेज्ज जयं जई ॥ १२ ॥ ओहो वहो

२ निर्दोष वस्तु ग्रहण करने में एषणा करना और ३ निर्दोष वस्त भोगवने में एषणा करना यक्त तीन प्रकार की एषणा आहार वस्त्र प्रमुख उपधि और स्थानक पाट पाटला में करना यों ९ प्रकार की एषणा समीत है अर्थात—आहार की गवेषणा में एषणा २ ग्रहण करने में एषणा, और ३ भोगवने में परिभोग में एषणा उपधि आश्री ४ गवेषणा एषणा, ५ ग्रहण करने में एषणा, और ६ भोगवने में एषणा शैय्या की ७ गवेषणा में एषणा ग्रहण करने में एषणा और ९ भोगने में एषणा, यों नव विधि विशुद्ध पाले ॥ ११ ॥ ऊपर जो गवेषणा ग्रहणा व भोगना में एषणा कही उसमें प्रथम गवेषणा में उद्गमन के १६ दोष गृहस्थ से लगे, उत्पात के १६ दोष साधु से लगे यों मूल व उत्तर ३२ दोषों का त्याग करे २ ग्रहणा में एषणा के १० दोष गृहस्थ व साधु दोनों मीलकर लगावे उन को वर्जे अनगार परिभोगेषणा में संजोयनादि चार दोष वर्जे यों ४६ दोष वर्ज कर महानावन्त साधु विशुद्ध पूर्वक आहार आदि ग्रहण करे इन ४६ दोषों के नाम—गाथा आहाकम्म उद्देसिय, पूइकम्मे मिस्सजाए ॥ ठवणा पहुड आए पाउर कीय पामीच्च ॥ १ ॥ परियट्ट अभिहडुब्भिन्ने मालोहडे इय ॥ अच्छिज्जे अणिसिट्ठ अज्झोयरे सोलस उपगमन दोसा ॥ २ ॥ अर्थ—१ साधु अर्थ निपजावे वह आधा कर्मी, २ वह साधु कोवज्जा

कहासु तहेव य ॥ ९ ॥ एयाइं अट्ठ ठाणाइं, परिवज्जित्तु संजए ॥ असावज्ज मिय काल, भास भासिज्ज पन्नव ॥ १० ॥ गवेसणाए गहणेय, परिभोगेसणाय जा ॥

और यतना से चलने लगे हाथीने साधु को सुंड में पकड कर नीचे डाल दिये तो भी पीछे पडते रजोहरण से भूमिका की प्रतिलेखना की इस प्रकार दया पात्र साधु को देखकर देवता अपना रूप प्रगट कर साधु को नमस्कार कर पीछा गया इस प्रकार ईर्या समिति सब साधु पालना चाहिये ॥✱॥ दूसरी भाषा समिति कहते हैं जो ज्ञानवान साधु हैं वे भाषा बोलते समय १ क्रोधकारी, २ मानकारी, ३ मायाकारी ४ लोभकारी ५ हास्यकारी ६ भयकारी ७ अन्य का अपवाद अथवा अपमान वाली और ८ विकथा-निरर्थक बातों इन आठ प्रकार के वचन को वर्जकर पाप रहित मर्यादा युक्त निर्दोष भाषा बोले यह भाषा समिति का कथन हुवा ॥ २१० ॥ इसपर कथा कहते हैं—किसी नगर को परचक्री राजा घेर कर रहा था उस समय अंदर से साधु निकले उन को परचक्री के सुभटोंने पूछा कि अंदर कितनी सेना है ! साधु विचार कर इस प्रकार बोलने लगे कि आंखों देखे सो बोले नहीं और बोले सो देखे नहीं यों सुन साधु को बावले जानकर छोड दिये इस प्रकार अन्य साधु भी वचन विचार कर बोले यह भाषा समिति पर कथा हुई ॥ ✱ ॥ अब तीसरी एषणा समिती कहते हैं—एषणा तीन प्रकार की है निर्दोष वस्तु की गवेषणा करने से एषणा करना

१० लालच कर ले वह लोभ दोष, ११ दान दिये पहिले या पीछे दातार के गुणानुवाद कर ले वह संस्तव दोष १२ प्रज्ञप्ति आदि विद्या फोड़ ले वह विद्या दोष, १३ व्यंतरादिक मंत्र कर ले वह मंत्र दोष १४ पाचना दे चूर्ण कर ले वह चूर्ण दोष, १५ गर्भ पातन स्थम्भन कर ले वह मूल कर्म दोष, और १६ सौभाग्य तथा पुत्रादि अर्थ स्नानादि करा कर ले वह योग दोष यह १६ उत्पात दोष साधु लगावे ॥ २ ॥ संकिए मक्खिए, निक्खित्ते पेहिए साहए उम्मीसे ॥ अपरिणय लित्त छड्डिय, एषण दस दोसाए ॥ १ ॥ अर्थ—१ यह सुजता है या असूजता है ऐसा साधु का तथा दातार को शंका हो वह शंकित दोष २ सचित वस्तु पानी आदि से हाथ भाजनादि मक्खी की पांख जितना भरा हो उस से आहार आदि ग्रहण करे वह निक्खित दोष ३ सचित वस्तु पर अचित रखी हो उसे ले वह निक्खित दोष ४ अचित वस्तु पर सचित वस्तु रखी वह अचित वस्तु ले वह पहित दोष, ५ सचित वस्तु के बीच में आहार वस्तु भरी हो जैसे गढ़ के ढक में गढ़ उसे निकाल दे वह साहरिए दोष, ६ अंध पंगु वृद्ध, छद्म यथा इत्यादि के हाथ से ले वह दायक दोष ७ पूरा अचित न हुआ हो ऐसा तत्काल का धोवन इत्यादि धोवा ले वह मिश्र दोष, ८ शस्त्र पूर्ण परिणमा न हो जैसे जो काल का अमाता डोला कैर लगाना ले वह अपरिणत दोष ९ लीपा सूखा न हो ऊपर आकर ले तथा दान देकर फिर हाथ भाजनादि सचित्त पानी से धोवे वह लिप्त दोष, और १० ढोलता २ (ढोलता ढोलता २) देवे वह छर्दित दोष यह दश दोष साधु और गृहस्थ दोनों प्रसिद्ध हो लगावे ॥ ३ ॥ अब वीरारी पीरे

दूंगायों उदय कर निपजावे यह उद्देशिक, २ साधु के लिये और अपने लिये अमगर निपजाया, साधु के लिये निपजाया उस की सीत (दानादि) अपने लिये निपजाया उस में पड्जाइ वह पूति कर्म है अपने लिये और साधु के लिये सामिल निपजाया वह मिश्र ५ साधु को ही देवूंगा यों स्थापन कर रखे वह स्थापन, ६ इस साधु के भिक्षा के दिन साधु को अच्छा आहार देने मिजवानों को जीमावे यह पाहुडम ७ अन्धारे स्थान में उजाला कर दे यह प्रकाश ८ दबे मोल लाकर यह कृतगड, ९ उधार लेदे वह पामिच, १० अदल बदल करदे वह परियट, ११ सन्मुख लावे वह आभिहड, १२ मुद्रा (छादा) उखाड करदे वह भिन्न, १३ ऊपर से नीचे लावे यह मालोहड १४ निबल के हाथ में से छीन कर दे यह अछिन्न, १५ मालिक की आज्ञा बिना दे यह अणिसिट्ठ और १६ साधु आये जान ज्यादा निपजाकर दे यह अज्झोयर, यों सोले उद्गमन दोष गृहस्थ लगावे हैं ॥ १ ॥ गाथा—धाई दूइ निमित्त, आजीव वणिमग्ग तिगिच्छ कोहेमाण माया लोह, हवंति दसदोसाय ॥ १ पुव्व पच्छाय संथवं विज्जापण चुन जोगे ॥ मूल कम्म उप्पायणा दोसा हवंति सोलसा ॥ २ ॥ अर्थ— १ दातार के बच्चों को खिला-रमा कर ले सो धाई २ दूत की तरह समाचार कह कर ले सो दूत दोष, ३ ज्योतिष निमित्त प्रकाश करले वह निमित्त दोष, ४ जाति कुल-सम्बन्ध प्रकाश ले वह आजीविक दोष भिखारी की तरह कंगला-लाचारी कर लेवे वह वणिमग दोष ६ औषध उपचार करके ले वह तिगिच्छ दोष ७ धारणा देना की क्रोधकर ले वह क्रोध दोष ८ अभिमान कर के वह मान दोष ९ दगाबाजी कर के वह माया दोष

सूत्र

धग्गहिय, मंडगु दुविहं मुणी ॥ गिण्हतो निक्खिवंतो वा, पउंजेज्ज इम विहिं ॥१३॥ चक्खुसा पडिलेहित्ता पमज्जेज जयं जई ॥ आइए निक्खिवेज्जा वा, दुहओ, वि समिए सया ॥ १४ ॥ उच्चार पासवण खेल, सिंघाणजल्लियं ॥ आहारं उवहिं

अर्थ

की याचना करने गया था। फाय वहां देवता के निमित्त से असूझता हो जाये बहुत जरूर होने पर असूझता पानी ग्रहण करे नहीं यों फिरते २ अपनी लब्धि से देवता को झुकाकर शुद्ध निर्दोष पानी ग्रहण कर लाया तब देवता अपना रूप प्रगट कर नंदीषेण का वंदना नमस्कार कर स्व स्थान गया नंदीषेण का और वहां से आयुष्य पूर्ण होने पर चवकर कृष्णजी के पिता वसुदेव हुए ॥ ✻ ॥ अब चौथी आदान निक्षेपना समिति कहते हैं—भंडोपकरण दो प्रकार के कहे हैं—औधिक व उपग्रहिक इस में जो औधिक है सो पाडीहारी वस्तु अर्थात् काम कर के गृहस्थ की वस्तु गृहस्थ को दे सके ऐसे पाट पाटला अथवा जिन उपकरणों के नाम शास्त्र में कहा होवे वैसे जैसे वस्त्र रजोहरणादि वगैरह और उपग्रहिक सो पीछा देने में आवे नहीं सो तथा जिन का नाम शास्त्र में नहीं और जो वर्जनीय भी नहीवे ऐसे पाटी पूंठा वगैरह इन को यथावसर होने पर उठाते दृष्टि से देखे अथवा रजोहरणादि से पूंजे और पीछा रखते भी दृष्टि से देख और रजोहरणादि से पूंजे परन्तु पटका झटका करे नहीं यह चौथी आदान निक्षेपना समिति हुई ॥ १३ १४ ॥ इस पर कथा कहते हैं किसी आचार्यने शिष्य को अकाल

पागेषणा के चार दोष कहते हैं-मनोज्ञ वस्तु का संयोग मिलावे जैसे दूध मांगवाके शक्कर सने जावे यह संयोग दोष २ अतिमात्र अप्रमाण-क्षुधा उपरांत आहार करे यह अप्रमाण दोष, ३ मनोज्ञ आहार मात्त कर आहार की तथा दातार की प्रशंसा करे यह इंगाल दोष, और ४ अमनोज्ञ तथा कमी आहार मात्त कर आहार की तथा दातार की निन्दा करे यह धूम्र दोष यों १६ उद्गमन १६ उत्पातन १० एपणा और ४ परिभोगेषणा के सब ४६ दोष टालकर आहार करे यहां पर कथा कहते हैं-नंदसेन के मातपिता बचपन में मरने से मामा के यहां बडा हुआ वह कुरूप होने से उस के साथ कोई भी लग्न करे नहीं इस से पर्वत पर से पडकर मरने का उसने निश्चय किया वहां किसी साधु का उपदेश सुनने से उसने साधुपना अंगीकार किया बेले २ की तपश्चर्या सहित सब शरीर को साधु की वैय्यावृत्य में अर्पन कर विचरने लगा एकदा सभा में इन्द्रने नंदीषेण की प्रशंसा की इस पर से एक देवता उन की परीक्षा करने के लिये वृद्ध साधु का रूप बना कर दस्तों की बिमारी से पीडित बना हुआ गांव के बाहिर पडा नंदीषेण भी ऐसा समाचार सुनकर तत्काल उन के पास आये और चलने की शक्ति नहीं होने से अपने स्कंध पर उठा कर ले चले मार्ग में उस साधु रूप देवताने नंदीषेण का सब शरीर विष्टामय से भरदिया और अपशब्दो, कठोर व कर्कश प्रहार भी करने लगा परंतु नंदीषेण कुपित नहीं हुआ उस साधु रूप देवता को उपाश्रय में रख कर शरीर की शुद्धि करने के लिये पानी

४० वा दोष-कुशील कारण उत्पन्न हुवा बिना आहार करे यह कारण दोष भी आहार के अनुकूल बताया है

आवाय मसलोए, आवाए चेव संलोए ॥ १६ ॥ अणावाय मसंलोए, परस्स णुवघाइए ॥ समे अज्झुसिरे यावि, अचिर काल कयमिय ॥ १७ ॥ विच्छिण्णे दूरं मोगाढे, नासन्ने विलवज्जिए ॥ तस पाणवीय रहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥ १८ ॥ एयाओ पंचसमिईओ, संनासेण वियाहिया ॥ एत्तो तओय गुत्तीओ वोच्छामि अणुपुव्वसो

अर्थ

कपरा वगैरह होवे नहीं और भीत वगैरह दृष्टिगत होते होवे ५ अग्नि वगैरह प्रमुख से आचित हुए थोड़ा काल हुआ हो ६ विस्तीर्ण लम्बी चौड़ी जमीन हो, ७ भूमि के अंदर का भाग बहुत दूरतक आचित हुआ हो ८ अपने उपाश्रय से परिठाने का स्थान दूर हो, ९ उंदर वगैरह के बिल नहोवे, और १० उदइ चींटी आदि के त्रस बीज हरी घास वगैरह वहां नहोवे इस प्रकार के दश स्थानक में स्थंडिल वोसीरा देवे यह पांचवी परिस्थापनीय समिति कही ॥ १८ ॥ यहां कथा कहते हैं—धर्मरताचार्यने एकदा शिष्य से कहा कि स्थंडिलादि परिठाने की भूमि संदेव अवश्य देखनी चाहिये तब एक अविनीत शिष्य बोला कि क्या वहां कर बैठा है कि सदैव दोनों समय प्रतिलेखना किया करें ? गुरु मौन रहे शासन देवन गुरु की आज्ञा मनाने के लिये ऊंटका रूप वैक्रेय किया रात्रि को शिष्य परिठाने गया तब ऊंट को देख आश्चर्य चकित हुआ, गुरु का अपराध खमाया और पीछे से उच्चारादि भूमिका की

सूत्र

देह, अप्पमावि तहाविह ॥ १५ ॥ अणावाय मसंलोए ॥ अणोवाए चेव होइ संलोए

अर्थ

में मति लेखना किया बाद पुनः प्रतिलेखना करने की आज्ञा दी तब शिष्य बोले क्या आप विस्मृत होगये कि अभी ही अभी प्रतिलेखना कराते हो? तब गुरु मौन रहे, उस इधर शिष्य प्रतिलेखना करता था, उस में ही उस में सर्पने फुत्कार किया, शिष्य देखकर विस्मित हुआ और गुरु के वचन पर श्रद्धा रखकर कालाकाल शुद्ध उपयोग से प्रतिलेखना करने लगे ॥ ७ ॥ अब पांचवी परिस्थापनीय समिति कहते हैं—१ उच्चार पुरीषित २ प्रस्रवण—लघुनीत, ३ श्लेष्म खंखार, ४ सिंघाण नाकका मल, ५ जल्ल—पसीना, ६ दोषित अथवा अधिक आहार, ७ वैसे ही निरुपयोगी वस्त्र पात्रादि उपधि और ८ मृत साधु का शरीर इत्यादि और नखकेश वगैरह और भी परिठाने योग्य वस्तु होवे उन को यत्ना पूर्वक परिठावे ॥ १५ ॥ अब परिठाने के दश बोल कहते हैं—प्रथम बोल में चौभंगी—१ कोई मनुष्य आता भी नहीं है और देखता भी नहीं है २ कोई मनुष्य आता नहीं है और देखता है ३ कोई आता है और देखता नहीं है और ४ कोई मनुष्य आता भी है और देखता भी है इन चार में से प्रथम भांगा शुद्ध है अर्थात् जिस स्थान कोई मनुष्य आता भी न होवे और देखता भी न होवे वहां उच्चार प्रस्रवणादि परिठाना और शेष तीन भांगे अशुद्ध है २ जिस स्थान परिठाने से अपना आत्मा की तथा दूसरे के आत्मा की घात न होवे, ३ ऊंच नीच भूमि नहोवे परंतु समभूमि होवे ४ तृण पात्र

सउब्बिहा ॥ सारंभ समारंभे, आरंभेय तहेव य ॥ वय पवत्तमाणतु, नियत्तेज्ज अयं जइ ॥ २३ ॥ ठाणे निसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे ॥ उल्लंघण पल्लंघण, इंदियाण

बहुत समय लगा तब गुरुजीने पूछा कि इतनी देर क्यों हुइ शिष्यने उत्तर दिया कि मैं इस विचार में था कि वर्षा ऋतु आइ है, अब मेरे पुत्रों खेत में अनाज डाल देंगे तो उस की अच्छी उत्पत्ति होने से वे सुखी होंगे इस विचार से देर लग गइ गुरु ने कहा कि साधु को ऐसा सावद्य विचार नहीं करना चाहिये तब शिष्यने मिथ्या दुष्कृत्य दिया ॥ ० ॥ दूसरी वचन गुप्ति—१ सत्य वचन गुप्ति, २ असत्य वचन गुप्ति ३ मीश्र वचन गुप्ति और ४ व्यवहार वचन गुप्ति यावत् असत्य वचन व मीश्र वचन गुप्ति अंगीकार करे ॥ २२ ॥ और सारंभ समारंभ व आरंभ से वचन को निवारे + यह दूसरी वचन गुप्ति हुइ ॥ २३ ॥ इस पर कथा कहते हैं गुणवन्त साधुजी विहार करके जा रहे थे मार्ग में चोर मीले जो चाल थे तेरे दर्शन के लिये आगे जाय माता है उन का हमारे समाचार मत करना साधु कुच्छ भी बोले बिना आगे गये आगे साधु के कुटुम्बियों थे वे साधु के दर्शन कर सुखी हुए साधुने धर्मोपदेश दिया और वे पीछे गये रास्ते में चोरोंने उन को लूटे और कहने लगे

+ यह मरे तो अच्छा यह सारंभ अन्य का मारने के लिये विष शस्त्रादिक की सामग्री मीलाने का वचन कहे सो समारंभ और किसी को त्रास दे अथवा कठोर वचन बोले सो आरंभ

॥ १९ ॥ सच्चा तहेव मोसाय सच्चमोसा तहेवया चउत्थी असच्चमोसाय, मणगुत्तीओ चउव्विहा ॥ २० ॥ सारंभ समारंभे, आरंभय तहेवय ॥ मण पवत्तमाणंतु, नियत्तिज्जजय जई ॥ २१ ॥ सच्चा तहेव मोसाय, सच्च मोसा तहेयय ॥ चउत्थी असच्च मोसाय, वइगुत्ती

प्रतिलेखना करने लगा ॥ * ॥ यह पांचों समिति का कथन संक्षेप से कहा है इस का विस्तार पूर्वक कथन आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध से जानना अब आगे तीनों गुप्ति का कथन अनुक्रम से कहता हूं ॥ १९ ॥ प्रथम मन गुप्ति कहते हैं—मनगुप्ति के चार भेद कहे हैं—१ सत्य मन गुप्ति सो सीधाधिक पदार्थ का यथार्थ जिनाज्ञानुसार चिंतवन करे २ असत्यमनगुप्ति—जिनाज्ञा से विपरीत चिंतवन करे, ३ मिश्रमनगुप्ति सो कुछ सत्य कुछ असत्य यों मिश्र चिंतवन करे, और ४ व्यवहार मन गुप्ति सो ग्राम आया, पर्वत गले, वगैरह सच्चा भी नहीं और झूठा भी नहीं ऐसा विचार करे इन चारों में से असत्य मन गुप्ति व मिश्र मन गुप्ति कर और मन को सारंभ, समारंभ व आरंभ से निवारे * यह मनगुप्ति का कथन हुआ ॥ २१ ॥ इस पर कथा कहते हैं—कुमन नामक साधु ध्यान

* किसी को मारने का विचार करे सो सारंभ, किसी को मारने की सामग्री मीलाने का विचार करे सो समारंभ, और शरीर प्रयोग से मारे सो आरंभ.

घुत्ता, अतुमत्थेसु सव्वसो ॥ २६ ॥ एसा पवयणमाया, जे सम्म आयरे मुणी ॥ से खिप्प सव्व ससारा, विप्प मुच्चइ पडिए ॥ २७ ॥ त्तिबेमि ॥ पवयण मायाणाम चउवीसय अज्झयण सम्मत्त ॥ २४ ॥ * * *

अर्थ

सर्ग कर खडे रह गये सोमील ब्राह्मण हवन सामग्री लाने को बाहिर गया था उसने पीछे आते गज सुकुमाल मुनि को देखे और क्रोधातुर हो कर गजसुकुमाल मुनि के मस्तक पर मीट्टी की पाल बाध कर जाज्वल्यमान अग्नि के खीर वस्तु में भर दिये मुनि की खोपरी खीचडी की तरह खदबद गई आंखों छीटक कर बाहिर आगइ अति उज्वल वेदना समभाव से सहन की परंतु किंचिन्मात्र भी काया का हलाइ नहीं, कर्म क्षय कर मोक्ष पधार एसे ही अन्य साधु को भी कायगुप्ति करना ॥ २५ ॥ समुच्चय-उक्त पांच समिति तो चारित्राराधन के कार्य साधन के लिये कही और तीनों गुप्ति सर्वथा प्रकार से निवर्तने रूप कही (पांच समिति प्रवृत्ति मार्ग है और तीन गुप्ति निवृत्ति मार्ग है) ॥ २६ ॥ जो पंडित साधु होवे वे उक्त आठों प्रवचन माता के कहे अनुसार सम्यक् प्रकार आचरण करके शीघ्रता से संसार से छूट कर मोक्ष पावेंगे ॥ २७ ॥ ऐसा मैं कहता हूं यों श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बु स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहता हूं यह आठ प्रवचन माता का चौवीसवा अध्ययन कहा ॥ २४ ॥

सूत्र

य जुंजणे ॥ २४ ॥ सारंभ समारंभ, आरंभेय तहेव य ॥ काय पवत्तमाण तु नियत्तेज्ज जयजई ॥ २५ ॥ एयाओ पंच समिई, चरणस्सय पवत्तणे ॥ गुत्ती नियत्तणे

अर्थ

कि साधो भया स त्कार नहीं दिये तो भवन तो अच्छा हुआ यह बात राणी भी माने तुई और भोलपन से बोली कि मेरी कूखसे ऐसा उत्पन्न हुआ कि मुझे ... और पोले किराड तो लाविदी माता है धन्य है साधु को कि इसने यह बात कही नहीं। यों विचार कर उन सब का लूंट हुआ धन पीछा देदिया ऐसी वचन गुप्ति सब साधु को रखना चाहिये ॥ * ॥ अब तीसरी कायागुप्ति कहते हैं— साधु खड़ा रहते, बैठते, शयन करते, खड्डे मनुष्य का उल्लंघन करते, पांचों इन्द्रियों से निवृत्त कर यतना से वर्ते ॥ ४ ॥ और सारंभ, समारंभ व आरंभ से काया को रोके ॥२५॥ इस पर कथा कहते हैं—द्वारिका नगरी के वसुदेव राजा व देवकी राणी गजसुकुमाल पुत्र हुए उन का पाणिग्रहण कराने के लिये श्री कृष्ण वासुदेवने सोमिल ब्राह्मण की कन्या को लग्न पहिले ही अपने राज महेल में में रखी थी गजसुकुमाल की नेमीनाथ भगवान का उपदेश सुन दीक्षित हुए और स्मशान में कायो

---

* दूसरे को मारने को शस्त्रादि रखना सो सारंभ दूसरे को मारने के सामग्री देना सो समारंभ और मारडाला सो आरंभ

सूत्र

घोसे त्ति नामेण, जन्न जयइ वेयवी ॥ ४ ॥ अह से तत्थ अणगारे, मासक्खमण पारणे ॥ विजय घोसस्स जन्नमि, भिक्खट्ठा उवट्ठिए ॥ ५ ॥ समुवट्ठिय तहिं सतं जायगो पडिसेहए ॥ न हु दाहामि ते भिक्ख, भिक्खू जायाहि अन्नओ ॥६॥ जे वेयविऊ विप्पा, जन्नट्ठाय जिइंधिया ॥ जोइसंगविऊ जे य जन्न धम्मस्स पारगा ॥ ७ ॥ से समत्था समुद्धत्तु परमप्पाण मेव य ॥ तेसिं अन्नमिण देय भो भिक्खू सव्व कामिय ॥ ८ ॥ सो तत्थ एव पडिसिद्धो, जायगेण महामुणी ॥ न वि रुट्ठो

अर्थ

उस वक्त उस वाणारसी नगरी में वेदों का पाठी विजयघोष नामक ब्राह्मणने वेदाज्ञानसार यज्ञ प्रारंभ किया था ॥ ४ ॥ उस वक्त वे विजय घोस नामक अनगार—साधुजी मासक्षमणोपवास के पारने के लिये भिक्षार्थ सावधान हुए तहां विजयघोष ब्राह्मन के यज्ञ पाडे में आकर खडे रहे ॥ ५ ॥ उस यज्ञ पाडे में साधु को समुपस्थित (आये) हुवे देखकर विजयघोष विप्र उन मान का तिरस्कार करता हुआ बोला कि—भो भिक्षुक ! मै तुझे निश्चय से भिक्षा नहीं दूंगा इस लिये तू यह घर छोडकर अन्य घर याचना कर क्यों कि—यहां यज्ञ पाडे में निष्पन्न हुआ आहार तो जो विप्रों वेद के जान हैं यज्ञार्थि हैं, ज्योतिष शास्त्र में प्रवीण हैं, और जो यज्ञ के पारगामी हैं वे अपने आत्मा को और अन्य के आत्मा को संसार समुद्र से उद्धार करने समर्थ होते हैं, ऐसे विप्रों के लिये ही यह षड्रस संयुक्त इच्छा तृप्ति का करनेवाला आहार भोजिक है (परन्तु अन्य के लिये नहीं है) ॥६ ८॥ उक्त प्रकार से जयघोष मुनि

॥ यज्ञ कीय नामक पंचविंशतितम मध्ययनम् ॥

सूत्र

माहण कुल समूओ, आसि विप्पो महायसो ॥ जायाई जमजन्नामि जयघोसे त्ति नामओ ॥ १ ॥ इंदियगामनिग्गाही, मग्गगामी, महामुणी ॥ गामाणुगाम रीयतो पत्तो वाणारसिं पुरिं ॥ २ ॥ वाणारसीए बाहिया, उज्जाणमि मणोरमे ॥ फासुए सेज्ज संथारे, तत्थ वास मुवागए ॥ ३ ॥ अह तेणेव कालेण पुरीए तत्थ माहणे, ॥ विजय

अर्थ

चौबीसवे अध्ययन में आठ प्रवचन माता के कहे वे तो भाव ब्राह्मण के होवे इसलिये पचीसवे अध्ययन में भाव ब्राह्मण का कथन करते हैं ॥ (वाणारसी नगरी के रहवासी ब्राह्मण जात्योत्पन्न, जय घोष और विजय घोष नामक दो भ्राताओं में से जय घोष को साधु की संगती होने से द्रव्य यज्ञ का त्याग कर साधु बन भाव यज्ञ करने प्रवृत्त हुए) वे ब्राह्मण कुलोत्पन्न महा यशवंत जयघोष नामक महामुनि इन्द्रियों के समूह रूप पशुओं के पंच महाव्रत रूप यज्ञ कुंड में निग्रह कर [होम कर] भाव से मोक्षमार्ग में प्रवर्तते हुए, द्रव्य से [अपने आत्मा का उद्धार करने] ग्रामानुग्राम विचरते (निवास करते) हुए वाणारसी नगरी पधारे ॥ १ २ ॥ वाणारसी नगरी के बाहिर मनोरम नामक उद्यान में प्रासुक निर्दोष स्थानक पाट संथारक आदि की याचना कर तप संयम से आत्मा भावते विचरने लगे ॥ ३ ॥

सूत्र

मुहं बूहि जं च धम्माण वा मुहं ॥ १४ ॥ जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाण मेव य ॥ एव मे ससय सव्वं, साहु कहसु पुच्छिओ ॥ १५ ॥ अग्गिहोत्ता मुहा वेया, जन्नट्ठी वेयसा मुहं ॥ नक्खत्ताण मुहं चंदो, धम्माण कासवो मुहं ॥ जहा चंद गहाईया, चिट्ठति पजली उडा ॥ वंदमाणा नमसता, उत्तम मणहारिणो

अर्थ

नक्षत्र का मुख्य धर्म का मुख्य कौन है ? और ससार समुद्र से उद्धार करने समर्थ कौन है यह हमारे मन में संदेह है सो इस का खुलासा आप कृपा करके कहो ॥ १६ ॥ तब जयघोष मुनि बोले कि हे विप्रों ! (१ जीव रूपकुंड, २ तपरूपी वेदीका, ३ कर्मरूप इंधन ४ ध्यान रूपी अग्नि, ५ शरीर रूपगोर, ६ कमयोग रूप चारू, ७ शुद्ध मान तथा जीवदया रूप आहुति इस प्रकार का) जो अग्निहोत्र है यही वेद का मुख्य है और ऐसा यज्ञ ही वेद में मुख्य है, येही वेद प्रमाण सूत हैं इस प्रकार यज्ञ के अर्थी साधुओं येही यज्ञ के प्रवर्तक हैं नक्षत्रों में मुख्य चन्द्रमा है और धर्म में मुख्य धर्म के प्रवर्तक श्री ऋषभ देवजी तथा श्री महावीर स्वामीजी हैं जिस प्रकार चन्द्रमा के आगे ग्रह नक्षत्र तारागणों दोनों हाथ जोड़कर खड़ रहते हैं गुणस्तवन करते हैं नम्ररूप हो सेवा करते हैं इस प्रकार सौजन्य प्रीति से मानते हुये रहते हैं वैसे ही आदीनाथजी के तथा महावीर स्वामीजी के आगे चौसठ ही

सूत्र

नवि तुट्ठो उत्तमट्ठ गवेसओ ॥ ९ ॥ नन्नट्ठ पाणहेउ वा, नवि निव्वाहणाय वा ॥ तसिं विमोक्खणट्ठाए, इम वयणमब्बवी ॥ १० ॥ नवि जाणसि वेयमुहं, नवि जन्नाण ज मुहं ॥ नक्खत्ताण मुहं ज च, ज च धम्माण वा मुहं ॥ ११ ॥ जे समत्था समुद्धत्तु परमप्पाणमेव य ॥ न ते तुम वियाणासि, अह जाणासि तो भण ॥ १२ ॥ तस्स खेव पमोक्खा तु अचयतो तहिं दिओ ॥ स परिसो पजलि होउ पुच्छइ तं महामुणिं ॥ १३ ॥ वेयाण च मुहं बूहि, बूहि जन्नाण ज मुहं ॥ नक्खत्ताण

अर्थ

का विजय घोष जिनने तिरस्कार किया वो भी वे मोक्षार्थ के गवेषी मुनि न तो रुष्ट (क्रोधी) हुवे और न तुष्ट हुवे; परंतु समभाव से रहे और आहार पानी वस्त्रादि के लाभ के वास्ते नहीं परंतु विजय घोष का उद्धार करने के लिये इस प्रकार बोले—॥ ९ ॥ हे विप्र! वेद में मुख्य कौन है यज्ञ में मुख्य कौन है, नक्षत्र में मुख्य कौन है, और धर्म में मुख्य कौन है उसे तु जानता नहीं है, वैसे ही अपना आत्मा का तथा पर आत्मा का संसार समुद्र से उद्धार करने समर्थ कौन है उसे भी तू जानता नहीं है जो तू जानता हो तो कहे! ॥ ११ १२ ॥ उक्त प्रकार मुनि के वचन सुनकर विजय घोष ब्राह्मण उन मुनि को प्रत्युत्तर देने असमर्थ होकर उस यज्ञ वाडे में आए हुए सब ब्राह्मणों के साथ दोनों हाथ जोडकर उन मुनि को इस प्रकार पूछने लगा ॥ १३ ॥ अहो साधुजी ! वेदों का मुख्य यज्ञ का मुख्य

कुसल सदिट्ठं त वय बूम माहण ॥ १९ ॥ जो न सज्जइ आगंतु, पव्वयतो न सोयई ॥ रमइ अज्ज वयणमि, त वय बूम माहण ॥ २० ॥ जायरूवं जहा मिट्ठं, निद्धंत मल पावग ॥ राग दोस भयाईय त वय बूम माहण ॥ २१ ॥ तवस्सिय

अर्थ

स्व परात्मा का तारने योग्य ब्राह्मणों होते हैं उन के लक्षण कहते हैं—हे विप्रो ! केवलज्ञानीयोंने युव से सी उन की हुई अग्नि समान जो ब्राह्मणों जगत् में सदैव पूज्यनिय कहे हैं उनो को मैं भी ब्राह्मण कहता हूं (उन के लक्षण—) ॥ १९ ॥ जो आगामि काल में किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये सज नहीं

न भूतो न भविष्यति ॥ १ ॥ अथ—जो पशुओं का वधकर देवतादि की पूजा करे सो घोर नरक में जावे क्यों कि हिंसा में धर्म न कभी हुवा और न कभी होवेगा ! ॥ ३ ॥ इसलिये व्यासजी के कहे मुजब करना श्लोक-ज्ञान पालि परिक्षित, ब्रह्मचर्य दयाम्भ स ॥ स्नात्वासि विमल तीर्थे, पापपंक पहारिणि ॥ ४ ॥ ध्यानाग्नौ जीव कुंडस्थ दममारुत दीपिते असत कर्मसमित क्षिप्रेग्निहोत्र कुरुत्तमम् ॥ ५ ॥ कषाय पशुभिर्दुष्टै धर्माकामर्थ नाशकै शम मंत्र हुतैर्यज्ञ, विधेहि विहित बुधै ॥६॥ अथ—ज्ञान रूपी तलाब में दया और ब्रह्मचर्य रूपी पानी है एसे तीर्थ में स्नान कर कर्म मल से शुद्ध बन फिर जीव रूपी कुंड में दमरूप पवन से दीपित या ध्यान रूपी अग्नि है उस में असत्कर्म रूपी काष्ट को डाल कर उत्तम अग्निहोत्र करो, धर्म काम और अर्थ को नाश करने वाले शम रूप मंत्र की आहुती को प्राप्त हुवे ऐसे दुष्ट कषाय रूपी पशुओं से ज्ञानवतो द्वारा किया हुआ यज्ञ करो अश्वमेधसो-मनरूपी घोडे का, गोमेध सो असत्य वचन का, अजामेध सो इन्द्रियों का और नरमेध सो कामदेव का पराक्रम कुंड की अग्नि में यज्ञ करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। ४१।

सूत्र

॥ १७ ॥ अजाणागा जन्नवाई विज्जा माहण संपया ॥ गूढा सज्झाय तवसा, भास च्छन्नाइवाग्गिणो ॥ १८ ॥ जो लोए बंभणो वुत्तो अग्गीव महिओ जहा ॥ सया

अर्थ

इन्हों सेवा करते हैं * ॥ १७ ॥ अब जो ब्राह्मणों कहाने वाले होते हैं उन का कथन करते हैं जो ब्राह्मणा उक्त प्रकार से वेद के तत्त्व के अजान हो कर यज्ञ करते हैं, और विद्यारूप ब्राह्मन की सम्पदा है उस का भी नहीं जानते हैं वो धनादि के मोह में मुग्ध बनकर स्वाध्याय तपादि नहीं करते हैं ऐसे पूर्व किये ढकी हुइ अग्नि के समान होते हैं अर्थात् जिस प्रकार ढकी हुइ अग्नि बाहिर से शीतल देखाती है परंतु अन्दर से जाज्वल्यमान होती है, तैस ही य ब्राह्मणों भी ब्राह्मण का वेष धारन कर ऊपर से निष्कामी शीतली भूत होते हैं, परंतु अन्दर मे कामाग्नि क्रोधाग्नि कर प्रदीप्त हैं ॥ १८ ॥ अब जो

* ज्योतिषी लोगों सब ग्रहों में चन्द्रमा को प्रधान मानते हैं इसलिये चन्द्रमा के दृष्टांत से तीर्थकरों का गौरव दरशाकर उन का महत्व उन के मन में ठसाया है

† श्लोक—यूपं छित्वा पशुन् हत्वा कृत्वा रुधिर कर्दमम् ॥ यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥ १ ॥ अर्थ-यज्ञस्थंभका छेदन कर पशूओं की घातकर रक्त का कर्दम मचा यदि स्वर्ग में जाते हों तो फिर नरक में कौन जावेगा ॥ २ ॥ श्लोक—[illegible] पठाध्यायेन, पत्रध्यायेन या ऽ [illegible] ॥ यान्ति जन्तुनगतघृणा घोरां ते यान्ति दुर्गतिम ॥ १ ॥ शास्त्र पुरुषों का फरमान है कि जो पुरुष घृणा रहित वेदों के मंत्र करके [illegible] या यज्ञ के मिस से जीवों को मारते हैं वे घोर दुर्गति में जाते हैं ॥ ७ ॥ व्यासजी भी कहते हैं श्लोक—[illegible] सकलान पशुभिर्ये [illegible] ॥ हिंसा नाम [illegible]

सूत्र

थयइ जो उ, त वय बूम माहणं ॥ २४ ॥ चितमत मचित्तवा,अप्प व जइवा वहुं॥ न गिण्हइ अदत्त जे, तं वय बूम माहण ॥ २५ ॥ दिव्व माणुस तेरिच्छ, जो न सेवइ मेहुण ॥ मणसा काय वक्केण, त वय बूम माहण ॥ २६ ॥ जहा पोम जले जायं, नोव लिप्पइ वारिणा ॥ एव अलित्त कामेहिं, त वय बूम माहण ॥ २७ ॥

अर्थ

के वश हो हसी के वश के वश हो तथा भय के वश हो मृषा (झूठ) बोले नहीं, बुलावे नहीं बोलते को अच्छा जाने नहीं मन से वचन से काया से उन का मैं ब्राह्मण कहता हु ॥ २४ ॥ जो सचित्त–मनुष्य पशु आदि, अचित्त–वस्त्र पात्रादि, तथा सुवर्णादि अल्प–थोडा तथा बहुत * इन की चारों तीन करन तीन जोग से नहीं करे उसे ब्राह्मन कहना ॥ २५ ॥ देवता सम्बन्धी मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यच सम्बन्धी मैथुन तीन करन तीन जोग से सेवन नहीं करे उस मैं ब्राह्मण कहता हू ॥ २६ ॥ जिस प्रकार पद्म कमल कीचड में उत्पन्न हो पानी में वृद्धि पा कर पुनः कीचड पानी से लिप्त नहीं होता है ऐसे ही जो कामरूपी कर्दम से उत्पन्न हो भोग रूप पानी से वृद्धि पा पुनः कामभोग से लिप्त नहीं होवे हैं उन ही का मैं ब्राह्मन कहता हु ॥ २७ ॥ जो अचित्त निर्दोष अन्य के लिये बनाया आहार को प्राप्त कर उस में लोलुपता रहित भोगवने वाले सुवर्णादि द्रव्य के त्यागी कुटुम्बियों का तथा गृहस्थों के

---

१ द्रव्य से थोडा भाव से बहुत रत्नादि, २ द्रव्य से बहुत भाव से थोडा प्रस्तरादि ३ द्रव्य से भी बहुत भाव से भी बहुत रत्न कम्बलादि और ४ द्रव्य से ही थोडा तथा भाव से ही थोडा राख वगैरह

मूल

किसं दत अवाचिय मस सोणिय ॥ सुव्वय पत्त निव्वाण, त वय बूम माहण ॥ २२ ॥ तस पाणे वियाणेत्ता, सगहेण य थावरे ॥ जो न हिंसइ तिविहेण, त वय बूम माहण ॥२३॥ कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया ॥ मुस न

अर्थ

होते है तथा स्वजनादि के स्थानक में आकर प्रसन्न नहीं होते हैं और जो बीत हुई बात का शोच-पश्चात्ताप नहीं करते हैं तथा अन्य स्थान में व दीक्षा ग्रहण करने में खेदित नहीं होते हैं और तीर्थंकरों के वचन में तथा मार्ग में रमण करते हैं सदैव खुश रहते हैं उन ही को मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २० ॥ जिस प्रकार सुवर्ण को आग में तपाकर क्षारादि से धोकर उस का मैल दूरकर गेरु आदि औषध लगाने से शोभता है, वैसे ही जो आत्मा रूप सुवर्ण को तप रूप अग्नि में तपकर चारित्र रूप क्षार से धोकर रागद्वेष तथा सातों भय रहित हुये हैं वे मोक्ष रूप सुवर्ण समान महा अर्थ पाते हैं उन को मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २१ ॥ जिन्होंने इन्द्रियों का दमन करके द्वादश प्रकार का तप कर अपने शरीर का रक्त मांस सुखा कर शरीर को कृश बना दिया है सुव्रति निर्वाण प्राप्त करने योग्य बने हैं उन को मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २२ ॥ जो बेन्द्रिय आदि त्रस प्राणी को और पृथव्यादि स्थावर प्राणी को संक्षेप से तथा विस्तार से जानकर मन वचन काया के योग कर घात करे नहीं करावे नहीं और करते को

सूत्र

समभरेण समणो ॥ नाणेण उ मुणी होइ तवेण होइ तावसो ॥३१॥ कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ॥ वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ ३३ ॥ एए पउकरे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ ॥ सव्व कम्म विनिमुक्क, त वय बूम माहणं ॥ ३४ ॥ एव गुण समाउत्ता, जे भवति दिउत्तमा ॥ ते समत्था उ उद्धत्तु, परमप्पाण मव य ॥ ३५ ॥ एव तु ससए छिन्नो, विजयघोसे य माहणे ॥ समुदाय तय त तु,

अर्थ

है ज्ञानाभ्यास से मुनि होते हैं और तपश्चर्या करने से तपस्वी होते हैं ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणों की ब्रह्मचर्यादि क्रिया करने से ब्राह्मण होते है, दुःखी जीवों का रक्षण करने से क्षत्री होते है नीतीप्रमाने व्यपार करने से वैश्य होते हैं और कृषी कर्म तथा सेवा चाकरी करने से शूद्र होते हैं ॥ ३३ ॥ यह जो मैंने उक्त अहिंसादि कथन किया यह सर्वज्ञ तीर्थंकरों का प्रतिपादन किया हुआ है उक्त धर्माराधन कर के ही तीर्थंकर तथा केवलज्ञानी होते हैं और सर्व कर्मांश का क्षयकर मोक्ष प्राप्त करते हैं उन ही को मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ३४ ॥ हे विजयघोष ! यह पूर्वोक्त प्रकार अहिंसादि गुनकर सहित जो उत्तम ब्राह्मण होते हैं वे ही ब्राह्मण अपनी तथा अन्य की आत्मा का संसार समुद्र से उद्धार करने समर्थ होते हैं ॥ ३५ ॥ इस प्रकार धर्मोपदेश करके जयघोष नामक महाऋषिने विजय घोष ब्राह्मण के संशय का

सूत्र

आलोलुय मुहाजीवी, अणगारं अकिंचनं ॥ असंसत्त गिहत्थेसु, तं वयं बूम माहणं ॥ २८ ॥ जहित्ता पुव्व संजोगं, नाति संगेय बंधवे ॥ जो न सज्जइ भोगेसु, तं वयं बूम माहणं ॥२९॥ पसुबंधा सव्ववेया य, जट्ठं च पावकम्मुणा ॥ न तं तायंति दुस्सीलं, कम्माणि बलवंति ह ॥ ३० ॥ नवि मुंडिएण समणो ओंकारेण न बंभणो ॥ न मुणी रण्णवासेण कुसचीरेण तावसो ॥ ३१ ॥ समयाए समणो होइ

अर्थ

सम्बन्ध रहित होवे उसे मैं ब्राह्मन कहता हूं ॥ २८ ॥ जो पूर्वात्-संसार सम्बन्धी संयोग मात पिता स्त्री पुत्र भाईयों ज्ञातीजनों को छोडकर निकले, पुनः उन के भोग (जहर) में सज्ज (लुब्ध) न होवे उन को मैं ब्राह्मन कहता हूं ॥ २९ ॥ हे विजयघोष ! तेरे मान्यता से वेदों है वे सर्व पशुओं के वध [घात] के स्थापक हैं, तैसे ही यज्ञ का करना भी पाप कर्म के हेतु भूत है इस लिए यह दुराचार है सो आत्मा का त्राण शरण कदापि नहीं होता है परन्तु धर्मार्थ किया पाप सर्व कर्म का बन्धकर दुर्गति दाता होता है ॥ ३० ॥ हे विजय घोष ! मस्तक मुण्डित करने से साधु नहीं होते हैं, ॐकार के उच्चार से ब्राह्मण नहीं होते हैं वनवास करने से मुनि नहीं होते हैं और वल्कल के वस्त्र पहनने से तापस नहीं

सूत्र

निक्खमसू दिया ॥ मा भमिहिसि भयावट्टे घोरे ससार सागरे ॥ ४० ॥ उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोव लिप्पई ॥ भोगी भमइ ससारे ॥ अभोगी विप्प मुच्चई ॥ ४१ ॥ उल्लो सुक्को य दो छूढा, गोलया मट्टिया मया ॥ दो वि आवडिया कुड्डे, जो उल्लो सो तत्थ लग्गइ ॥ ४२ ॥ एव लग्गति दुम्मेहा, जे नरा काम लालसा ॥ विरत्ताओ न लग्गति, जहा से सुक्क गोलए ॥ ४३ ॥ एव से विजयघोसे जय

अर्थ

नहीं है परतु तू शीघ्रता से गृह कदाग्रह का त्याग कर दीक्षा धारन कर कि जिस से तू अनंत भ्रमन (परिभ्रम) वाले ससार समुद्र में परिभ्रमण करने से छूट जा गा ॥ ४० ॥ हे विप्र! कामभोग के सेवन से आत्मा कर्मों कर लिप्त होता है वह ससार में परिभ्रमण करता है और भोग रहित आत्मा कर्मों से निर्लेप होता है वह ससार से मुक्त होता है ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार आला और सूका दोनों मट्टी के गोले को भींत पे डालने से जो आला गोला होता है वह भींत को चोंट जाता है इस प्रकार जो दुष्ट बुद्धि कामभोग के लम्पटी जीव होते हैं वे पाप कर्मोपार्जन कर ससार रूपी भींत को चोंटे रहते हैं और जो सूका गोला होता है वह तत्काल खिसक पडता है ऐसे जो कामभोग से विरक्त होते हैं वे संसार रूपी भींत को चेंटते नहीं हैं परन्तु मोक्ष चले जाते हैं ॥४२ ४३॥ इस प्रकार श्रवण कर विजयघोष

जयघोस महामुर्णि ॥ ३६ ॥ तुट्ठे य विजयघोसे इण मुदाहु कयजली ॥ माहणत्त जहाभूय सुट्ठु मे उवदसिय ॥ ३७ ॥ तुब्भे जइया जन्नाण, तुब्भे वेयविऊ-विऊ ॥ जोइसगविऊ तुब्भे तुब्भे धम्माण पारगा ॥ ३८ ॥ तुब्भे समरया उद्धत्तु, परमप्पाण मेवय ॥ तमणुग्गह करेहम्ह, भिक्खेण भिक्खु उत्तमा ॥ ३९ ॥ न कज्ज मज्झ भिक्खेण, खिप्प

छेदन किया सशय का निवारन होने से विजय घोष ब्राह्मनने जयघोष मुनि के वचन सम्यमान कर हृदय में प्रदान किया -धारन किये इन जयघोष महामुनि के वचनों से विजय घोष ब्राह्मन सतुष्ट हुआ और दोनों हाथ जोडकर यों बोला-अहो मुनि ! जिस प्रकार ब्राह्मन के लक्षण होते हैं उस ही प्रकार आपने मुझे सत्य कहे-बहुत ही अच्छे कहे ॥ ३६-३७ ॥ अहो मुनि ! आप ही सचे यज्ञ के करने वाले हो आप ही सचे वेद के जानने वाले हो, आप ही ज्योतिष शास्त्र में प्रवीन हो और आप ही सत्य धर्म के पारगामी हो ॥ ३८ ॥ आप ही अपना आत्मा का तथा अन्य के आत्मा का उद्धार करने समर्थ हो इस लिये अहो सब भिक्षुओं में उत्तम भिक्षु ! आप हमारे यहां से भिक्षा ग्रहण कर हमारे पर उपकार करो ॥ ३९ ॥ तब जयघो[illegible]

॥ सामाचारी नामकं षड्विंशतितम मध्ययनम् ॥

सूत्र

सामायारिं पवक्खामि सव्व दुक्खविमोक्खणिं ॥ ज चरित्ताण निग्गथा, तिण्णा ससार सागर ॥१॥ पढमा आवस्सिया नाम, बिइया य निसीहिया ॥ आपुच्छणा य तइया, चउत्थी पडिपुच्छणा ॥ २ ॥ पचमा छदणा नाम, इच्छाकारो य छट्ठओ ॥ सत्तमो मिच्छकारो उ तहक्कारो य अट्ठमो ॥ ३ ॥ अब्भुट्ठाण च नवम, दसमी उवसपदा ॥ एसा दसगा साहूण, सामायारी पवेइया ॥ ४ ॥ गमणे आवस्सिय

अर्थ

पचीसवे अध्ययन में भाव ब्राह्मण के गुण का वर्णन किया, भाव ब्राह्मण साधु समाचारीवाले होवे हैं इस लिये छब्बीसवे अध्ययन में दश समाचारी कहते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि—हे जम्बू ! जिन समाचारी का समाचरन कर साधुओं ससार समुद्र से तीरे हैं वे सब दुःख से मुक्त करनेवाली दशविधि समाचारी मैं तुझे कहता हूं ॥ १ ॥ उन दश समाचारी के नाम—१ आवश्यकी, २ निषेधकी ३ आपृच्छना, ४ प्रतिपृच्छना, ५ छंदना, ६ इच्छाकार ७ मिच्छाकार, ८ तहत्तिकार, ९ अभ्युत्थना, और १० उपसम्पदा यह दश प्रकार की साधु की समाचारी जानना ॥ २-४ ॥ अब इन दशों का अर्थ कहते हैं—१ उपाश्रय आदि स्थान में रहे हुवे साधु को बाहिर जावे आवश्यकी २ शब्दोच्चार करना अर्थात्

सूत्र

घोसरस अतिए ॥ अणगारस्स निक्खतो, धम्म सोच्चा अणुत्तर ॥ ४४ ॥ खवित्ता पुव्वकम्माइ, सजमेण तवेण य ॥ जयघोस विजयघोसा, सिद्धि पत्ता अणुत्तरं ॥४५॥ त्तिबेमि ॥ जन्नइज्ज पचविस अज्झयण सम्मत्त ॥ २५ ॥ • • •

अर्थ

ब्राह्मणने जयघोष नामक महा ऋषि के पास अहिंसादि उत्तम धर्म (दीक्षा) अंगीकार किया ॥ ४४ ॥ फिर दोनों भाइयो सम्यक् प्रकार तप संयम का पालन स्पर्शन कर कर्मों का क्षय कर जयघोष विजय घोष दोनों ही मोक्ष पधारे; अनंत अनुत्तर सुख को प्राप्त किया यों सुधर्मा स्वामीने जम्बू स्वामी से कहा इति जयघोष विजयघोष का पचीसवा अध्ययन समाप्त हुवा ॥ २५ ॥ •

पडिलेहित्ता, वंदित्ता य गुरुं तओ ॥ ८ ॥ पुच्छिज्ज पंजलिउडो कि कायव्वं मए
इह ॥ इच्छं निओइउं भंते ! वेयावच्चे व सज्झाए ॥ ९ ॥ वेयावच्चे निउत्तेण,
कायव्व अगिलायओ ॥ सज्झाए वा निउत्तेण, सव्व दुक्खविमोक्खणे ॥ १० ॥

अर्थ

उपसम्पदा नामक समाचारी है उस का विशेष स्वरूप दर्शावे हुवे साधु का दिन का आचार रात्रि का आचार का सब कर्तव्य का संक्षेप में वर्णन करते हैं—दिन का चार भाग करना उसे चार प्रहर कहते हैं उस में प्रथम प्रहर है उस के भी चार भाग करना (सब दिन ३२ घडी का होता है उस का चौथा भाग आठ घडी का एक प्रहर गिना जाता है और उस का चौथा भाग दो घडी का मुहूर्त गिना जाता है अढाइ (२॥) घडी का घंटा होता है) इस लिये सूर्योदय से एक मुहूर्त दिन आवे उतने में पश्चाप-करण की प्रतिलेखना करना, फिर गुरुआदि को वंदना नमस्कार कर दोनों हाथ जोड पूछे कि—अहो भगवन् ! मैंने प्रतिलेखना तो की है अब मैं वैयावच्च और स्वाध्याय इन दोनों कार्य में से कौनसा काय करूं ? ॥ ८। ९ ॥ तब गुरु कहे कि—हे वत्स ! तुम वैयावच्च करो तो वह गुरु आज्ञा प्रमान कर किंचित ही खेदित नहीं होता हुवा उत्साह पूर्वक वैयावच्च करे, और जो गुरु स्वाध्याय करने की आज्ञा देवे तो सर्व दुःख से मुक्त करनेवाली स्वाध्याय-सज्झाय करे ॥ १० ॥ अब दिन के चारों भाग का

सूत्र

फुआ, ठाणे कुजा निसीहिय ॥ आपुच्छणा सय करण परकरणे पडिपुच्छणा ॥५॥ छंदणा दव्वआएणं, इच्छाकारोय सारण ॥ मिच्छाकाराय निंदाए, तहक्कारो पडिस्सुए ॥ ६ ॥ अब्भुट्ठाण गुरुपूया, अच्छणे उवसंपदा ॥ एवं दुपंच संजुत्ता, सामायारी पवेदिता ॥ ७ ॥ पुव्विल्लंमि चउब्भाए, आइच्चंमि समुट्ठिए ॥ भंडय

अर्थ

में अवश्य कार्य है उस के लिये जाता हूं २ उपाश्रय में पीछे प्रवेश करती वक्त निस्सीही २ अच्छाकार करना अर्थात् जिस कार्य के लिये गया था उस से निवर्ता हूं ३ अपने को जो कोई कार्य करना हो वह गुरु आदि को पूछकर करना ४ दूसरे साधु का काम करने का हो तो भी गुरुआदि जेष्ठ को पूछके करना ५ आहार प्रमुख जो कोई वस्तु लाया हो उस से गुरुआदि की आमंत्रणा करना ६ अपनी इच्छा जिस कार्य करने की हो वह गुरुआदि को दर्शानी गुरुआदि का सलाह लेनी तथा अन्य के पास किसी भी प्रकार का कार्य करना हो तो कहे कि-आप की इच्छा हो तो यह कार्य करना ७ किसी प्रकार का अयोग्य कार्य अपने से बना हो तो उस का पश्चाताप पूर्वक मिच्छा मे दुक्कडं देना अर्थात् यह कार्य मैंने खराब किया ८ गुरुआदि जेष्ठ जो वचन कहे—आज्ञा दे उसे शक्ति प्रमाण तथास्तु करना, ९ गुरुआदि जब आवे जावे तब खडा होना उन की सेवा भक्ति में तत्पर रहना और १० ज्ञानादि गुण की प्राप्ति के लिये गुरु के पास सदैव रहना तथा अन्य गच्छ के आचार्यादि के पास भी स्वेमत ज्ञानादि गुण ग्रहण करना यह पांच पांच अर्थात दश समाचारी तीर्थंकरने कही है ॥५-७॥ जो

पढिलेहित्ता, वंदित्ता य गुरुं तओ ॥ ८ ॥ पुच्छिज्ज पंजलिउडो किं कायव्वं मए इह ॥ इच्छं निओइउं भंते ! वेयावच्चे व सज्झाए ॥ ९ ॥ वेयावच्चे निउत्तेण, कायव्वं अगिलायओ ॥ सज्झाए वा निउत्तेण, सव्व दुक्खविमोक्खणे ॥ १० ॥

अर्थ

उपसम्पदा नामक समाचारी है उस का विशेष स्वरूप दर्शाते हुवे साधु का दिन का आचार रात्रि का आचार का सब कर्तव्य का संक्षेप में वर्णन करते हैं—दिन का चार भाग करना उसे चार प्रहर कहते हैं उस में प्रथम प्रहर है उस के भी चार भाग करना [सब दिन ३२ घडी का होता है उस का चौथा भाग आठ घडी का एक प्रहर गिना जाता है और उस का चौथा भाग दो घडी का मुहूर्त गिना जाता है अढाइ (२॥) घडी का पंग होता है) इस लिये सूर्योदय से एक मुहूर्त दिन आवे उतने में वस्त्राप-करण की प्रतिलेखना करना, फिर गुरुआदि को वंदना नमस्कार कर दोनों हाथ जोड पूछे कि—अहो भगवन् ! मैंने प्रतिलेखना तो की है अब मैं वैयावृत्य और स्वाध्याय इन दोनों कार्य में से कौनसा कार्य करूं ? ॥ ८९ ॥ तब गुरु कहे कि—हे वत्स ! तुम वैयावृत्य करो तो वह गुरु आज्ञा प्रमाण कर किंचित ही खेदित नहीं होता हुवा उत्साह पूर्वक वैयावृत्य करे, और जो गुरु स्वाध्याय करने की आज्ञा देवे तो सर्व दुःख से मुक्त करनेवाली स्वाध्याय सज्झाय करे ॥ १० ॥ अब दिन के चारों भाग का

सूत्र

कुम्मा, ठाणे कुम्मा निसीहिय ॥ आपुच्छणा सय करण परकरणे पडिपुच्छणा ॥५॥ छदणा दव्वजाएणं, इच्छाकारोय सारण ॥ मिच्छाकाराय निंदाए, तहक्कारो पडिस्सुए ॥ ६ ॥ अब्भुट्ठाण गुरुपूया, अच्छणे उवसंपदा ॥ एवं दुपच संजुत्ता, सामायारी पवेदिता ॥ ७ ॥ पुव्विल्लंमि चउब्भाए, आइच्चंमि समुट्ठिए ॥ भंडय

अर्थ

में अवश्य कार्य है उस के लिये जाता हूं २ उपाश्रय में पीछे प्रवेश करती वक्त निस्सीही २ छन्दाचार करना अर्थात् जिस कार्य के लिये गया था उस से निवर्ता हूं ३ अपन को जो कोइ कार्य करना हो वह गुरु आदि को पूछकर करना ४ दूसरे साधु का काम करने का हो तो भी गुरुआदि ज्येष्ठ को पूछके करना ५ आहार प्रमुख जो कोई वस्तु लाया हो उस से गुरुआदि की आमंत्रणा करना ६ अपनी इच्छा जिस कार्य करने की हो वह गुरुआदि को दर्शानी गुरुआदि का सलाह लेनी तथा अन्य के पास किसी भी प्रकार का कार्य करना हो तो कहे कि-आप की इच्छा हो तो यह कार्य करना ७ किसी प्रकार का अयोग्य कार्य अपने से बना हो तो उस का पश्चाताप पूर्वक मिच्छा मे दुक्कडं देना अर्थात् यह कार्य मैंने खराब किया ८ गुरुआदि ज्येष्ठ जो वचन कहे—आज्ञा दे उसे तहति प्रमाण तथास्तु करना, ९ गुरुआदि आप आवे जावे तब खडा होना उन की सेवा भक्ति में तत्पर रहना और १० ज्ञानादि गुन की प्राप्ति के लिये गुरु के पास सदैव रहना तथा अन्य गच्छ के आचार्यादि के पास भी सविनय ज्ञानादि गुण ग्रहण करना यह पांच पांच अर्थात् दश समाचारी तीर्थंकरने कही है ॥५-७॥ अब गुरुवी जो

सधरसेण, पक्खेण च दुअगुलं ॥ वड्ढए हायए वावि मासेणं चउरंगुलं ॥ १४ ॥

पूर्णिमा से हरेक महिने में कृष्ण प्रतिपदा [एकम] से सात दिन में एक अंगुल घटता है पंदरे दिन में दो अंगुल छाया घटती है और महिने में चार अंगुल छाया घटती है, यों घटते २ चेत सुदी पूर्णिमा को तीन पांव छाया की पोरपी होती है और आषाढ महिने में दो पांव छाया की पोरपी होती है फिर सूर्य का पलटा होता है इस लिये आषाढ सुदी पूर्णिमा से सात दिन में एक अंगुल छाया बढाना पंदरे दिन में दो अंगुल छाया बढाना और महिने में चार अंगुल छाया बढाना यों आश्विन सुदी पूर्णिमा को तीन पांव छाया हो जाती है और पोष सुदी पूर्णिमा को चार पांव छाया हो जाती है, इस प्रकार पांव से पोरपी का माप जानना और जो हाथ के वेंत से मापना हो तो दो वेंत का पांव होने से आधा पांव का वेंत होता है इस लिये सब हिसाब आधा गिनना अर्थात् आषाढ महिने में वेंत की एक वेंत पूरी छाया होने पर पोरपी दिन आता है, फिर सात दिन में आधा अंगुल, पदरे दिन में पूरा अंगुल और महिने में दो २ अंगुल छाया की वृद्धि करते २ पोष महिने तक दो वेंत छाया की पोरपी होती है फिर पक्ष में एक अंगुल और महिने में दो अंगुल घटते २ आषाढ महिने तक एक वेंत छाया की पोरपी होती है घोडियों की गिनती इस प्रकार होती है सूर्य की तरफ पृष्ठ कर खडा रहे जहां तक अपने शरीर की छाया पडे वहां लग के पांव के माप में सात की वृद्धि कर एकसो वीस का भाग देने से जितने आवे उतनी घडी दिन दो प्रहर तक आया और दो प्रहर बाद रहा जानना ॥ २४ ॥ अब दिन की तथा रात्रि की घडी के प्रमाण का यत्र देते हैं—

रिक्खस्स चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो ॥ तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिण भागेसु चउसु वि ॥ ११ ॥ पढम पोरिसि सज्झायं, बीयं झाण झियायई ॥ तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीइ सज्झाय ॥ १२ ॥ आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्पया ॥ चित्तासोएसु मासेसु, तिप्पया हवइ पोरिसी ॥ १३ ॥ अंगुल

संक्षेप में कहते हैं—दिन के प्रथम प्रहर में शास्त्र की स्वाध्याय करे दूसरे प्रहर में अर्थ चिन्तवन रूप ध्यान करे तीसरे प्रहर में गौचरी (आहार आदि की याचना) करे, और चौथे प्रहर में फिर स्वाध्याय करे ॥ १२ ॥ * प्रथम के दो प्रहर दिन आवे वहां तक उत्तर तरफ मुख रखकर और पीछे के दो प्रहर में दक्षिण दिशा तरफ मुख रखकर सूर्य के ताप [धूप] में खड़ा रहकर फिर दाहिन (जीमने) गोड़ का भाग आगे खड़ा कर घुटने पर तर्जनी अंगुली लगावे उस की छांय जमीन पर जिस स्थान पर वहां से पांव की छांय को मापे आषाढ महिने में दो पांव प्रथम की और पीछे की छाया हो तब प्रहर दिन आया अथवा रहा जानना पोष महिने में चार पांव छाया आवे तथा रहे तब प्रहर दिन आया अथवा रहा मानना और चैत तथा अश्विन महिने में तीन पांव छांया हो तब प्रहर दिन आया तथा रहा मानना ॥ १३ ॥ अब बाकी के बीच के आठ महिने में प्रहरसी का प्रमाण कहते हैं पोष शुक्ल

* इन चारों प्रहर के मध्य में वैयावच्च करने का काम होवे तो सब काम छोड़ प्रथम उस करे. यह कथन नवमी गाथा के अनुसार से कहा है

सूत्र

रूप

रात्रिकी महरसी पांव ममान	अपाढ	श्रावण	भाद्रव	आश्विन	कार्तिक	मृगशर	पोप	महा	फाल्गुन	चैत	वैशाख	जेष्ठ
	पां अं	पां अं	पां अं	पां अं	पां अं	पां अं	पां अं	पां अं	पां अं,	पां अं	पां अं	पां अं
कृष्ण सप्तमी	२ ९	२ ७	३ १	३-६	३ २	४ ३	४ ७	४ २	४ ३	३ ११	३-७	३ २
अमावस्या	२ ८	२-८	३-२	३ ६	३ १	४ ४	४ ८	४ ८	४ २	३ १०	३ ६	३
शुक्ल सप्तमी	२-७	२ २	३-३	३-७	३ ११	४ ५	४ ?	४-७	४ १	३ २	३ ५	२ ११
पूर्णिमा	२ ६	२ १०	३ ४	३-८	४	४ ३	४ १०	४ ६	४	३ ८	३ ४	२ १०

सूत्र

आसाढ बहुल पक्खे, भद्दवए कत्तिएय पोसे य ॥ फग्गुण वाइसाहेसु य, बोद्धव्वा-ओमरत्ताओ ॥ १५ ॥ जंट्ठामूले आसाढ सावणे, छहिं अगुलेहिं पडिलेहा ॥ अट्ठहिं

अर्थ

अब कौन से महिने में तिथी घटती तथा वृद्धिपाती है सो कहते हैं—१ अषाढ २ भाद्रव, ३ कार्तिक ४ पोष, ५ फाल्गुन, और ६ वैशाख इन छ महिने के कृष्ण पक्ष में तीथी घटती है, अर्थात् यह ६ महिने २९ दिन के होते हैं इस सिवाय—१ श्रावण, २ आश्विन ३ मृगशर ४ महा ५ चैत, और ६ जेष्ट, यह ६ महीने पूर्ण ३० दिन के होते हैं अर्थात् एक महिना गुनतीसा और एक महीना तीसा होता है ॥ १५ ॥ अब पौन पोरषी का प्रमाण बताते हैं—१ जेष्ट, २ अषाढ और ३ श्रावण इन तीन महिने का जो महरसी का प्रमाण ऊपर कहा है उन पांव पर छ अंगुल अधिक करने से पौन पोरषी का

है—जिस काल में जो नक्षत्र रात्रि को पूर्ण करते हों उन का आकाश में चार भाग करना जब नक्षत्र आकाश में चौथे भाग में आवे तब प्रहर रात्री आई जानना आकाश के मध्य में आवे तब आधी रात्रि आई जानना तीसरे भाग में जावे तब प्रहर रात्रि रही जानना और उस नक्षत्र के अस्त होने से रात्रि पूर्ण होती है अब जो नक्षत्र जिस २ महीने की रात्रि को पूर्ण करते हैं उन के नाम चंद्र प्रज्ञप्ति सूत्र अनुसार कहते हैं—१ श्रावण महीने की प्रतिपदा से चवदह दिन तक उत्तराषाढा नक्षत्र, फिर सात दिन अभिजित नक्षत्र, फिर आठ दिन धनिष्ठा नक्षत्र और श्रवण शुक्ल पूर्णिमा को धनिष्ठा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है २ भाद्रव प्रतिपदा से १४ दिन धनिष्ठा सात दिन शतभिषा, आठ दिन पूर्व भाद्रपद और पूर्णिमा के दिन उत्तर भाद्रपद नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ३ आश्विन महिने की प्रतिपदा से चौदह दिन तक उत्तराभाद्रपद, पन्द्रे दिन रेवती, और पूर्णिमा के दिन अश्विनी नक्षत्र रात्री पूर्ण करता है ४ कार्तिक महिने की प्रतिपदा से १४ दिन अश्विनी, १५ दिन भरनी, और पूर्णिमा के दिन कृत्तिका नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ५ मृगशिर महिने की प्रतिपदा से १४ दिन कृत्तिका, १५ दिन रोहिणी और पूर्णिमा के दिन मृगशिर नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ६ पौष महिने की प्रतिपदा के १४ दिन मृगशिर आठ दिन आर्द्रा, सात दिन पुनर्वसु और पूर्णिमा को पुष्य नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ७ महा महिने की प्रतिपदा से १४ दिन तक पुष्य नक्षत्र, १५ दिन अश्लेषा नक्षत्र, और पूर्णिमा के दिन मघा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ८ फाल्गुन महिने की प्रतिपदा से १४ दिन मघा,

मूल

बीयतयम्मि, तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥ १६ ॥ रत्तिं पि चउरो भागे, कुज्जा भिक्खू वियक्खणो ॥ तओ उत्तरगुणे कुज्जा राइभाएसु चउसुवि ॥ १७ ॥ पढम पोरिसि सज्झायं, बीतिय झाण झियायई ॥ तइयाए निद्दमोक्खंतु चउत्थी भुज्जो वि सज्झाय ॥१८॥ ज नेइ जयारत्तिं, नक्खत्त तम्मि नभचउब्भाए॥सच्चे वि

अर्थ

प्रमाण होता है वैसे ही-१ भाद्रव, २ आश्विन और कार्तिक इन तीन महिने में उक्त जो पोरपी का प्रमाण कहा है उस पर आठ अंगुल अधिक करने से पौन पोरपी का प्रमाण होता है, वैसे ही -१ मृगशर २ पोष, और ३ महा इन तीन महीने का पोरपी का जो ऊपर प्रमाण कहा है उस पर दश अंगुल की वृद्धि करने से पौन पोरपी का प्रमाण होता है. वैसे ही—१फाल्गुन २ चैत और ३ वैशाख इन तीन महीने में जो पोरपी की छाया का प्रमाण कहा है उस पर आठ अंगुल वृद्धि करने से पौन पोरपी का प्रमाण होता है, इस प्रकार हरेक महिने में प्रथम पांवों का जो प्रमाण कहा है उस पर उक्त प्रमाण अंगुल की वृद्धि करने से पौन पोरसी का प्रमाण होता है ॥ पोरसी दिन आवे तब पात्र की प्रति लेखना करना ॥ यह दिन का कर्तव्य संक्षेप में कहा ॥ १६ ॥ अब रात्रि का कर्तव्य कहते हैं ॥ विचक्षण साधु रात्रि के भी चार भाग कर फिर उन चारों भागों में पृथकर उत्तर गुण का कर्तव्य करे ॥ १७ ॥ रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे दूसरे प्रहर में ध्यान धरे तीसरे प्रहर में निद्रा मुक्त होवे, और चौथे प्रहर में पुनःस्वाध्याय करे ॥ १८ ॥ अब रात्रि का पोरसी का मान किस प्रकार जानना सो कहते

है—जिस काल में जो नक्षत्र रात्रि को पूर्ण करते हों उन का आकाश में चार भाग करना यह नक्षत्र आकाश में पाये भाग में आवे तब प्रहर रात्री आइ मानना आकाश के मध्य में आवे तब आधी रात्रि आइ जानना तीसरे भाग में आवे तब प्रहर रात्रि रही जानना और उस नक्षत्र के अस्त होने से रात्रि पूर्ण होती है अब जो नक्षत्र जिस २ महीने की रात्रि को पूर्ण करते हैं उन के नाम चंद्र प्रज्ञप्ति सूत्र अनुसार कहते हैं—१ श्रावण महिने की प्रतिपदा से चउदह दिन तक उत्तराषाढा नक्षत्र, फिर सात दिन अभीच नक्षत्र, फिर आठ दिन धनिष्ठा नक्षत्र और श्रवण शुक्ल पूर्णिमा को धनिष्ठा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है २ भाद्रव प्रतिपदा से १४ दिन धनिष्ठा, सात दिन शतभिषा, आठ दिन पूर्व भाद्रपद और पूर्णिमा के दिन उत्तर भाद्रपद नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ३ आश्विन महिने की प्रतिपदा से चौदह दिन तक उत्तराभाद्रपद, पन्द्रे दिन रेवती, और पूर्णिमा के दिन अश्विनी नक्षत्र रात्री पूर्ण करता है ४ कार्तिक महिने की प्रतिपदा से १४ दिन अश्विनी, १५ दिन भरणी, और पूर्णिमा के दिन कृत्तिका नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ५ मृगशिर महिने की प्रतिपदा से १४ दिन कृत्तिका, १५ दिन रोहिणी और पूर्णिमा के दिन मृगशिर नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ६ पोष महिने की प्रतिपदा से १४ दिन मृगशिर, आठ दिन आर्द्रा, सात दिन पुनर्वसु और पूर्णिमा को पुष्य नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ७ महा महिने की प्रतिपदा से १४ दिन तक पुष्य नक्षत्र, १५ दिन अश्लेषा नक्षत्र, और पूर्णिमा के दिन मघा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है. ८ फाल्गुन महिने की प्रतिपदा से १४ दिन मघा,

मूल

धीपतयंमि, तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥ १६ ॥ रत्तिं पि चउरो भागे, कुज्जा भिक्खू वियक्खणो ॥ तओ उत्तरगुणे कुज्जा राइभाएसु चउसुवि ॥ १७ ॥ पढम पोरिसि सज्झायं, बीतिय झाण झियायई ॥ तइयाए निद्दमोक्खतु चउत्थी भुज्जो वि सज्झाय ॥१८॥ ज नेइ जयारत्तिं, नक्खत्त तमि नभचउब्भाए॥सपत्ते वि

अर्थ

प्रमान होता है वैसे ही—१ भाद्रव, २ आश्विन और कार्तिक इन तीन महीने में उक्त जो पोरषी का प्रमान कहा है उस पर आठ अंगुल अधिक बढाने से पौन पोरषी का प्रमान होता है, वैसे ही—१ मृगशर २ पोष, और ३ महा इन तीन महीने का पोरषी का जो ऊपर प्रमान कहा है उस पर दश अंगुल की वृद्धि करने से पौन पोरषी का प्रमान होता है वैसे ही—१फाल्गुन २ चैत्र और ३ वैशाख इन तीन महीने में जो पोरषी की छाया का प्रमान कहा है उस पर आठ अंगुल वृद्धि करने से पौन पोरषी का प्रमान होता है, इस प्रकार हरेक महिने में प्रथम पोरषी का जो प्रमाण कहा है उस पर उक्त प्रमाने अंगुल की वृद्धि करने से पौन पोरसी का प्रमान होता है ॥ पोरसी दिन आवे तो पात्र की प्रति लेखना करना ॥ यह दिन का कर्तव्य संक्षेप में कहा ॥ १६ ॥ अब रात्रि का कर्तव्य कहते हैं ॥ विचक्षण साधु रात्रि के भी चार भाग कर फिर उन चारों भागों में पृथकर उत्तर गुन का कर्तव्य करे ॥ १७ ॥ रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे दूसरे प्रहर में ध्यान धरे तीसरे प्रहर में निद्रा मुक्त होवे, और चौथे प्रहर में न स्वाध्याय करे ॥ १८ ॥ अब रात्रि का पोरसी का मान किस प्रकार जानना सो कहते

भायणं पडिलेहए ॥ २२ ॥ मुहपत्तिं पडिलेहित्ता पडिलेहिज्ज गोच्छगं ॥ गोच्छग लइयगुलिओ, वत्थाइ पडिलेहए ॥ २३ ॥ उड्ढं थिरं अतुरियं, पुव्वं ता वत्थ मेव पडिलेहे ॥ तो बिइयं पप्फोडे, तइयं च पुणो पमज्जिज्ज ॥ २४ ॥ अणच्चाविय

अर्थ

काल से निवृत्ति पाकर पोरषी के चौथे भाग में गुरु को वंदना करके सर्व दुःख से मुक्त करनेवाली स्वाध्याय करे ॥ २२ ॥ पोरषी के चौथे भाग में पोन पौरषी निवृते बाद गुरु को नमस्कार करके स्वाध्याय के काल से निवृत्त हो पात्रादि भाजन की प्रतिलेखना करे ॥ २३ ॥ अब वस्त्र की पडिलेहना करने की विधी कहते हैं—सब पडिलेहना के पचीस प्रकार कहे हैं उस में १२ तो प्रशस्त (अच्छे) हैं और तेरह अप्रशस्त (खराब) हैं जिस में से प्रथम बारा प्रशस्त पडिलेहना कहते हैं—१ जमीन से वस्त्र ऊंचा रखे, २ मजबूत पकडे, ३ शीघ्रता नहीं करे ४ आदि से अन्त तक वस्त्रादि का सर्व विभाग सूक्ष्म दृष्टि से देखे यह प्रथम चार पडिलेहना दृष्टी से देखने की कही जो दृष्टी देखते जीव की शंका पडे तो—५ वस्त्र को थोडासा खंखेरे (झटके) (यह दूसरी खंखेरने की पडिलेहना) जो खंखेरते भी जीव दूर न होवे तो ६ गुच्छकादि से वस्त्रादि का प्रमार्जे [यह तीसरी] यह पडिलेहना प्रशस्त जानना ॥ २४ ॥ और भी छ प्रशस्त पडिलेहना कहते हैं—७ वस्त्र को तथा शरीर को नचावे नहीं ८ वस्त्र को मरोडे नहीं, ९ वस्त्रादि कुछ भी बिना पडिलेहना नहीं रखे, १० वस्त्रादि का ऊपर छप्परादि से नीचे

रमज्जा, सज्झाय पओसकालम्मि ॥ १९ ॥ तम्मेव य नक्खत्ते, गयण चउब्भाग साय सेसम्मि ॥ वेरत्तिय पि कालं पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा ॥ २० ॥ पुव्विल्लम्मि चउब्भाए पडिलेहित्ताण भंडय ॥ गुरु वंदित्तु सज्झाय, कुज्जा दुक्खविमोक्खण ॥ २१ ॥ पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरु ॥ अपडिक्कमित्ता कालस्स,

१५ दिन पूर्वाफाल्गुनी, और पूर्णिमा को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ९ चैत्र महिने की प्रतिपदा से १४ दिन उत्तराफाल्गुनी १५ दिन हस्त और पूर्णिमा के दिन चित्रा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है १० वैशाख महिने की प्रतिपदा से १४ दिन चित्रा, १५ दिन स्वाति और पूर्णिमा को विशाखा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है ११ जेष्ठ महिने की प्रतिपदा से १४ दिन विशाखा, १५ दिन अनुराधा और पूर्णिमा को जेष्ठा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है और १२ असाढ महिने की प्रतिपदा से १४ दिन जेष्ठा नक्षत्र, ७ दिन मूल नक्षत्र ८ दिन पूर्वाषाढा और पूर्णिमा को उत्तराषाढा नक्षत्र रात्रि पूर्ण करता है यों चार महिने में रात्रि का प्रमाण जानना ॥१९॥ और उक्त नक्षत्रों आकाश के तीन भाग पूर्ण कर चौथा भाग में प्रवर्तते तब प्रहर रात्रि रहे और उसके ही चौथे भाग में आधा यह दो घडी रात्रि रही जानना उस काल की प्रति लेखना कर साधु प्रतिक्रमणादि क्रिया करे ॥२०॥ अब दिन का कर्तव्य विस्तार से कहते हैं—दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चौथे भाग में (सूर्योदय से दो घडी तक) वस्त्रादि उपकरणों की प्रति लेखना करे फिर गुरु महाराज को वंदना नमस्कार करे स्वाध्याय करे ॥ २१ ॥ पोन पोरसी हुवे बाद स्वाध्याय के

सूत्र

मुणा ॥ कुणइ पमाणि पमाय, साकिय गणणोयग कुज्जा ॥ २७ ॥ अणूणाइरित्त पडिलेहा, अविवच्चासा तहेवय ॥ पढम पय पसत्थ, सेसाणिय अप्प सत्थाणि

अर्थ

रखकर पडिलेहना करे (६) एक मदीसा-दोनों घुटने दोनों हाथ के मध्य रख पडिलेहना करे, यह छ ही प्रकार की पडिलेहना अप्रशस्त (खराब) कहा है ॥ २७ ॥ और भी सात प्रकार की अप्रशस्त पडिलेहना कहते हैं-१ वस्त्र मजबूत नहीं पकडे ८ वस्त्र लम्बा रखकर पडिलेहना करे, ९ वस्त्र को धरती के साथ रगडे १० एक ही वक्त में सब वस्त्र दृष्टि से देखे ११ पडिलेहना करते वस्त्र को तथा शरीर को हलावे १२ पांच प्रकार के प्रमाद सहित पडिलेहना करे और १३ बारा प्रकार की जो प्रशस्त प्रतिलेहना कही है उस की गिनती करते हुए भूले यह तेरे प्रकार की अप्रशस्त प्रतिलेखना जानना यों पूर्वोक्त १२ प्रशस्त और १३ अप्रशस्त दोनों मिलकर २५ प्रकार की पडिलेहना जानना ॥ २७ ॥ अप डिलेहना के आठ भांग कहते हैं-पडिलेहना की विधी-१ कमी नहीं करे, ज्यादा नहीं करे विपरीत नहीं करे २ कमी नहीं करे ज्यादा नहीं करे परंतु विपरीत करे, ३ कमी करे ज्यादा करे परंतु विपरीत नहीं करे, ४ कमी नहीं करे ज्यादा करे और विपरीत करे, ५ कमी करे ज्यादा नहीं करे, विपरीत नहीं करे ६ कमी करे ज्यादा नहीं करे विपरीत करे ७ कमी करे, ज्यादा करे, विपरीत नहीं करे और ८ कमी करे, ज्यादा करे, विपरीत करे इन आठ भांगों में प्रथम भांगा प्रशस्त (अच्छा) बाकी सात भांगे

अयलिपं, अणाणुयविममोसालि ॥ छप्पुरिमा नव पक्खोडा, पाणी पाभिविसोहण ॥ २५ ॥ आरभडा स दा वज्जेयव्वा य मोसली तइया ॥ पप्फोडणे चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठी ॥ २६ ॥ पसिढिल पलंबलोला, एगा मोसा अणेग रूव

नवीन न और ते उा मीत दि स लगावे नहीं ११ वस्त्र का झटकारे नहीं और १२ वस्त्रादि में मो और ऐसी भाव वो उस के पानी ऊपर ग्रहण कर प्राणी की विराधी पश्चात में परिठाय यों १२ प्रकार पडिलेहना मानना ॥ २५ ॥ ❀ अ ० पडिलेहना अप्रशस्त कहते हैं—१ आरभडा सो विपरीत तथा शीघ्रता से पडिलेहना कर, २ समादा सो वस्त्र को मरोडे मशले ३ मोसली सो वस्त्र को ऊंचा नीचा तिरछा लगावे ४ पफोडा-वस्त्र को झटके ५ विखित्ता सो-वस्त्र को बिखेर कर रखे तथा पडिलेहना बिना पडिलेहना बेस रखे ६ पांच वेदी का-(१) ऊंची वेदीका-एक घुटने पर दोनों हाथ रखकर पडिलेहना करे (२) नीची वेदीका-दोनों हाथ घुटने के नीचे रखकर पडिलेहना करे, (३) तिरछी वेदी का एक घुटने के दोनों पास हाथ रखकर पडिलेहना करे, (४) दो पास वेदीका-घुटने के बीच में दोनों हाथ

❀ जिस के स्थान नव पखोडा का अर्थ ऐसा भी है कि-किसी भी पक्ष के तीन विभाग कर उस में का एकक विभाग ऊपर मध्य और नीचे ऐसे तीनों स्थान में रखना तीन श्री नव पखोडे होते हैं और कितनीक प्रतों में नव खोडा पाठ है उस का अर्थ झटके नहीं ऐसा है

मूल

वेयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ॥ तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए ॥ ३३ ॥ निग्गंथो धिइमंतो, निग्गंथी वि न करेज्ज छहिं चेव ॥ ठाणेहि उ इमेहिं, अणतिक्कमणाइ से होइ ॥ ३४ ॥ आयंके उवसग्गे, तितिक्खया बंभचेरगुत्ती सु

अर्थ

॥ ३२ ॥ अब छ कारन आहार करने के कहते हैं—१ क्षुधा वेदनी शमाने के लिये २ गुरु आदि की वैयावच्च करने के लिये ३ ईर्या पंथ शोधन करने अर्थात् आहार बिना आंख में अंधारी आती हो तो ४ संयम का निर्वाह काल पालन करने ५ अपने प्राण की तथा छ काय प्राणीयों की रक्षा करने के लिये और ६ धर्म ध्यान का चिन्तवन करने अर्थात् आहार बिना चित्त व्याकुल हो धर्म ध्यान में विघ्न पडता हो तो आहार करे इन छ कारन में का कोइ भी कारन हुवे आहार करे ॥ ३३ ॥ उक्त छ कारन में का कोइ भी कारन उत्पन्न हुवे जो साधु साध्वी आहार करते हैं वे तीर्थंकर की आज्ञा का उल्लंघन करने वाले नहीं होते हैं अर्थात् जिनाज्ञा के आराधक होते हैं ॥ ३४ ॥ अब छे कारन से आहार का त्याग कर सो कहते हैं—१ रोग प्राप्त

यार दूसरे आरे में दो दिन बाद, तीसरे आरे में एक दिन बाद, चौथे आरे में दिन में एक वक्त पांचवे आरे में दो वक्त छठे आरे में बेमात्रा आहार की इच्छा होती है, इस अपेक्षा से चौथे आरे में दो प्रहर दिन के बाद ही गृहस्थ के घरों में आहार निष्पन्न होने का समय है सदैव के लिए तो संपूर्ण दिवस उष्णता तथा कालकाल समाचर अर्थात् जिस ग्रामादि में जब भिक्षा का काल हो तब भिक्षा ग्रहण करने जावे.

सूत्र

॥ २८ ॥ पडिलेहणं कुणंतो, मिहोकहं कुणइ जणवय कहं वा ॥ देइ व पच्चक्खाणं वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥ २९ ॥ पुढवी आउक्काए तेऊ वाऊ वणस्सइ तसाण ॥ पडिलेहणा पमत्तो छण्हंपि विराहओ होइ ॥ ३० ॥ पुढवी आउक्काए, तेऊ वाऊ वणस्सइ तसाणं ॥ पडिलेहणा आउत्तो छण्हं संरक्खओ होइ ॥ ३१ ॥ तइयाए पोरिसीए भत्तपाणं गवेसए ॥ छण्हं अन्नयराए कारणंमि उवट्ठिए ॥ ३२ ॥

अर्थ

जानना ॥ २८ ॥ अब पडिलेहना करते पांच काम करना नहीं—१ परस्पर वार्तालाप करे नहीं २ चारों विकथा करे नहीं, ३ प्रत्याख्यान करावे नहीं ४ वाचना पृच्छना परियटना अनुप्रेक्षा धर्म कथा पांचों प्रकार की स्वाध्याय आप करे नहीं और पांचों स्वाध्याय अन्य के पास करावे नहीं ॥ २९ ॥ उक्त पांच प्रकार से प्रमाद करता हुवा जो पडिलेहना करेगा वह पृथ्वी २ पानी, ३ अग्नि, ४ वायु ५ वनस्पति और ६ त्रस इन छ ही काय जीवों की विराधना करनेवाला होगा ॥ ३० ॥ और जो उपयोग सहित पडिलेहना करेगा तो—१ पृथ्वी, २ पानी ३ अग्नि, ४ वायु, ५ वनस्पति और ६ त्रस इन छ ही काय जीवों की यत्ना करनेवाला होवे यह पडिलेहना का अधिकार कहा ॥ ३१ ॥ अब गोचरी का अधिकार कहते हैं—आगे कहे ये छ कारन में से कोई भी कारन प्राप्त हुवे साधु दिन के तीसरे प्रहर में अर्थात् दो प्रहर दिन आए बाद * गोचरी करने के लिये सावधान होवे

* यहां तीसरा प्रहर में गोचरी का कहा सो चौथे आरा आश्रित जानना क्यों कि चौथे आरे में तीन दिन के

वेयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ॥ तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए ॥ ३३ ॥ निग्गंथो धिइमंतो, निग्गंथी वि न करेज्ज छहिं चेव ॥ ठाणेहिं उ इमेहिं, अणतिक्कमणाइ से होइ ॥ ३४ ॥ आयंके उवसग्गे तितिक्खया बंभचेरगुत्ती सु

॥ ३२ ॥ अब छ कारन आहार करने के कहते हैं—१ क्षुधा वेदनी शमाने के लिये २ गुरु आदि की वैयावच्च करने के लिये ३ ईर्या पथ शोधन करने अर्थात् आहार बिना आंख में अंधारी आती हो तो ४ संयम का निर्वाह करने ५ अपने प्राण की तथा छ काय प्राणीयों की रक्षा करने के लिये और ६ धर्म ध्यान का चिन्तवन करने अर्थात् आहार बिना चित्त व्याकुल हो धर्म ध्यान में विघ्न पड़ता हो तो आहार करे इन छ कारन में का कोई भी कारन हुवे आहार करे ॥ ३३ ॥ उक्त छ कारन में का कोई भी कारन उत्पन्न हुवे जो साधु साध्वी आहार करते हैं वे तीर्थंकर की आज्ञा का उल्लंघन करने वाले नहीं होते हैं अर्थात् जिनाज्ञा के आराधक होते हैं ॥ ३४ ॥ अब छे कारन से आहार का त्याग कर सो कहते हैं—१ रोग प्राप्त

यार दूसरे आरे में दो दिन बाद, तीसरे आरे में एक दिन बाद, चौथे आरे में दिन में एक वक्त पांचवे आरे में दो वक्त छठे आरे में व मात्रा आहार की इच्छा होती है, इस अपेक्षा से चौथे आरे में तीसरे प्रहर दिन के बाद ही गृहस्थ के घरों में आहार निष्पन्न होने का समय है, सवेरे के लिये तो संपूर्ण दिवस... तथा कालंकाल समाचर अर्थात् जिस ग्रामादि में जब भिक्षा का काल हो तब भिक्षा ग्रहण करने जावे.

सूत्र

पाणिदया तवहेउ, सरीर वोच्छेयणट्ठाए ॥ ३५ ॥ अवसेसं भंडगं, गिज्झ चक्खुसा पडिलेहए ॥ परमद्ध जोयणाओ विहारं विहरे मुणी ॥ ३६ ॥ चउत्थीए पोरिसीए निक्खिवित्ताण भायणं ॥ सज्झायं तओ कुज्जा सव्वभाव विभावणं ॥ ३७ ॥ पोरिसीए चउब्भाए वंदित्ताण तओ गुरु ॥ पडिक्कमित्ता कालस्स सज्ज

अर्थ

होवे सो तपश्चर्या मौषधी है २ सर्पादि पशुओं तथा देवादि का उपसर्ग उत्पन्न होवे तब आहार छोडे ३ मन में रहन हर होवे ४ शीघ्र ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने इन्द्रिय जय करने का महान उपाय तपश्चर्या है ४ प्राणी जीवों की रक्षार्थ आहार निहारादि अर्थ गमना गमन करने की हिंसा छोडना ५ तपश्चर्या करने के लिये और ६ शरीर का परित्याग (संथारा) करने इन छे कारन आहार का त्याग करता हुआ साधु जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है ॥ ३५ ॥ जो कभी साधु का आहार पानी साथ लेकर विहार करना होतो सब भंडोपकरन की पडिलेहणा कर उन सब को अपने साथ में ले उठाए आधा योजन (दो कोस) पर्यन्त जा सकता है ॥ ३६ ॥ आहार किये बाद चौथी पहरसी में भंडोपकरण पात्रादि को अच्छी तरह बांधकर अलग रख और फिर सब पदार्थ भाव का प्रकाशने वाली स्वाध्याय करें ॥ ३७ ॥ चौथी पहरसी के चौथे भाग में (दो घडी दिन रहे तब) स्वाध्याय से निवृत्त कर अपने गुरु आदि को वंदना

सूत्र

तु पडिलेहए ॥ ३८ ॥ पासवणुच्चारभूमिं च पडिलेहिज्ज जयं जई ॥ काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्व दुक्खविमोक्खणं ॥ ३९ ॥ देवसियं च अतीचारं, चिंतिज्जा

अर्थ

नमस्कार करके शयन करने का मकान शय्या-पाटादि बिछानेके वस्त्रादि की पडिलेहणा करे ॥ ३८ ॥ फिर उच्चार - बडी नीत परिठाने की प्रस्रवण-लघुनीत परिठाने की भूमी की यत्ना से पडिले हणा करे फिर काउत्सर्ग करे-अर्थात्-प्रथम नमस्कार मंत्र कह तिक्खुत्ता से वंदना कर इर्यावही तस्स उत्तरी का पाठकह कायोत्सर्ग करे कायुत्सर्ग में इर्यावही की चिंतवना करे कायुत्सर्ग पार लोगस्स कह फिर प्रति लेखना में जो दोष लगा हो उस का मिथ्या दुष्कृत्यदे फिर एक सिद्ध भगवंत को, दूसरा अरिहंत का, नमोत्थुणं देवे तीसरा 'मम धम्म गुरु धम्मायरि का होना" इस मुजब प्रथम क्षेम प्रश्न करके फिर गुरु आदि पास प्रथम आवश्यक की आज्ञा ग्रहण कर, इच्छामिणे भंते, नवकार, करेमी भंते इच्छामी ठामी; तस्स उत्तरी का पाठ कहकर सर्व दुःख का क्षय करने वाला कायुत्सर्ग करे ॥ ३९ ॥ कायुत्सर्ग में दिन सम्बन्धी ज्ञान में दर्शन में चारित्र में जो कोई अतिचार लगा हो उस की चिंतवना अनुक्रम से करे अर्थात्—१४ ज्ञान के ५ सम्यक्त्व के २५ भावना पांच महाव्रत की, २ रात्रि भोजन के, ४ इर्या समिति के २ भाषा समिती के ४७ एषणा समिती के, २ आदान निक्षेपना समिती के, १० परिठावणिया समिती के, ३ मनगुप्ति के, ३ वचन गुप्ति के, ३ काया गुप्ति के

सूत्र

अणुपुव्वसो ॥ नाणमि दंसणे चेव चरित्तम्मि तहेव य ॥ ४० ॥ पारिय काउस्सग्गो, वदित्ताण तओ गुरु ॥ देसिय तु अतिचारं, आलोएज्ज जहक्कम ॥ ४१ ॥ पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वदित्ताण तओ गुरु ॥ काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्व दुक्खविमोक्खण ॥ ४२ ॥ पारिय काउस्सग्गो वदित्ताण तओ गुरु ॥ थुइमगल च

अर्थ

मार पांच संलेखना के यों सब १२५ अतिचार की कायुत्सग में चिंतवना करे ॥ ४० ॥ कायुत्सर्ग पारकर दूसरे आवश्यक की आज्ञा से लोगस्स करे, फिर तीसरे आवश्यक की आज्ञा से गुरु आदि को इच्छामी खमासमणा की पाटी से बारे आवृत रूप वदना करे फिर चौथे आवश्यक की आज्ञा ग्रहण करे दिन का लगे हुवे उक्त अतिचारों की अनुक्रम से आलोचना करे ॥ ४१ ॥ सब अतिचारों का प्रतिक्रमण कर मिथ्या दुष्कृत्य देकर नि शल्य होवे श्रमणसूत्र नमो चउवीसा इच्छामी खमा समणा पाचों पद को वंदना वगैरह करे फिर गुरु आदि का वदना कर पांचवे आवश्यक की आज्ञा से नवकार करेमी भते इच्छामीठामी तस्सुत्तरी करके सर्व दुःख मुक्त करता चार लोगस्स का कायुत्सर्ग करे यह पांचवा आवश्यक हुवा ॥ ४२ ॥ फिर कायुत्सर्ग पारकर लोगस्स कहकर गुरु वंदन करे अर्थात इच्छामी खमासमणा से ४ द्वादशावृत वंदना करे फिर प्रत्याख्यान करे यह छ ही आवश्यक पूर्ण हुवे इस प्रकार छ ही आवश्यक पूर्ण हुवे बाद स्तुति मंगल करे अर्थात् सिद्ध का और अरिहंत को

सूत्र

काऊण, काल संपडिलेहए ॥ ४३ ॥ पढम पोरिसि सज्झाय बितियं झाणं झियायई तइयाए निद्दमोक्खं तु, सज्झायं तु चउत्थिए ॥ ४४ ॥ पोरिसीए चउत्थीए, कालं तु पडिलेहए ॥ सज्झायं तु तओ कुज्जा, अबोहतो असंजए ॥ ४५ ॥ पोरिसीए चउब्भाए वंदिऊण तओ गुरु॥ पडिक्कमित्तु कालस्स, कालं तु पडिलेहए ॥ ४६ ॥ आगए कायवोस्सग्गे सव्व दुक्खविमोक्खणे ॥ काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्व

अर्थ

और धर्माचार्य को नमोत्थुणं देवे फिर स्वाध्याय करने के लिये काल की पडिलेहना करे दिशा को देखे की रक्त वर्ण की तो नहीं, तारादि तो टूटते नहीं है वगैरह ॥ ४३ ॥ फिर रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे दूसरे प्रहर में ध्यान करे तीसरे प्रहर में निद्रा से मुक्त होवें और चौथे प्रहर में स्वाध्याय करे ॥ ४४ ॥ चौथी प्रहरसी के कालका प्रतिलेखन करके अर्थात् चौथी प्रहरसी प्राप्त हुई जानकर ३२ असझाय टालकर असंयति यों जाग्रत न होवे इस प्रकार स्वाध्याय करे ॥ ४५ ॥ फिर रात्रि के चौथी पोरसी के चौथे भाग में अर्थात् पीछे की दो घडी रात्री रहे तब स्वाध्याय के काल से निवृत्ति पाकर आवश्यक (प्रतिक्रमण) के काल की प्रतिलेखना करे फिर प्रतिक्रमन की आज्ञा ग्रहण करने गुरु आदि को वंदना करे ॥ ४६ ॥ जब प्रतिक्रमण करने की वक्त हो गई हो तब जिस प्रकार देवसी (दिन सम्बन्धी) प्रतिक्रमण की विधी कही है उस ही प्रमाने क्षेत्र विशुद्धि कर पहिले

दुक्खवि मोक्खण ॥ ४७ ॥ राइय च अइयार, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो ॥ नाणंमि दसणंमि य चरित्तंमि तवंमि य ॥ ४८ ॥ पारिय काउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरु ॥ राइयं तु अतीचार आलोएज्ज जहक्कम ॥४९॥ पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरु ॥ काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्व दुक्खवि मोक्खण ॥ ५० ॥ किं तव पडिवज्जामि एव तत्थ विचिंतए ॥ काउसग्गं तु पारित्ता वन्दई य तओ गुरु ॥५१॥

आवश्यक की आज्ञा ले पूर्वोक्त विधी प्रमाण सब दुःख से मुक्त करनेवाला कायोत्सर्ग करे ॥ ४७ ॥ कायोत्सर्ग में रात्रि सम्बन्धी १४ ज्ञान का, ५ सम्यक्त्व के १२५ चारित्र के और १२ तप के यों १५६ अतिचार का अनुक्रम से चिन्तवन करे यह प्रथमावश्यक ॥ १ ॥ कायोत्सर्ग पारकर दूसरे आवश्यक की आज्ञा लेकर लोगस्स कहे फिर तीसरे आवश्यक की आज्ञा ले दो खमासमना से गुरु वंदना करे यह तीसरा आवश्यक हुवा फिर चौथे आवश्यक की आज्ञा ग्रहन कर रात्रि सम्बन्धी ज्ञानादि के अतिचार की आलोचना करे ॥ ४९ ॥ आलोचना कर उस पाप से प्रतिक्रमा है । मिथ्या दुष्कृत दे शुद्ध होवे मायादि तीनों शल्य रहित निःशल्य होवे श्रमण सूत्र नमो चौवीसा खमासमणा पांचों पद की वंदना करे यह चौथा आवश्यक पूरा हुवा फिर गुरु आदि का वंदना करके पांचवा आवश्यक की आज्ञा से नमस्कार करेमी भंते इच्छामी ठामी तस्सुत्तरी का पाठ कहकर सब दुःख से छोडानेवाला कायोत्सर्ग करे ॥ ५० ॥ इस पांचवे आवश्यक के कायोत्सर्ग में चिन्तवन करे

सूत्र पारिय काउसग्गो, वंदित्ताण तओ गुरु ॥ तवं तु पडिवज्जेज्जा, करिज्ज सिद्धाण संथवं ॥ ५२ ॥ एसा सामायरी समासेण वियाहिया ॥ जं चरित्ता बहु जीवा तिण्णा संसार सागरं ॥ ५३ ॥ त्तिबेमि ॥ इति सामायारी नामक छब्बीसमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥ २६ ॥ * * * * *

अर्थ कि-आज में किस प्रकार का तप अंगीकार करूं ? फिर नवकारसी आदि जो तप उस दिन ग्रहण करना है उस का निश्चय कर कायुत्सर्ग को पारे लोगस्स कहे फिर दो वक्त खमासमणादे यह गुरु वंदना हुवा बाद पांचवा आवश्यक पुरा हुवा ॥ ५१ ॥ फिर पांचवा कायुत्सर्ग आवश्यक पुरा हुवे बाद गुरु आदि को वंदना करके नवकारसी आदि जो तप अंगीकार करने का हो वह अंगीकार करे फिर सिद्धस्तवन अर्थात् अरिहंत को सिद्ध का और धर्माचार्य को नमुथुणं देवे यह छठा आवश्यक पुरा हुवा यह राईसी प्रतिक्रमण की विधी हुई यहां तो यह संक्षेप में छ ही आवश्यक की विधी कही है इन की विशेष विधी आवश्यक सूत्र से जानना ॥ ५२ ॥ इस प्रकार दश प्रकार की समाचारी तीर्थंकर भगवान ने कही है इन समाचारी का आचरन कर गत काल में अनंत जीवोंने संसार समुद्र से तीर कर मुक्ति पद प्राप्त किया सिद्ध बुद्ध मुक्त हो सर्व दुःख का अन्त किया है॥ ५३ ॥ यों सुधर्मा स्वामीजीने जंबू स्वामी जी से कहा कि मैंने जिस प्रकार तीर्थंकर भगवानसे सुना वैसा तेरे से कहा है, इति समाचारी नामक छब्बीसवा अध्ययन समाप्तम् ॥ २६ ॥

॥ खलुङ्किय नाम सप्तविंशतितम मध्ययनम् ॥

सूत्र

थेरे गणहरे गग्गे, मुणी आसि विसारए ॥ आइण्णे गण भावम्मि, समाहिं पडिसंधए ॥ १ ॥ वहणे वहमाणस्स, कंतारं अइवत्तई ॥ जोगे वहमाणस्स, संसारं अइवत्तई ॥ २ ॥ खलुंके जो उ जोएइ, विहम्माणो किलिस्सई ॥ असमाहिं च वेएइ, तोत्तओ से य भज्जई ॥ ३ ॥ एगं डसइ पुच्छंमि, एगं विंधइ भिक्खण-

अर्थ

छब्बीसवे अध्ययन में समाचारी कही वह तो शठता त्यागने से ही पालन कर सकता है इस लिये सत्तावीसवे अध्ययन में शठपना त्यागने का कहते हैं जीवों को धर्म में स्थिर करने से स्थविर पद को प्राप्त हुवे साधुओं का गण-समुदाय को धारन करने गणधर आचार्य पद को प्राप्त हुवे सर्व शास्त्रों में विचक्षण आचार के गुण युक्त अपनी आत्मा को समाधीमें जोडनेवाले ऐसे गर्ग नाम के आचार्य थे॥१॥ जिस प्रकार विनयवंत बैल गाडी में जोते हुए भार का वाहन करते-खेंचते हुवे गाडीवान और बैलों सुख से अटवी का उल्लंघन करते हैं तैसे संयम के योग रूप भार में प्रवर्तते वनीत शिष्य के सम्बन्ध से गुरु और शिष्य सुख से संसार रूप अटवी के पार होते हैं ॥ २ ॥ और जिस प्रकार गली आर बैल को गाडी आदि में जोतने से उन बैलोंको चलाने के लिये गाडीवान उन बैलों को आरा(लोहे की आरवाली लकडी) से फेरता हुवा असमाधी चित्त के उद्वेगपनेको प्राप्त होने दुःखीपने आविश्रम पावे किंबहु उस बैलको मारते २ वह आरी भी टूट जावे ॥ ३ ॥ गाडीवान गलियार बैल में से किसी बैलके पूछ को काटे

॥ एगो भंजइ सामिलं, एगो उप्पह पट्ठिओ ॥ ४ ॥ एगो पडइ पासेण, निवेसइ निवज्जई ॥ उक्कुद्दइ उप्फडइ, सढे बालगवी वए ॥ ५ ॥ माई मुद्धेण पडइ, कुद्धे गच्छे पडिप्पह ॥ मय लक्खेण चिट्ठई य, वेगण य पहावई ॥ ६ ॥ छिन्नाले छिन्दइ सेल्लिं दुद्दंतो भंजए जुगं ॥ से वि य सुस्सुयाइत्ता, उज्जाहित्ता पलायए ॥७॥ खलुंका जारिसा जोज्जा, दुस्सीसा वि हु तारिसा ॥ जोइया धम्म जाणम्मि, भजंति

अर्थ किसी को भाणा की आर वारम्बार चुभावे कोइ गलीयार बेल दूसरे को ताडे कोई गलीयार बेल उन्मार्ग में प्रवेश करे ॥ ४ ॥ कोइ गलीयार बेल एक तरफ पड जावे, कोइ गलीयार बेल बैठ जावे, कोइ गलीयार बेल सो जावे कोइ गलीयार बेल मेंडक की तरह उछले और कोइ गलीयार बेल धूर्तता कर गाय देख उस के पीछे भगे जावे ॥ ५ ॥ कोई गलीयार बेल चमककर मुख को जमीन पर मार पड जावे, कोई गलियार बेल कोपित हो पीछा भग जावे कोई गलियार बेल मृत्युक की तरह सोता है मूर्च्छा सा कर पड जावे और कोई गलियार बेल धूर्तता से गाडीवान को घबराता हुवा स्थान उल्लंघन कर वेग से भग जावे ॥ ६ ॥ कोइ गलियार बेल अपनी दुष्टता कर रस्सी को तोड डाले, कोई गलियार बेल दुर्दांत हो कर धूसरे को तोडे कोइ गलियार बेल फुफाड कर गाडीवान के हाथ से छूटकर भग जावे ॥ ७ ॥ कोइ गलियार बेल गाडे को जोतने से गाडेको ही तोड डाले इन गलियार बेल के जैसे ही कितनेक कुशिष्य भी होते हैं, उन को धर्म रूपी गाडे में जोतते हुवे क्रियानुष्ठान में

सूत्र

विइ दुम्यला ॥ ८ ॥ इड्ढीगारविए एगे, एगेत्थ रसगारवे ॥ सायागारविए एगे, एगे सुचिरकोहणे ॥ ९ ॥ भिक्खालसिए एगे, एगे ओमाण भीरुए ॥ थद्धे एग च अणुसासम्मी हेऊहिं कारणेहि य ॥ १० ॥ सो वि अतर भासिल्लो, दोसमेव पकुव्वई ॥ आयरियाण तु वयण, पडिकूलेइ अभिक्खण ॥ ११ ॥ नसा मम

अर्थ

दुःख बुद्धि वाले बने हुवे अधैर्यता धारन कर सधेमन से नहीं प्रवर्तते हुवे धर्म का नाश करते हैं ॥ ८ ॥ किस प्रकार धर्म का नाश करते हैं सो कहते हैं—कोई कुशिष्य ऋद्धि का अहंकारी होता है, कोई कुशिष्य इच्छित आहार की प्राप्ती होने से रस गर्वी होता है, कोई कुशिष्य बहुत काल तक कोपवंत रहता है ॥ ९ ॥ कोई कुशिष्य भिक्षा लाने में आलसी होता है, कोई कुशिष्य भिक्षार्थे जानादि अपमान से डरता है कोई कुशिष्य हितशिक्षा देते हेतु कारण से प्रेरित हो गुरु आदि के सन्मुख बोलता है ॥ १० ॥ कोई शिष्य गुरु बोलते हो उस के बीच २ में बोलते हैं कोई कुशिष्य गुरु के वचनों में दोष निकालते हैं, कोई कुशिष्य आचार्य के हितशिक्षा रूप वचन को वारम्वार विपरीत करता है ॥ ११ ॥ अब कुशिष्य किस प्रकार गुरु के वचन को विपरीत करते हैं वह कहते हैं—गुरु कहे कि—लावो आहार आदि वस्तु चाहिये है सो ले आवो तब शिष्य कहे—मुझे कोई श्रावक श्राविकादि पहचानते नहीं है, वे मुझे आहार आदि देंगे या नहीं देंगे तथा वे घर में होंगे या नहीं होंगे, तथा वे

वियाणाइ, न य सा मज्झ दाहिई ॥ निग्गया होहिइ मन्ने, साहु अन्नोत्थ वच्चउ ॥ १२ ॥ पेसिया पलिउंचति, ते परियंति समतओ ॥ रायवेट्ठिं च मन्नता, करेंति भिउडिं मुहे ॥ १३ ॥ वाइया संगहिया चेव, भत्तपाणेण पोसिया ॥ जाय पक्खा जहा हंसा, पक्कमंति दिसो दिसिं ॥ १४ ॥ अह सारही विचिंतेइ, खलुंकेहिं समागओ ॥ किं

अर्थ

सिवाय अन्य साधु को भेज कर भी यह काम करा सकते हो मेरे सिवाय अन्य कोई साधु नहीं है क्या ? ॥ १२ ॥ किसी कार्य करने के लिये गुरु शिष्य को भेजे और वह काम नहीं करता हुवा गुरु पूछे तब कहे कि-कब तुमने मुझे काम दिया था काम नहीं करने के लिये गुरु से दूर बैठे या इधर उधर फिरता फिरे, जो गुरु हुकम करे तो राजा के नोकर की तरह माने काम सुनकर मस्तक पर भ्रम चढावे मुख मुद्रा उदास करे ॥ १३ ॥ जिस प्रकार हंस के पांखों आने से वह दिशोदिशा में उडजाता है इस ही प्रकार गुरुने जिस शिष्य का आहार सज्ञादि पोषण कर ज्ञानादि का पठन कराया वह स्वयं विचरने समर्थ हो गुरु को छोड कर स्वेच्छाचारी बनता है ॥ १४ ॥ जिस गलियार बलद को चलाने से गाडीवान खेदित होता है, उस प्रकार गर्गाचार्य शिष्यों के सम्बन्ध से श्रम को प्राप्त हुवे विचार करने लगे कि यह दुष्ट शिष्यों मेरे क्या काम के ? इन से मेरा क्या काम होने का है तो फिर कुशिष्यों से मेरा क्या प्रयोजन ? उलटा इन की संगत से-मुझ अनेकधा संताप उत्पन्न होता

सूत्र

मक्ष पुट्ठसीसिहिं, अप्पा मे अवसीयइ ॥ १५ ॥ जारिसा मम सीसाओ, तारिसा गलिगद्दहा ॥ गलिगद्दहे जहित्ताणं, दढं परिगिण्हइ तवं ॥ १६ ॥ मिउमद्दव संपन्नो, गंभीरो सुसमाहिओ ॥ विहरइ महिं महप्पा, सीलभूएण अप्पणा ॥१७॥ त्तिबेमि ॥

इति खलुंकिज्ज नाम सत्तावीसं मज्झयणं सम्मत्तं ॥ २७ ॥ ● ●

अर्थ

रे इसलिये इन को छोड कर विचरना ही मुझे श्रेयस्कार है ॥ १५ ॥ गलियार गधे के जैसे उन शिष्यों को जान कर उन के सेम का परित्याग कर गर्गाचार्य बारे प्रकार के तप से अपनी आत्मा को भावे हुवे विचरने लगे ॥ १६ ॥ सुकोमल स्वभावी मीनीत गुरु अहंकार रहित सौम्य युद्धाचार चारित्र में मदन सेपम-आठ मद रहित क्रोध रहित शीतली बहुत गंभीर और उत्तम समाधी वंत महात्मा श्री गर्गाचार्यजी मस्त से पृथ्वी में विहार करने लगे ॥ १७ ॥ इस प्रकार सुधर्मा स्वामीजीने श्री जम्बू स्वामी से कहा ॥ इति गर्गाचार्य का सत्तावीसवा अध्ययन सपूर्ण ॥ २७ ॥ ● ●

॥ मोक्षमार्ग गति नामक अष्टाविंशतितम मध्ययनम् ॥

मोक्खमग्ग गइ तच्च, सणेह जिण भासिय ॥ चउकराण सजुत्त, नाण दंसण लक्खण ॥ १ ॥ नाण च दसण चेव, चरित्तं च तवो तहा ॥ एस मग्गो त्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ २ ॥ नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा ॥

अर्थ सत्तावीसवे अध्ययन में धूर्तपना छोडने का कहा, धूतता छोड कर जो सरल बनता है उसे मोक्ष प्राप्त होता है इस लिये मोक्ष मार्ग नामक अठावीसवा अध्ययन कहते हैं हे शिष्य ! सर्व कर्म से मुक्त होना उस का नाम मोक्ष है, उस मोक्ष को गमन करने रूप जो गति गमन-मोक्षमार्ग श्री तीर्थंकर भगवानने चार प्रकार से कहा है (यह आगे कहेंगे) और मोक्ष में जो जीवों रहे हैं उन के ज्ञान और दर्शन यह दो लक्षण कहे हैं उन का यथातथ्य स्वरूपमें तेरे से कहूं। सो दत्त चित्त से श्रवण करो ॥ १ ॥ मोक्ष मार्ग प्राप्ति के चार कारन कहते हैं—१ ज्ञान पदार्थों के स्वरूप को सम्यक् प्रकार यथातथ्य जानना, २ दर्शन (सम्यक्त्व) पदार्थों के स्वरूप में सम्यक् प्रकार यथातथ्य श्रद्धा करना ३ चारित्र नये आते हुवे कर्माश्रव का निरुंधन करने व्रताचरण करना, और ४ तप-पूर्वोपार्जित कर्म का क्षय करने द्वादश प्रकार तप करना इन चार कारनों करके प्रधान मोक्ष गति के मार्ग में गमन होता है, ऐसे प्रधान मोक्ष पथ के प्रभुने कहा है ॥ २ ॥ उक्त १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, और ४ तप इन चारों को सम्यक् प्रकार आचरन

सूत्र

एयमग्ग मणुप्पत्ता, जीवागच्छंति सोग्गइ ॥ ३ ॥ तत्थ पंचविह नाणं, सुयं आभिनिबोहियं ॥ ओहिनाणं तु तइयं, मणनाणं च केवलं ॥ ४ ॥ एयं पंचविह

अर्थ

करने से जीवों सद्गति मोक्ष गति को जाते हैं ॥३॥ उक्त चार कारनों में प्रथम कारन जो ज्ञान कहा है उस के ५ प्रकार कहे हैं तद्यथा (१) प्रथम मति ज्ञान जिस के २८ भेद १ श्रोत्रेन्द्रियका अवग्रह शब्द ग्रहण करे २ श्रोत्रेन्द्रिय का ईहा ग्रहण किये शब्द का विचार करे, ३ श्रोत्रेन्द्रिय का अपाय-विचार कर निश्चय करे और ४ श्रोत्रेन्द्रिय की धारना सो उस शब्द को संख्यात असंख्यात काल तक भूले नहीं यह श्रोत्रेन्द्रिय के चार बोल कहे ऐसे ही ४ चक्षु-इन्द्रिय के, ४ घ्राणेन्द्रिय के ४ रसेन्द्रिय के ४ स्पर्शेन्द्रिय के और ४ मन के यों २४ भेद और १ उत्पत्तिया, २ विनीया ३ कमीया तथा ४ परिणामीया यह ४ बुद्धि मिलकर मति ज्ञान के २८ भेद हुवे श्रुति ज्ञान के १४ भेद-१ अकारादि अक्षर से जाने वह अक्षर श्रुत, २ अक्षरोच्चार बिना खांसी आदि से जाने वह अनक्षर श्रुत ३ भाव भेद समझ सूत्र पढे वह सन्नीश्रुत ४ भाव भेद बिन समझे पढे वह असन्नीश्रुत, ५ सम्यक ज्ञान के सूत्र हों वह सम्यक श्रुत ६ मिथ्यात्वी के शास्त्र वे मिथ्याश्रुत, ७ भरतादि क्षेत्र का आदि सहित ज्ञान सो सादि श्रुत, ८ महाविदेहादि क्षेत्र का आदि रहित ज्ञान सो अनादि श्रुत, ९ भरतादि क्षेत्र का अन्त सहित ज्ञान सो सपज्जव श्रुत, १० महाविदेह क्षेत्र का अन्त रहित ज्ञान सो अपज्जव श्रुत ११ आचारंगादि का ज्ञान सो गमीश्रुत, १२ पूर्वादि का ज्ञान अगमीश्रुत १३ इग्यार

सूत्र

नाणं, दव्वाण य गुणाण य ॥ पज्जवाण य सव्वेसिं, नाण नाणीहि दसिय ॥ ५ ॥

गुणाण मासओ दव्व, एगदव्वस्सिया गुणा, लक्खण पज्जवाण तु, उभओ अस्सिया

अर्थ

भग का ज्ञान सो अंगप्रविष्ट और १४ उपांगादि का ज्ञान सो अंग बाहिर अवधिज्ञान के ८ भेद १ जन्म से ज्ञान सो भव पृथक २ करना से होवे सो क्षयोपशम पृथक ३ मर्याद सहित क्षेत्र में देखे सो देश से ४ सम्पूर्ण लोक देखे सो सर्व से ५ अनुक्रम से देखे तथा साथ में रहे सो अनुगामी ६ आगे पीछे देखे जहां उत्पन्न हो वहां ही देखे अन्य स्थान जाकर नहीं देखे सो अननुगामी ७ उत्पन्न हो चला जावे सो पडवाई और, ८ पीछा जावे नहीं सो अपडवाई ॥ मनःपर्यव ज्ञान के दो भेद १ संक्षेप से देखे सो ऋजुमति और २ विस्तार से देखे सो विपुल मति ॥ केवल ज्ञान का एक ही भेद यह पांचों ज्ञान के ५१ भेद हुए ॥ ४ ॥ यह पांच प्रकार का ज्ञान धर्मास्तिकायादि छही द्रव्य में छही द्रव्य के चलनादि गुन में और छही द्रव्य की पर्याय में जानपना करना यह जानपना केवल ज्ञानीने कहा है ॥ ५ ॥ अब द्रव्य गुण पर्याय का स्वरूप कहते हैं १ गुण और पर्याय का भाजन वह द्रव्य, २ द्रव्य की पहचान करान वाला गुन, और ३ द्रव्य में गुणादि का पलटा हो वह पर्याय इस में १ द्रव्य सो जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य गुन सो जीव का गुण ज्ञानादि और अजीव का गुन वर्णादि, पर्याय के दो भेद १ आत्मभावी और २ कर्मभावी आत्म भावी सो ज्ञान दर्शन चारित्र और कर्म भावी नरकादि गति, तथा चलनादि गुण के आश्रय धर्मास्ति प्रमुख छ ही द्रव्य जानना और प्रत्येक [अज्ञग २] द्रव्य के आश्रय हैं वे गमनादि गुण कहना और

सूत्र

भवे ॥ ६ ॥ धम्मो अहम्मो आगास, कालो पुग्गल जतवे ॥ एस लोगोत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ ७ ॥ धम्मो अहम्मो आगासं दव्वं इक्किक्कं माहिय

अर्थ

पर्याय सो नये २ गुन होवे जूने का ह्रास होवे पर्याय है सो द्रव्य के और गुण के दोनों के आश्रय से रहते हैं जैसे धर्मास्ति अधर्मास्ति और आकाशास्ति इन तीनों का एकत्र मिलना, एक ही प्रदेशों में रहना, यह अनादि अपर्यवसित जानना और एकेक के स्कन्ध देश प्रदेश यों एकेक के तीन २ भेद यों तीनों के ९ भेद और दसवा काल यह दशों अरूपी के पर्याय मानना तैसे ही जीवास्ति काय में केवल ज्ञान केवल दर्शन के अपर्यवसित न कदापि मिटे वे सादी अपर्यवसित और चार ज्ञान तीन अज्ञान, तीन दर्शन पर्याय रूपी होवे उत्पाद व्यय, वैसे ही पुद्गलास्ति के पर्याय मीलते हैं अलग होते हैं संस्थान संयोग विभागादि सब पर्याय का पर्याय मानना ॥ ६ ॥ १ धर्मास्ति, २ अधर्मास्ति ३ आकाशास्ति, ४ काल ५ पुद्गलास्ति, और ६ जीवास्ति * इन छ ही द्रव्य रूप लोक + है ऐसा प्रधान ज्ञान के धारक तीर्थंकरने प्ररूपा है ॥ ७ ॥ द्रव्य से धर्मास्ति काय अधर्मास्तिकाय और आकाशास्ति काय का एक ही द्रव्य है अर्थात् यह

* इन द्रव्यों में काल को छोड कर पांच अस्तिकाय कहिये अर्थात् अस्ति=प्रदेश काय=अवस्थाव प्रदेश समूह रूप समझना और काल अस्ति काया नहीं कही, क्यों कि क्षीण २ में पलटता होता है

+ आकाशास्ति काय का लोक में रहा और प्रदेश है स्कन्ध तो लोक अलोक दोनों मिलकर होता है

॥ अणताणिय दव्वाणि, काळो पुग्गल जतवे ॥ ८ ॥ गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाण लक्खणो ॥ भायण सव्व दव्वाण, नह ओगाह लक्खण ॥ ९ ॥ वत्तणा लक्खणो कालो, जीवो उवओग लक्खणो ॥ नाणण दसणेण च, सुहेण य दुहेण य ॥ १० ॥ नाण च दंसण चेव, चरित्त च तवो तहा ॥ वीरिय उवओगो य, एय जीवस्स लक्खण ॥ ११ ॥ सद्दधयार उज्जोआ पहा छाया तवेइ वा ॥ वण्णरस

तीनों असण्ड हैं और काल के, पुद्गल के और जीव के अनत द्रव्य है अर्थात् काल भी अनत समय रूप है पुद्गल भी अनंत परमाणु व स्कंध रूप है और जीव द्रव्य भी अनत है ॥ ८ ॥ अब छे द्रव्य के लक्षण कहते हैं १ धर्मास्ति काय का गति (चलन) लक्षण २ अधर्मास्तिकाय का स्थिति (स्थिर) लक्षण, ३ सब द्रव्य के भाजन रूप आकाशास्तिकाय का विकाश लक्षण, ४ समय आवलिका की वर्तना रूप काल का वर्तना लक्षण ५ जीव का ज्ञान दर्शन या सुख दुःख के वेदने रूप उपयोग लक्षण ॥ ९-१० ॥ और भी जीव के लक्षण कहते हैं—५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ४ दर्शन ४ चारित्र परितापरित अचारित्र, नो चारित्र नो अचारित्र नो परितापरीते, ४ बाल तप, पंडित तप, बाल पंडित तप नो बाल नो पंडित नो बाल पंडित तप, ४ बाल वीर्य, पंडित वीर्य, बाल पंडित वीर्य, नो बाल नो पंडित वीर्य, २ साकार और अनाकार यह उपयोग यों छ बोल अन्तगत २६प्रकार के जीव के लक्षण जानना ॥११॥ अब पुद्गल के

सूत्र

गंध फासा, पुग्गलाण तु लक्खण ॥ १२ ॥ एगत्त च पुहत्त च सखा सठाणमेव य ॥

अर्थ

लक्षण कहते हैं—१ शुभाशुभ शब्द २ अधकार, ३ रत्नादि का उद्योत ४ चन्द्रादि की प्रभा, क्रांति ५ आम्रादि की छाया ६ सूर्यादि का ताप, ७ ११ पांच वर्ण १२-१६ पांच रस १७ १८ दोगंध, १९ २६ आठ स्पर्श यह २६ लक्षण पुद्गलों के जानना यह छ ही द्रव्य के लक्षण कहे ॥ १२ ॥ अब पर्याय का लक्षण कहते हैं—१ परमाणु आदि पुद्गलों मिलकर स्कंध होना २ स्कंध बिखर कर अलग २ परमाणु आदि होना ३ एक दो आदि संख्याते व अनंते इत्यादि संख्या ४ वतुल त्र्यस्र, चतुरस्र, मंडल लम्बा यह संस्थान, ५ वर्णादि का संयोग मिलना, तथा ६ वर्णादि का विभाग वियोग होना यह रूपी अरूपी पर्याय के लक्षण जानना इस प्रकार द्रव्य गुण पर्यायका जानपना हो उसे ज्ञान कहना+

+ १ द्रव्य में निश्चय तथा व्यवहार की स्थापना करते हैं—१ धर्मास्तिकाय असंख्यात प्रदेशात्मक अचेतन यह निश्चय और गति लक्षण यह व्यवहार २ अधर्मास्तिकाय असंख्यात प्रदेशात्मक अचेतन्य यह निश्चय और स्थिरगुण व्यवहार, ३ आकाशास्तिकाय-लोकाकाश असंख्यात प्रदेशात्मक अलोकाकाश अनंत प्रदेशात्मक अचेतन्यता यह निश्चय विकाशगुन यह व्यवहार, ४ काल-एक पर्याय अरूपी अचेतन्य यह निश्चय पना ऋतु अयन संवत्सरादि व्यवहार, ५ जीव असंख्यात प्रदेशात्मक अरूपी शुभाशुभ उपयोग चैतन्यता यह निश्चय एकेन्द्रियादि जाति सो व्यवहार, जीवास्तिकाय. और ६ पुद्गलास्तिकाय में एकाकी अनंत प्रदेशात्मक अचैतन्यता यह निश्चय, वर्ण गंध रस स्पर्श संस्थान यह व्यवहार इस प्रकार षड्द्रव्य का निश्चय तथा व्यवहार पना शास्त्र मत प्रमाणे जानना.

सजोगा य विभागाय, पज्जवाण तु लक्खण ॥ १३ ॥ जीवाजीवा य बंधोय, पुण्णं पावासवो तहा ॥ सवरो निज्जरा मोक्खो सतेए ताहिया नव ॥ १४ ॥ तहियाण तु भावाण, सब्भावे उवएसण ॥ भावेण, सद्दहतस्स, सम्मत्त त वियाहिय ॥१५॥

अर्थ ॥ १३ ॥ अब मुक्ति का दूसरा कारन दर्शन का वर्णन करते हैं—१ जीव २ अजीव ३ बंध, ४ पुण्य, ५ पाप, ६ आश्रव, ७ संवर ८ निर्जरा और ९ मोक्ष, इन नव तत्त्व में से १ असंख्यात प्रदेशी सदासउपयोगी, चेतना लक्षण युक्त, सुख दुःख का जान कर्ता व भोक्ता होवे उसे जीव कहना, २ जड लक्षण चेतन्यता रहित सो अजीव कहना ३ जीवाजीव का (जीव पुद्गल-कर्म) के सम्बन्ध मिल बन्ध होवे वह बन्ध ४ जीव के प्रदेश में शुभ पुद्गलों का बन्ध हो आगे को सुखरूप उदय में आवे वह पुण्य ५ जीव के प्रदेश में अशुभ पुद्गलों का बन्ध हो आगे को दुःख रूप उदय आवे वह पाप ६ शुभाशुभ कर्म पुद्गल आने का रास्ता वह आश्रव ७ शुभाशुभ कर्म आने के रास्ते को रोके वह संवर ८ देश से कर्मों की निर्जरा करे वह निर्जरा और ९ सर्वांश कर्मों का क्षय करे वह मोक्ष इन नव ही पदार्थों की आस्ति है, इन नव ही तत्वों को गुरु के उपदेश कर तथा स्वयं जाति स्मरणादि ज्ञान कर शुद्ध अन्तःकरण के भाव कर उक्त नव ही पदार्थों का श्रद्धान करे उसे श्री तीर्थंकर भगवानने सम्यक्त्व कहा है ॥ १४ १५ ॥ इन

नव ही पदार्थों का—१ सात नय २ चार निक्षेपा, ३ चार प्रमाण ४ द्रव्य क्षेत्र काल भाव ५ निश्चय व्यवहार, ६ द्रव्य और भाव ७ सामान्य और विशेष इन २१ प्रकार कर जाने १ १ सातनय कहते हैं १नैगमनय वाला मे अनेकगम अनेकरीती अनेक प्रमाण कर एक वस्तु को माने सामान्य मान अर्थात् किसी वस्तु में उस के नाम का अंशमात्र भी गुन हो तो उसे पूर्ण मान विशेष माने अर्थात् उस के नाम प्रमाने पूर्ण गुण उस में पाते होवे तो भी उसे पूर्ण माने तीनों काल की बात और निक्षेप चार ही माने, २ संग्रहनय वाला-वस्तु की सत्ता को ग्रहण करे, एक नाम लेने से सर्व गुन पर्याय परिवार सहित ग्रहन करे जैसे एक बाग का नाम लेने से अनेक पदार्थों की समज हो जावे या सामान्य माने परन्तु विशेष नहीं माने क्यों कि थोडे में समझे तो विशेष की पण जरूर तीनों काल की बात और निक्षेपा चार ही माने ३ व्यवहार नयवाला वस्तु का बाह्य स्वरूप देखे वसी गुनमय उस वस्तु को माने उसे अन्तर के गुणों की दरकार नहीं परन्तु आचार किया की जरूर है, जैसे तोता हंस केस कालिपों व्यवहार में एक ही रंग वाली माने निश्चय में रंग पांच ही वाले इस नयवाला सामान्य नहीं माने विशेष माने तीनों काल की बात और निक्षेपा चार ही माने ४ ऋजुसूत्र नयवाला का सदा सरल विचार रहता है, यह सामान्य नहीं माने विशेष माने एक वर्तमान काल की बात माने गत अनागत की बात को असार माने जैसे किसी ने कहा सो वर्ष पहिले सोने की वृष्टि हूइ थी या होगी उस पर बिसार माने; क्यों कि अपने क्या काम आई ? और निक्षेपा एक भाव माने

६ शब्दनय वाला जैसा जिस वस्तु का नाम हो वैसा ही उस का अर्थ ग्रहण करे उस वस्तु के नाम प्रमाने उस में गुन हो या मत हो जैसे-शक्रेन्द्र, पुरेन्द्र, शचिपति देवेन्द्र इन शब्दों का एक ही इन्द्र अर्थ ग्रहण करे परन्तु लिंग शब्द में भेद नहीं माने एक वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव ही माने ६ समभिरूढ नयवाला—शब्द पर आरूढ हो उस का अर्थ ग्रहण करे, वस्तु का अंश मात्र गुन कमी होवे तो भी उसे पूर्ण वस्तु माने, जैसे अरिहंत को सिद्धमाने और यह शब्द का अर्थ कायम करे, जैसे—शक्र सिंहासन पर बैठकर न्यायकरे तब शक्रेन्द्र कहे, हाथ में वज्र ले देवता के पूर को विदारे तब पुरेन्द्र कहे इन्द्राणियों की सभा में बैठे तब शचिपति कहे, देवता की सभा में बैठे तब देवेन्द्र कहे यह सामान्य नहीं माने, विशेष माने, एक वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव माने ७ एवंभूत नयवाला—जैसा जिस का नाम वैसा ही उस का काम और प्रमाण यह तीनों पूर्ण होवे वस्तु अपने गुण में पूर्ण होवे, उस गुण मुजब ही क्रिया करती हो, उस वस्तु के द्रव्य गुण पर्याय व वस्तु धर्म प्रत्यक्ष में देखाता हो उसे ही यह वस्तु कहेगा अंश मात्र गुण कमी हो तो वस्तु नहीं कहे यह सामान्य नहीं माने विशेष माने एक वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव माने जैसे शक्रेन्द्र शक्र सिंहासन पर बैठ न्याय करते हैं परतु उन का मन जो देवांगना की तरफ होगा तो उसे शचिपति कहेगा परंतु शक्रेन्द्र नहीं कहेगा इन सातों नय पर समुच्चय दृष्टान्त-किसीने नैगम नयवाले से पूछा-तुम कहां रहते हो ? उसने उत्तर दिया मैं लोक में रहता हूं-अशुद्ध नैगम नयवाला बोल—लोक तो तीन हैं तुम किस लोक में रहते हो ? उत्तर

राजा सेठ सेनापति आदि नित्य सभा में जाकर करने योग्य कार्य करे वह लोकीक द्रव्यावश्यक, (१) वस्कल वस्त्रधारी, मृग चर्मधारी भगवे वस्त्रधारी फक नाम तापसादि नित्य नियम प्रमाने ऊँकारादि का ध्यान करे क्रिया करे सो कुमावचन द्रव्यावश्यक (३) साधु के गुण रहित छ काय की दया रहित उन्मत्त निरंकुश, मठावलम्बी भगवान की आज्ञा के बाहिर जो साधु हैं वे दोनों वक्त आवश्यक करे वह लोकोत्तर द्रव्यावश्यक–४ भाव निक्षेपा–वस्तु का निज गुन उस में होवे अर्थात् जीव के ज्ञानादी निजगुन और अजीव का वर्णादि निजगुन वस्तु में न होवे तो भाव निक्षेपा शुन्य गिना जाता है भाव निक्षेपे के दो भेद—१ शुद्ध उपयोग सहित भावार्थ पर उपयोग लगाकर शास्त्रादि पढे सो आगम से भाव निक्षेप और २ नो आगम से के तीन भेद—(१) राजा सेठ प्रमुख सदैव शुद्ध उपयोग सहित प्रभात को भारत, श्याम को रामायन आदि श्रवण करे सो लोकिक भावावश्यक (२) वल्कल वस्त्र धारी मृग चर्म धारी भगवा वस्त्रधारी शुद्ध उपयोग सहित ॐकारादि मंत्र जापकरे वह कुमावचनी भावावश्यक और (३) साधु साध्वी श्रावक श्राविका भगवंत की आज्ञा प्रमाने प्रवर्तन वाले दोनों वक्त प्रतिक्रमण करे वह लोकोत्तर भावावश्यक यह चारों निक्षेप ज्ञानादि चारो कारन पर करते हैं १ किसी जीव पदार्थ का ज्ञान ऐसे नाम दिया वह नाम निक्षेप, २ ऐसे ही किसी वस्तु की या पुस्तकादि की स्थापना करे वह स्थापना निक्षेप ३ उपयोग शून्य ज्ञान पढ पढावे वह द्रव्य निक्षेपा अथवा ज्ञानी जीव आयुष्य पूर्ण कर गया उसे ज्ञान द्रव्य निक्षेपा कहना और उपयोग सहित ज्ञान का पठन

६ शब्दनय वाला जैसा जिस वस्तु का नाम हो वैसा ही उस का अर्थ ग्रहण करे इस वस्तु के नाम ममाने उस में गुन हो या मत हो जैसे शक्रेन्द्र, पुरेन्द्र, शचिपाति देवेन्द्र इन शब्दों का एक ही इन्द्र अर्थ ग्रहण करे परन्तु लिंग शब्द में भेद नहीं माने एक वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव ही माने ७ समभिरूढ नयवाला-शब्द पर आरूढ हो उस का अर्थ ग्रहण करे वस्तु का अंश मात्र गुन कमी होवे तो भी उसे पूर्ण वस्तु माने, जैसे अरिहंत को सिद्ध माने और यह शब्द का अर्थ कायम करे, जैसे—शक्र सिंहासन पर बैठकर न्यायकरे तब शक्रेन्द्र कहे हाथ में वज्र ले दैत्यों के पुर को विदारे तब पुरेन्द्र कहे इन्द्राणियों की सभा में बैठे तब शचिपति कहे, देवता की सभा में बैठे तब देवेन्द्र कहे यह सामान्य नहीं माने विशेष माने, एक वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव माने ७ एवंभूत नयवाला—जैसा जिस का नाम वैसा ही उस का काम और प्रमाण यह तीनों पूर्ण होवे वस्तु अपने गुण में पूर्ण होवे, उस गुण मुजब ही क्रिया करती हो, उस वस्तु के द्रव्य गुण पर्याय व वस्तु धर्म प्रत्यक्ष में देखाता हो उसे ही यह वस्तु कहेगा अंश मात्र गुण कमी हो तो वस्तु नहीं कहे यह सामान्य नहीं माने विशेष माने एक वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव माने जैसे शक्रेन्द्र शक्र सिंहासन पर बैठ न्याय करते हैं परंतु उस का मन जो देवांगना की तरफ होगा तो उसे शचिपति कहेगा परंतु शक्रेन्द्र नहीं कहेगा इन सातों नय पर समन्वय दृष्टान्त-किसीने नैगम नयवाले से पूछा-तुम कहां रहते हो ? उसने उत्तर दिया मैं लोक में रहता हूं अशुद्ध नैगम नयवाला बोला,—लोक तो तीन हैं तुम किस लोक में रहते हो ? उत्तर

राजा सेठ सेनापति आदि मिल सभा में आकर करने योग्य कार्य करे वह लौकिक द्रव्यावश्यक [१] वल्कल वस्त्रधारी, मृग चर्मधारी भगवे वस्त्रधारी फक्त नाम तापसादि मिल नियम प्रमाने ॐकारादि का ध्यान करे क्रिया करे सो कुप्रावचन द्रव्यावश्यक (२) साधु के गुन रहित छे काय की दया रहित उन्मत्त निरंकुश, मठावलम्बी भगवान की आज्ञा के बाहिर जो साधु हैं वे दोनों वक्त आवश्यक करे यह लोकोत्तर द्रव्यावश्यक—४ भाव निक्षेपा—वस्तु का निज गुन उस में होवे अर्थात् जीव के ज्ञानादी निजगुन और अजीव का वर्णादि निजगुन वस्तु में न होवे तो भाव निक्षेपा शुन्य गिना जाता है भाव निक्षेपे के दो भेद—१ शुद्ध उपयोग सहित आचार्य पर उपयोग लगाकर शास्त्रादि पढे सो आगम से भाव निक्षेप और २ नो आगम से के तीन भेद—(१) राजा शेठ प्रमुख सदैव शुद्ध उपयोग सहित प्रभात को भारत, श्याम को रामायन आदि श्रवण करे सो लौकिक भावावश्यक (२) वल्कल वस्त्र धारी मृग चर्म धारी भगवा वस्त्रधारी शुद्ध उपयोग सहित ॐकारादि मंत्र जापकरे यह कुप्रावचनी भावावश्यक, और (३) साधु साध्वी श्रावक श्राविका भगवंत की आज्ञा प्रमाने प्रवर्तने वाले दोनों वक्त प्रतिक्रमण करे यह लोकोत्तर भावावश्यक. यह चारों निक्षेप ज्ञानादि चारों कारन पर कहते हैं १ किसी जीव पदार्थ का ज्ञान ऐसे नाम दिया वह नाम निक्षेप, २ ऐसे ही किसी वस्तु की या पुस्तकादि की स्थापना करे यह स्थापना निक्षेप ३ उपयोग शून्य ज्ञान पढे पढावे यह द्रव्य निक्षेपा अथवा ज्ञानी जीव आयुष्य पूर्ण कर गया उसे ज्ञान द्रव्य निक्षेपा कहना और उपयोग सहित ज्ञान का पठन

अर्थ

निक्षेपा चार—१ नाम निक्षेपा—इस के २ भेद—(१) जैसा जिस का नाम हो वैसा ही उस में गुन पावे वह यथार्थ नाम, जैसे जीव का नाम हंस चैतन्य प्राणी (२) नाम प्रमाणे गुन नहीं हो सो अयथार्थ नाम—जैसे जीव का नाम घूसा कचरा [१] जिस का कुछ अर्थ नहीं हो वह अर्थ शून्य नाम जैसे हांसी खांसी छींकादि २ स्थापना निक्षेपना—इस के ४० भेद—[१] काष्ट की, [२] चित्र की, (३) पोत, (चीट) की (४) लेप की, (५) गांठो की [६] भरत (कसीदे) की, (७) छेद (कोरनी) की (८) वस्तु स्यात् कोई वस्तु पढने से भेद आवे सो और (१०) दन्त की इन १० का एक रूप बनावे तथा अनेक रूप बनावे यों २०, यह २० सद्भाव स्थापना अर्थात् जो वस्तु तथा मनुष्यादि प्राणी होवे उस का तादृश्य हुबेहु ऊंचाइ चौडाइ लक्षन व्यंजन युक्त रूप बनावे, उस को देख सागे वस्तु का यथातथ्य भान हो जावे जैसे फोटोग्राफ और यही २० असद्भाव स्थापना अर्थात् सद्भाव से उल्टा असद्भाव स्थापना ऊपर कही वस्तु का मनःकल्पित रूप बनावे जैसे गोल पत्थर पर तेल सिन्दूर लगा कर भेरूजी की स्थापना करे यह ४० भेद हुवे ३ द्रव्य निक्षेप—इस के दो भेद (१) शास्त्रादि पढे परन्तु अर्थ समझे नहीं शून्यचित बिना परिणाम से पढे वह आगम से द्रव्यनिक्षेप और (२) नो आगमसे के तीन भेद—(१) जैसे कोइ आवश्यक का ज्ञान आयुष्य पूर्ण कर गया उस का शरीर पडा है उसे देख कहे यह आवश्यक का ज्ञ न था सो जानग शरीर, (२) किसी श्रावक के घर पुत्र हुवा देख कहे यह आवश्यक का ज्ञान होगा सो भविय शरीर और (३) जाणग भविय वितीरिक्त शरीर के ती... भेद—(अ)

अर्थ

निक्षेपा चार—१ नाम निक्षेप—इस के ३ भेद—(१) जैसा जिस का नाम हो वैसा ही उस में गुन पाये वह यथार्थ नाम, जैसे जीव का नाम हंस चैतन्य प्राणि (२) नाम प्रमाणे गुन नहीं हो सो अयथार्थ नाम-जैसे जीव का नाम भूखा कपरा [३] जिस का कुछ अर्थ नहीं हो वह अर्थ शून्य नाम जैसे हसी खांसी छींकादि २ स्थापना निक्षेपना—इस के ४० भेद [१] काष्ट की [२] चित्र की, (३) पोत (वस्त्र) की (४) लेप की (५) गांठो की [६] मरत (कसीदे) की, (७) छद (कोरनी) की (८) वस्तु स्पर्श वस्तु पहने से भेद मासे सो और (१०) पत्र की इन १० का एक रूप बनावे तथा अनेक रूप बनावे यों २०, यह २० सद्भाव स्थापना अर्थात् जो वस्तु तथा मनुष्यादि प्राणी होवे उस का तादृश्य हेतु जैसा चौड़ा अवयव अंगोपांग युक्त रूप बनावे, उस को देख साखे वस्तु का यथातथ्य मान हो जावे जैसे फोटोग्राफ और यही २० असद्भाव स्थापना अर्थात् सद्भाव से उलटा असद्भाव स्थापना ऊपर कही वस्तु का मनःकल्पित रूप बनाय जैसे ग्राम पत्थर पर तेल सिन्दूर लगा कर भैरूंजी की स्थापना करे यह ४० भेद हुवे ३ द्रव्य निक्षेप-इस के दो भेद (१) शास्त्रादि पढे परन्तु अर्थ समझे नहीं उपयोग बिना परिणाम से पढे वह आगम से द्रव्यनिक्षेप और (२) नो आगमसे के तीन भेद—(१) जैसे कोई आवश्यक का ज्ञान आयुष्य पूर्ण कर गया उस का शरीर पड़ा है उसे देख कहे यह आवश्यक का ज्ञान था सो ज्ञानक शरीर, (२) किसी श्रावक के घर पुत्र हुवा देख कहे यह आवश्यक का ज्ञान होगा सो भविक शरीर और (३) ज्ञायक भविक व्यतिरिक्त शरीर के तीन भेद—(अ)

तप से कर्म भस्म हो सो उपमा प्रमान ॥ १ ॥ चौथे बोले द्रव्य क्षेत्र काल और भाव—१ द्रव्य १ धर्मास्ति, २ अधर्मास्ति, ३ आकाशास्ति, ४ काल, ५ जीवास्ति और ६ पुद्गलास्ति इन छे में जीव पुद्गल परिणामी चार अपरिणामी, जीव तो जीव पांच अजीव, पुद्गलमूर्ती पांच अमूर्ती, पांच सप्रदेशी काल अप्रदेशी तीन के एकेक द्रव्य तीन के अनत द्रव्य आकाश क्षेत्र पांच क्षेत्री, जीव पुद्गल सक्रिय क्रिया करे चार अक्रिय, पांच नित्य काल अनित्य पुद्गल कारणी पांच अकारणी, जीव कर्ता पांच अकर्ता, चार लोक प्रमाण आकाश लोकालोक प्रमान काल अढाइ द्वीप प्रमान, चार असंख्यात प्रदेशी आकाश और पुद्गल अनंत प्रदेशी. और सर्व स्थान आकाश भरा है ॥२॥ क्षेत्र ३८१२७९७० मन का एक गोला कोई देवता ऊपर से डाले वह ६ महिने ६ दिन ६ प्रहर ६ घटी में जितना क्षेत्र उल्लंघन कर नीचा आवे इतने क्षेत्र को एक रज्जु कहते हैं ऐसे सात रज्जू प्रमाण नीचा लोक, अठारसो योजन तीरछा लोक १८०० योजन कम सात रज्जु ऊंचा लोक यों चउदह रज्जु का ऊंचा और १० रज्जु की पहिली नरक १३ रज्जु दूसरी नरक, २२ रज्जु तीसरी नरक २८ र जु चौथी नरक ३४ रज्जु पांचवी नरक ४० रज्जु छट्ठी नरक, ४९ रज्जु की सातवी, नरक यों १९६ रज्जु का घनाकार नीचा लोक ... रज्जु तिरछा ... पहिला दूसरा स्वर्ग ११॥ रज्जु तीसरा चौथा १७॥ रज्जू पांचवा छट्ठा १७॥ रज्जु सातवा आठवा १४॥ रज्जु नववा दशवा १२॥, इग्यारवा बारवा १०॥, नवग्रीवेयका अनुत्तर विमान ९॥, सिद्ध क्षेत्र ११ रज्जु यों सब ३४३ रज्जू घनाकार लोक सातवी नरक के नीचे ७ रज्जू चौडा ऊपर उतरता २ प्रथम नरक के पास एक रज्जु चौडा

तप से कर्म भस्म हो सो उपमा प्रमान ॥ ३ ॥ चौथे बोले-द्रव्य क्षेत्र काल और भाव—१ द्रव्य १ धर्मास्ति, २ अधर्मास्ति, ३ आकाशास्ति, ४ काल, ५ जीवास्ति और ६ पुद्गलास्ति इन छे में जीव पुद्गल परिणामी चार अपरिणामी, जीव तो जीव पांच अजीव, पुद्गलमूर्ती पांच अमूर्ती, पांच सप्रदेशी काल अप्रदेशी तीन के एकेक द्रव्य तीन के अनंत २ द्रव्य आकाश क्षेत्र पांच क्षेत्री, जीव पुद्गल साथ क्रिया करे चार अक्रिय, पांच निस्य काल अनिस्य पुद्गल कारणी पांच अकारणी, जीव कर्ता पांच अकर्ता, चार लोक प्रमाण आकाश लोकालोक प्रमान काल अढाइ द्वीप प्रमान, चार असंख्यात प्रदेशी आकाश और पुद्गल अनत प्रदेशी और सर्व स्थान आकाश भरा है ॥२॥ क्षेत्र ३८१२७९७० मन का एक लोह का गोला कोई देवता ऊपर से डाले वह ६ महीने ६ दिन ६ प्रहर ६ घडी में जितना क्षेत्र उल्लंघन कर नीचे आवे इतने क्षेत्र को एक रज्जु कहते हैं एसे सात रज्जू प्रमाण नीचा लोक, आठारसो योजन ऊंचाइसे तिरछालोक १८०० योजन रूप सात रज्जु ऊंचालोक यों चउदह रज्ज का ऊंचा और १० रज्जु की पहिली नरक १९ रज्जु दूसरी नरक, २२ रज्जु तीसरी नरक २८ रज्जु चौथी नरक ३४ रज्जु पांचवी नरक ४० रज्जु छठी नरक, ४९ रज्जु की सातवी, नरक यों १९६ रज्जु का घनाकार नीचा लोक दश रज्जू तिरछालोक पहिला दूसरा स्वर्ग १९॥ रज्जु तीसरा चौथा १७ ॥ रज्जू पांचवा छठा १७ ॥ रज्जू सातवा आठवा १४ ॥ रज्जु नववा दशवा १२॥, इग्यारवा बारवा १०॥, नवग्रीवेगना अनूत्तर विमान ६॥, सिद्ध क्षेत्र ११ रज्जु यों सब ३४३ रज्जू घनाकार लोक. सातवी नरक के नीचे ७ रज्जू चौडा ऊपर उतरता २ प्रथम नरक के पास एक रज्जु चौडा

तव से कमी मरन हो तो प्रथमा प्रमाण ॥ २ ॥ चौथे बोले द्रव्य क्षेत्र काल और भाव—१ द्रव्य १ धर्मास्ति, २ अधर्मास्ति ३ आकाशास्ति, ४ काल, ५ जीवास्ति और ६ पुद्गलास्ति इन छे में जीव पुद्गल परिणामी चार अपरिणामी, जीव तो जीव पांच अजीव, पुद्गलमूर्ती पांच अमूर्ती, पांच सप्रदेशी काल अप्रदेशी तीन के एकेक द्रव्य तीन के अनंत २ द्रव्य, आकाश क्षेत्र पांच क्षेत्री, जीव पुद्गल साथ क्रिया करे चार अक्रिय, पांच नित्य काल अनित्य, पुद्गल कारणी पांच अकारणी, जीव कर्ता पांच अकर्ता, चार लोक प्रमाण आकाश लोकालोक प्रमाण काल अढाइ द्वीप प्रमाण, चार असंख्यात प्रदेशी आकाश और पुद्गल अनंत प्रदेशी और सर्व स्थान आकाश भरा है ॥२॥ क्षेत्र १८१२०९७० मन का एक लोह का गोला कोई देवता ऊपर से डाले वह ६ महिने ६ दिन ६ प्रहर ६ घडी में जितना क्षेत्र उल्लंघन कर नीचे आवे इतने क्षेत्र को एक रज्जु कहते हैं ऐसे सात रज्जू प्रमाण नीचा लोक, आठारसो योजन ऊंचाइमे तिरछालोक १८०० योजन कम सात रज्जु ऊंचालोक यों चवदह रज्जु का ऊंचा और १० रज्जु की पहिली नरक, १६ रज्जु दूसरी नरक, २२ रज्जु तीसरी नरक २८ रज्जु चौथी नरक, ३४ रज्जू पांचवी नरक, ४० रज्जु छठी नरक, ४६ रज्जु की सातवी, नरक यों १९६ रज्जु का घनाकार नीचा लोक दश रज्जू तिरछालोक पहिला दूसरा स्वर्ग १९॥ रज्जु तीसरा चौथा १७ ॥ रज्जू पांचवा छठा १७ ॥ रज्जू, सातवा आठवा १४ ॥ रज्जु नववा दसवा १२॥, इग्यारवा बारवा १०॥, नवग्रीवेगना अनुत्तर विमान ८॥, सिद्ध क्षेत्र ११ रज्जु यों सब १४२ रज्जू घनाकार लोक सातमी नरक के नीचे ७ रज्जु चौडा ऊपर उतरता २ प्रथम नरक के पास एक रज्जु चौडा

कहा यह सचा है परन्तु चार कोस के कूपेकी उपमाकी यह अनहोती क्यों कि कूवा कोइने भरा नहीं (१) अनहोते को होती ओपमा द्वारका कैसी ? तो कि देवलोक जैसी, आगीया सूर्य जैसा, सवार मोती जैसे वगैरा (४) अनहोती को अनहोती उपमा- जैसे गद्धे के शृंग कैसे तो कि घोडे जैसे वंध्या के पुत्र कैसा आकाश कुसुम जैसा ॥ यह चारों प्रमान ज्ञानादि पर उतारते हैं १ सूर्य का बिम्ब देख कर सूर्य का उदय जाना यह प्रत्यक्ष प्रमाण, २ महल में रहे सूर्य को अनुमान से जाना तथा धूप देखकर सूर्योदय जाना यह अनुमान प्रमाण ३ सूर्य की ऋद्धि विमानादि का वर्णन जाने यह आगम प्रमाण सूर्य लाल हिंगूली जैसा वगैरे उपमा द सो उपमा प्रमाण इस सूर्य के उदय के चार प्रमान कहे इस प्रकार सब वस्तु पे ज्ञान आश्रिय चार प्रमाण जानना और २ ज्ञान के जैसे ही चार प्रमाण दर्शन पद कहना ३ अब चारित्र कहते हैं पांचों समिति का पालन करता देख कहे यह चारित्रीय है यह प्रत्यक्ष प्रमान २अनुत्तर विमान के देवता उत्पन्न हुए तब अनुमान से जाने यह चारित्र पालकर उत्पन्न हुवा है यह उपमा ३सूयगडांगादि सूत्र में साधु के इर्या समिति आदि गुनों का वर्णन किया यह आगम प्रमान और ४ साधु को सूर्य की चन्द्र की पृथ्वी आदि की उपमा दि सो उपमा प्रमान ४ तप आश्रिय ४ प्रमान-प्रत प्रत्याख्यान तप करता देखे व प्रत्यक्ष प्रमान, २ धन्ना अनगार के जैसा दुर्बल अंग देखकर जाने यह तपस्वी है यह अनुमान प्रमान ३ निजरा के १५४ भेदादि का कथन शास्त्र में कहा सो आगम प्रमान और ४ जिस प्रकार अग्नि काष्ट को भस्मकरे वैसे

इस के १२ भेद ४ ज्ञान, ४ अज्ञान ३ दर्शन, ५ इन्द्रिय, १ दृष्टि ५ चारित्र ५ ज्ञानादि लब्धि, (एवं १०) और ११ बालवीर्य तथा १२ पंडित वीर्य, ५ परिणामि भाव के दो भेद-जो पलटे सो, गति आदि सादि परिणामि और जो न पलटे सो जीव भव्य अभव्य तथा धर्मास्ति आदि अनादि परिणामि ६ सन्निपाति भाव सो एक दो तीन चार पांच भावों का मिलाप होवे सो जिस के २६ भंग अनुयोग द्वार से मानना ॥ अब पांचों भाव ज्ञानादि पर उतारते हैं यथा-यादि जो चारों बोल करे इस का जानपना ज्ञान सो चारों प्रकार के ज्ञान, चारों का श्रद्धान होवे यह दर्शन, द्रव्य से इतों ग्रहण क्षेत्र से सर्व लोक सम्बन्धी, काल से जावज्जीव पर्यंत का और भाव से कोटी करणादि कर आश्रव निवर्ते सो चारित्र, द्रव्य क्षेत्र काल का मर्यादा बांधकर एकान्त निर्जरा के अर्थ तप करे सो तप ॥ पांच ये चाले निश्चय और व्यवहार जिस पदार्थ का चिन्तवन किया उस के आभ्यन्तर गुन आभ्यन्तर रूप हो उस निश्चय नय कहना, और अभ्यन्तर गुन बिना जो बाह्य प्रवर्ती यह अशुद्ध व्यवहार पर निश्चय व्यवहार ज्ञानादि चारों पर उतारते हैं-१ सम्यक्त्व सहित अंतरंग जीव के प्रदेश में यथातथ्य जीवादि पदार्थ का जानपना यह निश्चय ज्ञान और भवरणादि शास्त्र का पठन मननादि करना यह व्यवहार ज्ञान २ अंतरंग में जीवादि पदार्थ श्रद्धान सो निश्चय सम्यक्त्व शंकादि दोष रहित सम्यक्त्व पाले यह व्यवहार सम्यक्त्व, ३ सम्यक्त्व युक्त अठारा पाप का अन्तःकरण से त्यागे यह निश्चय चारित्र महाव्रत समिति गुप्ति आदि का पालन करे यह व्यवहार चारित्र सम्यक्त्व युक्त यह पुरुषों पर से अमत्व

कहा यह सचा है परन्तु चार कोश के कूवेकी उपमादी यह अनहोती क्यों कि कूवा कोइने भरा नहीं (१) अनहोते को होती ओपमा द्वारका कैसी ? तो कि देवलोक जैसी, भागीया सूर्य जैसा, जवार मोती जैसे वगैरा (४) अनहोती को अनहोती उपमा- जैसे गद्धे के शृंग कैसे तो कि घोडे जैसे वंध्या के पुत्र कैसा आकाश कुसुम जैसा ॥ यह चारों प्रमान ज्ञानादि पर उतारते हैं १ सूर्य का बिम्ब देख कर सूर्य का उदय जाना यह प्रत्यक्ष प्रमाण, २ पटल में ढके सूर्य को अनुमान से जाना तथा धूप देखकर सूर्योदय जाना यह अनुमान प्रमाण ३ सूर्य की ऋद्धि विमानादि का वर्णन जाने यह आगम प्रमाण सूर्य लाल हिंगूली जैसा वगैरे उपमा दे सो उपमा प्रमाण इस सूर्य के उदय के चार प्रमान को इस प्रकार सब वस्तु पे ज्ञान आश्रिय चार प्रमाण जानना और २ ज्ञान के जैसे ही चार प्रमाण दर्शन पर कहना ३ अब चारित्र कहते हैं पांचों समिति का पालन करता देख कहे यह चारित्रीय है यह प्रत्यक्ष प्रमान २अनुत्तर विमान के देवता उत्पन्न हुए तब अनुमान से जाने यह चारित्र पालकर उत्पन्न हुवा है यह उपमा ३रूपगडांगादि सूत्र में साधु के इर्या समिति आदि गुनों का वर्णन किया यह आगम प्रमान और ४ साधु को सूर्य की चन्द्र की पृथ्वी आदि की उपमा दि सो उपमा प्रमान ४ तप आश्रिय ४ प्रमान प्रत्याख्यान तप करता देखे व प्रत्यक्ष प्रमान, २ धन्ना अनगार के जैसा दुर्बल अंग देखकर जाने यह तपस्वी है यह अनुमान प्रमान ३ निर्जरा के १९४ भेदादि का कथन शास्त्र में कहा सो आगम प्रमान और ४ जिस प्रकार अग्नि काष्ट को भस्मकरे वैसे

अर्थ

इस के १२ भेद ४ ज्ञान, ३ अज्ञान ३ दर्शन, ५ इन्द्रिय, १ गति १ चारित्र, ५ ज्ञानादि लब्धि, (एवं ३०) और ३१ बालवीर्य तथा ३२ पंडित वीर्य, ५ परिणामि भाव के दो भेद-जो पलटे सो गति आदि सादि परिणामि और जो न पलटे सो जीव भव्य अभव्य तथा धर्मास्ति आदि अनादि परिणामि ६ सन्निपाति भाव सो-एक दो तीन चार पांच भावों का मिलाप होवे सो जिस के २६ भंग अनुयोग द्वार से जानना ॥ अब पांचों भाव ज्ञानादि पर उतारते हैं षट्द्रव्यादि जो चारों बोल कहे इस का जानपना होवे सो चारों प्रकार के ज्ञान, चारों का श्रद्धान होवे वह दर्शन, द्रव्य से छकाय क्षेत्र से सर्व लोक सम्बन्धी, काल से जावज्जीव पर्यंत का और भाव से कोटी करणादि कर आश्रव निरुंधे सो चारित्र, द्रव्य क्षेत्र काल की मर्यादा बांधकर एकान्त निर्जरा के अर्थ तप करे सो तप ॥ पांच के चारों निश्चय और व्यवहार जिस पदार्थ का चिन्तवन किया उस का आभ्यन्तर गुन आभ्यन्तर रूप से उसे निश्चय नय कहना, और अभ्यन्तर गुन विना जो बाह्य प्रवर्ती वह अशुद्ध व्यवहार यह निश्चय व्यवहार ज्ञानादि चारों पर उतारते हैं-१ सम्यक्त्व सहित अतरंग जीव के प्रदेश में यथातथ्य जीवादि पदार्थ का जानपना वह निश्चय ज्ञान और अतरंगादि शास्त्र का पठन मननादि करना वह व्यवहार ज्ञान २ अतरंग में जीवादि पदार्थ श्रद्धान सो निश्चय सम्यक्त्व, शंकादि दोष रहित सम्यक्त्व पाले यह व्यवहार सम्यक्त्व, ३ सम्यक्त्व युक्त अठारा पाप का अन्तःकरण से त्यागे वह निश्चय चारित्र महाव्रत समिति गुप्ति आदि का पालन करे वह व्यवहार चारित्र. सम्यक्त्व युक्त पर पुद्गलों पर से ममत्व

निसग्गुवएस रुई, आणारुईसुत्त बीयरुइ'मेव ॥ अभिगम वित्थार रुइ,किरिया संखेव

अर्थ

रहित ५ना यह निश्चय तप अनशनादि बारा प्रकार का तप करे वह व्यवहार तप ॥ छठे बोले-द्रव्य और भाव-जैसे किसी भ्रमरने लकड कोरा उस में कक्के का आकार कोरा गया वह भ्रमर के भा। द्रव्य कक्का और पंडितन उस की पराय पेछानी उसे कक्का माना यह पंडित के भाव भावकक्का हुवा ऐसे ही सम्यक्त्व विना शुद्ध श्रद्धा विना मिथ्यात्वी का ज्ञान दर्शन चारित्र तप यह द्रव्य ज्ञान दर्शन चारित्र तप और जिनाज्ञा सहित शुद्ध श्रद्धा युक्त एकान्त निजरा के लिये करे यह भाव ज्ञान दर्शन चारित्र और तप ॥ सातवे बोले सामान्य विशेष-समुचय नाम यह सामान्य उस का विस्तार करे वह विशेष-जैसे ज्ञान यह सामान्य मति ज्ञानादि पांचों ज्ञान का विस्तार से वर्णन करे वह विशेष २ दर्शन सामान्य उपशमादि सम्यक्त्व का कथन करना यह विशेष ३ चारित्र यह सामान्य सामायिकादि चारित्र का वर्णन करना यह विशेष और ४ तप यह सामान्य अनशनादि तप का वर्णन करना वह विशेष ७ नय ४ निक्षेप ४ प्रमान ४द्रव्यादि,२निश्चय व्यवहार, २ द्रव्य भाव और २ सामान्य विशेष इन पचीस बोलकर ज्ञानादि चारों मोक्ष के कारण को तथा जीवादि नव पदार्थों को जाने उसे सम्यक्त्वी कहना ॥ १५ ॥ अब सम्यक्त्व प्राप्त करने की दशरुची कहते हैं १ निसर्गरुची २उपदेश रुची ३आज्ञा, रुची, ४सूत्र रुची, ५बीज रुची, ६अभिगम रुची,७विस्तार रुची,८क्रिया रुची,९ संक्षप रुची,और १०धर्म रुची

सूत्र

धर्मसद्दई ॥ १६ ॥ भूयत्थेणाहिगया, जीवाजीवा य पुण्णपावं च ॥ सहसम्मुइयासव संवरोय, रोएइ उ निसग्गो, ॥ १७ ॥ जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्दहाइ सय मेव ॥ एमेय नन्नहत्तिय सनिसग्गरुइत्ति नायव्वो ॥ १८ ॥ एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दई, छउमत्थेण जिणेण व, उवएस रुइत्ति नायव्वो ॥ १९ ॥ रागो दोसो मोहो अन्नाणं जस्स अवगयं होइ ॥ आणाए रायतो सो, खलु आणारुई नाम ॥२०॥ जो सुत्त महिज्जंतो, सुएण आगाहई उ सम्मत्तं ॥ अंगेण बाहिरेण व,

अर्थ

या दशरुची के नाम जानना ॥ १६ ॥ अब इन का विस्तार से अर्थ कहते हैं १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य ४ पाप, ५ आश्रव ६ संवर, ७ निर्जरा ८ बंध और ९ मोक्ष इन ९ पदार्थ के यथातथ्य भावे इन्हें अर्थ ज्ञान से जानकर १ द्रव्य से २ क्षेत्र से ३ काल से और ४ भव से जिस प्रकार जिनेश्वर भगवंतने केवल ज्ञान कर जाने वैसे उस ही प्रकार जाति स्मरणादि ज्ञान से स्वतः की मति कर यथातथ्य जाने यह नव ही पदार्थ अन्यथा नहीं हैं किंतु सत्य है ऐसा निश्चय करे श्रद्धे वैसे निसर्ग रुची मानना ॥ १७ १८ ॥ और उक्त नव ही पदार्थ के भाव को केवलज्ञानी तथा छद्मस्थ गुरुआदि के उपदेश कर यथातथ्य श्रद्धान कर उसे दूसरी उपदेश रुची जानना ॥ १९ ॥ जिन पुरुषों का राग द्वेष मोह मिथ्यात्वादिक नाश हुवा है ऐसे वीतराग की आज्ञा से पूर्वोक्त नव ही पदार्थ का श्रद्धान करे उसे तीसरी आज्ञा रुची कहना ॥ २० ॥ जो कोई आचारांगादि अंग तथा अंग बाहिर उपांग मूलादि

सूत्र

सो सुत्तरुइत्ति नायव्वो ॥ २१ ॥ एगेण अणेगाइं, पयाण जो पसरइ उ सम्मत्तं॥ उदएव्व तेल्लबिंदु सो बीयरुइत्ति नायव्वो ॥ २२ ॥ सो होइ अभिगमरुई सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं। एक्कारस अंगाइं पइण्णगं दिट्ठिवाओ य ॥ २३ ॥ दव्वाण सव्व भावा, सव्व पमाणेहि जस्स उवलद्धा ॥ सव्वाहि नयविहीहिं, वित्थार रुइत्ति नायव्वो ॥ २४ ॥ दंसण नाण चरित्ते, तव विणए सच्च समिइ गुत्तीसु ॥ जो किरिया

अर्थ

सूत्र पढता हुआ सम्यक्त्व की प्राप्त करे उसे चौथी सूत्र रुची कहना ॥ २१ ॥ जिस प्रकार एक बीज डाल ने से अनेक बीजोत्पत्ति होवे तथा जैसे पानी में तैल का बिन्दू प्रसरे तैसे ही जिस को उक्त जीवादि पदार्थ एक दृष्टान्तादि कर बताने से बहुत हेतु बहुत दृष्टान्तादि कर विस्तार से जाने उसे पांचवी बीज रूची जानना ॥ २२ ॥ जो जीवों श्रुत ज्ञान कर इग्यारा अंग पइन्ना दृष्टीवादसूत्र इत्यादि सूत्र के अर्थ का जानपना होने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होवे उसे छठी अभिगम रूची कहना ॥ २३ ॥ धर्मास्तिकाया आदि षट् द्रव्य के सब भावों को प्रत्यक्षादि च रों प्रमाण कर नैगमादि सातों नय कर इत्यादि सिद्धान्त की विधी कर जानकर उस से सम्यक्त्व की प्राप्ति होवे वह सातवी विस्तार रूची जानना ॥ २४ ॥ ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, विनय सत्य प्रतिज्ञा, पांच समिति, तीन गुप्ति इत्यादि में शुद्ध वृत्ति से क्रिया करते हुवे सम्यक्त्व की

सूत्र

भावरुई, सो खलु किरियारुई नाम ॥२५॥ अणभिग्गहिय कुदिट्ठी, संखेवरुइत्ति होइ नायव्वो ॥ अविसारओ पवयणे, अणाभिग्गहिओय सेसेसु ॥ २६ ॥ जो अत्थिकाय धम्मं, सुय धम्म खलु चरित्त धम्मं च ॥ सद्दहइ जिणाभिहियं सो धम्म रुइत्ति नायव्वो ॥ २७ ॥ परमत्थ संथवोवा सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा वावि ॥ वावन्न कुदंसण वज्जणाय सम्मत्त सद्दहणा ॥ २८ ॥ नत्थि चरित्तं सम्मत्त विहूणं दंसणे उभइयव्वं

अर्थ

भावे शुचे उसे क्रियारुची मानना ॥ २५ ॥ अनाभिग्रह मिथ्यात्व दृष्टी (भोले जीव) अन्य मति निन्हव और बुद्ध मतादि किसी मत को भी अंगीकार किया नहीं उन मतों का ज्ञान भी जिस में नहीं वैसे ही जिन प्रवचन में भी मानीपन है अर्थात् जैन मार्ग की श्रद्धा तो है परंतु जानपना नहीं हो उसे अपनी संक्षेप रुचीवाला कहना ॥ २६ ॥ छ द्रव्य के चलनादि गुण को अंगपाविष्ट तथा अंग बाहिर शास्त्र को श्रुत धर्म तथा सम्यक्त्व के स्वरूप को जिस प्रकार तीर्थंकरने कहा उस प्रकार श्रद्धा न करे उसे धर्मरुची मानना ॥२७॥ अब सम्यक्त्व के श्रद्धान कहते हैं—१ जीवादि नवतत्त्व का परमार्थ का ज्ञान होवे २ जो जीवादि तत्त्व के परमार्थ के ज्ञान आचार्यादि होवे उन की सेवा करे ३ जिसने सम्यक्त्व ग्रहण कर उस का वमन किया हो उसकी संगति नहीं करे और ४ पाखण्डादि कुधर्मी की संगति नहीं करे ॥२८॥ सम्यक्त्व रहित को ज्ञान नहीं होवे ज्ञान बिना चारित्र के गुण नहीं होवे चारित्र के गुण बिना कर्मों के क्षय नहीं

सूत्र

आगिले मलीन गोन्छा हीनकल्पना

अर्थ

सम्मत्त चारित्ताइं जुगवं पुव्वं व सम्मत्तं ॥२९॥ ना दंसणिस्स नाणं नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ॥ अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण ॥३०॥ निस्संकिय निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ॥ उववूह थिरीकरणे, वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ॥ ३१ ॥ सामाइयत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीयं ॥ परिहारविसुद्धीय सुहुम

होवें, और कर्म से छुटका हुवा विना मोक्ष नहीं होवे ॥२२॥ सम्यक्त्वी के ८ आचार १ जिन वचन में शंका रहित होवे, २ करणी के फल का संशय नहीं करे, ४ मत मतांतरों की अलग २ प्ररूपना सुनकर मन में मुरजावे नहीं, ५ जो जिनाज्ञा के आराधक हों उन के गुणग्राम करे, ६ धर्म से जिन के परिणाम अस्थिर हो उन को स्थिर करे धर्मात्मा की सहायता करे ७ स्वधर्मीयों की भक्ति करे, और ८ जैन मार्ग की प्रभावना (उन्नति) करे यह दूसरा दर्शन कहा ॥ ३२ ॥ अब तीसरा चारित्र का कहते हैं चारित्र पांच प्रकार के कहे हैं—प्रथम सामायिक चारित्र के दो भेद—१ इत्वर थोडे काल का सो प्रथम अन्तिम तीर्थंकर के वारे के साधु का क्यों कि इन में छेदोपस्थापनीय चारित्र की स्थापना की जाती है २ यावत्कथिक-यावज्जीवक सो बावीस तीर्थंकरों के तथा महाविदेह क्षेत्र के साधुओं का दूसरा छेदोपस्थापनीय चारित्र के दो प्रकार —१ निरतिचार सो-प्रथम अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं को जघन्य सातवे दिन, मध्यम चार महिने में, उत्कृष्ट छे महिने में पांच महाव्रतारोपण करे

सूत्र

बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एमेवब्भतरो तवो ॥ ३४ ॥ नाणेण जाणई भावे, दसणेणय सद्दहे ॥ चरित्तेण य गिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई ॥ ३५ ॥ खवेत्ता पुव्व

अर्थ

बहुमानयुक्त विनय ज्ञानीका, दर्शनीका, चारित्रीका, तपस्वी का, मन से, वचन से, काया से लोक व्यवहार ऐसा प्रकार का रखे बहुमान करे यह विनय तप ३ वैयावच्च आचार्य उपाध्याय, शिष्य, रोगी तपस्वी स्थविर स्वधर्मी, कुल-गुरु भ्रात, गण-सम्प्रदायी साधु सघचार तीर्थ इन की भक्ति कर साता उपजावे यह वैयावच्च तप ४ स्वाध्याय तप वांचन, पृच्छन, परिवट्टन, अनुप्रेक्षा, और धर्म कथा करे यह वैयावच्च तप, ५ ध्यान आर्त ध्यान रौद्र ध्यान को छोडकर आज्ञा विचय अपाय विचय विपाक विचय संस्थान विचय रूप धर्म ध्यान तथा एकत्ववितर्क अप्रत्ववितर्क सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति, समुच्छिन्न क्रिया अनिवृत्ति ध्याता रूप शुक्ल ध्यान यह दो प्रकार का ध्यान ध्यावे यह ध्यान तप और ६ विउत्सर्ग सो शरीर का, सम्प्रदाय का उपाधीका तथा आहार पानी का त्याग करे यह द्रव्य विउत्सर्ग और कषाय का, कर्म का, संसार का त्याग करे यह भाव विउत्सर्ग यह ६ प्रकार का अभ्यन्तर तप यह तप के भेद जानना ॥ ३४ ॥ अब मोक्ष के चारों कारनों का संक्षेप से कथन करते है—१ ज्ञान करके जीवादि नवही पदार्थों के भाव को जाने २ दर्शन करके उन का श्रद्धान करे ३ चारित्र कर—आश्रव (कर्मबन्ध के कारण) का त्याग करे आश्रव का निरुंधन करे और ४ तप करके पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय करे ॥ ३५ ॥ उपसहार—महाऋषियों जन्म जरा मृत्युरूप भ

सूत्र

कम्माइ, सजमेण तवेण य ॥ सव्व दुक्ख पहीणट्ठा, पक्कमति महेसिणो ॥ त्ति बेमि ॥

इति मोक्खमग्गइणामज्झयण सम्मत्त ॥ २८ ॥

अर्थ

शारीरिक मानसिक सर्व प्रकार के दुःखों का क्षय करने के लिये ज्ञान और दर्शन युक्त पांच आश्रय पांच इन्द्रिय, चार कषाय और तीन योग के निग्रह रूप सतरा प्रकार के सयम में तथा उक्त बारा प्रकार के तप में पराक्रम फोडते हैं वे शीघ्र मोक्ष को प्राप्त करते हैं यों सुधर्मा स्वामीने जंबु स्वामी से कहा है इति मोक्षमार्ग नामक अठावीसवा अध्ययन समाप्तम् ॥ २८ ॥

॥ सम्यक्त्व पराक्रम नामकं एकोनत्रिंशत्तम मध्ययनम् ॥

सुय मे आउस तेण भगवया एव मक्खायं, इह खलु सम्मत्त परक्कमे नाम अज्झयणे समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइय, जं सम्म सद्दहित्ता पत्तइत्ता रोयइत्ता फासित्ता पालइत्ता तीरित्ता कित्तइत्ता सोहइत्ता आराहित्ता आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्व दुक्खाण मत करेंति ॥ तस्सण अयमट्ठे एव माहिज्जइ—तंजहा—संवेगे, निव्वेए, धम्मसद्धा,

सुधर्मा स्वामी कहने लगे कि हे आयुष्मन जम्बू ! श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामीजी ने कहा वह मैंने श्रवण किया है कि यों निश्चय सम्यक्त्व में पराक्रम का करने वाला इस अध्ययन का सच्चे मन से श्रद्धान करे प्रतीत लावे हृदय में रुचावे इस में कही विधि या का स्पर्श की काया कर सेवन करे उन अनुष्ठान का पालन कर पार पहोचावे, उन गुणों का कीर्ति कर अतिचार रहित शुद्ध मन का आराधन कर के प्रभु की आज्ञा से पालन कर के बहुत से जीवों सर्व भय की सिद्धी कर सिद्ध हुवे, लोकालोक का स्वरूप जान बुद्ध हुवे, कर्म पाश से मुक्त हुए कषाय दावानल को बुझा कर प्राप्त शीतल भूत हुवे शारीरिक मानसिक सब दुःख का अंतकिया ऐसे सम्यक्त्व पराक्रम नामक अध्ययन का कथन

सूत्र

गुरुसाहम्मिय सुस्सूणया, आलोयणा, निंदणया, गरहणया, सामाइए, चउव्वी, सत्थए, वदणे, पडिक्कमणे, काउस्सग्गे पच्चक्खाणे, थयथुईमगले काल पडिले हणया, पायच्छित करणे, खमावयणे सज्झाए, वायणया, पडिपुच्छणया, परिय ट्टणया, अणुप्पेहा, धम्मकहा, सुयस्स आराहणा, एगग्गमणसान्निवेसणया, सजम

अर्थ

औ करता हूं यथा १ संवेग वैराग्य मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषाकर, २ निर्गन्थिपय वांछा से निवृति कर, ३ धर्म करने की श्रद्धा आस्थाकर ४ गुरु स्वधर्मियों की सेवा भक्ति कर ५ पापकी आलोचना कर ६ आत्म दोषों की आत्मा साथ निन्दाकर ७ गुरु आदि समीप स्वतः किये पाप की गरहना (कथनी) कर ८ सामायिक सावद्य जोग की निवृति कर ९ चौबीस तीर्थंकर की स्तुति (लोगस्स) कर १० गुरु को द्वादश वृत वंदना कर ११ पाप की निवृति रूप प्रति क्रमण कर, १२ कायुत्सर्ग कर १३ नव कारसी आदि के प्रत्याख्यान कर १४ स्तुति थुई मगल (नमुत्थुणं) कर १५ स्वाध्यायादि साधु के क्रिया काल की प्रतिलेखना कर १६ प्रायश्चित्त से पाप को विशुद्ध कर, १७ क्षमतक्षामना से वैर को उपशमा कर, १८ सूत्रपाठ की स्वाध्याय कर १९ शास्त्र की वाचना दे कर, २० सूत्रार्थ का निर्णयार्थ प्रश्न पूछने कर, २१ ग्रहण किये ज्ञान की वारम्वार परियट्टना [करने] कर, २२ सूत्रार्थ का चिन्तवन (ध्यान) कर, २३ धर्म कथा (व्याख्यान) कहने कर, २४ शास्त्रार्थ की

सूत्र

तवे, वोदाणे, सुहसाए, अप्पडिबद्धया, विवित्तसयणासणसेवणया, विणियट्टणया संभोगपच्चक्खाणे, उवहिपच्चक्खाणे, आहार पच्चक्खाणे, कसाय पच्चक्खाणे, जोगपच्चक्खाणे, सरीरपच्चक्खाण, सहायपच्चक्खाणे, भत्तपच्चक्खाणे, सब्भाव पच्चक्खाणे, पडिरूवणया वेयावच्चे, सव्वगुणसंपुण्णया वीयरागया, खंती मुत्ती,

अर्थ

आराधना कर २५ एकाग्र शुद्ध मन की स्थापना कर, २६ सतरा प्रकार संयम का पालन कर, २७ द्वादश प्रकार तप कर, २८ कर्म निकन्द का उपाय कर, २९ सुखशीलिया पन का त्याग कर ३० अप्रतिबन्ध प्रवृति कर ३१ स्त्री पशु नपुंसक रहित स्थानक का सेवन कर ३२ विशेष प्रकार निवृति भाव कर ३३ अन्य साधुओं के साथ आहार आदि संविभाग ग्रहण करने का त्याग कर, ३४ उपकरण—उपाधी के त्याग कर, ३५ आहार को त्याग कर, ३६ कषाय के त्याग कर, ३७ योग प्रवृति के त्याग कर ३८ शरीर की शुश्रूषा के त्याग कर, ३९ सहाय (शिष्य—चेले) करने के त्याग कर ४० आहार मात्र के प्रत्याख्यान (संथारा) कर, ४१ अपने खोटे स्वभाव के त्याग कर ४२ प्रति रूपता अर्थात् जिस प्रकार साधु के रूप है उस ही प्रकार संघ के गुण से युक्त होने से वैयावच्च—सेवा भक्ति करने से, ४४ ज्ञानादि सर्व गुण सम्पन्न होने, ४५ राग द्वेष रहित-मध्यस्थवर्ती रहने से ४६ क्षमा करने से, ४७ लोभ रहित रहने से ४८ अभिमान रहित रहने से, ४९ [illegible] रहने से,

मूल

महवे, अज्जवे, भावसच्चे, करणसच्चे, जोगसच्चे, मणगुत्तया, वयगुत्तया-कायगुत्तया, मणसमाधारणया, वयसमाधारणया, कायसमाधारणया, नाण संपन्नया, दंसण संपन्नया, चरित्त संपन्नया, सोइंदिय निग्गहे, चक्खिंदिय निग्गहे, घाणिंदिय निग्गहे, जिब्भिंदिय निग्गहे, फासिंदिय निग्गहे, कोहविजए, माणविजए, मायाविजए, लोहविजए, पेज्जदोसमिच्छादंसण विजए, सेलेसी, अकम्मया ॥ ● ॥

अर्थ

५० भावसत्यता अन्तःकरण की शुद्धवृत्ति रखने से, ५१ करण सत्य शास्त्रोक्त विधी प्रमाने प्रतिलेखनादि क्रिया करने से, ५२ योग सत्यता मन वचन काया के शुद्ध योग प्रवर्ताने से, ५३ मन को गुप्त कर रखने से, ५४ वचन को गुप्त कर रखने से, ५५ काया को गुप्त कर रखने से, ५६ मन को शुद्ध विचार में स्थापने से, ५७ वचन को शुद्धोच्चार में स्थापने से, ५८ काया को शुद्धाचार में स्थापने से, ५९ सूत्रादि ज्ञान युक्त होने से, ६० क्षायिकादि सम्यक्त्व युक्त होने से, ६१ सामायिकादि चारित्र युक्त होने से, ६२ श्रोतेन्द्रिय (कान) का निग्रह करने से, ६३ चक्षु इन्द्रिय (आंख) का निग्रह करने से, ६४ घ्राणेन्द्रिय, (नाक)का निग्रह करने से, ६५ रसन्द्रिय [जिव्हा का निग्रह करने से, ६६ स्पर्शेन्द्रिय [काया] का निग्रह करने से, ६७ क्रोध का जय करने से, ६८ मान का जय करने से, ६९ माया का जय करने से, ७० लोभ का जय करने से, ७१ रागद्वेष और मिथ्यात्व

सवेगेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? संवेगेणं अणुत्तर धम्मसद्ध जणयइ, अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ, अणताणुबंधी कोहमाणमाया लोभे खवेइ, कम्म न बंधइ, तप्पच्चइय च ण मिच्छत्तविसोहिं काऊण दसणाराहए भवइ, दंसणविसुद्धाए णं अत्थेगई तेणेव भवग्गहणेण सिज्झइ, सोहीएयणं विसुद्धाए तच्चपुणो भवग्गहण नाइक्कमइ ॥ १ ॥ निव्वेदेण भंते ! जीवे किं

इन तीनों का क्षय करने से ७२ मनआदि योग का निरुंधन कर शैलेसी अवस्था को प्राप्त होने से और ७१ सर्वकर्मांश रहित हो मोक्ष प्राप्त करने से इन ७१ बोल का सम्यक प्रकार आराधन करने से सम्यक्त्व में शुद्धता होती है यह तो ७१ बोल के नाम मात्र कहे अब आगे प्रत्येक बोल का अलग २ फल कहते हैं—अहो भगवान ! संवेग वैराग्य भाव रखने से अर्थात् मोक्ष प्राप्ती की इच्छा करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्त होती है ? अहो गौतम ! संवेग भाव रखने से उत्तम धर्म करने की श्रद्धा होती है और उत्तम धर्म करने की श्रद्धा कर शीघ्रता से वैराग्य भाव की प्राप्ति होती है, जिस से अनन्तानुबन्धी (जिस का अन्त न हो ऐसा) क्रोध मान माया लोभ इन का क्षयोपशम होता है तथा क्षय होता है फिर मिथ्यात्व मोहनीयादि कर्मों का बन्ध नहीं होता है तब फिर मिथ्यात्व की विशुद्धि

जणयइ ? निव्वेएण दिव्व माणुस ... कामभोगेसु निव्वेय हव्वमागच्छइ

सव्व विसएसु विरज्जइ, सव्व विसएसु विरज्जमाणे आरंभ परिच्चाय करेइ, आरम परिच्चायं करेमाणे ससारमग्गं वोच्छिदइ सिद्धिमग्गं पडिवन्ने भवइ ॥ २ ॥ धम्म सद्धाएण भंते ! जीवे किं जणयइ? धम्म सद्धाएण सायासो-क्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ, आगार धम्मं च णं चयइ, अणगारिएण जीवे सारीर माण

उस ही भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं और कदाचित उस भव में मोक्ष नहीं जावे तो तीसरे भवका तो उल्लंघन नहीं करे अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्वी तीसरे भव में जरूर ही मोक्ष प्राप्त करे ॥ १ ॥ अहो भगवन् ! निर्वेद भाव-विषयाभिलाषा रहितपने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! निर्वेद कर देवता मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी कामभोग में निराभिलाषिपना का वीना से प्राप्त होवे विषयकी निराभि-लाषा कर शब्दादि पांचों इन्द्रिय के विषय में वैराग्य को प्राप्त होने से विषय से वैराग्य भाव को प्राप्त हुवा जीव आरंभ परिग्रह का त्याग करे, आरम परिग्रह का त्याग कर संसार परिभ्रमण का रास्ता जो मिथ्यात्वादि है उसका व्यवच्छेद करे, मोक्षमार्ग को प्रतिपन्न होवे ॥ २ ॥ अहो भगवन् ! धर्म करने की श्रद्धा करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! धर्म करने की श्रद्धा कर साता वेदनीय कर्मोदय से जो उत्पन्न हुवे हैं साता सुख उस में अनुराग करता था उस से वैराग्य को प्राप्त होवे, उस से वैराग्य

सूत्र

सवेगेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? संवेगेणं अणुत्तर धम्मसद्ध जणयइ, अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ, अणताणुबंधी कोहमाणमाया लोभे खवेइ, कम्म न बंधइ, तप्पच्चइय च ण मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ, दंसणविसुद्धाए ण अत्थेगई तेणेव भवग्गहणेण सिज्झइ, सोहीएयणं विसुद्धाए तच्चपुणो भवग्गहण नाइक्कमइ ॥ १ ॥ निव्वेदेण भंते ! जीवे किं

अर्थ

इन दोनों का भय करने से ७२ मनसोदि प्रियोग का निरुंधन कर शैलेसी अवस्था को प्राप्त होने से और ७१ सवकर्मांश रहित हो मोक्ष प्राप्त करने से इन ७१ बोल का सम्यक प्रकार आराधन करने से सम्यक्त्व में पुष्टता होती है यह तो ७१ बोल के नाम मात्र कहे अब आगे प्रत्येक बोल का अलग २ कथन करते हैं—अहो भगवान ! संवेग वैराग्य भाव रखने से अर्थात् मोक्ष प्राप्ती की इच्छा करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्त होती है ? अहो गौतम ! संवेग भाव रखने से उत्तम धर्म करने की श्रद्धा होती है और उत्तम धर्म करने की श्रद्धा कर शीघ्रता से वैराग्य भाव की प्राप्ति होती है, जिस से अनन्तानुबन्धी (जिस का अन्त न हो ऐसा) क्रोध मान माया लोभ इन का क्षयोपशम होता है तथा क्षय होता है फिर मिथ्यात्व मोहनीयादि कर्मों का बन्ध नहीं होता है. तब फिर मिथ्यात्व की विशुद्धि

कर शाश्वकाद सम्पत्तस ...
अणयइ ? निव्वेयेणं दिव्व माणुस तेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ,
सव्व विसएसु विरज्जइ, सव्व विसएसु विरज्जमाणे आरंभ परिचाय
करेइ, आरंभ परिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिदइ सिद्धिमग्गं पडिवन्ने
भवइ ॥ २ ॥ धम्म सद्धाएण भंते ! जीवे किं जणयइ? धम्म सद्धाएणं सायासो
क्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ, आगार धम्मं च णं चयइ, अणगारिएणं जीवे सारीर माण

अर्थ

उस ही भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं और कदाचित उस भवमें मोक्ष नहीं जावे तो तीसरे भवका तो उल्लंघन नहीं करे अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्वी तीसरे भवमें जरूर ही मोक्ष प्राप्त करे ॥ १ ॥ अहो भगवन् ! निर्वेद भाव-विषयाभिलाषा रहितपने से जीव को कौन से गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! निर्वेद कर देवता मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी काममोग में निरामलापिपना का वैराग्य से प्राप्त होवे विषयकी निरभिलाषा कर शब्दादि पांचों इन्द्रिय के विषय में वैराग्य को प्राप्त होवे सब विषय से वैराग्य भाव को प्राप्त हुवा जीव आरंभ परिग्रह का त्याग करे, आरंभ परिग्रह का त्याग कर संसार परिभ्रमण का रास्ता जो मिथ्यात्वादि है उसका व्यवच्छेद करे, मोक्षमार्ग को प्रतिपन्न होवे ॥ २ ॥ अहो भगवन् ! धर्म करने की श्रद्धा करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! धर्म करने की श्रद्धा कर साता वेदनीय कर्मोदय से जो उत्पन्न हुवे हैं साता सुख उस में अनुराग करता था उस से वैराग्य को प्राप्त होवे, उस से वैराग्य

सूत्र

सवेगेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सवेगेणं अणुत्तर धम्मसद्धं जणयइ, अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ, अणताणुबंधी कोहमाणमाया लोभे खवेइ, कम्म न बंधइ, तप्पच्चइय च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दसणाराहए भवइ, दंसणविसुद्धाए णं अत्थेगई तेणेव भवग्गहणेण सिज्झइ, सोहीएयणं विसुद्धाए तच्चपुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ ॥ १ ॥ निव्वेदेण भंते ! जीवे किं

अर्थ

इन तीनों का क्षय करने से ७२ मनआदि त्रियोग का निरुंधन कर शैलेसी अवस्था को प्राप्त होने से और ७१ सब कर्मांश रहित हो मोक्ष प्राप्त करने से इन ७१ बोल का सम्यक् प्रकार आराधन करने से सम्यक्त्व में पुष्टता होती है यह तो ७१ बोल के नाम मात्र कहे अब आगे प्रत्येक बोल का अलग २ फल कहते हैं—अहो भगवान ! संवेग वैराग्य भाव रखने से अर्थात् मोक्ष प्राप्ती की इच्छा करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्त होती है ! अहो गौतम ! संवेग भाव रखने से उत्तम धर्म करने की श्रद्धा होती है और उत्तम धर्म करने की श्रद्धा कर शीघ्रता से वैराग्य भाव की प्राप्ति होती है, जिस से अनन्तानुबन्धी (जिस का अन्त न हो ऐसा) क्रोध मान माया लोभ इन का क्षयोपशम होता है तथा क्षय होता है फिर मिथ्यात्व मोहनीयादि कर्मों का बन्ध नहीं होता है. तब फिर मिथ्यात्व की विशुद्धि कर क्षायिकादि सम्यक्त्व का आराधक होवे. फिर विशुद्ध [illegible] की आराधना कर. कितनेक तो

च ण विणयमूलाइ सव्व कज्जाइ साहेइ, अन्ने य बहवे जीवे विणिइत्ता भवइ ॥ ४ ॥ आलोयणाएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? आलोयणाएण माया नियाण मिच्छादसण सल्लाण मोक्खमग्ग विग्घाण अणत ससार बधणाण उद्धरण करेइ, उज्जु भाव च जणयइ, उज्जुभाव पडिवन्ने यण जीवे अमाई इत्थीवेय नपुसकवेयच न बंधइ पुव्वबद्ध च णं निज्जरेइ ॥ ५ ॥ निंदणयाएण भंते ! जीवे किं जणयइ? निंदणयाएण पच्छाणुताव जणयइ, पच्छाणुतावेण विरज्जमाणे करणगुणसढिं पडिवज्जइ

उस वीनीत के गुणावलोकन कर बहुत से जीवों विनय में अपनी आत्मा को स्थापन करे ॥ ४ ॥ अहो भगवन् ! गुरु आदि को समीप अपना आत्मा के दुर्गुन की आलोचना-प्रकाश करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! गुरु आदि समीप स्वात्म के दोष प्रकाशने से जो मोक्ष मार्ग में विघन के कर्ता और संसार की वृद्धि कर्ता माया शल्य, निदान शल्य, मिथ्या दर्शन शल्य है इन तीनों शल्य का उद्धार कर, तीनों शल्य का उद्धार करने से जीव सरलता [मत्रिक पना] उपार्जन करे, सरलता उपार्जन किया हुवा जीव पर्व जो स्त्री वेद के तथा नपुंसक वेद के कर्मोपार्जन किये हो उन के निजरे क्षय करे ॥ ५ ॥ अहो भगवन् ! अपनी आत्मा की साक्षी से अपने दुर्गुनों की निन्दा करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! स्वयं कृत पाप का पश्चाताप करने से वैराग्य

साम दुक्खाण छेयण भेयण सजोगाईण वोच्छेय करइ, अव्वाबहं च सुह निव्वत्तेइ ॥ २ ॥ गुरु साहम्मिय सुस्सूसणाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? गुरु साहम्मिय सुस्सूसणाएणं विणयपडिवत्तिं जणयइ विणय पडिवन्ने य णं जीवे अणुच्चासाय णसीले नेरइय तिरिक्खजोणिय मणुस्स देव दुग्गइओ निरुम्भइ, वण्णसजल-णभत्ति बहु माणयाए मणुस्स देवगईओ निबंधइ, सिद्धिं सोग्गइं च विसोहेइ, पसत्थाई

को प्राप्त हुवा गृहस्थावास का त्याग कर साधु पना अंगीकार करे साधु हो कर शारीरिक मानसिक दुःख का छेदन भेदन करे, सर्व प्रकार की बाधा पीडा रहित हो मोक्ष के निराबाध सुख की प्राप्ति करे ॥२॥ अहो भगवन्! गुरु और स्वधर्मियों की सेवा भक्ति करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है? अहो शिष्य ! गुरु स्वधर्मियों की सेवा भक्ति करने से, विनय गुन की प्राप्ति होती है, विनयवंत होने से जो सम्यक्त्वादि सद्गुणों की नाश करने वाली असातना है उस का त्याग करे, वह नरक तिर्यंच चांडालादि मनुष्य व किल्विषी आदि देवता की जो दुर्गति है उस का निरुंधन करे गुरु आदि की कीर्ति करके गुन का दीपाने वाला होवे, गुरु आदि का बहुमान करने वाला होवे उत्तम मनुष्य व उत्तम देवगति का आयुर्बंधन करने वाला होवे और मोक्षगति का जो ज्ञानादि है उसे शुद्ध करे मोक्षमार्ग ज्ञानादि शुद्ध करके प्रशस्त प्रशंसनीय विनय मूल श्रुतादि ज्ञान व सब प्रयोजन कार्य निष्पन्न करे ऐसे

जणयइ ? चउव्वीसत्थएण दंसणविसोहिं जणयइ ॥ ९ ॥ वंदणएण भंते ! जीवे किंजणयइ ? वंदणएण नीयागोय कम्म खवइ उच्चागोय, कम्म निबंधइ, सोहग्ग च ण अपडिहय आणाफल निव्वत्तेइ, दाहिणभाव च ण जणयइ ॥ १० ॥ पडिक्कमणेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? पडिक्कमणेण वय छिद्दाणि पिहेइ पिहियछिद्दे पुण जीवे, निरुद्धासवे असबल चरित्ते अट्ठसु पवयण मायासु उवउत्ते

पाठ का पठन) करने से जीव कौनसे गुण की प्राप्ति करे ? अहो गौतम ! चौवीस तीर्थंकर के गुण कीर्ति कर सम्यक्त्व को निर्मल करने रूप गुण की प्राप्ति होवे ॥ ९ ॥ अहो भगवन् ! गुरु आदि ज्येष्ठ जनों को वंदना करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! गुरु आदि को वंदना करने से नीच गोत्र में उत्पन्न होने के कर्मों का क्षय करे और ऊच गोत्र में उत्पन्न होने के कर्मों की उपार्जना करे, सौभाग्यपने का उपार्जन करे आदेय कर्म का उपार्जन करे अर्थात् जिन किसी को जो कुछ आज्ञा करे उस का वह उल्लंघन नहीं कर सके और उस का वचन सब को प्रियकर होवे ऐसे कर्मोपार्जन करे ॥ १० ॥ अहो भगवन् ! प्रतिक्रमण (पाप से निवृत्ति रूप) करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! प्रतिक्रमण करने से व्रत के अतिचार रूप छिद्र को ढके अतिचार रूप छिद्र के ढकने से जीव हिंसादि आश्रव के द्वारों का निरुधन करे, आश्रव रहित होवे दोष रहित निर्मल चारित्र

सूत्र

करणगणसेढी पडिवज्जयण अणगारे मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ ॥ ६ ॥ गरहण याएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? गरहणयाए अपुरेक्कारं जणयइ, अपुरेक्कारगएण जीवे अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो नियत्तेइ पसत्थेय पडिवज्जइ पसत्थ जोग पडिवन्नेयणं अणगारे अणंतघाइपज्जवे खवेइ ॥ ७ ॥ सामाइएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सामाइएणं सावज्जजोगविरइं जणयइ ॥ ८ ॥ चउव्वीसत्थएणं भंते ! जीवे किं

अर्थ

भाव की प्राप्ति होवे, वैराग्य की प्राप्ति होने से पहिले जो कषाय के मन्दता रूप करण की प्राप्ति नहीं हुइ थी ऐसे अपूर्व करण [क्षपक श्रेणि] रूप अंगीकार करे वह साधु दर्शन मोहनीय आदि आठों कर्मों का क्षय करे ॥ ६ ॥ अहो भगवन् ! गुरु के समीप स्वात्मा के दगुन की निन्दा करने से आत्माको कौनसा गुन का प्राप्ति होवे ? अहो शिष्य ! स्वात्मा के दोषों गुरु आदि के आगे प्रकाशने से अपनी आत्मा की हीलना करने का स्थान उपार्जन करे जिस से मन वचन काया के दुष्ट योग से निवर्ते और प्रशस्त (अच्छे) मन वचन काया के योगों की प्रवृत्ति करे वह साधु अनंत केवल ज्ञान केवल दर्शन के घातक करनेवाले कर्मों का क्षय करे ॥ ७ ॥ अहो भगवन् ! सावद्य योग की निवृत्ति रूप सामायिक करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! सामायिक करने से सावद्य योग के निरुंधन रूप बुधि का उपार्जन करे ॥ ८ ॥ अहो भगवन् ! चतुर्विंश जिन का स्तवन (लोगस्स के

सूत्र

विणाय तण्हे सीयलभूए विहरइ ॥ १३ ॥ थयथुइमगलेणं भंते, ! जीवे किं जणयइ ? थयथुइ मगलेण नाण दसण चरित्त बोहिलाभ जणयइ, नाणदसण चरित्तबोहिलाभसपन्नेयण जीवे अंतकिरिय कप्पविमाणो ववत्तिग, आराहण आराहेइ ॥ १४ ॥ काल पडिलेहणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? काल पडिलेहणयाएण नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥ १५ ॥ पायच्छित्त करणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पावविसोहिं जणयइ, निरइयारेयावि भवइ, सम्म च ण पाय-

अर्थ

निकंचन करेगा वह सर्व द्रव्य की तृष्णा रूपं ज्वाला से निवृत होकर शीतलीभूत पन विचरे ॥ १३ ॥ अहो भगवन् ! स्तुति मंगल (नमुत्थुणं के पठन) करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! स्तुति मंगल करने से ज्ञान दर्शन चारित्र बोधबीज रूप लाभ की प्राप्ति होवे ज्ञानादि लाभको प्राप्त हुआ जीव मोक्ष की आराधना करे तथा बारा देवलोक नवग्रैवेयक पांच अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने की आराधना को आराधन करे ॥ १४ ॥ अहो भगवन् ! स्वाध्याय के काल का प्रति लेखना करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ! अहो गौतम ! स्वाध्याय के काल की प्रति लेखना (देखने) का ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करे ॥ १५ ॥ अहो भगवन् ! सूत्रोक्त विधी प्रमाणे प्रायश्चित करने से जीव कौन से गुन की प्राप्ति करे ? अहो गौतम ! प्रायश्चित करने से पाप

अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ ॥ ११ ॥ काउसग्गेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? काउसग्गेण तीय पडुप्पन्नपायच्छित्तं विसोहेइ, विसुद्ध पायच्छित्ते य जीवे निव्वुय हियए, ओहरियभरोव्व भारवहे पसत्थ ज्झाणोवगए सुहसुहेण विहरेइ ॥ १२ ॥ पच्चक्खाणेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? पच्चक्खाणेण आसवदाराइं निरुम्भइ, पच्चक्खाणेण इच्छानिरोहं जणयइ इच्छानिरोह गए य णं जीवे सव्व दव्वेसु

जिस का होवे, आठ प्रवचन माता के हैं उन में सावधान बने जिस संयम योग कर जिन की आत्मा दूर नहीं होवे सम्यक् प्रकार संयम में समाधि सहित विचरे ॥ ११ ॥ अहो भगवन् ! कायुत्सर्ग करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! कायुत्सर्ग करने से अतीत काल का और वर्तमान काल का प्रायश्चित कर पाप की विशुद्धि करे यों अतिचार रहित निर्मल अन्तःकरणी बन कर वह जिस प्रकार भारवाहक [हमालादि] वजन दूर होने से हलका होता है वैसे ही कर्म के वजन से हलका होजावे धर्म ध्यान तथा शुक्लध्यान का ध्याता बन कर सुख प्राप्त करने की परम्परा को अंगीकार कर सुख २ से विचरे ॥ १२ ॥ अहो भगवन् ! प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! प्रत्याख्यान करने से निरन्तर आते हुवे आश्रवद्वार का निरुंधन करे और अनेक प्रकार की उपभोग परिभोग की वस्तु से तृष्णाका निरुंधन करे जो जीव तृष्णा का

सूत्र

जणयइ सुयस्साय अणासायणाए वट्टइ, सुयस्स अणासायणाए वट्टमाणे, तित्थ धम्मं अवलंबइ, तित्थधम्मं अवलंबमाणे महानिज्जरे भवमहापज्जवसाणे भवइ ॥१९॥ पडिपुच्छणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पडिपुच्छणयाएणं सुत्तत्थ तदुभयाइं विसोहेइ कंखा मोहणिज्ज कम्मं वोच्छिदइ ॥२०॥ परियट्टणाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

अर्थ

होवे ? अहो गौतम ! वांचना देने से कर्मों की निर्जरा रूप फलोपार्जन करे सिद्धान्त की आसातना टालने वाला होवे, सिद्धान्त की असातना टालने से तीर्थंकर गणधर का श्रुत धर्म ज्ञान धर्म का आचार का आचरन कर धर्म का आचरन करता हुआ महा निर्जरा का करन वाला भव का तथा कर्म का अन्त करनेवाला होवे ॥ १९ ॥ अहो भगवन् ! सूत्र अर्थादि का संदेह निवारनेके लिये प्रश्न पूछने से जीव को कौनसे गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! प्रश्न पूछने से सूत्र का अर्थ का निर्मल करनेवाला होवे और सूत्रार्थ में निःसंदेह हुवा हुवा भगवान्ने कहा सो करना या नहीं ? इस प्रकार की कांक्षा मोहनीय कर्म तथा संशय रूप मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का छेदन करनेवाला होवे ॥ २० ॥ अहो भगवन् सूत्र या सूत्रार्थ ज्ञान को वारम्वार फेरने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! सूत्रार्थ ज्ञान वारम्वार फेरने से भूले हुवे ज्ञान को याद करनेवाला होवे तथा अक्षरानुसारिणी पदानुसा

सियसं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ, आयारफलं च आराहेइ ॥ १६ ॥ खामावणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? खामावणयाएणं पल्हायण भावं जणयइ पल्हायणभावं मुवगएय सव्व पाण भूय जीव सत्तेसु मेत्तीभाव मुप्पाएइ, मेत्तीभाव मुवगएयावि जीवे भावविसोहिं काऊण निब्भए भवइ ॥ १७ ॥ सज्झाएणंभंते ! जीवे किं जणयइ ? सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥ १८ ॥ वायणाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वायणाएणं निज्जरं

कर्म के क्षय करने रूप शुद्धता का उपार्जन करे, और अतिचार रहित शुद्ध बना सर्व मन से प्रायश्चित विषय का मोक्ष पंथ सम्यक्त्व और इस का मुख उसे निर्मल करे, चारित्र तथा चारित्र के फल की आराधना करे ॥ १६ ॥ वैर भाव की निवृत्तिरूप क्षमत क्षमापना करनेसे जीवको कौन से गुनकी प्राप्ति होवे? अहो गौतम ! खमतखमापना करने से चित्त प्रशान्त भावपने को प्राप्त करे, चित्त का प्रशान्त पना जीव सब प्राणीभूत जीव सत्त्व का हितचिन्तक मन यों सब से मैत्रीभाव को प्राप्त हुआ जीव भाव विशुद्धी स रागद्वेष रहित बने कर सातों भय से रहित बने ॥ १७ ॥ अहो भगवन् ! स्वाध्याय करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करे ॥ १८ ॥ अहो भगवन् ! शास्त्र की वांचना देने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति

भुज्जो भुज्जो उवचिणाई, अणाइय चणं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसारकंतारं खिप्पामेव वीइवयइ ॥ २२ ॥ धम्मकहाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? धम्म-कहाएणं निज्जरं जणयइ, धम्मकहाएणं पवयणं पभावेइ पवयणं पभावेणं जीवे आगमेसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबंधइ ॥ २३ ॥ सुयस्स आराहणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सुयस्स अराहणयाएणं अन्नाणं खवेइ नय संकिलिस्सइ

महा दीर्घ रास्तेवाला जो यह संसार रूप अरण्य [अटवी] है उसे शीघ्रता से उल्लंघन कर मोक्ष प्राप्त करे ॥ २२ ॥ अहो भगवन् ! धर्मकथा कहने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! धर्म कथा कहने से कर्म क्षय करने की विधी का उपार्जन करे धर्म कथा कहने से प्रवचन (शास्त्र) की प्रभावना करे*प्रभावना करता हुवा जीव आगामिक काल में अपनी आत्मा का भद्र कल्याणकारी फल की उपार्जना करे ॥ २३ ॥ अहो भगवन् ! सिद्धान्त के वचनों की आराधना करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! सिद्धान्त के वचनों की आराधना करने से अज्ञान का क्षय करे और क्लेश का भोक्ता

* प्रभावना ८ प्रकार की—१ सिद्धान्त के गुण कथन कर जैन मार्ग दीपावे, २ धर्म कथा कहकर जैन मार्ग दीपावे, ३ सवाद (धर्म चरचा) करके जैन मार्ग दीपावे, ४ तीनों काल का ज्ञान होकर जैन मार्ग दीपावे, ५ तपश्चर्या करके जैन मार्ग दीपावे ६ विद्या के प्रभाव से जैन मार्ग दीपावे, ७ सिद्धान्त का चमत्कारिक वार्तों से जैन मार्ग दीपावे और ८ कवित्व कहकर जैन मार्ग दीपावे,

सूत्र

परियट्टणाएण वंजणाइ जणयइ, वजणलद्धिं च उप्पाएइ ॥ २१ ॥ अणुप्पेहाएण भंते! जीवे किं जणयइ? अणुप्पेहाएण आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ धणिय बंधण बद्धाओ सिढिल बंधण बद्धाओ पकरेइ, दीहकाल ठिईयाओ हस्सकालठिईआओ करेइ, तिव्वाणु भावाओ मंदाणुभावाओ पकरेइ, बहुपएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ, आउयचण कम्म सिया बंधइ सिया नो बंधइ, आसायावेयणिज्जचण कम्म नो

अर्थ

रिषी लब्धि प्राप्त होवे ॥ २१ ॥ अहो भगवन्! सूत्रार्थ का चिन्तवन (ध्यान) करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम! सूत्रार्थ के चिन्तवन करने से आयुष्य कर्म छोड़कर बाकी के सातों कर्म प्रकृति मजबूत बंधी हो उस के ढीले बन्धन करे, जिन कर्मों की बहुत काल की स्थिति हो उसे थोड़े काल की करे, जो तीव्र रस रूप बहुत दुःख से भोगने की हो उसे मंद रस सहज में मुक्त की जावे ऐसी करे, कर्म पुद्गलों के दल बहुत होवे उन्हें थोड़े कर और आयुष्यकर्म का बन्ध कोई करे कोई नहीं भी करे. * असातावेदनीय कर्म का बन्ध बारम्बार नहीं करे, और जो अनादि अनन्त

* क्यों कि संख्यात वर्षायुवाले के आगमिक आयुर्बन्ध भोगते हुवे आयुके तीसरे विभाग में होता है वह हो गया हो या आगे को होने का हो वह उस वक्त बन्ध नहीं करता है और उस वक्त आयुर्बन्ध होने का हो वह उसी वक्त करता है

भुज्जो भुज्जो उवचिणाई, अणाइयं चणं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकतारं खिप्पामेव वीइवयइ ॥ २२ ॥ धम्मकहाए ण भंते ! जीवे किं जणयइ ? धम्मकहाएण निज्जरं जणयइ, धम्मकहाएण पवयणं पभावेइ पवयणं पभावेण जीवे आगमेसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबंधइ ॥ २३ ॥ सुयस्स आराहणयाएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सुयस्स आराहणयाएणं अन्नाणं खवेइ नय संकिलिस्सइ

अर्थ

महा दीर्घ रास्तेवाला जो यह संसार रूप अरण्य [अटवी] है उसे शीघ्रता से उल्लंघन कर मोक्ष प्राप्त करे ॥ २२ ॥ अहो भगवन् ! धर्मकथा कहने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! धर्म कथा कहने से कर्म क्षय करने की विधी का उपार्जन करे धर्म कथा कहने से प्रवचन (शास्त्र) की प्रभावना करे*प्रभावना करता हुवा जीव आगामिक काल में अपनी आत्मा का भद्र कल्याणकारी फल की उपार्जना करे ॥ २३ ॥ अहो भगवन् ! सिद्धान्त के वचनों की आराधना करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! सिद्धान्त के वचनों की आराधना करने से अज्ञान का क्षय करे और क्लेश का भोक्ता

* प्रभावना ८ प्रकार की—१ सिद्धान्त के गुण कथन कर जैन मार्ग दीपावे, २ धर्म कथा कहकर जैन मार्ग दीपावे, ३ सवाद (धर्म चरचा) करके जैन मार्ग दीपावे, ४ तीनों काल का ज्ञान होकर जैन मार्ग दीपावे, ५ तपश्चर्या करके जैन मार्ग दीपावे ६ विद्या के प्रभाव से जैन मार्ग दीपावे, ७ सिद्धान्त का चमत्कारिक वार्तों से जैन मार्ग दीपावे और ८ कवित्त कहकर जैन मार्ग दीपावे,

सूत्र

॥ २४ ॥ एगग्गमण संनिवेसणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? एगग्गमण सन्निवेसणयाएण चित्तनिरोह करेइ ॥ २५ ॥ संजमएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सजमेण अणण्हयत्तं जणयइ ॥ २६ ॥ तवेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? तवेण वोदाणं जणइ ॥ २७ ॥ वोदाणेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? वोदाणेण अकिरियं जणयइ, अकिरियाए भवित्ता तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ, परिनिव्वायइ,

अर्थ

नहीं होवे ॥ २४ ॥ अहो भगवन् ! ज्ञानादि शुभ पदार्थ में एकाग्र मन की स्थापना करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! श्रुतादि अवलम्बन कर एकाग्र मन की स्थापना करने से चित्तवृत्ति उन्मार्ग में जाती हो उस का निरुंधन करे ॥ २५ ॥ अहो भगवन् ! सतरा प्रकार का संयम के पालन करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! संयमाराधन कर आश्रव का निरुंधन करे ॥ २६ ॥ अहो भगवन् ! बारा प्रकार के तप करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! तपश्चर्या करने से पूर्वोपार्जित कर्म को निश्चल करे (निकन्द कर) ॥ २७ ॥ अहो भगवन् ! कर्म को पोदे-निवल करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! कर्म को निर्बल करने से पाप की क्रिया रहितपना उपार्जन करे, पाप की क्रिया रहित होने वाला सर्व अर्थ की सिद्धी करता [illegible]

सूत्र

सव्वदुक्खाणमत करेइ ॥ २८ ॥ सुहसाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सुएसाएणं अणुस्सुयत्त जणयइ, अणुस्सुयाएणं जीवे अणुकपए अणुब्भडे विगयसोगे चरित्तमोहणिज्जं कम्म खवेइ ॥ २९ ॥ अप्पडिबद्धयाएण भंते ! जीवे किं जणयइ? अप्पडिबद्धयाएण निस्सगत्त जणयइ, निस्सगत्तेण जीवे एगग्गचित्ते दिया य राओ य असज्जमाणे अप्पडिबद्धेयावि विहरइ ॥ ३० ॥ विवित्त सयणासणयाएणं भते ! जीवे किं जणयइ, विवित्त सयणासणयाएण चरित्तगुत्तिं जणयइ चरित्तगुत्तेयण

अर्थ

दुःख का क्षय करे ॥ २८ ॥ अहो भगवन् ! सुख सेलीया (सुकुमाल) पना टालने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! सुख सेलीये पने का त्याग करने से अनत्सुकता (उछरग रहित पना) उपार्जन करे, अनुत्सुक पना हुवा जीव परजीवों को दुःखी देखकर तत्काल अनुकम्पा करे और हर्ष विषवाद रहित शोक रहित रहकर मोहनीय कर्म क्षय करे ॥ २९ ॥ अहो भगवन् ! गृहस्थादि के प्रतिबन्धपने रहित होने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! गृहस्थादि के प्रति बन्धता रहित रहने से असंगीपना प्राप्त करे, असंगी जीव अकेला राग द्वेष रहित ज्ञानादि में चित्त की एकाग्रता युक्त रात्रिदिन किसी भी सम्बन्ध को नहीं सज्जता हुवा सर्व सग का परित्याग करता हुवा अप्रतिबन्ध विहारी बने ॥ ३० ॥ अहो भगवन् ! स्त्री पशु नपुसक रहित स्थानक पाट आदि भोगवने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! स्त्री पशु नपुसक रहित स्थानक पाटादि भोग

सूत्र

जीवे विवित्ताहार दढचरित्ते एगंतरए मोक्खभाव पडिवन्ने अट्ठविहकम्मगंठिं निज्जरेइ ॥ ३१ ॥ विनियट्टणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? विनियट्टणयाएणं पावकम्माणं अकरणयाए अब्भुट्ठेइ, पुव्वबद्धाणय निज्जरणयाए तं नियत्तेइ, तओ पच्छा चाउरंतं संसारकंतारं वीइवयइ ॥ ३२ ॥ संभोगपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? संभोगपच्चक्खाणेणं आलंबणाइं खवेइ, निरालंबणस्स य आयतट्ठिया

अर्थ

पने से चारित्र का रक्षण करनेवाला होता है, और चारित्र रक्षण करनेवाला जीव विषय की लालसा रहित आहार करता हुवा निर्मल चारित्र का धारक होवे निर्मल संयम में रक्त व तत्पर बना हुवा मोक्ष का साधक आठ कर्म की ग्रंथी (गांठ) को निर्जरे ॥ ३१ ॥ अहो भगवन् ! विषय से विरक्त आत्मा को करता हुवा जीव कौनसे गुण की प्राप्ति करता है ? अहो गौतम ! विषय विरक्त और पाप कर्म त्यागी होने से धर्म में उद्यमवंत होवे, पूर्वोपार्जित पाप कर्म की निर्जरा करे, पाप को आत्मा से दूर कर चतुर्गति रूप संसार अटवी का उल्लंघन कर मोक्ष को प्राप्त करे ॥ ३२ ॥ अहो भगवन् ! संभोग के प्रत्याख्यान से अर्थात् साधुओं को प्राप्त हुवे आहार पत्रादि का संविभाग (हिस्सा) को ग्रहण करने के त्याग करने से (आप को प्राप्त हुवा ही आप भोगवे अन्य साधु को प्राप्त हुवा ग्रहण नहीं करे) उस जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! संभोग के प्रत्याख्यान करने से दूसरे के अवलम्बन रहित होवे, अवलम्बन रहित बना

सूत्र

योगा भवति, सएण लाभेणं मतुस्सइ, परलाभं नो आसादेइ, परलाभं नो तक्केइ नो पीहेइ, नो पत्थेइ नो अभिलसइ, परलाभं अणस्सायमाणे अतक्केमाणे अपीहेमाणे अपत्थेमाणे अणभिलसमाणे, दुच्चं सुहसेज्ज उवसंपज्जित्ताण विहरइ ॥ ३३ ॥ उवही पच्चक्खाणेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? उवही पच्चक्खाणेणं अपलिमंथं जणयइ, निरुवहिएणं जीवे निक्कंखी उवहिमंतरेणय न संकिलिस्सई ॥ ३४ ॥ आहार पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? आहार पच्चक्खाणेणं जीविया

अर्थ

मोक्ष प्राप्त रूप भावार्थ है जिस का ऐसे साधु को संयम व्यापार की वृद्धि होवे वह साधु अपने ही लाभ कर संतोष को प्राप्त होवे, दूसरे साधु के लाभ की आशा करे नहीं इस प्रकार आशा रहित बना, वह इस प्रकार की कल्पना भी नहीं करे की अमुक मुझे देवो, वचन कर कहे भी नहीं की अमुक मुझे देवो, इसप्रकार अन्य साधु के लाभ की इच्छा नहीं करता हुवा अपनी वांछा अन्य को नहीं जनाता हुवा दूसरी सुख शय्या का अवलम्बन कर विचरने वाला होवे ॥ ३३ ॥ अहो भगवन् ! वस्त्र पात्रादि उपाधी के प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! उपाधी के प्रत्याख्यान करने से जीव वस्त्र पात्रादि की अभिलाषा रहित बना शारीरिक तथा मानसिक क्लेश रहित होवे ॥ ३४ ॥ अहो भगवन् ! आहार के प्रत्याख्यान कर चउत्थ भक्तादि तपश्चर्या करने से आत्मा को कौन से गुन

सूत्र

संसप्पओग वोच्छिन्दइ जीविया संसप्पओगं वोच्छिन्दित्ता जीवे आहारमंतरेण न संकिलिस्सइ ॥ २५ ॥ कसायपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? कसाय पच्चक्खाणेणं वीयरागभाव जणयइ, वीयराग भाव पडिवन्नेवियण जीवे समसुह दुक्ख भवइ ॥ २६ ॥ जोग पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? जोग पच्चक्खाणेणं अजोगत्तं जणयइ, अजोगिणं जीवे नवकम्म न बंधइ, पुव्वबंध निज्जरेइ ॥ २७ ॥ सरीर पच्चक्खाणेण भंत ! जीवे किं जणयइ ? सरीर पच्चक्खा-

अर्थ

की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! आहार के प्रत्याख्यान करने से जीवित की आशा-वांछा का छेदन कर जीवित की आशा का छेद कर आहार की प्राप्ति नहीं होने से क्लेशित नहीं बने ॥ २५ ॥ अहो भगवन् ! कषाय के प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! कषाय के प्रत्याख्यान कर वीतरागी (रागद्वेष रहित) पने को प्राप्त होवे, और वीतरागभाव को प्राप्त हुआ जीव सुख दुःख में समभावी बने ॥ २६ ॥ अहो भगवन् ! मन वचन काय के योगों की प्रवृत्ति का रुंधन कर योग के प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! योग के प्रत्याख्यान करने से अयोगी होवे अर्थात् योगों की चपलता रहित होवे अयोगी बना जीव नये कर्मों का बन्धन नहीं करे और पुराने कर्मों की निर्जरा करे ॥२७॥ अहो भगवन् ! शरीर की शोभा शुश्रूषा के

सूत्र

णेणं सिद्धातिसयगुणकित्तणं निव्वत्तेइ, सिद्धातिसयगुण संपन्नेय णं जीवे लोगग्गमुवगए परमसुही भवइ ॥ ३८ ॥ सहाय पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सहाय पच्चक्खाणेण एगीभाव जणयइ एगीभावभूए वि य णं जीवे एगग्गं भावेमाणे अप्पझंझे अप्पकलहे अप्पकसाए अप्पतुतुमे, सजमबहुले, सवरबहुले, समाहिएयावि भवइ ॥ ३९ ॥ भत्त पच्चक्खाणेण भंते ! जीवे किं

अर्थ

प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! शरीर के प्रत्याख्यान करने से सिद्ध के अतिशय गुन कर सयुक्त होवे (सिद्ध के ३१ अतिशय–५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ५ संस्थान, ३ वेद, १ काया, १ कम, १ मृत्यु रहित हैं, वैसा वह भी बने) सिद्धातिशय गुन को प्राप्त हुवा जीव लोकाग्र मोक्ष स्थान में सस्थित होवे सुखी बने ॥ ३८ ॥ अहो भगवन् ! सहायक [शिष्य चेला] के प्रत्याख्यान करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! अपना शिष्य करने का प्रत्याख्यान करने से एकीभावपना उपार्जन करे, अकेला बना जीव एकत्व भावना भावता हुवा उसे सुनकर बोलना नहीं पडे, क्लेश करना नहीं पडे, अभीमान रूप कषाय नहीं होवे, किसी को तू कार से बोलना नहीं पडे और उस के सयम की वृद्धि होवे, सवर की वृद्धि होवे, सदैव समाधी भाव में रक्त रहे ॥३९॥ अहो भगवन्! भक्त प्रत्याख्यान भोजन के त्याग करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है?

सूत्र

जणयइ ? भत्तपच्चक्खाणेण अणेगाइं भव सयाइं निरुम्भइ ॥ ४० ॥ सब्भाव पच्चक्खाणेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सब्भाव पच्चक्खाणेण, अनियट्टिं जणयइ अनियट्टिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलि कम्मंसे खवेइ, तंजहा–वेयणिज्जं, आउयं, नामं, गोयं, तओ पच्छा सव्व दुक्खाणं अंतं करेइ ॥ ४१ ॥ पडिरूव याएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पडिरूवयाएणं, लाघवियं जणयइ लघुभूएणं

अर्थ

अहो गौतम ! भक्त प्रत्याख्यान करने से अनेक सहस्रों भवों में परिभ्रमण का नाश कर थोडे ही भव में संसार पार होवे ॥ ४० ॥ अहो भगवन् ! जीव का सोना स्वभाव परंरा है उस के प्रत्याख्यान करन से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! स्वभाव के प्रत्याख्यान करने से जीव अनिवृत्ति करण गुणस्थान प्राप्त करे अनिवृत्ति करण प्राप्त हुवा साधु केवल ज्ञानी के जो चार अघातिक कर्म रहे ये उनों के नाम—१ वेदनीय २ आयुष्य ३ नाम और ४ गोत्र इन का क्षय हुवे बाद सिद्ध बुद्ध मुक्त हो सर्व दुःख का अन्त करे ॥ ४१ ॥ अहो भगवन् ! प्रतिरूपता अर्थात् जैसा साधु का बाह्य लिंग है वैसा ही साधु के गुणों अन्दर होने से उस जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! प्रतिरूपता धारन करने से वह द्रव्य से अल्प उपकरणवाला और भाव से ममत्वपना उपार्जन करे, यों दोनों प्रकार हलका होवे वह प्रमाद रहित होवे और उस का

सूत्र

जीवे अप्पमत्ते पागडलिंगे पसत्थलिंगे विसुद्धसम्मत्ते सत्तसमिइसमत्ते सव्व पाणभूयजीवसत्तेसुवीससणिज्जरूवे, अप्पडिलेहे जिइंदिए विउलतवसमिइसमन्नागए यावि भवइ ॥ ४२ ॥ वेयावच्चेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? वेयावच्चेण तित्थयर णाम गोत्त कम्म निबन्धइ ॥४३॥ सव्व गुण संपन्नयाएण भंते! जीवे किं जणयइ? सव्व गुण सपन्नयाए अपुणरावत्तिं जणयइ, अपुणरावत्तिं पत्तएयण जीवे सरीर माण-

अर्थ

वेष निश्चय में तथा व्यवहार में दोनों प्रकार से शुद्ध होवे और उस का जो वेष रजोहरण मुख वस्त्रिकादि है वे सब जीवदया के हेतू भूत है वह निर्मल सम्यक्त्व का धारक होता है उसका सम्यक्त्व वेष्टिता पांच समिति आदि साधु के गुन सम्पूर्ण है, जिस से वह सब प्राणी—बेइन्द्रि आदि, सब भूत—वनस्पति, सब जीव—पंचेन्द्रिय और सब सत्व पृथव्यादि इन सब को विश्वास पात्र होता है, वह किसी का हिंसा नहीं करे इस लिये उस से भी काइ डरे नहीं, और भी जिस के अल्प उपकरन है उस का प्रतिलेखादि कार्य भी थोडा होता है जिस कर ज्ञानाभ्यास इन्द्रिय जय विस्तीर्ण तप समिती आदि अनेक गुनों की वृद्धि होवे ॥ ४२ ॥ अहो भगवन् ! वैयावच्च करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! आचार्यादि की वैयावच्च करने से जीव तीर्थंकर गोत्र नाम कर्म का उपार्जना करे ॥ ४३ ॥ अहो भगवन् ! ज्ञानादि सब गुन सम्पन्न होवे उस जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम !

सूत्र

साण दुक्खाण नो भागी भवइ ॥ ४४ ॥ वीयरागयाएण भंते ! जीवे किं जणयइ? वीयरागयाएण नेहाणुबंधणाणि तण्हाणुबंधणाणि य वोच्छिदइ, मनुन्नामणुन्नेसु–सद्द–फरिस–रूव–गंधेसु चेव विरज्जइ ॥ ४५ ॥ खंतीएण भंते ! जीवे किं जणयइ? खंतीएण परिसहे जिणइ ॥ ४६ ॥ मुत्तीएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? मुत्तीएण अकिंचण जणयइ, अकिंचणे य जीवे अत्थलोलाण अपत्थणिज्जो भवइ ॥ ४७ ॥

अर्थ

रूप गुन सम्पन्न पुनरावृत्ति कर रहित जो मोक्ष गति में जावे कि जहां से पीछा संसार में अवतार नहीं लेना पडे, और जो जीव संसार में पीछा अवतार नहीं लेगा वह जीव व्याधि वेदनादि शारीरिक दुःख और चिन्ता रूप मानसिक दुःख का भागी भोगवनेवाला नहीं होवेगा ॥ ४४ ॥ अहो भगवन् ! राग द्वेष रहित वीतराग भाव धारन करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! वीतरागता धारन करने से जीव स्नेहरूप बन्धन-लोभरूप बन्धन का छेदन करे, मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द रूप गंध रस स्पर्श में विरक्तता धारन करे ॥ ४५ ॥ अहो भगवन् ! क्षमा करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! क्षमा करने से प्राप्त होवे परिषह उपसर्ग का जय करने वाला होवे ॥ ४६ ॥ अहो भगवन् ! मुक्ति निर्लोभता धारन करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! निर्लोभता धारन करने से अकिंचन (धन रहित) वृत्तिवाला होवे अकिंचन वृत्तिवाला जीव जो अर्थ के लोलुपी चोरादि जीवों हैं उन का अप्रार्थनीय होवे अर्थात् वे उसे लूटने का

अज्जवयाएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? अज्जवयाएण काउज्जुयय भावुज्जुयर्य भासुज्जयय अविसवायण जणयइ, अविसयायण सपन्नयाएणं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ ॥ ४८ ॥ मद्दवयाएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? मद्दवयाएणं अणुस्सियत्तं जणयइ अणुस्सियत्तेणं जीवे मिउमद्दवसंपन्ने अट्ठ मयठाणाइं निट्ठावेइ ॥ ४९ ॥ भावसच्चेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? भावसच्चेण भाव-

इरादा नहीं करे ॥ ४७ ॥ अहो भगवन् ! आर्यता-सरलता-निष्कपटता रूप गुण धारन करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! सरलता धारन करने से काया का भी सरल होवे भाव-अभिप्राय का भी सरल होवे, वचन भाषा सरल होवे, मन वचन काया के जोगों की विषमता रहित होवे और मनादि जोगों की अविषमता धारन किया हुआ जीव ठगाइ नहीं करता हुवा श्रुतधर्म चारित्र धर्म का आराधक होवे ॥ ४८ ॥ अहो भगवन् ! मार्दवता-निराभिमानी जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! अहंकार रहित जीव को अनुत्सुकता (उछरंग रहित) रूप गुण की प्राप्ति होवे अनुद्धत बना जीव मृदु-कोमल नम्र स्वभाववाला बन अहंकार रहित जीव—१ जाति, २ कुल, ३ बल, ४ रूप ५ तप, ६ श्रुत, ७ लाभ, ८ ऐश्वर्य इन आठों मद के स्थान से निवृत्ति भाव धारन करे ॥४९॥ अहो भगवन् ! भाव की सत्यता अर्थात् अन्तःकरण की विशुद्धता करने से जीव को कौनसे गुण की

सूत्र

विसाहिं जणयइ भावविसोहिए वट्टमाणेजीवे अरहतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ अरहतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोग धम्मस्स आराहए भवइ ॥ ५० ॥ करण सच्चेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? करणसच्चेण करणसत्तिं जणयइ करण सच्चे वट्टमाणे जीवे जहा वाइ तहा कारियावि भवइ ॥ ५१ ॥ जोग सच्चेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? जोग सच्चेण जोग विसोहेइ ॥ ५२ ॥ मणगुत्तयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

अर्थ

प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! भाव की सत्यता रखने से जीव भाव की विशुद्धता रूप गुण की उपार्जना करता है, भाव विशुद्ध बना जीव अर्हत प्रणित धर्म के आराधन में उद्यमवत होवे और जो अर्हत प्रणित धर्म को आराधने में उद्यमी बना वह परलोक में भी धर्म का आराधिक होवे ॥ ५० ॥ अहो भगवन् ! साधु की प्रतिलेखनादि जो क्रिया है उस की विशुद्धता करते हुवे जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होवे? अहो गौतम ! क्रिया की विशुद्धता कर जीव को क्रिया करने का सामर्थ्य (बल) प्राप्त होवे और विधी युक्त क्रिया करता हुवा जीव वह जिस प्रकार अन्य को क्रिया करने का उपदेश करता है वैसा ही स्वयं भी करनेवाला होता है ॥ ५१ ॥ अहो भगवन् ! मन वचन काया के योगों की सत्यता कर जीव को क्सि गुण की प्राप्ति होवे ? अहो गौतम ! योग प्रवृत्ति की सत्यता कर मनादि त्रियोग के जो दोषों है उन कर रहित होवे ॥ ५२ ॥ अहो भगवन ! पाप विचार से मन को गुप्त कर रखने से जीव को

मणगुत्तयाए णं जीवे एगग्गं जणइ, एगग्गचित्ते णं जीवे मणगुत्ते संजमाराहए भवइ ॥ ५३ ॥ वयगुत्तयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वयगुत्तयाएणं निव्वियारत्तं जणयइ निव्वियारे णं जीवे वइगुत्ते अज्झप्पजोग साहणजुत्तेयावि भवइ ॥ ५४ ॥ कायगुत्तयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? कायगुत्तयाएणं संवरं जणयइ संवरेणं कायगुत्ते पुणो पावासवनिरोहं करेइ ॥ ५५ ॥ मण समाहारण याएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? मणसमाहारणयाए णं एगग्गं जणयइ एगग्गं जणइत्ता नाण

कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! मनःगुप्ति करने से जीव धर्म में चित्तवृत्ति को एकाग्र कर सकता है और धर्म में चित्त की एकाग्रता होने से वह जीव संयम का आराधक होता है ॥ ५३ ॥ अहो भगवन् ! पापाचार से वचन को गुप्त रखने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! वचन गुप्ति करने से विकथा (खोटी वार्ता) का करनेवाला नहीं होता है विकथा नहीं करता हुवा वचन को गुप्त रखने से स्वाध्याय ध्यानादि व्यापार की वृद्धि करनेवाला होता है ॥ ५४ ॥ अहो भगवन् ! पापाचार से काया की गुप्ति करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! काया गुप्ति करने से संवर धर्म की उपार्जना करता है संवर धर्म उपार्जन कर काया गुप्ति युक्त जीव पाप के आने के आश्रव द्वारों का निरुंधन करता है ॥ ५५ ॥ अहो भगवन् ! मन की समधारा धर्म ज्ञानादि में प्रवर्तन करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! मन की समधारा

मूल

विसोहेइ, अहक्खाय चरित्त विसोहेत्ता चत्तारि केवली कम्मंसे खवेइ, तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वायइ सव्व दुक्खाण मंत करेइ ॥ ५८ ॥ नाण सपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? नाण सपन्नयाए णं जीवे सव्वभावाहिगम जणयइ, नाणसपन्नेणं जीवे चाउरंते संसारकंतारे न विणस्सइ, जहा सूई ससुत्ता न विणस्सइ, तहा जीवे ससुत्ते ससारे न विणस्सइ, नाणविणय तवचरित्त जोगे

अर्थ

प्राप्त करता है, जब यथाख्यात चारित्र पर्याय निर्मल हुवे तब—१ वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम और ४ गौत्र इन चारों अघातिक कर्मों का क्षय कर फिर सर्व कार्य की सिद्धी से सिद्ध होता है, सर्वज्ञ हो बुद्ध होता है संसार से मुक्त होता है कषाय ताप बुझा शीतल होता है और जन्मादि सर्व दुःख का क्षय करता है ॥ ५८ ॥ अहो भगवन्! श्रुतादि ज्ञान युक्त होने से जीव को कौनसे गुणकी प्राप्ति होती है? अहो गौतम ! श्रुतादि ज्ञान सम्पन्न होने से जीव सर्व जीवादि नव ही पदार्थ का जानपना उपार्जन करता है और ज्ञान युक्त बना जीव चारों गति संसार रूपी अटवी में विनाश नहीं पाता है अर्थात् मुक्तिपंथ से दूर नहीं होता है जिस प्रकार सूत-डोरे सहित सुई होती है वह खोवाती नहीं है तैसे यह भी जीव सिद्धान्त प्रवचन के जानपने कर ससार में विनाश को प्राप्त होता नहीं है परंतु विनय तप चारित्र योग्य प्रधान व्यापार को प्राप्त होता है और स्वसमय-जैन मत तथा पर समय अन्य मत दोनों

सूत्र

सपाउणइ, ससमय परसमय विसारए य असंघायणिज्जे भवइ ॥ ५९ ॥ दसण संपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ, दसणसंपन्नयाएणं भवमिच्छत्त छेयणं करेइ, परं न विज्झायइ, अणुत्तरेण नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे सम्मं भावेमाणे विहरइ ॥ ६० ॥ चरित्तसंपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? चरित्त संपन्नयाए णं सेलेसी भावं जणयइ, सेलेसिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलि कम्मसे खवेइ

अर्थ

के सिद्धान्त को परस्पर मिलाकर शुद्ध तत्त्व स्वरूप का भान होता है ॥ ५९ ॥ अहो भगवन् ! दर्शन सम्यक्त्व सहित जीव होने उसे कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! दर्शन युक्त जीव भव करनेके हेतु जो मिथ्यात्व है उस का निकन्दन करता है, वह उत्कृष्ट उस ही भव में केवल ज्ञानकी प्राप्ति कर सकता है सम्यक्त्वी जीवों का ज्ञान रूप दीपक का प्रकाश कदापि मन्द होता नहीं है उत्कृष्ट केवल ज्ञान तक वह प्रकाश का पहुंच सकता है प्रधान दर्शन गुण में अपनी आत्मा को स्थापन कर सम्य भाव से आत्मा का भावता हुआ विचरता है ॥ ६० ॥ अहो भगवन् ! सामायिकादि चारित्र सम्पन्न होने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! चारित्र सम्पन्न जीव शैलेषी (पर्वत जैसी योगों की स्थिरता रूप) करण की उपासना करता है और शैलेषी भाव अंगीकार करनेवाला साधु- १ वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम और ४ गौत्र, इन चारों कर्मों का क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त होता हो

तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ सव्वदुक्खाणमतं करेइ ॥ ६१ ॥ सोइंदिय निग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सोइंदिय निग्गहेण मणुन्नामणुन्नेसु सद्देसु रागदोस निग्गहं जणयइ तप्पच्चइय कम्म न बंधइ, पुव्वबद्ध च निज्जरेइ ॥ ६२ ॥ चक्खिंदिय निग्गहेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? चक्खिंदिय निग्गहेण मणुन्ना-मणुन्नेसु रूवेसु रागदोस निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइय कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥ ६३ ॥ घाणिंदिय निग्गहेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? घाणिंदिय

सब दुःख का अन्त करता है ॥ ३१ ॥ अहो भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय को जीव अभीष्ट मिश्र के शब्द से निग्रह करने से और जो कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द में राग द्वेष करने से निवर्तता है राग द्वेष से निवृत्ति पापाश्रित शब्द कर कर्म बन्धन नहीं करता है और प्रथम बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ३२ ॥ अहो भगवन् ! कृष्ण नील रक्त पित श्वेत रंग के पुद्गलों के अवलोकन से चक्षुइन्द्रिय [आंख] का निग्रह करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! चक्षुइन्द्रिय का निग्रह करने से मनोज्ञ अमनोज्ञ रूप में राग द्वेष नहीं करता है राग द्वेष का निग्रह होने से जीव चक्षु इन्द्रिय कर नये कर्म का बन्ध नहीं करता है और प्रथम के बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ३३ ॥ अहो भगवन् ! सुरभिगन्ध दुरभिगन्ध से घ्राणेन्द्रिय (नाक) का निग्रह करने जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ?

सपाउभइ, ससमय परसमय विसारए असंघायणिज्जे भवइ ॥ ५९ ॥ दसण संपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ, दसणसंपन्नयाएणं भवमिच्छत्त छेयणं करेइ, परं न विज्झायइ, अणुत्तरेण नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे सम्मं भावेमाणे विहरइ ॥ ६० ॥ चरित्तसंपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? चरित्त संपन्नयाए णं सेलेसी भावं जणयइ, सेलेसिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलि कम्मंसे खवेइ

के सिद्धान्त को परस्पर मिलाकर शुद्ध वस्तु स्वरूप का भान होता है ॥ ५९ ॥ अहो भगवन् ! दर्शन सम्यक्त्व सहित जीव होने उसे कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! दर्शन युक्त जीव भव करनेके हेतु जो मिथ्यात्व है उस का निकन्दन करता है, वह उत्कृष्ट उस ही भवमें केवल ज्ञानकी प्राप्ति कर सकता है सम्यक्त्वी जीवों का ज्ञान रूप दीपक का प्रकाश कदापि मन्द होता नहीं है उत्कृष्ट केवल ज्ञान तक का प्रकाश का पता सकता है, प्रधान ज्ञान गुण में अपनी आत्मा को स्थापन कर सत्य भाव से आत्मा को भावता हुवा विचरता है ॥ ६० ॥ अहो भगवन् ! सामायिकादि चारित्र सम्पन्न होने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! चारित्र सम्पन्न जीव शैलेशी (पर्वत जैसी भावों की स्थिरता रूप) करण की उपासना करता है और शैलेशी भाव अंगीकार करनेवाला सा-

१ वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम और ४ गौत्र, इन चारों कर्मों का क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त जीवन हो

... ... करेइ ॥ ६१ ॥ सोइंदिय
निग्गहेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सोइंदिय निग्गहेण मणुन्नामणुन्नेसु सद्देसु
रागदोस निग्गहं जणयइ तप्पच्चइय कम्मं न बंधइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥ ६२ ॥
चक्खिंदिय निग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? चक्खिंदिय निग्गहेणं मणुन्ना
मणुन्नेसु रूवेसु रागदोस निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइय कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च
निज्जरेइ ॥ ६३ ॥ घाणिंदिय निग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? घाणिंदिय

सब दुःख का अन्त करता है ॥ ६१ ॥ अहो भगवन् ! श्रोतेन्द्रिय को जीत मनोज्ञ अमनोज्ञ के शब्द से निग्रह करने में जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! श्रोतेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द में राग द्वेष करने से निवर्तता है राग द्वेष से निवृत्ति पाया जीव शब्द कर कर्म बन्धन नहीं करता है और प्रथम बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६२ ॥ अहो भगवन् ! कृष्ण नील रक्त पित श्वेत रंग के पुद्गलों के अवलोकन से चक्षुइन्द्रिय [आंख] का निग्रह करने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! चक्षुइन्द्रिय का निग्रह करने से मनोज्ञ अमनोज्ञ रूप में राग द्वेष नहीं करता है राग द्वेष का निग्रह होने से जीव चक्षु इन्द्रिय कर नये कर्म का बन्ध नहीं करता है और प्रथम बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६३ ॥ अहो भगवन् ! सुरभिगन्ध दुरभिगन्ध से घ्राणेन्द्रिय (नाक) का निग्रह करने जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ?

सूत्र

सपाउणइ, ससमय परसमय विसारए य असंघायणिज्जे भवइ ॥ ५९ ॥ दंसण सपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ, दंसणसपन्नयाएणं भवमिच्छत्त छेयणं करेइ, परं न विज्झायइ, अणुत्तरेणं नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे सम्मं भावेमाणे विहरइ ॥ ६० ॥ चरित्तसपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? चरित्त सपन्नयाए णं सेलेसी भावं जणयइ, सेलेसिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलि कम्मंसे खवेइ

अर्थ

के सिद्धान्त को परस्पर मिलाकर शुद्ध तत्त्व स्वरूप का ज्ञान होता है ॥ ५९ ॥ अहो भगवन् ! दर्शन सम्पन्नता सहित जीव होने से कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! दर्शन युक्त जीव भव करनेके हेतु जो मिथ्यात्व है उस का निकन्दन करता है, यह उत्कृष्ट उस ही भवमें केवल ज्ञानकी प्राप्ति कर सकता है सम्यक्त्वी जीवों का ज्ञान रूप दीपक का प्रकाश कदापि मन्द होता नहीं है इसलिए केवल ज्ञान तक का प्रकाश का पता सकता है, प्रधान दर्शन गुण में अपनी आत्मा को स्थापन कर सत्य भाव से आत्मा को भावता हुवा विचरता है ॥ ६० ॥ अहो भगवन् ! सामायिकादि चारित्र सम्पन्न होने से जीव को कौनसे गुण की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! चारित्र सम्पन्न जीव शैलेशी (पर्वत जैसी योगों की स्थिरता रूप) करण की उपासना करता है और शैलेशी भाव अंगीकार करनेवाला साधु-

१ वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम और ४ गोत्र, इन चारों कर्मों का क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त होकर हो

सूत्र

कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६६॥ कोहविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ? कोहविजएणं खंतिं जणयइ, कोहवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥ ६७ ॥ माणविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? माणविजएणं मद्दवं जणयइ, माणवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ पुव्वबद्धं च, निज्जरेइ ॥ ६८ ॥ मायाविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? मायाविजएणं अज्जवं जणयइ, मायावेयणिज्जं कम्मं न बंधइ,

अर्थ

की निवृत्ति वाला जीव स्पर्श कर नये कर्म का बन्ध नहीं करता है और पहिले बन्धे हुवे कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६६ ॥ अहो भगवन् ! क्रोध कषाय जीतने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! क्रोध कषाय का विजय करने से क्षमा गुन की प्राप्ति करता है क्रोध से जो कर्मों का बन्धन होता है वह उस के नहीं होता है और पहिले बन्धे किये कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६७ ॥ अहो भगवन् ! मान कषाय का विजय करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! मान कषाय का विजय करने से मार्दव गुन—अहंकार रहित पना प्राप्त करता है मान कर जो कर्म बन्धते हैं उन कर्मों का बन्धन वह नहीं करता है और पहिले बन्धे हुवे कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६८ ॥ अहो भगवन् ! माया कषाय का विजय करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! माया कषाय का विजय करने से आर्यता—सरलता रूप गुन की

णिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु गंधेसु रागदोस निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं नबंधइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ॥६४॥ जिब्भिंदिय निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ? जिब्भिंदिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रसेसु रागदोस निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥ ६५ ॥ फासिंदिय निग्गहेणं भंते जीवे किं जणयइ? फासिंदिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु फासेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ तप्पच्चइयं

अहो गौतम! घ्राणेन्द्रिय के निग्रह करने से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ गंध में राग द्वेष का निग्रह [illegible] है गंध में राग द्वेष नहीं करने से जीव घ्राणेन्द्रिय कर नये कर्म की उपार्जना नहीं करता है और प्रथम उपार्जन किये हुवे कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६४ ॥ अहो भगवन्! [illegible] कटु कषाय के रस से रसेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! रसेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ रस में राग द्वेष को प्राप्त नहीं होता है, राग से राग द्वेष से निपजा ऐसा रसेन्द्रिय कर नवीन कर्म का बन्ध नहीं करता है और पहिले बन्धे कर्म की निर्जरा करता है ॥ ६५ ॥ अहो भगवन्—लघु गुरु शीत उष्ण मृदु कठिन रूक्ष स्निग्ध इन आठों स्पर्श से स्पर्शेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है? अहो गौतम! स्पर्शेन्द्रिय का निग्रह करने से मनोज्ञ अमनोज्ञ स्पर्श को प्राप्त हो राग द्वेष नहीं करता है स्पर्श के [illegible]

सूत्र

अर्थ

सूत्र

नवविह दंसणावरणिज्जं पंचविहं अंतराइय, एएतीन्निवि कम्मसे जुगवं खवेइ, तओ पच्छा अणुत्तरं कसिणं पडिपुण्ण निरावरण वितिमिर विसुद्धं लोगालोगप्पभाव केवलवरणाण दसणसमुप्पाडेइ, जाव सजोगी भवइ, ताव इरियावहिय कम्मं नि बंधइ, सुहफरिस दुसमयठिइय त पढमसमए बद्ध विइय समए वेइय तइय समए निज्जिण्ण त बद्ध पुट्ठ उदीरिय वेइय निज्जिण्णं सेयालेय अकम्म यावि भवइ॥७१॥ अह आउय पालइत्ता अंतोमुहुत्तद्धावसेसाए जोगनिरोह करेमाणे सुहुम किरिय

अर्थ

कर्म के क्षय होने से पांच ज्ञानावर्णीय नव दर्शनावर्णीय और पांच अन्तराय, इन तीनों कर्मोके अंशको एकही साथ में क्षय करता है फिर अनुत्तर—सब ज्ञानों में प्रधान कृत्स्न अखण्ड प्रतिपूर्ण आवरन—रहित रुकन रहित, अज्ञान अन्धकार रहित विशुद्ध—निर्मल लोकालोक का प्रकाशक, प्रधान केवल ज्ञान केवल दर्शन की प्राप्ति करता है ये केवलज्ञानी के जहां तक मन वचा काया के योगों की प्रवृत्ति रहती है वहां तक इर्यावही नम बन्धन करते हैं, वह बन्ध सुखप्रद होता है परन्तु दुःख प्रद नहीं होता है उस बन्ध की फक्त दोसमय की ही स्थिति होती है अर्थात् प्रथम समय बन्ध कर दूसरे समय उसे वेद कर तीसरे समय में उस की निर्जरा कर देता है यों इर्यावही कर्म बन्धा, स्पर्शन किया उदय आया भोगवा और वह कर्म क्षय भी होगया इस लिये अनागत काल याने समय में वे कर्म रहित हो जाते हैं ॥ ७१ ॥ अब केवली भगवान का अन्तर्मुहूर्तादि कुछ कम क्रोड पूर्व पर्यंत जितना

मूल

पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६९॥ लोभविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? लोभविजएणं संतोसं जणयइ लोभवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥७०॥ पिज्जदोस मिच्छादसण विजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पिज्जदोस मिच्छादंसण विजएणं नाण दसण चरित्ताराहणयाए अब्भुट्ठेइ अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्मगंठि विमोयणयाए तप्पढ- मयाए जहाणुपुव्वीए अट्ठवीसविहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ, पंचविहं नाणावरणिज्जं

अर्थ

प्राप्ति होती है, माया कर जो कर्म बन्धते हैं वे उस के नहीं बंधते हैं और पहिले बन्धे कर्मों की निर्जरा करता है ॥ ६९ ॥ अहो भगवन् ! लोभ कषाय का विजय करने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! लोभ कषाय का विजय करने से संतोष रूप गुन की प्राप्ति होती है लोभ कर जो कर्म बन्धते हैं व उस के नहीं बंधते हैं और पहिले बन्धे कर्मों की निर्जरा होती है ॥ ७० ॥ अहो भगवन् ! राग द्वेष तथा मिथ्यात्व दर्शन इन तीनों को जीतने से जीव को कौन से गुन की प्राप्ति होती है ? अहो गौतम ! राग द्वेष मिथ्यात्व दर्शन का विजय करने से ज्ञान दर्शन व चरित्र रूप गुन की आराधना करने में जीव उद्यमी होता है और जो आठ कर्म से रूप हो ऐसी आठ कर्म रूप ग्रन्थी को क्षय करने का उद्यम करता है और जिस मोहनीय कर्म का प्रथम क्षय नहीं हुआ था उस मोहनीय कर्म की अट्ठाईसही प्रकृतिका अनुक्रम से क्षय करता है मोहनीय

मूल

बुज्झइ जाव अंतंकरेइ ॥ ७२ ॥ एस खलु सम्मत्त परक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठे समणेणं भगवया महावीरेणं आघविए, पन्नविए, परूविए, दसिए, उवदसिए ॥ त्ति बेमि॥

इति सम्मत्त परक्कमो नामज्झयणं सम्मत्तं ॥ २९ ॥

अर्थ

त्याग कर वक्र नहीं परन्तु ऋजु श्रेणी आकाश की श्रेणी में प्रतिबद्ध हुवे जितने आत्म के प्रदेश हैं उतने ही आकाश प्रदेश का स्पर्श न करता उपरान्त प्रदेश को बिना छाये एक ही समय मात्र में ऊर्ध्वगति में मोक्षगति पर्यन्त गमन करे वहां ज्ञान उपयोग सहित सर्व भव काल की सिद्ध होवे सर्वज्ञ सर्वदर्शी बुद्ध बने संसार से मुक्त होवे, शीतलीभूत होवे सर्व दुःख का अन्त कर परम सुख ही सुख के भोक्ता बने, ॥ ७१ ॥ श्री सुधर्मा स्वामीजी कहते हैं कि अहो जम्बू ! निश्चय से यह सम्यक्त्व में पराक्रम-गुणता का कर्ता अध्ययन श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामीजी ने सम्यक् प्रकार कहा, सब ७२ बोल का फल बताया, स्वरूप कर प्ररूपन किया, बहुत भेद दृष्टान्त कर समझाया, द्वादश परिषदा में उपदेशा मैंने जैसा भगवंत के मुख से सुना वैसा तुझे कहा ॥ इति सम्यक्त्व पराक्रम नामका गुनतीसवा अध्ययन समाप्तम् ॥ २९ ॥

सूत्र

अप्पडिवाई सुक्कज्झाणं झायमाणे तप्पढमयाए मणजोग निरुम्भइ, वइजोग निरुम्भइ, आणपाणनिरोहं करेइ, इसि पंच रहस्सक्खरुच्चारणद्धाए य णं अणगारे समुच्छिन्नकिरियं अनियट्टि सुक्कज्झाणं झियायमाणे वेयणिज्जं आउयं णामं गोयं च एए चत्तारि कम्मं जुगवं खवेइ ॥ ७२ ॥ तओ ओरालिय कम्माइं सव्वाहिं विप्पजहित्ता उज्जु सेढि पत्ते अफुसमाणगई उड्ढं एगसमएणं अविग्गहेणं तत्थ गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ

अर्थ

आयुष्य होवा है उतना पालन कर शेष अन्तर मुहूर्त आयुष रहे तब मन वचन काया के योगों का व्यापार-प्रवृत्ती का निरुंधन कर जिस को ग्रहण कर पीछा पडना न हो ऐसा शुक्ल ध्यान का तीसरा भेद को ध्याते हुवे प्रथम मन का व्यापार का रुंधन करे फिर वचन जोग का निरुंधन करे फिर काया योग का रुंधन करे फिर श्वासोश्वास को रुंधे. फिर अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पांचों स्वर का उच्चार करने में जितना काल लगता है उतने काल में शैलेशी (पर्वत जैसी) अवस्था में रहे वे साधु मन वचन काय की क्रिया रहित बन के कर्मों का क्षय किया बिना सध्यान की निवृत्ति होवे नहीं ऐसा शुक्ल ध्यान का चौथा पाया को ध्याकर १ वेदनीय २ आयुष्य, ३ नाम, और ४ गोत्र इन चारों कर्मों के अंश को एक ही वक्त में क्षय करे ॥ ७२ ॥ तब फिर—१ औदारिक, २ तेजस और ३ कार्मन इन तीनों शरीर का सर्वथा

दोस समज्जिय ॥ जहाय खवइ भिक्खू, त मे एगमणो सुण ॥ ४ ॥ जहा महा तलायस्स सन्निरुद्धे जलागमे ॥ उस्सिचणाए तवणाए, कमेण सोसणा भवे ॥ ५ ॥ एवं तु सजयस्सावि, पाव कम्मनिरासवे ॥ भव कोडी सचिय कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ ॥ ६ ॥ सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भतरो तहा ॥ बाहिरो

५ समिति, ३ गुप्ति, ४ अकषायी, ५ जितेन्द्रि, ३ अमायी ३ निशल्य इन २९ गुन कर रहित पना प्रथम था उस वक्त जीवन राग द्वेष कर अतिशय पाप कर्मों का उपार्जन किया था उन कर्मों का आगम सो २९ गुन धार कर रोक दिया परंतु प्रथम के सचित कर्म बाकी रहे हैं उसे तप कर क्षय करते हैं वही तप का अधिकार मैं तुझे कहता हूं सो तू एकाचित्त श्रवण कर ॥ ४ ॥ इस पर दृष्टान्त जैसे महा तलाव में जो नालों कर पानी आता था उसे तो पाल बान्ध नालों को बन्ध कर रोक दिया और अन्दर रहा हुवा प्रथम के पानी को उलीचने से तथा सूर्य के आताप से अनुक्रम से शोष कर सुकाते हैं तब वह तलाव निर्लेप होता है ॥ ५ ॥ इस ही प्रकार निश्चय से संयम व्रत कर नये आते हुवे कर्मों को तो रोक दिये और प्रथम के भवकोटी के सचित कर्मों को तपश्चर्या कर क्षय करते हैं ॥ ६ ॥ वह कर्म क्षय करने का तप दो प्रकार का कहा है तद्यथा—१ बाह्य जो तप शरीर की दुर्बलतादि लक्षणों द्वारा प्रगट में देखने में आवे, और २ आभ्यन्तर जो तप प्रगट देखने में सो न आवे परन्तु गुप्त

॥ तपमार्ग नामक त्रिंशत्तम मध्ययनम् ॥

मूल—जहा उ पावगं कम्मं राग दोस समज्जियं ॥ खवेइ तवसा भिक्खू तमेगग्गमणो सुण ॥ १ ॥ पाणवह मुसावाया अदत्त मेहुण परिग्गहा विरओ ॥ राई भोयण विरओ जीवो होइ अणासवो ॥ २ ॥ पंचसमिओ तिगुत्तो, अकसाओ जिइंदिओ ॥ अगारवो य निस्सल्लो, जीवो होइ अणासवो ॥ ३ ॥ एएसिं तु विवच्चासे राग

अर्थ—गुनतीसवे अध्ययन में सम्यक्त्व पराक्रम कहा सो जो सम्यक्त्व सहित तप करे वही योग्य गिना जावे इस लिये तीसवे अध्ययन में तप का कथन करते हैं श्री सुधर्मा स्वामीजी कहते हैं कि अहो जम्बू ! इस जीवने जो राग द्वेष करके पाप कर्मों की उपार्जना की है उन कर्मों का नाश साधु तप करके करते हैं उस का अधिकार मैं कहता हूं सो तू दृढ चित्त कर श्रवण कर ॥ १ ॥ प्राणवध—जीव हिंसा, मृषावाद झूठ बोलना व अदत्तादान-चोरी करना, मैथुन स्त्री आदि का सेवन, परिग्रह-द्रव्यों पर मूर्च्छा और रात्रि में चारों आहार का भोगवना इन छ ही कामों का जिनोंने त्याग किया है वे जीवों नवीन कर्मों को ग्रहण करने से निवर्ते हैं ॥ २ ॥ और पांच समिति समिता तीन गुप्ति गुप्ता चारों कषाय रहित, पांचों इन्द्रिय जीतनेवाले ऋद्धि आदि तीनों गर्व रहित, मायादि तीनों शल्य रहित इन गुन कर सहित होते हैं वे भी नये कर्मों को ग्रहण करने से [कर्म बन्ध से] निवर्ते हैं ॥ ३ ॥ अहो शिष्य ! उक्त ५ महाव्रत,

दोस समज्जिय ॥ जहाय खवइ भिक्खू, त मे एगमणो सुण ॥ ४ ॥ जहा महा तलायरस सन्निरुद्धे जलागमे ॥ उस्सिचणाए तवणाए, कमेण सोसणा भवे ॥ ५ ॥ एवं तु सजयस्सावि, पाव कम्मनिरासवे ॥ भव कोडी सचिय कम्म, तवसा निज्जरिज्जइ ॥ ६ ॥ सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भतरो तहा ॥ बाहिरो

५ सामिति, ३ गुप्ति, ४ अकषायी, ५ जितेन्द्रि, १ अमायी १ निशल्य इन २९ गुन कर रहित पना प्रथम था उस वक्त जीवन राग द्वेष कर अतिशय पाप कर्मों का उपार्जन किया था उन कर्मों का आगम तो २९ गुन प्राप्त कर रोक दिया परंतु प्रथम के संचित कर्म बाकी रहे हैं उसे तप कर क्षय करते हैं वही तप का अधिकार मैं तुझे कहता हूं सो तू दत्तचित्त श्रवण कर ॥ ४ ॥ इस पर दृष्टान्त जैसे महा तलाव में जो नालों कर पानी आता था उसे तो पाल बान्ध नालों को बन्ध कर रोक दिया और अन्दर रहा हुवा प्रथम के पानी को उलीचने से तथा सूर्य के आताप से अनुक्रम से शोष कर सुकाते हैं तब वह तलाव निर्लेप होता है ॥ ५ ॥ इस ही प्रकार निश्चय से संयम व्रत कर नये आते हुवे कर्मों को तो रोक दिये और प्रथम के भवकोटी के संचित कर्मों को तपश्चर्या कर क्षय करते हैं ॥ ६ ॥ यह कर्म क्षय करने का तप दो प्रकार का कहा है तद्यथा—१ बाह्य जो तप शरीर की दुर्बलत्वादि लक्षणों द्वारा प्रगट में देखने में आवे, और २ आभ्यन्तर जो रूप प्रगट देखने में तो न आवे परन्तु गुप्त

सूत्र

छव्विहो वुत्तो एव मभ्भतरो तवो ॥ ७ ॥ अणसण मुणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ ॥ काय किलेसो सलीणया य बज्झो तवो होइ ॥ ८ ॥ इत्तरिय मरण कालाय, अणसणा दुविहा भवे ॥ इत्तरिय सावकखा निरवकखा उविइज्जिया

अर्थ

शने ही कर्मों का क्षय करे इस में बाह्य तप के भी छ प्रकार कहे हैं और आभ्यन्तर तप के भी छ प्रकार कहे हैं ॥ ७ ॥ अब छ प्रकार के बाह्य तप के नाम कहते हैं—१ अनशन, २ ऊणोदरी, ३ भिक्षाचरी ४ रस परित्याग, ५ काया क्लेश और ६ प्रति संलिनता यह छ प्रकार का बाह्य तप कहा ॥ ८ ॥ इस में प्रथम अनशन तप का स्वरूप कहते हैं—अनशन तप दो प्रकार का तद्यथा—१ इत्तरीय थोडे (मर्यादित) काल का और २ अवकाशिक यावज्जीव का इस में इत्तरिये तप छ प्रकारका कहा है तद्यथा—१ श्रेणि तप, नोकारसी, पोरसी यावत् एक उपवास दो उपवास यावत् छ महिने के उपवास भी छ महिने उपरांत तप नहीं है २ प्रतर तप की विधी यंत्र से जानना सोले कोठे में जिस प्रकार अंक भरे हैं उस प्रकार अनुक्रम से तप करे

प्रतर तप

१	२	३	४
२	३	४	१
३	४	१	२
४	१	२	३

तप ३ इस प्रकार ८×८+६४ कोष्टक में अंक आवे वैसा तप करे यह घन तप, ४ ऐसे ६४×६४=४००६ कोष्टक में अंक आवे वैसा तप करे यह वर्ग तप' ५ ऐसे ही ४०९६×४०९६=१६७७७२१ कोष्ट में अंक आवे वैसा तप करे यह 'वर्गावर्ग तप' और ६ प्रकीर्ण तप सो कनका वली रत्नावली, मुक्तावली, एकावली लघुसिंह क्रीडा

॥ ९ ॥ जो सो इत्तरियतवो, सो समासेण छव्विहो ॥ सेढितवो पयरतवो, घेणो य तह होइ वग्गो य ॥ १० ॥ ततो य वग्गवग्गो, पंचमो छट्ठओ पइण्णतवो ॥ मणइच्छिय चित्तत्थो, नायव्वो होइ इत्तरिओ ॥ ११ ॥ जा सा अणसणा मरणे दुविहा सा वियाहिया ॥ सवियार, अवियारा, कायचिट्ठं पई भवे ॥ १२ ॥ अहवा सपरिकम्मा, अपरिकम्मा य आहिया ॥ निहारिमनीहारी, आहारच्छेओ दोसु वि

अर्थ

सर्वतोभद्र प्रतिमा, भद्रप्रतिमा, महा भद्रप्रतिमा, वज्रमध्यप्रतिमा, जवमध्यप्रतिमा, गुणरत्न संवत्सर तप, वर्ध आयंबिल वर्धमान तप इत्यादि अनेक प्रकार के जानना यह इतरीये तप के भेद हुवे इस प्रकार अनेक प्रकार के तप मोक्ष की अभिलाषा कर स्वर्थ स्वार्थ करते हैं जिस के भेद कहे ॥ ११ ॥ अब जो आवकाहिक तप जावज्जीव सम्बन्धी है उसे अनसन तपभी कहते हैं उस के दो भेद, तद्यथा-१ जो फक्त तीन आहार के या चारों आहार के प्रत्याख्यान जावज्जीव पर्यंत करे परन्तु हलन चलन विहारादि करे वह भक्त प्रत्याख्यान और२ जो आहार के तथा शरीर के दोनों के प्रत्याख्यान कर कटी हुई वृक्षकी डाली की तरह हलन चलन रहित जावज्जीव रहे सो पादोपगमन तप ॥१२॥ अथवा और भी अवकाहिक तप के छ प्रकार कहे हैं तद्यथा-१ जो भक्त प्रत्याख्यान कर अन्य साधुओं के पास से वैयावच करावे वह प्रति क्रमण सहित होता है अर्थात् वे देवसी रायसी आदि प्रतिक्रमण करते हैं और २ जो पादोपगमन है वह अन्य साधु के पास वैयावच नहीं कराते हैं तथा प्रतिकमण भी नहीं करते हैं और भी दो भेद-१ एक

सूत्र

॥ १३ ॥ ओमेयरण पचहा, समासेण वियाहिय ॥ दव्वओ खेत्त कालेण, भावेण पज्जवेहि य ॥ १४ ॥ जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओम तु जो करे ॥ जहन्नेणेग सित्थाइ एव दव्वेण ऊ भवे ॥ १५ ॥ गामे नगरे तह रायहाणि, णिगमे य आगरे पल्ली । खेड कव्वड दोणमुहं, पट्टण मडंम संवाहे ॥ १६ ॥

अर्थ

ग्राम में करे उन के शरीर का निहारन होवे और जो ग्राम के बाहिर गिरी कंदरादि में करे उन के शरीर का निहारन नहीं होवे इन दोनों प्रकार के तप में यावज्जीव आहार का त्याग करा इति अनशन तप करा ॥ १३ ॥ अब दूसरा ऊणोदरी तप कहते हैं—इच्छा की पूरती नहीं करे सो ऊणोदरी तप पांच प्रकार से करते हैं यथा—१ द्रव्य से २ क्षेत्र से, ३ काल से, ४ भाव से और ५ पर्याय से ॥१४॥ जिस जीव का जितना आहार होवे उस में से एक ग्रास-कवल मात्र कुछ भी कम आहार करें उसे द्रव्य से ऊणोदरी तप कहना ॥ १५ ॥ क्षेत्र से—१ जहां वस्तु का कर लगे ऐसे ग्राम में २ जहां वस्तु का कर नहीं लगे ऐसे नगर में, ३ राजा रहता हो ऐसी राज्यधानी में, ४ बनीये की बस्ती बहुत हो ऐसे निगम में, ५ सुवर्णादि की खान हो ऐसे आगर में, ६ चोरों की वसति अधिक हो ऐसी पल्ली में, ७ जहां धूलका कोट हो ऐसे खेड़े में, ८ छोटा ग्राम हो ऐसे कर्बट में, ९ जहां जलपथ स्थलपथ दोनों हो ऐसे द्रोणमुख (बंदर) में, १० जहां सब प्रकार के पदार्थों मिले ऐसे पाटन में, ११ जहां चारों दिशाओं में प्रकार २

आसमपए विहार, सन्निवसे समायघोसे य ॥ थलिसेणा खधारे, सत्थे संवट्ट कोट्टे य ॥ १७ ॥ वाडेसुव रच्छासु, व घरेसुवा एवमित्तिय खेत्त ॥ कप्पइ उ एवमाई एव खेत्तेण ऊभवे ॥ १८ ॥ पेडा य अद्धपेडा, गोमुत्तिय पयंग वीहिया चेव ॥ सम्बुक्का-

कोश ग्राम न हो ऐसे मरुप में १२ पर्वत पर ग्राम हो ऐसे सवाह में, १३ जहां तापसों की वस्ती हो ऐसे आश्रम में, १४ जहां भिक्षुकों की वस्ती हो ऐसे विहार में, १५ जहां गोपालकों की वस्ती हो ऐसे सन्नी वस में, १६ जहां पंथीजनों विश्राम लेते हों एसी सराय-धर्मशालाओं में, १७ जहां गवादि गोकुल रहता हो एसे घास में १८ रेती के ढग हो ऐसी थली में, १९ जहां चतुरंगिणी सेना रहती हो ऐसे सेना स्थान में २० जहां सेना का उतारा होता हो ऐसे खधार में, २१ जहां सार्थवाही उतरते हों ऐसे सार्थ में, २२ कुछ भय प्राप्त होने से मनुष्यों छिपकर रहे ऐसे समास में २३ किल्ले के अंदर वस्ती हो ऐसे कोट में २४ ग्राम के पाडे-मोहल्ले में २५ घरान्तर की गलीयों में, २६ घर की कोटडीयों में इत्यादि स्थान में आहार प्राप्त हो उसे ग्रहण करे यह क्षेत्र से ऊनोदरी ॥ १६ १७ ॥ और भी क्षेत्र से ऊणो-दरी के छ भेद कहे हैं, तद्यथा—१ पेटी (सदूका) के आकार से चारों कोने के चार घर की गोचरी करे, २ आधी पेटी के आकार दो कोने के दो घर स्पर्शे ३ बैल के मूत्र की तरह एक घर उधर का एक इधर का यों गोचरी करे, ४ पतंगीया उडे त्यों फुटकर घरों की गोचरी करे ५ शंखावर्त एक

सूत्र

वद्धायपर्गंतु पच्चागयाछट्ठा ॥ १९ ॥ दिवसस्स पोरुसीणं, चउण्हं पि उ जत्तिओ भवे कालो ॥ एवं चरमाणो खलु कालोमाण मुणेयव्व ॥ २० ॥ अहवा तइयाए पोरिसीए, ऊणाइ घासमेसतो ॥ चउभागूणाएवा एवं कालेण ऊ भवे ॥ २१ ॥ इत्थी वा पुरिसोवा, अलंकिओ वा नलंकिओ वा वि॥अन्नयर वयत्थो वा अन्नयरेण ववत्थेणं ॥ २२ ॥ अन्नेण विसेसेण, वण्णेण भावमणुमुयते उ ॥ एवं चरमाणो खलु भावो माण मुणेयव्व ॥२३॥ दव्वे खेत्ते काले भावम्मि य आहिया उ जेभावा

अर्थ

ऊपर का एक नीचे का फिर एक ऊपर का इस प्रकार गौचरी करे ६ सलंग सतरपंथ घरों की गौचरी करे ॥ १९ ॥ अब काल से ऊणोदरी तप कहते हैं-दिन के चार प्रहर में से हर किसी एक प्रहर में आहार ग्रहण करूंगा अमुक प्रहर में भोगवूंगा ऐसा अभिग्रह करे यह काल से ऊणोदरी तप ॥ २ ॥ अथवा तीसरे प्रहर में कुछ कम तीसरे प्रहर में, चौथे प्रहर में अथवा पांच भाग कम पोरसी में इत्यादि काल में आहार आदि मिलेगा तो लेवूंगा यह काल से ऊणोदरी तप ॥ २१ ॥ अथ भाव से ऊणोदरी तप कहते हैं-स्त्री अथवा पुरुष भूषणों कर अलंकृत हो व नहीं हो, अनेक प्रकार के वस्त्र में से शाटिकादि अमुक वस्त्र का धारक हो, अमुक विशेषन नाम का धारक हो, अमुक अवस्थावाला हो, कृष्णादि अमुक वर्णवाला हो, इत्यादि धारना धमाने दातार हो उस के हाथ से आहार ग्रहण करूंगा इस प्रकार अभिग्रह धारन करे उसे भाव ऊणोदरी तप कहना ॥ २२ २३ ॥ अब पर्याय ऊणोदरी तप

सूत्र

एएहि ओमचरओ, पज्जवचरओ भवे भिक्खू ॥ २४ ॥ अट्ठविह गोयरग्ग तु, तहा सत्तेव एसणा ॥ अभिग्गहा य जे अन्ने, भिक्खायरिय माहिया ॥ २५ ॥ खीर दहि सप्पिमाई, पणीय पाणभोयणं ॥ परिवज्जणं रसाण तु भणिय रसविवज्जण ॥ २६ ॥

अर्थ

कहते हैं द्रव्य से क्षेत्र से काल से और भाव से उक्त कथन प्रमाण चारों प्रकार से साथ ही अभिग्रह धारण करे उसे पर्याय उनोदरी कहते हैं यह दूसरा उणोदरी तप हुवा ॥ २४ ॥ अब तीसरा भिक्षाचरी तप कहते हैं—भिक्षाचरी के ८ भेद—तथथा—१ पूरी सन्दूक के आकार, २ आधी सदूक के आकार ३ गोमुत्र के आकार, ४ पतंगिये के आकार, ५ अभ्यतर शंखावर्त, ६ बाह्य शंखावर्त, ७ सीधा और ८ बांका यों आठ प्रकार से भिक्षाचरी करे तथा एषणा के सात भेद—१ संसठ भरे हाथ से ले, २ असंसठ-विना भरे हाथ से ३ उद्धड जिस द्रव्य से भाजन तथा हाथ भरा वही द्रव्य लेना, ४ अल्पलेपी लीका हुवा धान्यादि ग्रहण करे ५ उदग्राहिता-मालक के ही हाथ से ले ६ पर गृहता, अन्य के हाथ से ले और ७ उज्झित धर्म जो पदार्थ फेंक देना रूकाडे पर डालने जावे वैसा ले तथा उनोंदरी में कहे मुजब ही द्रव्य क्षेत्र काल भाव के भिक्षाचरी के अभिग्रह धारन करे उसे भिक्षाचरी तप कहना यह तीर्थंकरों का कहना है ॥ २५ ॥ अब चौथा रस परित्याग तप कहते हैं—१ दूध, २ दही, ३ घृत ४ तेल, ५ मीठाइ, इन पांचों विगय के त्याग करें उसे रस परित्याग तप कहना ॥ २६ ॥ अब

सूत्र

थद्वायपयंगंतु पच्चागयाछट्ठा ॥ १९ ॥ दिवसस्स पोरुसीण, चउण्ह वि उ जत्तिओ भवे कालो ॥ एवं चरमाणो खलु, कालोमाण मुणेयव्व ॥ २० ॥ अहवा तइयाए पोरिसीए, ऊणाइ घासमेसतो ॥ चउभागूणाएवा एवं कालण ऊ भवे ॥ २१ ॥ इत्थी वा पुरिसोवा, अलंकिओ वा नलंकिओ वा वि॥अन्नयर वयत्थो वा अन्नयरेण ववत्थेण ॥ २२ ॥ अन्नेण विससेण, वण्णेण भावमणुमुयते उ ॥ एवं चरमाणो खलु भावो माण मुणेयव्व ॥२३॥ दव्वे खेत्ते काले भावम्मि य अहिया उ जेभावा

अर्थ

ऊपर का एक नीचे का फिर एक ऊपर का इस प्रकार गौचरी करे ६ सलंग सवरस्त घरों की गौचरी करे ॥ १९ ॥ अब काल से ऊणोदरी तप कहते हैं-दिन के चार प्रहर में से हर किसी एक प्रहर में आहार ग्रहण करूंगा अमुक प्रहर में भोगवूंगा ऐसा अभिग्रह करे यह काल से ऊणोदरी तप ॥ २ ॥ अथवा तीसरे प्रहर में कुछ कम तीसरे प्रहर में, चौथे प्रहर में अथवा पांच भाग कम पोरसी में इत्यादि काम में आहार आदि मिलेगा तो लेवूंगा यह काल से ऊणोदरी तप ॥ २१ ॥ अब भाव से ऊणोदरी तप कहते हैं-स्त्री अथवा पुरुष भूषणों कर अलंकृत हो व नहीं हो, अनेक प्रकार के वस्त्र में से साटिकादि अमुक वस्त्र का धारक हो, अमुक विशेषण नाम का धारक हो, अमुक अवस्थावाला हो, कृष्णादि अमुक वर्णवाला हो, इत्यादि धारना धमाने दातार हो उस के हाथ से आहार ग्रहण करूंगा इस प्रकार अभिग्रह धारन करे उसे भाव ऊणोदरी तप कहना ॥ २२ २३ ॥ अब पर्याय ऊणोदरी तप

सूत्र

पायच्छित्तं तु दसविहं ॥ जं भिक्खू वहई सम्मं, पायच्छित्तं तमाहियं ॥ ३१ ॥
अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं तहेवासणं दायणं ॥ गुरुभत्तिभाव सुस्सुसा, विणओ

अर्थ

१ आलोचना किसी कार्य के लिये स्थानक बाहिर जा पीछा आवे तब जिस प्रकार वह कार्य किया हो सो गुरु के आगे प्रकाश करे, यह आलोचना प्रायश्चित, २ प्रतिक्रमण आहार विहार भाषण में विना उपयोगसे लगे पापों की शुद्धि के लिये प्रतिक्रमण प्रायश्चित ३ दूसरा प्रायश्चित का काम उपयोगयुक्त करे जिस का आलोचना प्रतिक्रमण दोनों प्रायश्चित ४ विवेक-अशुद्ध आहारादि को परिठावना का प्रायश्चित ५ दुःस्वप्नादि पाप का कायुत्सर्ग प्रायश्चित ६ सचितादि का सघट्ट कावगैरा का आंयबिल उपवासादि तप का प्रायश्चित ७ अपवाद मार्ग सेवनादि का पांच दिनादि दीक्षा का छेद का प्रायश्चित ८ जानकर हिंसादि पाप सेवनादि का मूल से पुनः संयम देने का प्रायश्चित ९ अनवस्थित स्वालग तथा परालग का क्रूर मार से प्रहार आदि पाप लगाने वाले के पास ऐसा कठिनतप करावे की उससे दूसरे के सारे विना उठा नहीं जावे यह अनवस्थ प्रायश्चित और १० पारंचिय प्रवचन उत्थापनादि पाप के सेवन करने वाले को ६ महिने से १२ वर्ष पर्यंत संघ के बाहिर रख फिर दीक्षित करे यह पारंचित प्रायश्चित, इन दशों प्रायश्चितों को सम्यक् प्रकार सेवन करे, यह प्रायश्चित तप ॥ ३१ ॥ दूसरा विनय तप—१ गुरु आदि बड़ों को आते देखकर उन के सन्मुख जावे, २ दोनों हाथ जोड वार्तालाप करे, ३ जाते आते प्रत्यपण पद मि ' सम्म

सूत्र

ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा ॥ उग्गा जहा धरिज्जंति, कायकिलेसं तमाहियं ॥ २७ ॥ एगंतमणावाए इत्थीपसु विवज्जिए ॥ सयणासण सेवणया, विवित्त सयणासण ॥२८॥ एसो बाहिरग तवो, समासेण वियाहिओ ॥ अब्भिंतरो तवोएत्तो, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥ २९ ॥ पायच्छित्त विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ॥ झाणं च विउस्सग्गो, एसो अब्भिंतरो तवो ॥३०॥ आलोयणारिहाईयं,

अर्थ

पांचवा कायक्लेश तप कहते हैं—एक स्थान खडा रहे या बैठा रहे, जमीन को पांव लगा कुरसी पर बैठे फिर कुरसी निकाल ले वह उस ही प्रकार बैठा रहे वह वीरासन दंडासना-दोनों लम्बे हाथ कर खडा रहे इत्यादि अनेक प्रकारके आसनसे स्थिर रहे, मोक्ष मार्गकी प्राप्ति करने लिये काया को यथार्थ कष्ट पहोंचावे उसे कायक्लेश तप कहा है ॥ २७ ॥ अब छट्ठा प्रतिसंलीनता तप कहते हैं एकान्त जहां स्त्री पशु आदि चित्त को विभ्रम करनेवाले की वस्ती न हो वैसा शैय्या [स्थानक] आसन का सेवन कर पांचों इन्द्रिय चारों कषाय तीनों योगों का निग्रह कर रहे वह छट्ठा प्रतिसंलीनता तप जानना ॥ २८ ॥ अहो जम्बू ! यह छ प्रकार के बाह्य तप का स्वरूप कहा अब आगे छ प्रकार के आभ्यन्तर तप का स्वरूप अनुक्रम से कहता हूं उसे तुम चित्त श्रवण कर ॥ २९ ॥ आभ्यन्तर तप भी छ प्रकार के होते हैं उन के नाम—१ प्रायश्चित्त २ विनय, ३ वैयावृत्य, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान, और ६ व्युत्सर्ग यह छ आभ्यन्तर तप जानना ॥ ३० ॥ प्रथम प्रायश्चित्त तप के १० प्रकार, तद्यथा—

धम्मसुक्काइ झाणाइं झाणं तं तु बुहा वए॥ ३५ ॥सयणासणठाणे वा,जे उ भिक्खू न वावरे ॥ कायस्स विउसग्गो छठो सो परिकित्तिओ ॥ ३६ ॥ एवं तवं तु दुविहं, जे सम्मं आयरे मुणी ॥ सो खिप्पं सव्व संसारा, विप्पमुच्चइ पंडिओ ॥ ३७ ॥ त्तिबेमि ॥ इति श्री तवमग्ग अज्झयणं सम्मत्त ॥ ३० ॥ * *

ध्यान अप्रशस्त हैं इन को छोडकर—वीतरागकी आज्ञा का, कर्म से होते अपाय का, शुभाशुभ कर्मों का, और लोक के संस्थान का विचार करे सो धर्म ध्यान और एकत्ववीतर्क, अन्यत्ववीतर्क, सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति समूच्छिन्नक्रिया अनिवृत्ति सो शुक्लध्यान यह दो ध्यान प्रशस्त अच्छे हैं इनको चित्तकी दृढता से समाधीवंत ध्यावे उसे ध्यान तप कहना ॥ ३५ ॥ अब छठा कायोत्सर्ग तप कहते हैं—सोता हुवा बैठा ऊभारहा कायुत्सर्ग करे हलन चलन नहीं करे वह कायुत्सर्ग तप यह छ प्रकार का अभ्यन्तर तप कहा ॥ ३६ ॥ यह छ प्रकार का बाह्य तप और छ प्रकारका अभ्यन्तर यों बारे प्रकार का तप कहा उसें साधु सम्यक् प्रकार समाचारे आदरे वे पंडित संसार समुद्र से शीघ्र मुक्त होवे यों सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि अहो जंबू ! जैसा मैंने सुना वैसा तुझे कहा ॥ इति तप नामक तीसवा अध्ययन समाप्त ॥ ३०॥

सूत्र

एस वियाहिओ ॥ ३२ ॥ आयरिय माईए, वेयावच्चमि दसविहे ॥ आसेवण जहा थाम, वेयावच्च तमाहिय ॥३३॥ वायणा पुच्छणा चेव तहेव परियट्टणा ॥ अणुपेहा धम्मकहा, सज्झाओ पचहा भवे ॥ ३४ ॥ अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता,झाएज्जा सुसमाहिए ॥

अर्थ

करे ४ आसन छोड खडा रहे तथा उन को आसन का आमंत्रण करे, ५ यथा उचित उन की भक्ति करे, ६ अन्तःकरण की प्रीति पूर्वक गुरु आज्ञा को इच्छे तथा १ ज्ञान का २ दर्शन का ३ चारित्र का, ४ योगों का, ५ लोक व्यवहार इत्यादि ४९ प्रकार का विनय का सांचरन करे यह विनय तप ॥ ३२ ॥ तीसरा वैयावच्च तप कहते हैं—१ आचार्य, २ उपाध्याय, ३ स्थविर, ४ तपस्वी ५ रोगी ६ नवदीक्षित-शिष्य, ७ स्वधर्मी, ८ कुल—गुरु भ्रात, ९ गण-एक सम्प्रदाय के और १० संघ-चारों तीर्थ इन दशों की अपनी शक्ति प्रमाने सेवा भक्ति करे यह वैयावच्च तप ॥ ३३ ॥ चौथा स्वाध्याय तप पांच प्रकार का—१ गुरु आदि को विनय भक्ति से प्रसन्न कर उन के पास सूत्रादि की वांचनी लेवे तथा आप स्वयं वांचे यह वांचना, २ संदेह निवारन करने प्रश्नादि पूछे यह पूछना, ३ पठार्थ पढे हुए को वारम्वार फेरे यह परीयट्टना, ४ सूत्रार्थ को दीर्घ दृष्टि से विचार करे यह अनुप्रेक्षा और ५ धर्मोपदेश देवे यह धर्म कथा यह पांच प्रकार स्वाध्याय तप जानना ॥ ३४ ॥ अब पांचवा ध्यान तप कहते हैं-ध्यान चार प्रकार के इष्ट का संयोग, अनिष्ट का वियोग, रोग का नाश और भोग की चाह करे सो आर्तध्यान, हिंसा झूठ चोरी सरीर सरक्षण का अनुबन्ध करे सो रौद्रध्यान यह दोनों

सूत्र

जे भिक्खू वज्जइ निच्च, से न अच्छइ मंडले ॥ ४ ॥ दिव्वे य जे उवसग्गे, तहा तेरिच्छ माणुसे ॥ जे भिक्खू सहई सम्म, से न अच्छइ मंडले ॥ ५ ॥ विगहा कसाय सन्नाण, झाणाणं चदुय तहा ॥ जे भिक्खू वजए निच्च से न अच्छइ मंडले ॥ ६ ॥ वएसु इंदियत्थेसु, समिईसु किरियासु य ॥ जे भिक्खू जयइ निच्च,

अर्थ

फल का मांगना) शल्य और ३ मिथ्यात्व दर्शन शल्य, इन तीनों के तीन २ भेदो को जो साधु सदैव आत्मा से दूर करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ ४ ॥ देवता सम्बन्धी मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यच सम्बन्धी इन तीनों प्रकार में से जो उपसर्गों-संकटों प्राप्त होवे उसे समभाव सहे वह संसार मंडल में परिभ्रमन नहीं करे ॥ ५ ॥ १ स्त्री कथा, २ भोजन कथा ३ देश कथा, और ४ राजकथा यह चार विकथा १ क्रोध, २ मान, ३ माया और ४ लोभ, यह चार कषाय, १ आहार संज्ञा, २ भयसंज्ञा, ३ मैथुन संज्ञा, और ४ परिग्रह संज्ञा यह ४ संज्ञा और १ आर्त ध्यान तथा रौद्र ध्यान, इन सब को सदैव काल आत्मा से दूर कर धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान ध्यावेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ ६ ॥ १ अहिंसा, २ सत्य, ३ दत्त, ४ ब्रह्मचर्य, और ५ निर्ममत्व इन पांच महा व्रत की १ श्रोत्र, २ चक्षु ३ घ्राण, ४ रस और ५ स्पर्श इन पांचों इन्द्रिय के अर्थ में १ ईर्या, २ भाषा, ३ एषणा, ४ आदान निक्षेपना, और ५ परिठावणिया यह पांच समिती १ कायिकी, २ आधिकरणी, ३ पाउसिका, ४ परितावणी, और ५ प्राणातिपातकी इन पांच क्रिया में इन सब को जो

॥ चरणविधि नामकं एकत्रिंशत्तम मध्ययनम् ॥

चरणविहिं पवक्खामि, जीवस्स उ सुहावहं ॥ जं चरित्ता बहु जीवा तिण्णा संसार सागरं ॥ १ ॥ एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं ॥ असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं ॥ २ ॥ रागदोसे य दो पावे, पावकम्म पवत्तणे ॥ जे भिक्खू रुम्भइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥ ३ ॥ दंडाणं गारवाणंच, सल्लाणं च तियं तियं॥

तीसवे अध्ययन में तप का कथन कहा वह तो चारित्रवंत को होता है इस लिये इस इकतीसवे अध्ययन में चारित्र का कथन करते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि अहो जम्बू ! जिस चरित्र को अंगीकार करके बहुत से जीवों संसार समुद्र को तिरकर पार हुवे हैं उस चारित्र की विधि मैं तुझे कहता हूं सो तू एकाचित्त से श्रवण कर ॥ १॥ चारित्रीये-एक प्रकार के असंयम से अपना आत्मा को निवार कर एक प्रकार के संयम में प्रवर्ती कर ॥ २ ॥ जो मिथ्यात्व मैल कर मलीन बने हुवे और पाप कर्मों में प्रवृत्ति के कराने वाले ऐसे राग और द्वेष यह दोनों ही है इससे अपना आत्मा को दूर करेगा वह इस संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ ३ ॥ १ मन दंड २ वचन दंड और ३ काया दंड, यह तीन दंड, १ ऋद्धि गर्व, २ रस गर्व, और ३ साता गर्व, यह तीन गर्व, १ माया (कपट) शल्य, निदान (करनीके

सत्तसु ॥ जे भिक्खू जयई निच्च, से न अच्छई मंडले ॥ ९ ॥ मदेसु बम्भगुत्तीसु भिक्खुधम्ममि दसविहे ॥ जे भिक्खू जयइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥ १० ॥

अर्थ १ इस लोक-मनुष्य सम्बन्धी भय, २ परलोक देवता तिर्यंच सम्बन्धी भय, ३ आदान-चोरों का भय, ४ अकस्मात्-अचिन्त्य भय ५ आजीविका-पेट भराइ का भय ६ मृत्यु का भय और ७ पूजा श्लाघा का भय इन सातों भय से भयभीत नहीं बने, इस प्रकार जो साधु सात पिण्डैषणा सात भय की सदैव यत्ना करते हैं वे ससार मंडल में परिभ्रमण नहीं करते हैं ॥ ९ ॥ १ जाति का मद, २ कुल मद ३ बल मद ४ रूप मद ५ तप मद ६ श्रुत मद, ७ लाभ मद और ८ ऐश्वर्य मद इन आठ प्रकार के मद को करे नहीं ब्रह्मचारी—१ स्त्री पशु नपुंसक के स्थान में रहे नहीं २ स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं, ३ स्त्री के साथ एकासन पर बैठे नहीं, ४ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं, ५ भींत टट्टी पड़दे के अन्दर से स्त्री पुरुष के क्रीडा के शब्द सुने नहीं ६ पूर्वकृत क्रीडा का स्मरण (याद) करे नहीं, सदैव सरस आहार करे नहीं ८ मर्यादा उपरान्त आहार करे नहीं, और ९ शरीर मसादि का शृंगार सजे नहीं इन ९ वाड युक्त ब्रह्मचर्य गुप्ति का पालन करे १ क्षांति क्षमा करे, २ मुक्ति लोभ छोडे, ३ आर्जव सरलता रखे, ४ मार्दव-मान नहीं करे, ५ लाघव हलका रहे, ६ सत्य सत्य बोले, ७ संयम पाले, ८ तप करे, ९ चैत्य ज्ञानाभ्यास करे, और १० ब्रह्मचर्य की गुप्ति करे यह दश साधु के धर्म का पालन करे इस प्रकार जो साधु सदैव यत्ना करेगा वह ससार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ १० ॥

सूत्र

से न अच्छइ मडले ॥ ७ ॥ लेसासु छसु काएसु, छक्के आहार कारणे ॥ जे भिक्खू जयई निच्च से न अच्छइ मडले ॥ ८ ॥ पिंडोग्गह पडिमासु, भयट्ठाणेसु

अर्थ

साधु सदैव यत्ना करे अर्थात् पचास समिति का आचरण करे और इन्द्रिय के विषय तथा क्रिया का त्याग करे वह ससार मडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ ७ ॥ १ कृष्ण, २ नील ३ कापोत ४ तेजो ५ पद्म, और ६ शुक्ल इन छ लेश्या में से प्रथम तीनों लेश्या के परिणाम छोडे और अन्तिम तीन लेश्या के परिणाम प्रवर्तावे १ पृथ्वी, २ पानी ३ अग्नि, ४ वायु ५ वनस्पति, और ६ त्रस यह छ काया की यत्ना करे १ क्षुधा वेदना समाने २ वैयावृत्य करने ३ ईर्या शोधने, ४ सयम पालने, ५ प्राणियों रक्षार्थ, और ६ धर्म ध्यान का चिन्तवन करन इन छ कारण से आहार करे विना कारण आहार करे नहीं इन गुणों को जो साधु सदैव धारन करेगा वह ससार मडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ ८ ॥ १ असंसठ—स्वच्छ (विना भरे) हाथ व पात्र से दे तो लेवूंगा २ अस्वच्छ (भरे हुवे) हाथ व भाजन से देवे तो लेवु ३ उद्धृत—भाजन में से निकाला हुवा देवे तो लेवुं, ४ अल्पलेपी—फूटाने मुरमुरे वगैरह जिस का लेपन लगे वैसा लेवुं ५ उद्गाही—अपने भोगवने को थाली आदि में ग्रहण किया वह देवे तो लेऊं. ६ प्रगृहीत—अन्य को देने निकाला हुवा देवे तो लेवुं और ७ जो सुरपनादि भोगन करके पर डालने जैसा हो वसे देवे तो लेवुंगा इस प्रकार सात पिण्ड एषणा का अभिग्रह धारन करे,

सूत्र

सत्तसु ॥ जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छई मंडले ॥ ९ ॥ मदेसु बंभगुत्तीसु भिक्खुधम्मंमि दसविहे ॥ जे भिक्खू जयइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥ १० ॥

अर्थ

१ इस लोक-मनुष्य सम्बन्धी भय, २ परलोक देवता तिर्यंच सम्बन्धी भय, ३ आदान-चोरों का भय, ४ अकस्मात-अचिन्त्य भय ५ आजीविका-पेट भराइ का भय ६ मृत्यु का भय और ७ पूजा श्लाघा का भय इन सातों भय से भयभीत नहीं बने, इस प्रकार जो साधु सात पिण्डैषणा सात भय की सदैव यत्ना करते हैं वे संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करते हैं ॥ ९ ॥ १ जाति का मद, २ कुल मद ३ बल मद ४ रूप मद ५ तप मद ६ श्रुत मद, ७ लाभ मद और ८ ऐश्वर्य मद इन आठ प्रकार के मद को करे नहीं ब्रह्मचारी—१ स्त्री पशु नपुंसक के स्थान में रहे नहीं २ स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं, ३ स्त्री के साथ एकासन पर बैठे नहीं, ४ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं, ५ भींत टट्टी पड़दे के अन्तर से स्त्री पुरुष के क्रीडा के शब्द सुने नहीं ६ पूर्वकृत क्रीडा का स्मरण (याद) करे नहीं, सदैव सरस आहार करे नहीं ८ मर्यादा उपरान्त आहार करे नहीं, और ९ शरीर वस्त्रादि का शृंगार सजे नहीं इन ९ वाड युक्त ब्रह्मचर्य गुप्ति का पालन करे १ खंति क्षमा करे, २ मुक्ति लोभ छोडे, ३ अज्जव सरलता रखे, ४ मादव मान नहीं करे, ५ लाघव-हलका रहे, ६ सत्य-सत्य बोले, ७ संयम पाले, ८ तप करे, ९ चैइय ज्ञानाभ्यास करे, और १० ब्रह्मचर्य की गुप्ति करे यह दश साधु के धर्म का पालन करे इस प्रकार जो साधु सदैव यत्ना करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ १० ॥

सूत्र

से न अच्छइ मडले ॥ ७ ॥ लेसासु छसु काएसु, छक्के आहार कारणे ॥ जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मडले ॥ ८ ॥ पिंडोग्गह पडिमासु, भयट्ठाणेसु

अर्थ

साधु सदैव यत्ना करे अर्थात् महाव्रत, समिति का आचरण करे और इन्द्रिय के विषय तथा क्रिया का त्याग करे वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ ७ ॥ १ कृष्ण, २ नील ३ कापोत ४ तेजो ५ पद्म, और ६ शुक्ल इन छ लेश्या में से प्रथम तीनों लेश्या के परिणाम छोडे और अन्तिम तीन लेश्या के परिणाम धर्तावे १ पृथ्वी, २ पानी ३ अग्नि, ४ वायु ५ वनस्पति, और ६ त्रस यह छ काया की यत्ना करे १ क्षुधा वेदना समाने २ वैयावच्च करने ३ इर्या शोधने, ४ संयम पालने, ५ प्राणियों रक्षार्थ, और ६ धर्म ध्यान का चिन्तवन करने इन छ कारण से आहार करे बिना कारण आहार करे नहीं इन गुणों को जो साधु सदैव धारन करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ ८ ॥ १ असंसठ-स्वच्छ (बिना भरे) हाथ व भाजन से दे तो लेवूंगा २ संसठ (भरे हुवे) हाथ व भाजन से देवे तो लेवु ३ उद्धड-भाजन में से निकालता हुवा देवे तो लेवु, ४ अल्पलेपी-फूटाने मुरमुरे वगैरह जिस का लेपन लगे ऐसा लेवु ५ उग्गहीत-अपने भोगवने को थाली आदि में ग्रहण किया वह देवे तो लेऊं ६ पगहीत-अन्य को देने निकाला हुवा देवे तो लेवु और ७ जो सुरवनादि भोजन उकरडे पर डालने जैसा हो वह देवे तो लेवूंगा इस प्रकार सात पिण्ड एषणा का अभिग्रह धारन करे,

सूत्र

सत्तसु ॥ जे भिक्खू जयई निच्च, से न अच्छई मंडले ॥ ९ ॥ मवेसु बम्भगुत्तीसु

भिक्खुधम्मंमि दसविहे ॥ जे भिक्खू जयइ निच्च, से न अच्छइ मडले ॥ १० ॥

अर्थ

१ इस लोक–मनुष्य सम्बन्धी भय, २ परलोक देवता तिर्यंच सम्बन्धी भय, ३ आदान–चोरों का भय, ४ अकस्मात-आकस्मिक भय ५ आजीविका-पेट भराइ का भय ६ मृत्यु का भय और ७ पूजा श्लाघा का भय इन सातों भय से भयभीत नहीं बने, इस प्रकार जो साधु सात पिण्डेषणा सात भय की सदैव यत्ना करते हैं वे ससार मंडल में परिभ्रमण नहीं करते हैं ॥ ९ ॥ १ जाति का मद, २ कुल मद, ३ बल मद ४ रूप मद ५ तप मद, ६ श्रुत मद, ७ लाभ मद और ८ ऐश्वर्य मद इन आठ प्रकार के मद को करे नहीं ब्रह्मचारी—१ स्त्री पशु नपुंसक के स्थान में रहे नहीं २ स्त्री के शृंगार की कथा करे नहीं, ३ स्त्री के साथ एकासन पर बैठे नहीं, ४ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं, ५ भींत टट्टी पड़दे के अन्तर से स्त्री पुरुष के क्रीडा के शब्द सुने नहीं ६ पूर्वकृत क्रीडा का स्मरण (याद) करे नहीं, सदैव सरस आहार करे नहीं ८ मर्यादा उपरान्त आहार करे नहीं, और ९ शरीर वस्त्रादि का शृंगार सजे नहीं इन ९ बाड युक्त ब्रह्मचर्य गुप्ति का पालन करे १ क्षांति क्षमा करे, २ मुक्ति लोभ छोडे, ३ आर्जव सरलता रखे, ४ मार्दव-मान नहीं करे, ५ लाघव हलका रहे, ६ सत्य-सत्य बोले, ७ संयम पाले, ८ तप करे, ९ वैयावृत्य ज्ञानाभ्यास करे, और १० ब्रह्मचर्य की गुप्ति करे यह दस साधु के धर्म का पालन करे इस प्रकार जो साधु सदैव यत्ना करेगा वह ससार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ १० ॥

सूत्र

से न अच्छइ मडले ॥ ७ ॥ लेसासु छसु कापसु, छक्के आहार कारणे ॥ जे भिक्खू जयई निच्च से न अच्छइ मडले ॥ ८ ॥ पिंडोग्गह पडिमासु, भयट्ठाणेसु

अर्थ

साधु सदैव यत्ना करे अर्थात् मशाग्रव समिति का आचरण करे और इन्द्रिय के विषय तथा क्रिया का त्याग करे वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ ७ ॥ १ कृष्ण, २ नील ३ कापोत ४ तेजो ५ पद्म, और ६ शुक्ल इन छ लेश्या में से प्रथम तीनों लेश्या के परिणाम छोडे और अन्तिम तीन लेश्या के परिणाम प्रवर्तावे १ पृथ्वी, २ पानी ३ अग्नि, ४ वायु ५ वनस्पति, और ६ त्रस यह छ काया की यत्ना करे १ क्षुधा वेदना समाने २ वैयावच करने ३ ईर्या शोधने, ४ संयम पालने, ५ प्राणियों रक्षार्थ, और ६ धर्म ध्यान का चिन्तवन करने इन छ कारण से आहार करे विना कारण आहार करे नहीं इन गुणों को जो साधु सदैव धारन करेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ ८ ॥ १ असंसठ-स्वच्छ (विना भरे) हाथ व पात्र से दे तो लेवूंगा २ असंस्वच्छ (भरे हुवे) हाथ व भाजन से देवे तो लेवु ३ उद्धृत-भाजन में से निकालता हुवा देवे तो लेवुं, ४ अप्पलेपी-फूटाने मुरमुरे वगैरह जिस का लेपन लगे ऐसा लेवुं ५ उद्ग्राही-अपने भोगवने को थाली आदि में ग्रहण किया वह देवे तो लेऊं ६ भागरहित-अन्य को देने निकाला हुवा देवे तो लेवुं और ७ जो खुरचनादि भोजन उकरडे पर डालने जैसा हो उसे देवे तो लेवुंगा इस प्रकार सात पिण्ड पषणा का अभिग्रह धारन करे,

मूल

मडल ॥ ११ ॥ किरियासु भूयगामेसु, परमाहम्मिएसु य ॥ जे भिक्खू जयइ निचं,

अर्थ

गोदुहासन, वीरासन अंबखुजासन यह तीनों में का एक आसन करे ११ चौविहार छठ भक्त (बेला) करे, बेले को ग्राम बाहिर एक अहो रात्रि का कायोत्सर्ग करे, और १२ चौविहार अष्टम भक्त (तेला) करे तेले के दिन स्मशान में एक पुद्गल पर दृष्टी ठेरा कायोत्सर्ग करे तिर्यंच मनुष्य देवता सम्बन्धी उपसर्ग को सहे इन १२ प्रतिमा में साधु सदैव यत्नावंत बनेगा वह संसार मंडल में परिभ्रमन नहीं करेगा ॥ ११ ॥ २ अर्थादंडक्रिया-मतलब सिर पाप करे, २ अनर्था दंडक्रिया बिना मतलब पाप करे, ३ हिंसा दंडक्रिया हिंसा करे, ४ अकस्मात् दंडक्रिया मारे किसे और कोई मरजाय, ५ दृष्टी विपरियासिया क्रिया शत्रु के भरोसे मित्र को मारडाले, ६ मोसवती-झूठ बोले, ७ अदीन दानवती चोरी करे ८ अज्झत्थवति-खराबविचार करे, ९ मित्रदोषवती मित्रों के साथ विरोध रखे, १० मानवती अभिमान करे, ११ मायावती-दगलबाजी करें, १२ लोभवती लालच करे, और १३ इर्यावही सा केवली भगवंत को योगों की प्रवृति से प्रथम समय लगे दूसरे समय वेदे तीसरे समय निर्जर कर दूर करे इन तेरे ही क्रिया का त्याग करे ॥ १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय का, २ बादर एकेन्द्रिय, ३ बेइन्द्रिय, ४ तेइन्द्रिय, ५ चौरिन्द्रिय, ६ असंज्ञी पंचेन्द्रिय, और संज्ञी पंचेन्द्रिय इन सात का अपर्याप्ता और पर्याप्ता ... जीव के भेद जानना १ अंब, २ अंबरीस, ३ शाम, ४ सबल, ५ रौद्र, ६ वैरोद्र, ७ काल,

उवसगाणं पडिमासु भिक्खूणं पडिमासु य ॥ जे भिक्खू जयइ निच्च से न अच्छइ

१ सम्यक्त्व निर्मल पाले २ व्रत निर्मल पाले, ३ त्रिकाल शुद्ध सामायिक करे ४ महिना के छ पौषध करे, ५ चार प्रहर का कायोत्सर्ग करे, स्नान करे नहीं रात्रि भोजन कर काछ लगावे नहीं, दिन का ब्रह्मचर्य पाले, इन पांच बोल का पालन करे, ६ सर्वथा ब्रह्मचर्य पाले, ७ सचित्त का आहार नहीं करे ८ स्वयं आरंभ नहीं करे, ९ अन्य पास भी आरंभ नहीं करावे, १० आरंभ की अनुमोदना भी करे नहीं और ११ साधु वेष धारन करे विशेष शिर पर चोटी रखे ज्ञातकुल की गौचरी करे इन इग्यारे श्रावक की प्रतिमा श्रावक को बतावे १ प्रथम महिने एकेक दात आहार पानी की, २ दूसरे महिने दो दात आहार पानी की, ३ तीसरे महिने तीन २ दात आहार पानी की, ४ चौथे महिने चार २ दाती आहार पानी की, ५ पांचवे महिने पांच २ दाती आहार पानी की ६ छठे महिने छ दाती आहार पानी का, ७ सातवे महिने सात दाती आहार पानीकी ८ आठवे महिनेमें सात अहो रात्रि चौविहार एकान्तर उपवास करे, दिन को सूर्य की आतापनाले, रात्रि को तीन प्रकार के आसन करे, १ सोवे २ बैठे, ३ खडे आसन पलटे नहीं ९ सात अहो रात्रि चौविहार एकान्तर उपवास कर दिन को सूर्य की आतापना ले रात्रि का—दंडासन, लकुटासन और उत्कटासन इन तीनों आसनों में का आसन करे, १० सात अहोरात्रि चौविहार एकान्तर उपवास करे, दिन को सूर्य की आतापना ले रात्रि का—

भिक्खु जयई निच्चं से न अच्छइ मंडले ॥ १४ ॥ पृगवीसाए सबले, बावीसा०

नहीं मन वचन काया कर, ७-९सेवता अच्छा जाने नहीं मन वचन काया कर इस प्रकार ही ९भांगे वैक्रेय शरीर के यों १८प्रकार अब्रह्मका सेवन नहीं करे गुनीस ज्ञाता धर्म कथांग के अध्ययन १मेघकुमारका २धनासेठका, ३मयुरंडा का, ४ काछवा का, ५ थावरचा पुत्र का ६ तुम्बडी का, ७ रोहणी का, ८ मल्लीनाथजी का, ९ जिनरक्ष जिनपाल का १० चन्द्रमा का, ११ दवदव वृक्ष का १२ सुबुद्धि प्रधान का १३ नंद मणियार का, १४ पोटिला का, १५ नंदीफल का, १६ द्रौपदी का, १७ आकीण जाति के घोड़ा का, १८ सुसमा पुत्री का और १९ कुंडरिक पुंडरिक का, इन गुनीस अध्ययन के न्याय प्रमाणे सयमपाले ॥ वीस असमाधी दोष १ शीघ्रता से चले, २बिना पूंजे चले ३पूंजे कहां पात्र कहांरखे, ४ पाटादि अधिक भोगवे, ५बडे के सन्मुख बोले, ६ स्थविर की घात चिन्तवे ७ सर्व जीवों की घात चिन्तवे, ८ क्षीण २ में क्रोध करे ९ दूसर की निन्दा कर, १० वारवार निश्चय भाषा बोले ११ नयाक्लेश करे १२ पुराण क्लेश उदेरे १३ अकाल में स्वाध्याय करे, १४ सचित रजभरे पांव तथा आसन बिना पूंजे बैठे, १५प्रहर रात्रि गय बाद जोर से बोले, १६ महा क्लेश करे, १७ मृस वचन बोले, १८ अपनी पराइ आत्मा को असमाधी करे, १९ प्रभात से स्यामतक खावूं २ खावूं २ करे और २० अशुद्ध आहार भोगवे इन २० असमाधी दोष से आत्मा बचावे ॥१४॥ इक्कीस सबल दोष १हस्त कर्म करे, २मैथुन सेवे, ३रात्रि भोजन करे, ४ आधा कर्मी आहार करे, ५ राज्यपिंड आहार भोगवे, ६ मोल का, उदार लिया, छीनकर लिया, मालक की

मूल

सेन अच्छइ मडले ॥ १२ ॥ गाहा सोलसएहिं तहा असजमम्मि य, जे भिक्खू जयइ निच, सेन अच्छइ मडले ॥१३॥बंभम्मि नायज्झयणेसु,ठाणेसुअसमाहिए ॥ जे

अर्थ

८ महा काल, ९ असीपत्र, १० धनुष्य, ११ कुंभ, १२ वालु, १३ वैतरणी १४ खरस्वर और १५ महाघोष यह १५ परमाधामी देव इन में जो साधु सदैव प्रयत्न करे वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ १२ ॥ १ स्वसमय पर समय, २ वैताली, ३ उपसर्ग, ४ स्त्री प्रज्ञा, ५ नरक विभुती, ६ वीर स्तुती, ७ कुशील प्रभ, ८ सकाय अकामवीय, ९ धर्म, १० समाधी, ११ मोक्षमार्ग, १२ समवसरण, १३ यथातथ्य, १४ ग्रन्थ १५ आदानियास्य, और १६ गाहावती इन १६ ही सुयगडांग सूत्र के अध्ययन का अर्थ यथार्थ श्रद्धान करे १७ प्रकार का असंयम–१ पृथ्वी २ पानी ३ अग्नि, ४ वायु, ५ वनस्पति, ६ बेइन्द्रिय, ७ तेइन्द्रिय, ८ चौरीन्द्रिय, ९ पंचेन्द्रिय १० अजीवक्रिया इन दशों की यत्ना करे ११ पेहा-सर्व जीवात्मा निजात्मा सम जाने, १२ उपेक्षा-सदैव उपयोग युक्त क्रिया करे, १३ प्रमार्जन-देख कर पूंजकर वस्तु वापरे, १४ परिठावणिया यत्ना से परिठावे (डालने योग्य वस्तु डाले), १५ मन १६ वचन और १७ काया, इन तीनों योगों को शुभ प्रवर्तावे यह १७ प्रकार संयम पाले और असंयम टाले इन में जो साधु सदैव यत्नार्थत होगा वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ १३ ॥ १ औदारीक शरीर सम्बन्धी मैथुन सेवे नहीं, मन वचन काया कर, ४ ६ वैसको

भिक्खु जयई निच्चं से न अच्छइ मंडले ॥ १४ ॥ ९गवीसाए सबले, बावीसाए०

नहीं मन वचन काया कर ७-९सेवता अच्छा माने नहीं मन वचन काया कर इस प्रकार ही ९मांगे वैक्रेय शरीर के यों ९८प्रकार ब्रह्मचर्य का सेवन नहीं करे गुणीस ज्ञाता धर्म कथांग के अध्ययन १मेघकुमारका २धनासेठका, ३मयुरईडा का, ४ काछवा का, ५ थावरचा पुत्र का ६ तुम्बडी का, ७ रोहणी का, ८ मल्लीनाथजी का, ९ जिनरक्ष जिनपाल का, १० चन्द्रमा का, ११ दवदव वृक्ष का १२ सुबुद्धि प्रधान का १३ नंद मणियार का १४ पोटिला का, १५ नंदीफल का, १६ द्रौपदी का, १७ आकीर्ण जाति के घोडा का, १८ सुसमा पुत्री का और १९ कुंडरिक पुंडरिक का, इन गुणीस अध्ययन के न्याय प्रमाणे संयमपाले ॥ वीस असमाधी दोष १ शीघ्रता से चले, २विना पूंजे चले ३पूंजे कहां पांव कहां रखे, ४ पाटादि अधिक भोगवे, ५ बडे के सन्मुख बोले, ६ स्थविर की घात चिन्तवे ७ सर्व जीवों की घात चिंतवे, ८ छीण २ में क्रोध करे ९ दूसर की निन्दा कर, १० वारंवार निश्चय भाषा बोले ११ नयाक्लेश करे १२ पुराण क्लेश उदेरे, १३ अकाल में स्वाध्याय करे, १४ सचित रजभरे पांव तथा आसन विना पूंजे बैठे, १५प्रहर रात्रि गय बाद जोर से बोले, १६ सदा क्लेश करे, १७ मृस वचन बोले, १८ अपनी पराइ आत्मा को असमाधी करे, १९ प्रमाद से स्यामतक लावू २ खावू २ करे और २० अयुक्त आहार भोगवे इन २० असमाधी दोष से आत्मा बचावे ॥१५॥ इक्कीस सबल दोष १हस्त कर्म करे, २मैथुन सेवे, ३रात्रि भोजन करे, ४ आधा कर्मी आहार करे, ५ राज्यपिंड आहार भोगवे, ६ मोल का, उधार लिया, छीनकर लिया, मालक की

सूत्र

अर्थ

परीसहे ॥जे भिक्खू जयइ निच्च, से न अच्छइ मंडले ॥ १५ ॥ तेवीसाइ सूयगडे

रहा बिना, सन्मुख लाया इन पांच दोष सहित आहार भोगवे, ७ वारम्वार प्रत्याख्यान का भंग करे, ८ छ महिने पहले सम्प्रदाय पलटे, ९ एक महिने में तीन नदी का लेप लगावे १० एक महिने में तीन माया स्थान सेवे, ११ शैय्यांतर का आहार ग्रहण करे, १२ जानकर, हिंसा कर १३ जानकर झुठ बोले, १४ जानकर चोरी करे, १५ सचित्त पृथ्वी पर सोवे बैठे, १६ सचित्त रज से भरे पाटला पर सोवे बैठे, १७ सडे हुवे पाट पाटले भोगवे १८ मूल, कन्द, स्कन्ध त्वचा, प्रवाल, पत्र, फूल, फल बीज, हरी यह दश प्रकार की वनस्पति भोगवे, १९ एक वर्ष में दश नदी के लेपलगावे, २० एक वर्ष में दश माया स्थान सेवे, और २१ सचित्त वस्तु से हाथ भाजन भरा हो उस से आहार आदि ग्रहण करे यह २१ सबल दोष को सदैव वर्जे बाइस परिषह—१क्षुधा का, २ तृषा का, ३ शीत का, ४ उष्ण का, ५ दंश मशक का, ६ अचेल का, ७ अरतिका, ८स्त्रीका, ९ चलने का, १० बैठने का १२ स्थानक का, १३ अक्रोश वचन का, १४ वध मारने का, १५ अलाभ का १६ रोगका, १७ तृण स्पर्श का ८ जलमैल का, १९ सत्कार सन्मान का, २० प्रज्ञा का, २१ अज्ञान का और२२दर्शन-सम्यक्त्व का,इन २२परिषह को सम्यक् प्रकार से सहे इस प्रकार जो साधु यत्ना करता है वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करता है॥१५॥सुयगडांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्याय जो पढ़िमे करे और दूसरे श्रुतस्कन्ध के ७अध्याय १पुष्करणी का २क्रिया का,३आहार प्रज्ञा ४प्रत्याख्यान प्रज्ञा ५

रूवाहिएसु सुरेसु य ॥ जे भिक्खू जयई निच्च, से न अच्छइ मडले ॥ १९ ॥ पण वीस भावणेहिं, उद्देसेसु दसाइण ॥ जे भिक्खू जयइ निच्चं, से न अच्छइ मडले

माया का, ६ आर्द्रकुमार का और ७ उदकपेढाल पुत्रका यों २३ ॥ अध्ययन का अर्थ सम्यक् प्रकार श्रद्धे चैबीस देव १० भुवनपति ८ व्यन्तर ५ ज्योतिष और १ वमानीक यों २४ देवताको जाने इनमें जो सदय यत्ना करे वह संसारमें परिभ्रमण नहीं करे ॥१६॥पांच महाव्रतकी २५ भावना १ इर्या, २ मन, ३ वचन, ४ एषणा, ५ निक्षेपना (यह पहिले महाव्रत की) ६ विचारकर बोले, ७ क्रोधवश झूठ नहीं बोले ८ लोभवश झूठ नहीं बोले, ९ भयवश झूठ नहीं बोले, १० हास्यवश झूठ नहीं बोले, [यह पांच दूसरे महाव्रत की] ११ निर्दोष स्थान याचकर भोगवे, १२ तृण काष्ट कंकरादि याचकर भोगवे, १३ छ कायका आरंभकर स्थानक नहीं संमारे, १४ राजाका, सेठ का गुरुका जीव का अदत्त नहीं ले १५ गुरु ज्ञानी रोगी तपस्वी नव दीक्षित की वैयावच करे, [यह ५ तीसरे महाव्रत की] १६ स्त्री पशु रहित स्थान भोगवे १७ स्त्री की कथा करे नहीं १८ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं, १९ पूर्वकृत कामभोग याद करे नहीं २० नित्य प्रति सरस आहार करे नहीं (यह ५ चौथे महाव्रत की) २१ शब्द २२ रूप २३ गंध २४ रस २५ स्पर्श अच्छे पर राग करे नहीं और खोटे पर द्वेष करे नहीं इन २५ भावना का सम्यक प्रकार पालन करे १० दशाश्रुतस्कन्ध के, ६ बृहत्कल्प के, १० व्यवहार के इन २६ उद्देश का कालोकाल पठन करे इन की जो साधु सदैव यत्ना करेगा वह ससार मडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ १७ ॥ सत्तावीस साधु के गुण—५ महा व्रत, पंचेन्द्रिय निग्रह, चार कषाय टाले, यह १४ और १५ भाव सत्य,

परीसहे ॥जे भिक्खू जयइ निच्च, से न अच्छइ मंडले ॥ १५ ॥ तेवीसाइ सूयगडे

रमा बिना, सन्मुख माया इन पांच दोष सहित आहार भोगवे, ७ वारम्बार मत्याख्यान का भंग करे, ८ छ महिने पहले सम्प्रदाय पलटे, ९ एक महिने में तीन नदी का लेप लगावे १० एक महिने में तीन माया स्थान सेवे, ११ शैय्यातर का आहार ग्रहण करे, १२ जानकर, हिंसा कर १३ जानकर झुठ बोले, १४ जानकर चोरी करे, १५ सचित्त पृथ्वी पर सोवे बैठे, १६ सचित्त रज स भर पाटलादि पर सोवे बैठे, १७ सडे हुवे पाट पाटले भोगवे १८ मूल, कन्द, स्कन्ध त्वचा, प्रवाल, पत्र, फूल, फल बीज, हरी यह दश प्रकार की वनस्पति भोगवे, १९ एक वर्ष में दश नदी के लेपलगावे, २० एक वर्ष में दश माया स्थान सेवे, और २१ सचित्त वस्तु से हाथ भाजन भरा हो उस से आहार आदि ग्रहण करे यह २१ सबल दोष को सदैव वर्जे बाइस परिषह–१क्षुधा का, २ तृषा का, ३ शीत का, ४ उष्ण का, ५ दंश मशक का, ६ अचेल का, ७ अरतिका, ८ स्त्रीका, ९ चलने का, १० बैठने का १२ स्थानक का, १३ अक्रोश वचन का, १४ वध मारने का, १५ अलाभ का, १६ रोगका, १७ तृण स्पर्श का ८ जलमैल का, १९ सत्कार सन्मान का, २० प्रज्ञा का, २१ अज्ञान का और२२दर्शन-सम्यक्त्व का इन २२परिषह को सम्यक् प्रकार से सहे इस प्रकार जो साधु यत्ना करता है वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करता है॥१५॥सुयगडांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्याय जो परिहरे और दूसरे श्रुतस्कन्ध के७अध्याय१पुष्करणी का २क्रिया का,३आहार प्रज्ञा४प्रत्याख्यान प्रज्ञा५

रूवाहिएसु सुरेसु य ॥ जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मडले ॥ १६ ॥ पण
वीस भावणेहिं, उद्देसेसु दसाइण ॥ जे भिक्खू जयइ निच्चं, से न अच्छइ मडले

माया का, ६ आर्द्रकुमार का और ७ उदकपेढाल पुत्रका यों २३ हैं। अध्ययन का अर्थ सम्यक् प्रकार श्रद्धे
चौवीस देव १० भुवनपति ८ व्यन्तर ५ ज्योतिष और १ वमानीक यों २४ देवताको जाने इनमें जो सदैव
यत्ना करे वह संसारमें परिभ्रमण नहीं करे ॥१६॥ पांच महाव्रतकी २५ भावना। १ ईर्या, २ मन, ३ वचन, ४ एषणा ५
निक्षेपन (यह पहिले महाव्रत की) ६ विचारकर बोले, ७ क्रोधवश झूठ नहीं बोले ८ लोभवश झूठ नहीं बोले, ९ भयवश
झूठ नहीं बोले, १० हास्यवश झूठ नहीं बोले, [यह पांच दूसरे महाव्रत की] ११ निर्दोष स्थान याचकर
भोगवे, १२ तृण काष्ट कंकरादि याचकर भोगवे, १३ छ कायका आरमकर स्थानक नहीं समारे, १४
राजाका, श्रेठ का गुरुका जीव का अदत्त नहीं लेवे १५ गुरु ग्यानी रोगी तपस्वी नव दीक्षित की
वैयावच करे, [यह ५ तीसरे महाव्रत की] १६ स्त्री पशु रहित स्थान भोगवे १७ स्त्री की कथा करे
नहीं १८ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं, १९ पूर्वकृत कामभोग याद करे नहीं २० नित्य प्रति सरस
आहार करे नहीं (यह ५ चौथे महाव्रत की) २१ शब्द २२ रूप २३ गंध २४ रस २५ स्पर्श
अच्छे पर राग करे नहीं और खोटे पर द्वेष करे नहीं। इन २५ भावना का सम्यक प्रकार पालन करे
१० दशाश्रुतस्कन्ध के, ६ वृहत्कल्प के, १० व्यवहार के इन २६ उद्देश का कालोकाल पठन करे
इन की जो साधु सदैव यत्ना करेगा वह संसार मडल में परिभ्रमण नहीं करेगा ॥ १७ ॥ सत्तावीस
साधु के गुण—५ महा व्रत, पंचेन्द्रिय निग्रह, चार कषाय टाले, यह १४ और १५ भाव सत्य,

॥ १७ ॥ अणगार गुणेहिं च पकप्पम्मि तहेव य ॥ जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥ १८ ॥ पावसुय पसगेसु, मोहठाणे सु चेवय ॥ जे भिक्खू जयई

१६ करण सत्य १७ जोग सत्य १८ क्षमावंत, १९ वैराग्यवंत २० मन समाधारना २१ वचन समाधारना; २२ काया समाधारना; २३ ज्ञान संपन्न; २४ दर्शन संपन्न; २५ चारित्र संपन्न; २६ वेदनीय सहिया से; और २७ मरणांतिक सहिया से इन २७ गुण साधु के धारन करे २८ प्रकार के प्रायश्चित के स्थानक आचार कल्प इन में जो साधु सदैव यत्ना करे वह संसार में परिभ्रमण नहीं करे ॥ १८ ॥ गुणतीस पाप सूत्र १ भूमीकम्प, २ उत्पात, ३ स्वप्न, ४ अतरिक्ष; ५ अंग स्फुरण; ६ स्वर; ७ व्यंजन; और ८ लक्षण इन ८ का

नंबर	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
माहने	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	३	३
दिन	०	५	१०	१५	२०	२५		५	१०	१५	२०	२५	०	५
नंबर	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
महीने	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	५	५	६
दिन	१०	१५	२०	२५	०	५	१०	१५	२०	२५	२७	०	२७	०

सूत्र, ८ का अर्थ और ८ की कथा सब २४ और २५ विकथा का, २६ विद्या का; २७ मंत्र का; २८ योग का (तंत्र का) और २९ अन्यमतियों के आचार का इन २९ पाप सूत्र का उपदेश करे नहीं तीस महामोहनी कर्म स्थान १ त्रस जीवको पानीमें डूबाकर मारे, २ त्रस जीव के श्वासोच्छ्वास रोक कर मारे, ३ त्रस जीव को धूम्र कर के मारे ४ त्रस के मस्तक में खड्गादि के घाव कर मारे, ५ त्रस के मस्तकमें

निम्बं, से न अच्छइ मण्डल ॥ ३१ ॥ सिद्धाइगुण जोगेसु, तेत्तीसासायणासु य॥

समरा बीट कर मारे ६ बावले गुंगे की मस्करी करे ७ अनाचार सेवन कर छिपावे ८ आप अनाचार सेवन कर दूसरे के सिर डाले ९ सभा में मिश्र भाषा बोले १० भोगी के भोग रूंधे ११ बालब्रह्मचारी नहीं बालब्रह्मचारी नाम धरावे १२ ब्रह्मचारी नहीं ब्रह्मचारी नाम धरावे १३ सेठ का धन खोवे १४ पांच मिल बड़ा स्थापन किया वह पंचों को दुःख दे १५ विश्वास घात कर स्त्री पुरुषादि परस्पर घात करे १६ एक देश के राजा की घात चिंतवे १७ बहुत देश के राजा की घात चिंतवे १८ साधु को संयम से भ्रष्ट करे १९ तीर्थंकर की निन्दा करे २० तीर्थंकर के मार्ग की निन्दा करे २१ आचार्य उपाध्याय की निन्दा करे २२ आचार्य उपाध्याय का विनय वैयावच नहीं करे २३ बहुसूत्री नहीं बहुसूत्री नाम धरावे २४ तपस्वी नहीं तपस्वी नाम धरावे २५ वृद्ध रोगी तपस्वी का विनय वैयावच नहीं करे २६ चार तीर्थ में फूट डाले २७ ज्योतिष निमित्त वशीकरण प्रकाशे २८ भव होते दव मनुष्य तिर्यंच के काम भोग इच्छे २९ संयम पाल देवता हुवे उन की निन्दा करे. ३० चार जाति के देवता अपने पास नहीं आवे हो और कहे कि मेरे पास देवता आते हैं इन ३० काम करने से महा मोहनीय कर्म का बंध होता है जिस से ७० क्रोडाक्रोड सागर संसार में भटकना पड़े इन काम से जो साधु सदैव बचे वह संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥१९॥ इकतीस सिद्ध के गुन; ५ प्रकार ज्ञानावरणीय क्षय किया; ९ प्रकार दर्शनावरणीय कर्म क्षय किया, २ प्रकार वेदनीय कर्म क्षय

सूत्र

॥ जे भिक्खू जयइ निच्च से न अच्छइ मंडले ॥ २० ॥ इय एएसुठाणेसु जे

अर्थ

किया; २ प्रकार गोत्रनीय कर्म क्षय किया; ४ प्रकार आयुष्य कर्म क्षय किया, २ प्रकार नाम कर्म क्षय किया, २ प्रकार गोत्र कर्म क्षय किया और ५ प्रकार अन्तराय कर्म क्षय किया यों ३१ सिद्ध भगवंत के गुणग्राम करे पचीस योगसंग्रह १ लगे दोष गुरु के पास प्रकाशे, २ वे दोष गुरु किसी को कहे नहीं; ३ कष्ट पडे धर्म में दृढ रहे ४ इस लोक परलोक के सुख की इच्छा रहित तप करे; ५ आसेवना ज्ञान की और ग्रहणा आचार की दोनों शिक्षा धारन करे, ६ शरीर की शुश्रूषा नहीं करे ७ अज्ञात कुल की गोचरी करे, ८ शुभ तपस्या करे, ९ परिषह उपसर्ग हुवे क्षमा भाव धारे १० सदा सरल भाव रखे ११ संयम सहित प्रवर्ते १२ सम्यक्त्व सहित प्रवर्ते १३ चित्त की समाधी सहित प्रवर्ते १४ पांच प्रकार के आचार सहित प्रवर्ते १५ विनय प्रवर्ते १६ तप में वीर्य फोरे १७ वैराग्य सहित प्रवर्ते १८ आत्मा का यत्न निधान समान करे, १९ पास ये के भाव सहित प्रवर्ते २० संवर की पुष्टी करे २१ आत्मा के अवगुन दूर करे २२ सब काम भोग से निवर्ते २३ भावे दिन प्रत्याख्यान में वृद्धि करे २४ उपाधि अहंकार को त्याग कर कायोत्सर्ग करे २५ पांच प्रमाद छोडे २६ थोडा बोले और काली ध्यान क्रिया करे २७ धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान ध्यावे २८ शुभ योग सहित प्रवर्ते २९ मरणांतिक वेदना प्राप्त हुवे समभाव रखे ३० सर्व संग का परि त्याग करे प्रत्याख्यना निन्दना कर निःशल्य होवे और ३२ आराधना कर संथारा करे इन ३२ योग संग्रह अंगीकार करे ॥ १ तेतीस आशातना गुरु के आगे पीछे

२ गुरु के पीछे अड़कर चले, ३ गुरु के दोनों बाजु अड़कर चले, ४ गुरु के आगे खड़ा रहे, ५ गुरु के बराबर खड़ा रहे, ६ गुरु के पीछे अड़कर खड़ा रहे ७गुरु के आगे बैठे, ८ गुरु के बराबर बैठे, ९ गुरु के पीछे अड़कर बैठे, १० गुरु शिष्य एकही पातरी ले जंगल गये हों गुरु पहिले चेला शुची करे, ११ गुरु शिष्य बाहिर जाकर आये गुरु पहिले इर्यावही प्रतिक्रमे, १२ स्थानक में आये पुरुषादि को गुरु के पहिले आप बोलावे १३ रात्री को गुरु पूछे की कौन २ सोते कौन जगते हैं? आप जागता हुवा भी उत्तर नहीं दे, १४ शिष्य गोचरी कर आया हो और प्रथम दूसरे साधु के आगे आलोचना करे फिर गुरु आगे आलोचना करे, १५ तैसे ही वह आहार पहिले छोटे साधु को बतावे फिर गुरु को बतावे, १६ तैसे ही लाया हुवा पदार्थ पहिले छोटे साधु को आमन्त्रे फिर गुरु को आमन्त्रे, १७ वह लाया हुवा आहार आदि प्रथम छोटे साधु को दे फिर गुरु का दे, १८ गुरु शिष्य दोनों एक मंडल पर भोजन करने बैठे तब गुरु की आज्ञा विना सरस २ आहार आप भोगवे १९ गुरु का वचन सुना अनसुना करे, २० गुरु शिष्य को बोलावे तब आसन उपर बैठा ही उत्तर दे २२ गुरु को शिष्य बोलावे तब कहे क्या कहते हो? २४ गुरु को रेकारे तूकारे आदि हलके वचन से बोलावे, २३ गुरु हित शिक्षा दे तब उन के सन्मुख तैसा ही प्रत्युत्तर दे २४ गुरु कहे वृद्ध रोगी तपस्वी नव दक्षित का विनयवैयावच्च करो तुमारे को लाभ होगा? शिष्य कहे तुम वैयावच्च करोगे तो तुमारे को भी लाभ होगा २५ गुरु धर्म कथा कहते हुवे कुछ गाथादि भूलगये हों तो उन को स्मिट करने कहे पर

सूत्र

भिक्खू जयइ सया ॥ खिप्प सो सव्व संसारा विप्पमुच्चइ पंडिओ ॥ २१ ॥ त्तिबेमि ॥ इति चरण विहं अज्झयण सम्मत्त ॥ ३१ ॥ * * * *

अर्थ

ऐसे नहीं परंतु ऐसे है २६ गुरु धर्माचार कहते या धर्म कथा करते कहे कि यह बात फिर याद कर कहना ? तब शिष्य कहे क्या इतना भी याद नहीं है !! २७ गुरु की प्रशंसा सुनकर नाराज होवे, २८ यह गुरुजी के श्रावक और यह मेरे श्रावक यों फूट डाले, २९ गुरु धर्म कथा करते हो तब रस छेदन करे, अर्थात् कहां तक ताने जावोगे गोचरी का वक्त होगया है वगैरा ३० गुरु की कही हुइ धर्मकथा उस ही परिषदा में पीछे आप विस्तार से कहे गुरु का अपमान करे ३१ गुरु के बीछोने भंडोपकरन को पांव लगावे, ३२ गुरु के बिछाने पर बैठ्या करे बैठे और ३३ गुरु से उच्च आसनादि कर आप अभिमानकर ऊंचा रहे इन तेंतीस काम करने से गुरु की असातना लगती है उसे टाल कर सदैव वर्ते वह साधु संसार मंडल में परिभ्रमण नहीं करे ॥ २० ॥ इन ३१ बोलों में से जानने जोग बोल जाने, आदरने जोग बोल आदरे और छोडने जोग बोल छोडे वह शीघ्रता से संसार समुद्र के पार होवे, यों सुधर्मास्वामीने जम्बू स्वामी से कहा ॥ इति आचारविधि नामका एकतीसवा अध्ययन समाप्त ॥३१॥

॥ पमाद स्थान नामकं द्वात्रिंशत्तम मध्ययनम् ॥

सूत्र

अचंत कालस्स समूलगस्स, सव्वस्स दुक्खस्स उ जो पमोक्खो ॥ त भासओ मे पडि पुण्ण चित्ता, सुणेह एगत हिय ट्ठियत्थ ॥ १ ॥ नाणस्स सव्वस्स पगासणाए अण्णाण मोहस्स वि वज्जणाए ॥ रागस्स दोसस्सय सक्खएण, एगत सोक्ख समुवेइ मोक्ख ॥ २ ॥ तस्सेस मग्गो गुरुविद्धसेवा विवज्जणा बालजणस्स दूरा ॥ सज्झाय एगत निसेवणाय, सुतस्थ संचिंतणया धिई य ॥ ३ ॥ आहारमिच्छे मियमेसणिज्ज

अर्थ

इक्कीसवे अध्ययन में चारित्र पालने का कथन करा. जो अप्रमादी होता है वही शुद्ध चारित्र पाल सकता है इस लिये इस अध्ययनमें अप्रमादी का कथन करते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि—अहो जम्बू! यह अनादि संसार मिथ्यात्वादि मूल सहित दुःख का सागर इस मे मुक्त होने का उपाय जो सर्व प्रकार हित का कर्ता मोक्ष का अर्थ है वह तुझे कहता हूं सो एक चित्त से श्रवण कर ॥ १ ॥ जो अज्ञान और दर्शन मोह का दूर कर मतिज्ञानादि ज्ञान की प्राप्ति कर राग द्वेष का सर्वथा प्रकार से क्षय करता वह एकान्त निराबाध मोक्ष के शाश्वत सुख प्राप्त करेगा ॥ २ ॥ मोक्ष की प्राप्ति के लिये ज्ञानादि गुण करके सहित गुरु की सेवा करे और जो पासत्था तथा अज्ञानियों की संगत से दूर रहे और एकान्त स्थान में रह शास्त्रार्थ स्वाध्याय तथा एकाग्र चित्त ध्यान करे ॥ ३ ॥ जो ज्ञान दर्शनचारित्र तप रूप मोक्ष

सूत्र

सहायमिच्छे निउणत्थ बुद्धिं ॥ निकेय मिच्छेज्ज विवेगजोग्ग, समाहिकामे समणे तवस्सी ॥ ४ ॥ न वा लभेज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ॥ एगोवि पावाइ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥ ५ ॥ जहा य अंडप्पभवा बलागा, अंडं बलागप्पभवं जहा य ॥ एमेव मोहाययणं खु तण्हा, मोहं च तण्हाय तणं वयंति ॥ ६ ॥ रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयंति ॥

अर्थ

मार्ग में समाधि सहित विचरने की इच्छावाले साधु हैं उन को आहार की इच्छा होवे तो मर्यादा पूर्वक ४२ दोष रहित शुद्ध आहार को ग्रहण कर भोगवे जिस को शिष्य की इच्छा हो तो जिस की जीवादि नव तत्त्व में निर्मल बुद्धि हो ऐसे शिष्य की इच्छा करे; और उपाश्रय की इच्छा हो तो स्त्री पशु नपुंसक रहित उपाश्रय की वांछा करे ॥ ४ ॥ जो कदाचित अपने से गुणकर अधिक तथा समान उत्तम शिष्य की प्राप्ति नहीं भी होवे तो अकेला ही पापकारी अनुष्ठान का त्याग कर, काम भोग का प्रतिबन्ध नहीं करता हुवा संयम में विचरे ॥ ५ ॥ श्री तीर्थंकर भगवन्तने कहा है कि-जिस प्रकार अण्डे से पक्षी की उत्पत्ति होती है और पक्षी से अण्डे की उत्पत्ति होती है उस ही प्रकार मोह से तृष्णा होती है और तृष्णा से मोह होता है ॥ ६ ॥ श्री तीर्थंकर भगवानने कहा है कि—राग और द्वेष यह दोनों कर्म के बीज है, और कर्म से मोह की उत्पत्ति होती है, यह कर्म है वे ही जन्म मृत्यु के मूल है और

कम्मच जाइ मरणस्स मूल, दुक्खं च जाई मरणं वयाति ॥ ७ ॥ दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ॥ तण्हा हया जस्स न होई लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइ ॥ ८ ॥ राग च दोस च तहेव मोहं, उद्धत्तु कामेण समूलजाल ॥ जे जे उवाया पडिवज्जियव्वा ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्विं ॥ ९ ॥ रसापगामं न निसेवियव्वा, पाय रसा दित्तिकरा नराणं ॥ दित्तं च कामा समभिद्दवंति, दुमं जहा साउफल व पक्खी ॥ १० ॥ जहा दवग्गी पउरिंधणे वणे, समारुओ

अर्थ

दुःख का मुख्य हेतु जन्म मृत्यु ही है ॥ ७ ॥ जिसने दुःख की घात की है उस के मोह नहीं होता है, और जिस के मोह नहीं होता है उस के धनादि की तृष्णा नहीं होती है और जिस के तृष्णा नहीं होती है उस के लोभ नहीं होता है और जिस के लोभ नहीं होता है उस के धनादि कुच्छ भी नहीं होता है ॥ ८ ॥ अहो जम्बू ! अब आगे में मोह वृक्ष के मूल रूप जो राग द्वेष का समूह है इन को उद्धार करने की इच्छावालेको उनका उद्धार करने का उपाय अनुक्रम से कहता हूं सो तू दत्त चित्त श्रवण कर ॥ ९ ॥ जिस प्रकार फल फूल कर पुष्ट हुए वृक्ष को पक्षी से पक्षियों आकर दुःख देते हैं तैसे ही जिसने दुग्धादि पांचों विगय का सेवन कर अपने शरीर को पुष्ट बनाया है वैसे उन्मत्तका काम-कर्दम स पुरुष आकर दुःखी करता है ऐसा जानकर काम के जय की इच्छावाले साधु दूध दही घृत तेल मिष्ठान्न पदार्थ का सेवन नहीं करते हैं ॥ १० ॥ जिस प्रकार जिस वन में काष्ट बहुत होता है वहां अग्नि

नोवरमं उवेइ ॥ एविंदियग्गी वि पगाम भोइणो, न बंभयारिस्स हियाय कस्सइ ॥ ११ ॥ विवित्त सेज्जासण जंतियाणं ओमासणाणं दमिइंदियाणं ॥ न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइओ वाहिरिवो सहेहिं ॥ १२ ॥ जहा विरालावसहस्स मूले, न मूसगाणं वसही पसत्था ॥ एमेव इत्थी निलयस्स मज्झे, न बंभयारिस्स खमो निवासो ॥ १३ ॥ न रूवलावण्ण विलास हासं न जंपियं इंगिय पेहियं वा ॥

अर्थ—प्रचुर इन्धन से युक्त अग्नि पवन के वायु से भी शान्त नहीं होती है, वैसे ही इन्द्रियों के विषय रूप अग्नि सरस आहार के भोग से प्रज्वलित हो विकार वायु से वृद्धि पाती है इस लिये ब्रह्मचारी को सरस भोजन हित का करता नहीं होता है ॥ ११ ॥ जिस प्रकार रोगियों का रोग औषधी और उपचार से नाश पाता है उस ही प्रकार राग रूपी रोग भी पशु नपुंसक रहित उपाश्रय के सेवन से ५ इन्द्रियों का दमन करने से पराभव नहीं कर सकता है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार जिस मकान में बिल्ली रहती हो उस मकान में चूहे का रहना कल्याणकारी नहीं होता है उस ही प्रकार जिस मकान में स्त्री रहती हो उस मकान में ब्रह्मचारी का रहना कल्याणकारी नहीं होता है ॥ १३ ॥ ब्रह्मचारी १ स्त्री का रूप लावण्यता २ बोलने की चतुरता, ३ वस्त्र की शोभा, ४ भोग की लीला, ५ मुस्कराकर हंसना, ६ मनमनाट कम्रोचार, ७ अंगोपांग मरोड़ने, ८ कटाक्ष दृष्टी देखने, इतने स्त्री के काम जागृत करने के जो कारण है

सूत्र

इत्थीण चित्तंसि निवेसइत्ता, दट्ठुं ववस्से समणे तवस्सी ॥ १४ ॥ अदंसणं चेव अपत्थणं च अचिंतणं चेव अकित्तणं च ॥ इत्थी जणस्सारियझाण जुग्गं, हियं सया बंभचेरे रयाण ॥ १५ ॥ कामं तु देवीहिं विभूसियाहिं नचाइया खोभइउ तिगुत्ता ॥ तहावि एगंत हियंति नच्चा, विवित्तवासो मुणिणं पसत्थो ॥ १६ ॥ मोक्खाभिकखस्सउ माणवस्स, संसारभीरुस्स ठियस्स धम्मे ॥ नेयारिसं दुत्तरमत्थिलोए,

अर्थ

उस का कदापि दृष्टि कर देखे नहीं किम्बहुना मन में चिन्तवन मात्र भी नहीं करे परंतु संयम तप से आत्मा भावता विचरे ॥ १४ ॥ जो सदैव ब्रह्मचर्य में रक्त व धर्म ध्यान में स्थिर आत्मा है व स्त्री का दर्शन मात्र भी नहीं करे स्त्री की इच्छा भी नहीं करे, कदाचित् स्त्री का रूप देखने में आगया हो वो उस का विचार नहीं करते हैं और स्त्री के गुण के कीर्तन कथा भी नहीं करते हैं ॥ १५ ॥ जो साधु तीन गुप्तकर गुप्तात्मा है उनको सर्व अलंकार से अलंकृत बनी अप्सरा भी अनेक छल करके भी छलित नहीं कर सकती है क्षोभ नहीं उपजा सकती है ऐसे वैराग्य साधु को भी स्त्री पशु पंडग रहित ही स्थानक में रहना श्रेय है ॥ १६ ॥ अज्ञानियों के मन को हरन करनेवाली स्त्री को जानकर चतुर्गति रूप संसार के परिभ्रमण से डर कर मोक्ष की इच्छा वाले धर्म में स्थिरात्मा बने ऐसे मनुष्य को स्त्री का त्याग

नोवरुमे उवेइ ॥ पणिंदियग्गी वि पगाम भोइणो, न बंभयारिस्स हियाय कस्सइ ॥ ११ ॥ विवित्त सेज्जासण जंतियाण ओमासणाणं दमिइंदियाणं ॥ न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइओ वाहिरिवो सहेहिं ॥ १२ ॥ जहा विरालावसहस्स मूले, न मूसगाणं वसही पसत्था ॥ एमेव इत्थी निलयस्स मज्झे, न बंभयारिस्स खमो निवासो ॥ १३ ॥ न रूवलावण्ण विलास हासं न जंपियं इंगिय पेहियं वा ॥

ममकर के वायु से जैसे अग्नि वृद्धि ही पाती जाती है परंतु मन्दी से बुझती नहीं है, वैसे ही इन्द्रियों के विषय रूप अग्नि सरस आहार के भोग से प्रज्वलित हो विकार वायु से वृद्धि पाती है इस लिये ब्रह्मचारी को सरस भोजन हित का करता नहीं होता है ॥ ११ ॥ जिस प्रकार रोगियों का रोग औषधी और उपचार से नाश पाता है उस ही प्रकार राग रूपी रोग भी पशु नपुंसक रहित उपाश्रय के सेवन से व इन्द्रियों का दमन करने से पराभव नहीं कर सकता है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार जिस मकान में बिल्ली रहती हो उस मकान में चूहे का रहना कल्याणकारी नहीं होता है उस ही प्रकार जिस मकान में स्त्री रहती हो उस मकान में ब्रह्मचारी का रहना कल्याणकारी नहीं होता है ॥ १३ ॥ ब्रह्मचारी १ स्त्री का रूप लावण्यता २ बोलने की चतुरता, ३ गति की शोभा, ४ भोग की लीला, ५ मुस्कराकर हंसना, ६ मनमनाट शब्दोच्चार, ७ अंगोपांग मरोडने, ८ कटाक्ष दृष्टी देखने, इतने स्त्री के काम जाग्रत करने के जो कारण है

सूत्र

विवागे॥२०॥ जे इन्दियाण विसयामणुन्ना, न तेसु भाव निसिरे कयाइ॥न यामणुण्णेसु मण न कुज्जा समाहि कामे समणे तवस्सी॥२१॥चक्खुस्स रूवं गहण वयति,तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु॥तं दोसहेउ अमणन्नमाहु, समोय जो तेसु सवीयरागो॥२२॥रूवस्स चक्खु गहणं वयति चक्खुस्स रूव गहण वयति॥रागस्स हेउं समणुन्न माहु, दोसस्स हेउ अमणुन्न माहु ॥ २३ ॥ रूवेसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्व, अकालिय पावइ से विणास

अर्थ

॥ २० ॥ ऐसे जो समाधि के वांछक तपस्वी साधु हैं वे पांचों इन्द्रिय के मनोज्ञ विषय मे कभी मन का राग मय बनाते नहीं हैं और अमनोज्ञ विषय में द्वेष मय बनाते नहीं है यों राग द्वेष का त्याग कर वे सदैव मध्यस्थभावी रहते हैं ॥ २१ ॥ अब पांचो इन्द्रिय के विषय का कथन करते हुवे प्रथम चक्षुइन्द्रिय का कथन करते हैं ॥ श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु के रूप का ग्रहण चक्षु इन्द्रिय करती है उस में से जो मनोज्ञ रूप होता है उस पर राग भाव के हेतु भूत है और जो अमनोज्ञ रूप हैं वह द्वेष भाव के हेतु भूत है इन मनोज्ञ अमनोज्ञ दोनों में जो राग द्वेष नहीं करते हैं वे ही वीतराग कहे जाते हैं ॥ २२ ॥ श्री तीर्थंकर कहते हैं कि रूप का ग्रहण चक्षुइन्द्रिय करती है और चक्षुइन्द्रिय रूप को ग्रहण करने योग्य है उस मे मनोज्ञ रूप राग का कर्ता होता है और अमनोज्ञ रूप द्वेष का कर्ता होता है ॥ २३ ॥ जिस प्रकार दीपकपर आसक्त हो पतंगीया झंपापात कर मृत्यु को प्राप्त होता है तैसे ही रूप

जहित्थिओ बालमणोहराओ ॥ १७ ॥ एए य सगे समइक्कमित्ता, सुउत्तरा चेव भवति सेसा ॥ जहा महा सागर मुत्तरित्ता, नई भवे अवि गगा समाणा ॥ १८ ॥ कामाणुगिद्धिप्प भव खु दुक्ख सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स ॥ ज काइय माणसिय च किंचि, तस्सतर्ग गच्छइ वीयरागो ॥ १९ ॥ जहा य किंपाग फला मणोरमा, रसेणवण्णणय भुज्जमाणा ॥ ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा

करना जितना दुष्कर होता है उतना दुष्कर किसी भी वस्तु का त्याग करना नहीं होता है ॥ १७ ॥ जिस प्रकार सब समुद्रों से पड़ा स्वयंभूरमण समुद्र को तिरनेपे बाद गंगा जैसी नदी को तिरना कठिन नहीं होता है उस ही प्रकार स्त्री का त्याग किये बाद अप धनादि सामग्री छोडना कठिन नहीं होता है ॥ १८ ॥ इस जगत् में व्याधि आदि शारीरिक दुःख और चिन्ता वगैरा मानसिक दुःख हुवे है वे सब निश्चय निरंतर काम भोग की इच्छा से ही उत्पन्न हुवे है इन दुःखो का अन्त वीतरागी ही कर सकते है॥१९॥जिस प्रकार किंपाक नाम के वृक्ष के फल वर्ण भर के मनोरम स्वाद कर के मिष्ठ होते हैं परन्तु भोगवे बाद क्षीण मात्र में आयुष्य का नाश करते हैं मृत्यु प्राप्त करते है वैसे ही काम भोग भी देखने में मनोहर भोगवते अच्छे लगते हैं परन्तु उन के पाप के फल भोगवते हुवे बहुत दुःख दायक होते हैं

सूत्र

विवागे ॥२०॥ जे इंदियाण विसयामणुन्ना, न तेसु भावं निसिरे कयाइ॥न यामणुण्णेसु मण न कुज्जा समाहि कामे समणे तवस्सी॥२१॥चक्खुस्स रूवं गहण वयति,तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु॥तं दोसहेउ अमणुन्नमाहु, समोय जो तेसु सवीयरागो॥२२॥रूवस्स चक्खु गहणं वयंति चक्खुस्स रूव गहण वयति॥रागस्स हेउं समणुन्न माहु, दोसस्स हेउ अमणुन्न माहु ॥ २३ ॥ रूवेसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्वं, अकालिय पावइ से विणास

अर्थ

॥ २० ॥ ऐसे जो समाधि के वांछक तपस्वी साधु हैं वे पांचों इन्द्रिय के मनोज्ञ विषय मे कभी मन का राग मय बनाते नहीं हैं और अमनोज्ञ विषय में द्वेष मय बनाते नहीं है यों राग द्वेष का त्याग कर वे सदैव मध्यस्थभावी रहते हैं ॥ २१ ॥ अब पांचो इन्द्रिय के विषय का कथन करते हुवे प्रथम चक्षुइन्द्रिय का कथन करते हैं ॥ श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु के रूप का ग्रहण चक्षु इन्द्रिय करती है उस में से जो मनोज्ञ रूप होता है उस पर राग भाव के हेतु भूत है और जो अमनोज्ञ रूप है वह द्वेष भाव के हेतु भूत है इन मनोज्ञ अमनोज्ञ दोनों में जो राग द्वेष नहीं करते हैं वे ही वीतराग कहे जाते हैं ॥ २२ ॥ श्री तीर्थंकर कहते हैं कि रूप का ग्रहण चक्षुइन्द्रिय करती है और चक्षुइन्द्रिय रूप को ग्रहन करने योग्य है उस मे मनोज्ञ रूप राग का कर्ता होता है और अमनोज्ञ रूप द्वेष का कर्ता होता है ॥ २३ ॥ जिस प्रकार दीपकपर आसक्त हो पतंगीया झंपापात कर मृत्यु को प्राप्त होता है तैसे ही रूप

जहिरिथआ बालमणोहराआ ॥ १७ ॥ एए य संगे समइक्कमित्ता, सुउत्तरा चेव भवंति सेसा ॥ जहा महा सागर मुत्तरित्ता नई भवे अवि गंगा समाणा ॥ १८ ॥ कामाणुगिद्धिप्प भवं खु दुक्खं सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स ॥ जं काइयं माणसियं च किंचि तस्संतगं गच्छइ वीयरागो ॥ १९ ॥ जहा य किंपाग फला मणोरमा, रसेणवण्णेणय भुज्जमाणा ॥ ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा

करना जितना दुष्कर होता है उतना दुष्कर किसी भी वस्तु का त्याग करना नहीं होता है ॥ १७ ॥ जिस प्रकार सब समुद्रों से बडा स्वयंभूरमण समुद्र को तिरगये बाद गंगा जैसी नदी को तिरना कठिन नहीं होता है उस ही प्रकार स्त्री का त्याग किये बाद अप धनादि सामग्री छोडना कठिन नहीं होता है ॥ १८ ॥ इस जगत् में व्याधि आदि शारीरिक दुःख और चिन्ता वगैरा मानसिक दुःख हुवे हैं वे सब निश्चय निरंतर काम भोग की इच्छा से ही उत्पन्न हुवे हैं इन दुःखों का अन्त वीतरागी ही कर सकते हैं॥१९॥जिस प्रकार किंपाक जात के वृक्ष के फल वर्ण कर के मनोरम स्वाद कर के मिष्ट होते हैं परन्तु भोगवे बाद क्षीण पाप में आयुष्य का नाश करते हैं मृत्यु प्राप्त कराते हैं वैसे ही काम भोग भी देखने में मनोहर भोगवते अच्छे लगते हैं परन्तु उन के पाप के फल भोगवते हुवे बहुत दुःख दायक होते हैं

सूत्र

अप्पट्टगुरू किलिट्ठे ॥ २७ ॥ रूवाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण सन्निओगे ॥ वए विओगे य कहं सुहंसे संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥ २८ ॥ रूवे अतित्ते य परिग्गहेय, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं॥ अतुट्ठि दोसेण दुहीपरस्स, लोभाविले आययइ अदत्तं ॥ २९ ॥ तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, रूवे अतित्तस्स, परिग्गहेय ॥

अर्थ

प्राणीयों की अनेक प्रकार के शस्त्र कर घात करता पीडित करता है ॥ २७ ॥ मनोज्ञ रूप का रागी बना मनोज्ञ रूप को ग्रहण करने की मूर्च्छा करके सुरूप स्त्रीयादि पदार्थ रूप परिग्रह अपने लिये या परके लिये सम्यक प्रकार से काम में आने के लिये उपार्जना करता है उन उपार्जन किये का चोर जारादि से सरक्षण करता है, यों करते २ दोनों में से एक (वह रूपवंत पदार्थ तथा उस का मालक) अवश्य नाश को प्राप्त होता है तो कहाँ उस सुरूप पदार्थ से उस को किस प्रकार सुख की प्राप्ति होवे ! अर्थात् मनोज्ञ रूप का रागी कदापि सुखी नहीं होता है !!! ॥ २८ ॥ मनोज्ञ रूप में असन्तोषी जीव रूपवंत परिग्रह में अत्यन्त लुब्ध बना हुवा किंचित भी संतोष प्राप्त नहीं करता हुवा फिर सुरूप के लोभ कर जिस का चित्त मलीन बना है वह जीव असन्तोष के दोष कर अन्य की रूपवंत वस्तु को देखकर उस वस्तुके मालिक की रजा विना उस वस्तु को ग्रहण करता है अर्थात् चोरी करके भी इच्छा तृप्त करता है ॥२९॥ रूपवंत परिग्रहको प्राप्त करने में असंतोषपना तीव्र तृष्णाकर पराभव पाया हुवा रूपवंत वस्तु

सूत्र

रागद्दोरे से अह या पयंगे आलोय लोले समुवेइ मच्चुं ॥ २४ ॥ जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तसिस्सणे से उ उवेइ दुक्खं ॥ दुद्दंत दोसेण सएण जतू, न किंचि रूवं अवरुज्झई से ॥ २५ ॥ एगंत रत्ते रुइरंसि रूवे, अतालिसे से कुणईपओसं ॥ दुक्खस्स संपील मुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी वीयरागो ॥ २६ ॥ रूवाणुगा साणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइणेगरूवे ॥ चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ

अर्थ

में लीन मूर्च्छा वाला जीव अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ जो कोई अमनोज्ञ रूप को देख कर तीव्र द्वेष भाव को प्राप्त होता है वह जीव आप ही आप कर दुःख को प्राप्त होता है परन्तु वह अमनोज्ञ रूप उसका किसी प्रकार अपराधी नहीं है ॥ ऐसे द्वेष रूप दुर्दन्त शत्रु के वाले में पड जीव स्वयं ही दुःखी होता है॥२५॥जो जीवों एकान्त मनोज्ञ रूप में ही रक्त होते है उनको अमनोज्ञ रूप सम्बन्धी द्वेष भूत होते हैं जिसकर वे आप ही दुःख को प्राप्त होते है ऐसा जानकर जो वीतराग होते हैं वे द्वेष रूप मैल कर अपने आत्मा को लिप्त नहीं करते हैं ॥ २६ ॥ जिस अज्ञानीने मनोज्ञ रूप प्राप्त करने को ही आत्मा का महाअर्थ महाकाम समझ रखा है वह मनोज्ञ रूप के राग रूप रोग कर पीडित बना मनोज्ञ रूप के पीछे ही चलता है अर्थात् उस मनोज्ञ रूप को प्राप्त करने [या प्राप्त मनोज्ञ रूप का रक्षण करने को] अनेक प्रकार के त्रस स्थावर

सूत्र

एमेव रूवम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ ॥ पदुट्ठ चित्तो य चिणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥ ३३ ॥ रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह
परंपरेणा॥न लिप्पए भवमज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणी पलासं॥ ३४ ॥ १ ॥
सोयस्स सद्दं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु, तं दोस हेउं अमणुन्नमाहु, समो य
जो तेसु स वीयरागो ॥ ३५ ॥ सद्दस्स सोयं गहणं वयंति सोयस्स सद्दं गहणं

अर्थ

द्वेष को प्राप्त हुआ मनुष्य भी दुःख के समूह को प्राप्त होता है, विद्वेष में द्वेष से कर्म बन्ध होता है सो
भवना फिर व कर्म उस जीव को इस लोक में तथा परलोक में भुकने बहुत दुःख वाला होते हैं ॥ ३३ ॥
और जो प्राणी उन मनोज्ञ रूप में विरक्त भाव धारन करते हैं वे शोक रहित होते हैं उक्त प्रकार के
दुःख भोगने वाले नहीं होते हैं, वे जिस प्रकार पानी में कमल पत्र अलिप्त रहता है तैसे वे भी निर्लेप
रहते हैं इति चक्षु इन्द्रिय का कथन ॥ ३४ ॥ १ ॥ अब श्रोत्रेन्द्रिय (कान) का कहते हैं—श्री तीर्थंकर
भगवन्ते कहा है कि श्रोत्रेन्द्रिय शब्द को ग्रहण करने योग्य है उस में जो शब्द मनोज्ञ होते हैं वे राग
भाव के उत्पादक होते हैं और जो अमनोज्ञ होते हैं वे द्वेष भाव के उत्पादक होते हैं इन मनोज्ञ व
अमनोज्ञ शब्दों में जो राग द्वेष को प्राप्त नहीं होता है वह वीतराग जानना ॥ ३५ ॥ श्री तीर्थंकर भगवान
प्रव कहते हैं—कान शब्द को ग्रहण करनेवाले हैं, कान को शब्द ग्राह्य करने योग्य है उस में जो मनोज्ञ

मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥ ३० ॥ मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ॥ एवं अदत्ताणि समाययंतो, रूवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ३१ ॥ रूवाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ३२ ॥

की चोरी करने वाला होता है उसे कोई पूछे कि तैने अमुक वस्तु प्राप्त की ' तब उस को कपट युक्त झूठ जवाब देते भी उस पाप के फल भुक्तने से वह जीव मुक्त नहीं होता है, पाप फल तो अवश्य भुक्तने ही पड़ते हैं ॥ ३० ॥ रूप गृद्धी जीव उक्त प्रकार झूठ बोले बाद भी पश्चाताप करता है वैसे ही पहिले भी पश्चाताप करना पड़ता है, उस का मन सदैव चिन्ता गृस्त बना रहता है कि—अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या उत्तर दूंगा ' रखे मेरी झूठ या चोरी प्रगट होजावे, इस प्रकार रूपवंत स्त्री आदि वस्तु के चोरने वाले दुःख ही दुःख भोगवते हैं, उन का कोइ सखा (सहायक) भी नहीं होता है इस प्रकार उस के दुःख का अन्त आना बहुत कठिन होता है ॥ ३१ ॥ उक्त प्रकार जो जीवों रूप में आसक्त हो रहे हैं उन को सुख की प्राप्ति किसी भी प्रकार हो सकती है क्या? अर्थात् वे किसी प्रकार सुखी नहीं होते हैं, उन्हें उस मनोज्ञ स्वरूप स्त्री आदि के भोग में फसे अनेक प्रकार के क्लेश भोगवते हैं उस के भोगवने के लिये अनेक कष्ट उपार्जन करते हैं ॥ ३२ ॥ और इस प्रकार ही खराब रूप में

मेगरूवे ॥ चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥ ४० ॥ सद्दाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण सन्निओगे ॥ वए विओगे य कहंसुहं से संभोगकालेय अतित्तलाभ ॥ ४१ ॥ सद्दे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ॥ अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ ४२ ॥

अर्थ — और आत्मा का महा अथ महालाभ समझ रखा है वह मनोज्ञ शब्द के राग कर पीडित हुआ मनोज्ञ शब्द के पीछे २ पडता है अर्थात् मनोज्ञ शब्द को प्राप्त करने अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों को अनेक प्रकार से पीडित करता है या घात करता है ॥ ४० ॥ मनोज्ञ शब्द का रागी बना हुआ मनोज्ञ शब्द को ग्रहण करने की मूर्छा करके सुशब्दवाली वीणा आदि परिग्रह को अपने लिये या अन्य के लिये सम्यक् प्रकार से काम में आने के लिये उपार्जन करता है, उस महा कष्ट से उपार्जन किये पदार्थों का चारादि से संरक्षण करता है, यों करते २ भी दोनों में से [उस शब्द संजोगी पदार्थ का या प्राप्त करनेवाले का] एक का तो अवश्य ही विनाश होता है, तो कहो वह शब्द संजोगी पदार्थ उस को किस प्रकार सुखदाई बन सके अर्थात् मनोज्ञ शब्द का रागी कदापि सुखी नहीं होता है ॥४१॥ मनोज्ञ शब्द में असंतोषी जीव मनोज्ञ शब्दों में लुब्ध बना किंतु भी संतोष को प्राप्त नहीं होता हुवा सुशब्द के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन बना है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य की सुशब्द वाली वस्तु को देख कर उस वस्तु के मालक की रजा बिना उस वस्तु को ग्रहण करता है अर्थात् चोरी

सूत्र

वयंति ॥ रागस्स हेउ समणुन्नमाहु, दोसस्सहेउ अमणुन्नमाहु ॥ ३६ ॥ सद्देसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ स विणासं ॥ रागाउरे हरिणमिगे व मुद्धे सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चु ॥ ३७ ॥ जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं ॥ दुद्दंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि सद्दं अवरुज्झई से ॥ ३८ ॥ एगंतरत्ते रुइरंसि सद्दे अतालिसे से कुणई पओसं ॥ दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पइ तेण मुणी विरागो ॥ ३९ ॥ सद्दाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ

अर्थ

ज्ञ हैं वे राग के हेतु हैं और अमनोज्ञ शब्द हैं वे द्वेष के हेतु हैं ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार शब्द का अनुराग धन कर मृग पशु अकाल में मृत्यु को प्राप्त होता है वैसे ही जो शब्द में तीव्र मूर्च्छावाला होता है वह अकाल में मृत्यु पाता है ॥ ३७ ॥ जो कोई अमनोज्ञ शब्द को सुनकर तीव्र द्वेष को प्राप्त होता है वह मात्र आपही पाप कर दुःख को प्राप्त होता है वह अमनोज्ञ शब्द इस लिये किसी प्रकार अपराधी नहीं है ऐसे द्वेष रूप शत्रु के साथ में वह जीव स्वयं दुःखी होते हैं ॥ ३८ ॥ जो जीव एकान्त मनोज्ञ शब्द में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ शब्द पर सहज ही द्वेष को प्राप्त होते हैं जिस कर वे आपही दुःख को प्राप्त होते हैं ऐसा जानकर जो वीतराग होते हैं वे द्वेष रूप मैल कर लिप्त नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥ जिस अज्ञानी ने मनोज्ञ शब्द प्राप्त करने

नेगरूवे ॥ चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥ ४० ॥ सद्दाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण सन्निओगे ॥ वए विओगे य कहसुहं से संभोगकालेय अतित्तलाभ ॥ ४१ ॥ सद्दे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ॥ अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्त ॥ ४२ ॥

अर्थ—और आत्मा का महा अर्थ महालाभ समय रखा है वह मनोज्ञ शब्द के राग कर पीडित हुआ मनोज्ञ शब्द के पीछे २ पड़ता है अर्थात् मनोज्ञ शब्द को प्राप्त करने अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों को अनेक प्रकार से पीडित करता है या घात करता है ॥ ४० ॥ मनोज्ञ शब्द का रागी बना हुआ मनोज्ञ शब्द को ग्रहण करने की मूर्च्छा करके सुशब्दवाली वीणा आदि परिग्रह को अपने लिये या अन्य के लिये सम्यक् प्रकार से काम में आने के लिये उपार्जन करता है, उस महा कष्ट से उपार्जन किये पदार्थों का चोरादि से संरक्षण करता है, यों करते २ भी दोनों में से [उस शब्द संयोगी पदार्थ का या प्राप्त करनेवाले का] एक का तो अवश्य ही विनाश होता है, तो कहो वह शब्द संयोगी पदार्थ उस को किस प्रकार सुखदाई हो सके अर्थात् मनोज्ञ शब्द का रागी कदापि सुखी नहीं होता है॥ ४१ ॥ मनोज्ञ शब्द में असंतोषी जीव मनोज्ञ शब्दों में लुब्ध बना किंचित् भी संतोष को प्राप्त नहीं होता हुवा सुशब्द के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन बना है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य की सुशब्द वाली वस्तु को देख कर उस वस्तु के मालक की रजा विना उस वस्तु को ग्रहण करता है अर्थात् चोरा

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, सद्दे अतित्तस्स परिग्गहे य ॥ मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥ ९३ ॥ मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ॥ एवं अदत्ताणि समाययंतो, सद्दे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ९४ ॥ सद्दाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थोव

करके भी तृष्णा तृप्त करता है ॥ ९२ ॥ मनोज्ञ शब्द रूप परिग्रह को प्राप्त करने में असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा कर पराभव पाया हुआ सुशब्द वाली वस्तु का चोरी करने वाला होता है, उसे कोई पूछे कि तूने अमुक वस्तु ग्रहण की ? तब उस को कपट युक्त झूठा जवाब देने से भी उस पाप के फल भुगतने से उस का छूट का नहीं होता है, अर्थात् पाप के फल जरूर ही भुक्तने पडते हैं ॥ ९३ ॥ शब्दानुरागी जीव एक प्रकार झूठ बोले बाद भी पश्चाताप करता है वैसे पहिले भी पश्चाताप करता है अर्थात् उस का मन सदैव चिन्ता ग्रस्त ही बना रहता है, अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या उत्तर दूंगा रखे मेरी झूठ या चोरी प्रगट हो जावे इस प्रकार शब्द संयोगी पदार्थ के घोर दुःख भोगवते हैं उन का कोई सहायक नहीं होता है अर्थात् उस के दुःख का अन्त आना बहुत मुश्किल होजाता है ॥ ९४ ॥ इस प्रकार जो जीवों शब्द में आसक्त होते हैं उन को सुख की प्राप्ति किसी भी प्रकार है क्या ! अर्थात् किसी भी उपाय कर वे सुखी नहीं होते हैं उलटे उस मनोज्ञ सुशब्द के पदार्थों में फसकर

मूल

मोसे वि किलेस दुक्ख, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ४५ ॥ एमेव सद्दम्मिगओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ ॥ पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥ ४६ ॥ सेद्दे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ॥ न लिप्पए भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणी पलासं ॥ ४७ ॥ २ ॥ घाणस्स गंध गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ॥ तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु

अर्थ

अनेक प्रकार का क्लेश भोगते हैं उस की प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं ॥ ४५ ॥ और इस प्रकार ही स्वराब शब्द से द्वेष को प्राप्त हुआ मन भी दुःख के समूह को प्राप्त होता है, विशेष द्वेष से कर्म बन्ध होता है वे कर्म इस जीव को इस लोक में तथा परलोक में मुक्ते बहुत दुःख देने वाले होते हैं ॥ ४६ ॥ और जो प्राणी जनों मनोज्ञ शब्द में विरक्त भाव धारण करते हैं वे सर्व प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं उक्त दुःख के भोक्ता नहीं होते हैं वे जिस प्रकार पानी में कमल पत्र अलिप्त रहता है तैसे ही अलिप्त रहते हैं ॥ ४७ ॥ इति श्रोत्रेन्द्रिय कथन ॥ अब घ्राणेन्द्रिय का कथन करते हैं श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं कि घ्राणेन्द्रिय गंध को ग्रहण करने की योग्यता रखती है उस में जो सुरभिगंध होती है वह राग भाव की उत्पादक होती है और दुर्गन्ध होती है वह द्वेषभाव की उत्पादक होती

मूल

स वियरागो ॥ ४८ ॥ गंधस्स घाणं गहणं वयंति घाणस्स गंधं गहणं वयंति ॥ राग-स्सहेउं समणुन्नमाहु दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥ ४९ ॥ गंधेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ॥ रागाउरे ओसहि गंधगिद्धे, सप्पे बिलाओ विव निक्खमंते ॥ ५० ॥ जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ॥ दुद्दंत दोसेण सएण जंतू, न किंचि गंधं अवरज्झई से ॥ ५१ ॥ एगंत रत्ते रुइरंसि गंधे, अतालिसे से कुणई

अर्थ

है. इस मनोज्ञ अमनोज्ञ गंध में जो रागद्वेष को प्राप्त नहीं होता है वह वीतराग कहा जाता है ॥ ४८ ॥ श्री तीर्थंकर कहते हैं कि गंध को घ्राण ग्रहण करती है और नाक का गंध ग्रहण करने योग्य होती है इस में जो मनोज्ञ गंध है वह रागभाव की उत्पादक होती है और अमनोज्ञ गंध है वह द्वेष भाव को उत्पादक होती है ॥ ४९ ॥ जिस प्रकार औषध जड़ी या पुष्पादि के गन्ध से लुब्ध बना सर्प बिल में से बाहिर निकल कर दुःख को प्राप्त होता है वैसे गंध गृद्ध जीव अकाल में मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ या कोई अमनोज्ञ गंध प्राप्त होने से जीव द्वेष भाव को प्राप्त होते हैं वे आप ही अपने को दुःखी बनाते हैं परन्तु यह गंध उनकी अपराधिनी नहीं है उस द्वेष रूप दुर्दम्य शत्रु के सांचे में पड़े हुवे जीवो स्वयं दुःखी होते हैं ॥ ५१ ॥ जो जीवों एकान्त मनोज्ञ गंध में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ गंध में सहज ही द्वेष को

पओसं ॥ दुक्खस्स संपील मुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी वीरागो ॥५२॥ गन्धाणु गासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे ॥ चित्तेहि ते परितावेइ बाल, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥ ५३ ॥ गन्धाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे॥ वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥ ५४ ॥ गंधे अतित्ते य

अर्थ

प्राप्त होते हैं जिस से वे अज्ञानी दुःख को प्राप्त होते हैं, ऐसा जानकर द्वेष रूप मैल कर वीतराग लिप्त नहीं होते हैं ॥ ५२ ॥ जिस अज्ञानीने मनोज्ञ गंध को प्राप्त करने में ही आत्मा का महा अर्थ महा लाभ समझ रखा है वह मनोज्ञ गंध के राग रूप रोग कर पीडित हुवा मनोज्ञ गंध के पीछे २ ही घूमता है अर्थात् मनोज्ञ गंध को प्राप्त करने अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों की घात करता है तथा पीडित करता है ॥ ५३ ॥ मनोज्ञ गंध का रागी बना जीव मनोज्ञ गंध को ग्रहण करने की मूर्च्छा करके मनोज्ञ गंधवाले कस्तूरी आदि परिग्रह को अपने लिये या पर के लिये गंध के काम में आने के लिये उपार्जन करता है उस उपार्जन किये पदार्थों का चोरादि से संरक्षण करता है यों करते २ भी दोनों में से (उस गंधवाले पदार्थ का या उस के मालक का) एक का तो अवश्य ही नाश होता है इस लिये वह गन्धलुब्धात्मा किसी भी प्रकार सुख को प्राप्त नहीं होता है ॥ ५४ ॥ मनोज्ञ गंध में असंतोषी जीव

सूत्र

स निम्नरागो ॥ ४८ ॥ गंधस्स घाणं गहणं वयंति, घाणस्स गंधं गहणं वयंति ॥ राग- स्सहेउं अमणुन्नमाहु दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥ ४९ ॥ गंधेसु जो गिद्धिं मुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ॥ रागाउरे ओसह गंधगिद्धे, सप्पे बिलाओ विव निक्खमंते ॥ ५० ॥ जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ॥ दुद्दंत दोसेण सएण जंतू, न किंचि गंधं अवरुज्झई से ॥ ५१ ॥ एगंत रत्ते रुइरंसि गंधे, अतालिसे से कुणई

अर्थ

है इस प्रकार अमनोज्ञ गंध में जो रागद्वेष को प्राप्त नहीं होता है वह वीतराग कहा जाता है ॥ ४८ ॥ श्री तीर्थंकर कहते हैं कि गंध को घ्राण ग्रहण करती है और नाक का गंध ग्रहण करने योग्य होती है वह मैं जो मनोज्ञ गंध है वह रागभाव की उत्पादक होती है और अमनोज्ञ गंध है वह द्वेष भाव को उत्पादक होती है ॥ ४९ ॥ जिस प्रकार औषध मदी या पुष्पादि के गन्ध में लुब्ध बना सर्प बिल में से बाहिर निकल कर दुःख को प्राप्त होता है वैसे गन्ध लुब्ध जीव अकाल में मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ जो कोई अमनोज्ञ गन्ध प्राप्त होने से तीव्र द्वेष भाव को प्राप्त होते हैं व आप ही अपने को दुःखी बनाते हैं परन्तु गंध में उनकी अपराधिनी नहीं हैं इस द्वेष रूप दुर्दमन्त शत्रु के साथ में पड़े हुवे जीवो स्वयं दुःखी होते ॥ ५१ ॥ जो जीवों एकान्त मनोज्ञ गंध में रक्त होते हैं व अमनोज्ञ गंध में सहज ही द्वेषका

आतिसो दुहिओ अणिस्सो ॥ ५७ ॥ गधाणुरत्तस्स नरस्स एव, कत्तोसुह होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थोव मोगे वि किलेस दुक्ख, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख ॥ ५८ ॥ एमेव गधम्मि गओ पओस, उवेइ दुक्खोह परपराओ ॥ पदुट्ठचित्तो य चिणाइकम्मं, ज से पुणोइ दुह विवागे ॥५९॥ गधे विरत्तो मणुओविसोगो एएण दुक्खोह परपरेण॥नलिप्पए भवमज्झेवि सतो जलेणवा पोक्खरिणी पलास ॥६०॥३॥ जीहाए

अर्थ

है उन का कोइ सहायक नहीं होता है अथात् उस के दु ख का अन्त आना बहुत मुशकिल होता है ॥ ५७ ॥ इस प्रकार गंध रक्त जीवों को सुख की प्राप्ति होवे ही कहां से ? अर्थात् वे किसी भी उपाय कर सुख प्राप्त नहीं कर सकते हैं उलट उस मनोज्ञ गंध के पदार्थों में फस कर अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हैं उस की प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं ॥ ५८ ॥ और इस ही प्रकार खराब गध में द्वेष को प्राप्त हुआ मनुष्य भी दु ख के समुह को प्राप्त होता है, विशेष द्वेषी बनने से कर्म बन्ध होता है, वे कर्म उस जीव को इस लोक में पर लोक में दोनों लोक में बहुत दु खकारी होते हैं ॥ ५९ ॥ ऐसा जान जो ज्ञानी जनों मनोज्ञ गध में विरक्त भाव धारन करते है वे सर्व प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं उक्त दु ख के भोक्ता नहीं होते हैं, वे जिस प्रकार पानी में कमल पत्र अलिप्त रहता है तैसे गधकर कर्मों के लेप से अलिप्त रहते हैं इति घ्राणेन्द्रिय कथन ॥३॥ ६० ॥ अब जिव्हा इन्द्रिय का कहते

सूत्र

परिग्गहेय सत्तोवसत्तो न उवेइतुट्ठिं ॥ अतुट्ठि दोसेण दुहीपरस्स, लोभाविले आययइ अदत्त ॥ ५५॥ तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, गंधे अतित्तस्स परिग्गहेय ॥ मायामुस वड्डइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥ ५६ ॥ मोसस्स पच्छाय पुरत्थओ य, पओगकाले य दुहीदुरंते ॥ एव्व अदत्ताणि समाययतो गंधे

अर्थ

मनोज्ञ गंध में लुब्ध बना हुवा किंचित् भी संतोष को प्राप्त नहीं होता है सुरभिगंध के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन रहता है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य की सुगंधी वस्तु को देखकर उसे ग्रहण करने चोरी करता है तो भी उस की इच्छा तृप्त नहीं होती है ॥ ५५ ॥ मनोज्ञ गंध रूप परिग्रह को प्राप्त करने में असंतोषी बना हुवा जीव तृष्णा कर पराभव पाया हुवा सगंधवाली वस्तु की चोरी करने वाला होता है उस कोइ पूछे कि तने अमुक वस्तु ग्रहण की ? तब उसे कपट युक्त झूठा जवाब देने से भी उस पाप के फल भुक्तने उस से छुटका नहीं होता है अर्थात् पाप के फल जरूर ही भुक्तना पडता है ॥ ५६ ॥ गंधानुरागी जीव उक्त झूठ बोले बाद भी पाप फल भुक्तता पश्चाताप करता है तैसे पहिले भी पश्चाताप करता है, याने उस का मन सदैव चिन्ताग्रस्त रहता है अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या जवाब दूंगा ? रखे मेरी झूठ चोरी प्रगट होजावे ! इस प्रकार गंध संयोगी पदार्थ के वास्ते दुःख ही दुःख भोगते

अतालिसे से कुणई पओसं ॥ दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले,न लिप्पई तेण मुणी वियरागो ॥ ६५ ॥ रसाणुगासाणुगए य जीवे चराचरे हिंसइ णेगरूवे ॥ चित्तेहिं ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठ गुरू किलिट्ठे ॥ ६६ ॥ रसाणुवाएण परिग्गहेण उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ॥ वए विओगेय कहंसुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥ ६७ ॥ रसे अतित्तेय परिग्गहेय सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ॥ अतुट्ठि दोसेण

॥ ६४ ॥ जो जीवों एकान्त मनोज्ञ रस में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ रस में सहज ही द्वेष को प्राप्त होवे हैं जिस से वे ही अज्ञानी जीवों दुःखके भोक्ता होते हैं ऐसा जान द्वेष रूप मेलकर वीतरागी लिप्त नहीं होवे हैं ॥ ६५ ॥ जिस अज्ञानीने मनोज्ञ रस ही आत्मा का महा अर्थ समझ रखा है, वह मनोज्ञ रस के राग रूप रोग कर पीड़ित हुआ मनोज्ञ रस के पीछे २ ही भटकता है, अर्थात् मनोज्ञ रस को प्राप्त करने अनेक त्रस स्थावर प्राणीयों की घात करता है तथा पीड़ित करता है ॥ ६६ ॥ मनोज्ञ रस का रागी बना जीव मनोज्ञ रस को ग्रहण करने की मूर्च्छा कर, मनोज्ञ रस वाले मिष्टान्नादि परिग्रह को अपने लिये वापर के लिये भोग ने के काम में आने के लिये उपार्जन करता है फिर उपार्जन किये पदार्थों का चोरादिसे रक्षण करता है यों करते २ दोनों में से एक का तो अवश्य ही नाश होता है इस लिये वह रस लुब्ध जीव किंचित भी प्रकार सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है ॥ ६७ ॥ मनोज्ञ रस में असंतोषी जीवों मनोज्ञ रस में लुब्ध बने हुवे किंचित भी संतोष को प्राप्त नहीं होवे हैं, स्वादि रस

सूत्र

१० गहणं वयंति तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ॥ तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु समो य जो तेसु स वीयरागो ॥६१॥ रसस्स जीहं गहणं वयंति, जीहाए रसं गहणं वयंति ॥ रागस्स हेउं समणुन्नमाहु दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥ ६२ ॥ रसे सु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं अकालियं पावइ से विणासं ॥ रागाउरे बडिस विभिन्नकाए, मच्छे जहा आमिस भोगगिद्धे ॥ ६३ ॥ जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ॥ दुद्दंत दोसेण सएण जंतू, न किंचि रसं अवरुज्झई से ॥ ६४ ॥ एगंतरत्ते रुइरंसि रसे,

अर्थ

श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं कि जिव्हा इन्द्रिय रस को ग्रहण करने की योग्यता रखती है उस में जो मनोज्ञ रस होता है वह रागोत्पादक होता है और अमनोज्ञ रस होता है वह द्वेषोत्पादक होता है इन मनोज्ञ अमनोज्ञ दोनों प्रकार के रस पर जो रागद्वेष नहीं करता है वही वीतराग कहा जाता है ॥६१॥ श्री तीर्थंकर कहते हैं कि-रस को जिव्हा ग्रहण करती है और जिव्हा का रस ग्रहण करने योग्य है उस में मनोज्ञ रस रागोत्पादक और अमनोज्ञ रस द्वेषोत्पादक होता है ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार मांस भक्षण के रस में लुब्ध बना मच्छ लोह के कांटे में अपना कंठ छेदन करा अकाल में मृत्यु को प्राप्त होता है, ऐसे ही रस गृद्धी जीवों भी अकाल में मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ ६३॥ जो कोई अमनोज्ञ रस की प्राप्ति से तीव्र द्वेष भाव को प्राप्त होते हैं वे आप ही अपने को दुःखी बना लेते हैं परंतु वह रस उस का अपराधी नहीं है वैसे द्वेष रूप दुर्दम्य वस्तु के ताबे में पड़े हुवे जीवों स्वयं ही दुःखी होते हैं,

निम्बचइ जस्स कएण दुक्खं ॥ ७१ ॥ एमेव रसम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ ॥ पदुट्ठचित्तोय चिणाइ कम्म, जं से पुणो होइ दुह विवागे ॥ ॥ ७२ ॥ रसे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ॥ न लिप्पए भवमज्झे वि संतो, जलेणवा पोक्खरिणी पलासं ॥ ७३ ॥ ४ ॥ कायस्स फास गहणं वयंति तं रागहेउ तु मणुन्नमाहु ॥ तं दोसहेउ अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो।

अर्थ

कर सकते हैं, उपरांत उन मनोज्ञ रस के पदार्थों में फसकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगवते हैं उस की प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं ॥ ७१ ॥ और इस ही प्रकार खराब रस में द्वेष को प्राप्त हुवा मनुष्य भी दुःख के समुह को प्राप्त होता है विशेष द्वेषी बनने से कर्म बन्ध होता है वे कर्म इस लोक में तथा परलोक में भुक्ती वक्त बहुत दुःखकारी होते हैं ॥ ७२ ॥ ऐसा जान जो ज्ञानी जन होते हैं वे मनोज्ञ रस में विरक्त भाव धारन करते हैं, वे सर्व प्रकार की चिन्ता रहित होवे हैं व उक्त दुःख के भोगी नहीं होते हैं जिस प्रकार पानी में कमल अलिप्त रहता है तैसे ही वे अलिप्त रहते हैं इति रसेन्द्रिय कथन ॥ ७३ ॥ अब स्पर्शेन्द्रिय का कहते हैं ॥ श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं कि स्पर्शेन्द्रिय शीत उष्णादि स्पर्श को ग्रहण करने की योग्यता रखती है, उस में जो मनोज्ञ स्पर्श होता है वह राग कर्ता होता है और अमनोज्ञ स्पर्श होता वह द्वेष कर्ता होता है, इन दोनों में जो राग द्वेष नहीं करते हुवे समभाव रखते

सूत्र

दुहीपरस्स, लोभाविले आययई अदत्त ॥ ६८ ॥ तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो रसे अतित्तस्स परिग्गहेय ॥ मायामुस वड्ढइ लोभदोसा तत्थावि दुक्खा न विमुच्चइ से ॥ ६९ ॥ मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरते ॥ एवं अदत्ताणि समाययंतो रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ७० ॥ रसाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थेव भोगे वि किलेस दुक्ख

अर्थ

के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन रहता है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य का भाजनादि को देखकर उस ग्रहण करने वाली करता है तो भी उस की इच्छा तृप्त नहीं होती है ॥६८॥ मनोज्ञ रस कर परिग्रह को प्राप्त करने में असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा कर पराभव पाया हुआ रसमय वस्तु की चोरी करने वाला होता है, उस कोइ पुछ-लेने अमुक वस्तु ग्रहण की ? तब वह कपट युक्त झूठा जवाब देता भी उस पाप के फल भुक्तने से छूटका नहीं पाता है अर्थात् पाप के फल मकर ही भुक्तना पड़ता है ॥६९॥ रसानुरागी जीवों उक्त प्रकार झुठ बोले बाद भी पाप फल प्राप्त हुवे पश्चाताप करते हैं याने उन का मन सदैव चिन्ताग्रस्त बना रहता है अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या जवाब दूंगा ? ऐसे मेरी झुठ या चोरी प्रगट होजावे इस प्रकार रस पदार्थ के चोरनेवाले दुःख ही दुःख भोगवते हैं उन का कोइ सहायक नहीं होता है अर्थात् उस के दुःख का अन्त आना बहुत मुश्किल होता है ॥ ७० ॥ इस प्रकार रस मुग्ध जीवों को सुख की प्राप्ति होवे ही कहांसे ! वे किसी भी उपाय कर सुख प्राप्त होवे नहीं

निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ७१ ॥ एमेव रसम्मि गओ पओस, उवेइ दुक्खोह परपराओ ॥ पदुट्ठचित्तोय चिणाइ कम्म,ज से पुणो होइ दुहं विवागे ॥ ॥ ७२ ॥ रसे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परपरेण ॥ न लिप्पए भवमज्झे वि सतो, जलेणवा पोक्खरिणी पलास ॥ ७३ ॥ ४ ॥ कायस्स फास गहण वयाति त रागहेउं तु मणुन्नमाहु ॥ त दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागा

अर्थ

कर सकते हैं, उपरांत उन मनोज्ञ रस के पदार्थों में फसकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगवते हैं उस की प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं ॥ ७१ ॥ और इस ही प्रकार खराब रस में द्वेष को प्राप्त हुवा मनुष्य भी दुःख के समुद्र को प्राप्त होता है विशेष द्वेषी बनने से कर्म बन्ध होता है वे कर्म इस लोक में तथा परलोक में मुक्ती वक्त बहुत दुःखकारी होते हैं ॥ ७२ ॥ ऐसा जान जो ज्ञानी जन होते हैं वे मनोज्ञ रस में विरक्त भाव धारन करते हैं, वे सर्व प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं व उक्त दुःख के भोगी नहीं होते हैं जिस प्रकार पानी में कमल अलिप्त रहता है तैसे ही वे अलिप्त रहते हैं इति रसेन्द्रिय कथन ॥ ७३ ॥ अब स्पर्शेन्द्रिय का कहते हैं ॥ श्री तीर्थंकर भगवत कहते हैं कि स्पर्शेन्द्रिय शीत उष्णादि स्पर्श को ग्रहण करने की योग्यता रखती है, उस में जो मनोज्ञ स्पर्श होता है वह राग कर्ता होता है और अमनोज्ञ स्पर्श होता वह द्वेष कर्ता होता है, इन दोनों में जो राग द्वेष नहीं करते हुवे समभाव रखते

सूत्र दुहीपरस्स लोभाविले आययई अदत्त ॥ ६८ ॥ तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो रसे अतित्तस्स परिग्गहेय ॥ मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा तत्थावि दुक्खा न विमुच्चइ से ॥ ६९ ॥ मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ॥ एवं अदत्ताणि समाययंतो रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ७० ॥ रसाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थेव भोगे वि किलेस दुक्खं

अर्थ के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन रहता है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य का मालनादि को देखकर उस ग्रहण करने चोरी करता है तो भी उस की इच्छा तृप्त नहीं होती है ॥६८॥ मनोज्ञ रस रूप परिग्रह को प्राप्त करने में असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा कर पराभव पाया हुआ रसमय वस्तु की चोरी करने वाला होता है, उसे कोई पूछे तैंने अमुक वस्तु ग्रहण की ? तब वह कपट युक्त झूठ जवाब देता भी उस पाप के फल भुक्तने से छूटना नहीं पाता है अर्थात् पाप का फल जरूर ही भुक्तना पड़ता है ॥६९॥ रसानुरागी जीवों उक्त प्रकार झूठ बोले बाद भी पाप फल प्राप्त हुवे पश्चाताप करते हैं याने उन का मन सदैव चिन्ताग्रस्त बना रहता है अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या जवाब दूंगा ? ऐसे मेरा झूठ या चोरी प्रगट होजावे इस प्रकार रस पदार्थ के चोरनेवाले दु:ख ही दु:ख भोगते हैं, उन का कोई सहायक नहीं होता है अर्थात् उस के दु:ख का अन्त आना बहुत मुश्किल होता है ॥ ७० ॥ इस प्रकार रस लुब्ध जीवों को सुख की प्राप्त होवे ही कहांसे ? वे किसी भी उपाय कर सुख प्राप्त नहीं

निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ७१ ॥ एमेव रसम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परपराओ ॥ पदुट्ठचित्तोय चिणाइ कम्म,ज से पुणो होइ दुहं विवागे ॥ ॥ ७२ ॥ रसे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ॥ न लिप्पए भवमज्झे वि संतो, जलेणवा पोक्खरिणी पलासं ॥ ७३ ॥ ४ ॥ कायस्स फास गहण वयाति त रागहेउ तु मणुन्नमाहु ॥ त दोसहेउ अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागा

अर्थ

कर सकते हैं, उपरट उन मनोज्ञ रस के पदार्थों में फसकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगवते हैं उस की प्राप्ति के लिये अनक कष्ट उठाते हैं ॥ ७१ ॥ और इस ही प्रकार खराब रस में द्वेष को प्राप्त हुवा मनुष्य भी दु ख के समुद्र को प्राप्त होता है विशेष द्वेषी बनने से कर्म बन्ध होता है वे कर्म इस लोक में तथा परलोक में भुक्तवी वक्त बहुत दुःखकारी होते हैं ॥ ७२ ॥ ऐसा जान जो ज्ञानी जन होते हैं वे मनोज्ञ रस में विरक्त भाव धारन करते हैं, वे सर्व प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं व उक्त दुःख के भोगी नहीं होते हैं जिस प्रकार पानी में कमल अलिप्त रहता है तैसे ही व आलिप्त रहते हैं इति रसेन्द्रिय कथन ॥ ७३ ॥ अब स्पर्शेन्द्रिय का कहते हैं ॥ श्री तीर्थंकर भगवत कहते हैं कि स्पर्शेन्द्रिय शीत उष्णादि स्पर्श को ग्रहण करने की योग्यता रखती है, उस में जो मनोज्ञ स्पर्श होता है वह राग कर्ता होता है और अमनोज्ञ स्पर्श होता वह द्वेष कर्ता होता है, इन दोनों में जो राग द्वेष नहीं करते हुवे समभाव रखते

॥ ७४ ॥ फासस्स काय गहणं वयंति, कायस्स फासं गहणं वयंति ॥ रागस्स हेउ समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउ अमणुन्नमाहु ॥ ७५ ॥ फासेसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ॥ रागाउरे सीयजलावसण्णे गाहग्गहीए महिसे विवन्ने ॥ ७६ ॥ जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ॥ दुद्दंत दोसेण सएण जंतू, न किंचि फासं अवरुज्झइ से ॥ ७७ ॥ एगंतरत्ते रुइरंसि फासे, अतालिसे से कुणई पओसं ॥ दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले न लिप्पई तेण

है, वे ही वीतरागी कहे जाते हैं ॥ ७४ ॥ श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं कि-स्पर्श को काया ग्रहण करती है उस में से मनोज्ञ स्पर्श रागोत्पादक होता है और अमनोज्ञ स्पर्श द्वेषोत्पादक होता है ॥ ७५ ॥ जिस प्रकार पाडा भैसा शीतल स्पर्श की लुब्धता कर पानी में ही पडा रहता है, उस का ग्रासण पानी में रहनेवाले ग्रह नामक जलचर जीवों करने से वह अकाल में मृत्यु प्राप्त होता है वैसे ही स्पर्श गृद्ध जीवों भी अकाल में मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥ जो कोई अमनोज्ञ स्पर्श में तीव्र द्वेष भाव को प्राप्त होते हैं वे आपही आत्म को दुःखी बना लेते हैं परंतु वह स्पर्श उन का अपराधी नहीं होता है ऐसे द्वेष रूप दुर्दन्त पशु के हाथ में पडे जीवों स्वयं ही दुःखी होते हैं ॥ ७७ ॥ जो जीव एकान्त मनोज्ञ स्पर्श में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ स्पर्श पर सहज ही द्वेष करते हैं जिस से वे अज्ञानी जीवों दुःख के भोक्ता बनते हैं

मूल

मुणी विरागो ॥ ७८ ॥ फासाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे ॥ चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठ गुरू किलिट्ठे ॥ ७९ ॥ ॥ फासाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ॥ वए विओगे य कह सुह से, संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥ ८० ॥ फासे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तो वसत्तो न उवेइ तुट्ठि ॥ अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ ८१ ॥ तण्हाभिभूयस्स

अर्थ

ऐसा ज्ञान वीत रागी मन द्वेष रूप मैल में लिप्त नहीं होते हैं ॥ ७८ ॥ जिस अज्ञानीने मनोज्ञ स्पर्श को ही आत्मा का महा अर्थ समझ रखा है वे मनोज्ञ स्पर्श के राग रूप रोग कर पीडित हुवे मनोज्ञ स्पर्श के पीछे २ ही चलते हैं, मनोज्ञ स्पर्श को प्राप्त करने अनेक त्रस स्थावर प्राणियों की घात करते हैं ॥ ७९ ॥ मनोज्ञ स्पर्श का रागी बना जीव मनोज्ञ स्पर्श को ग्रहण करने की मूर्छा कर मनोज्ञ स्पर्शवाले स्त्री आदि परिग्रह का अपने या परके भोगवने के लिये उपार्जन करता है, फिर उपार्जन किये परिग्रह का चोरादि से रक्षण करता है, यों करते २ दोनों में से एक का तो अवश्य ही नाश होता है इस लिये वह स्पर्श लुब्ध जीव किसी भी प्रकार सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है ॥ ८० ॥ मनोज्ञ स्पर्श में असंतोषी जीवों मनोज्ञ स्पर्श में लुब्ध बने हुवे किंचित् भी संतोषित नहीं होते हैं, मनोज्ञ स्पर्श के अनुराग कर जिस का चित्त मलीन हो रहा है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य के स्त्री अंगनाभूषणादि देखकर उसे ग्रहण करने चोरी करता है, तो भी उस की इच्छा तृप्त नहीं होती है ॥ ८१ ॥ मनोज्ञ स्पर्श का परिग्रह प्राप्त करने में

सूत्र

अदत्तहारिणो, फासे अतित्तस्स परिग्गहेय ॥ मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चइ से ॥ ८२ ॥ मोसस्स पच्छा य पुरत्थओय पओगकाले य दुही दुरंते ॥ एवं अदत्ताणि समाययतो, फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ८३ ॥ फासाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थोव भोगे वि किलेस दुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ८४ ॥ एमेव फासम्मि गओ

अर्थ

असंतोषी बना हुआ जीव तृष्णा कर पराभव पाया हुआ वस्त्र भूषणादि स्पर्शने योग्य वस्तु की चोरी करनेवाला होता है उस को कोई पूछे कि तैने अमुक वस्तु ग्रहण की ? तब वह कपट युक्त झूठा जवाब देता भी उस पाप के फल भुक्तने से छूटता नहीं है, अर्थात् पाप के फल जरूर ही भुक्तने पडते हैं ॥ ८२ ॥ स्पर्श के रागी जीव उक्त प्रकार झूठ बोले बाद भी पश्चाताप करता है वैसे ही पहिले भी पश्चाताप करता है यों उस का मन सदैव चिन्तातुर रहता है, अमुक मुझ पूछेगा तो मैं क्या कहुंगा ? रखे मेरी झूठ चोरी प्रगट होजावे इस प्रकार स्पर्श के पदार्थ की चोरी करने वाला दुःख ही दुःख भुक्तता है, उस का कोई सहायक नहीं होता है जिस से उस के दुःख का अन्त आना बहुत मुश्किल होजाता है ॥ ८३ ॥ इस प्रकार स्पर्श के गृद्धि जीवों को सुख की प्राप्ति होने ही कहां से ? अर्थात् वे किसी भी उपाय कर सुखी नहीं हो सकते हैं उलटे उन मनोज्ञ स्पर्श मय पदार्थों में फसकर अनेक प्रकार के कष्ट भुक्तते हैं, उस की प्राप्ती के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं ॥ ८४ ॥ और इस ही प्रकार खराब

मूत्र

पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ, पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्म, जं से पुणो होइ दुह विवागे ॥ ८५ ॥ फासे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ॥ न लिप्पइ भवमज्झे विसतो जलेण वा पोक्खरिणी पलास ॥ ८६ ॥ ५ ॥ मणस्स भाव गहण वयति, त रागहेउ तु मणुन्नमाहु ॥ त दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥ ८७ ॥ भावस्स मणं गहण वयति, मणस्स भाव

अर्थ

स्पर्श पर द्वेष को प्राप्त हुआ मनुष्य भी दुःख के समोह को प्राप्त होता है विशेष द्वेपी बना हुआ कर्मों का बन्धन करता है वे कर्म इस लोक में तथा परलोक में भुक्तने बहुत ही दुःखकारी होते हैं ॥ ८५ ॥ ऐसा जान का ज्ञानी होते हैं वे मनोज्ञ स्पर्श से विरक्त भाव धारन करते हैं वे सब प्रकार की चिन्ता रहित होते हैं व उक्त कहे दुःख के भोक्ता नहीं होते हैं जिस प्रकार पानी में कमल अलिप्त रहता है तैसे वह भी अलिप्त रहते हैं ॥ इति स्पर्शेन्द्रिय कथन ॥ ८६ ॥ ५ ॥ अब जो इन्द्रिय-मन का कथन कहते हैं ॥ श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं कि—मन को भाव ग्रहण करने योग्य है, उस में जो मनोज्ञ भाव हैं वे राग के हेतु हैं और अमनोज्ञ भाव हैं वे द्वेप के हेतु हैं, इन दोनों प्रकार के भावों में जो राग द्वेष नहीं करते हैं वे ही वीतराग कहे जाते हैं ॥ ८७ ॥ श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं कि—भाव को मन

मूल

गए वयंति ॥ रागस्सहेउ समणुन्नमाहु दोसस्सहेउ अमणुन्नमाहु ॥ ८८ ॥ भावेसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ॥ रागाउरे कामगुणेसु गिद्धे, करेणुमग्गावहिएव्व नागे ॥८९॥ जेयावि दोसं समुवेइ तिव्वं तंसिक्खणे सेउ उवेइ दुक्खं ॥ दुद्दंत दोसेण सएण जंतू न किंचि भावं अवरुज्झई से ॥ ९० ॥ एगंतरत्तो रुइरंसि भावे, अतालिसे से कुणई पओसं ॥ दुक्खस्स संपील मुवेइ बाले नलिप्पई तेण मुणी विरागो ॥ ९१ ॥ भावाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ

अर्थ

ग्रहण करता है और मन को भाव ग्रहण करने योग्य होते हैं, इस में मनोज्ञ भाव रागोत्पादक होते हैं और अमनोज्ञ भाव द्वेषोत्पादक होते हैं॥८८॥ जिस प्रकार हाथी पकडने वाले हाथी जितना खड्डा खोद उस पर पतले घास की चीपट बिछाकर कागज की हथनी खडी करते हैं उस में लुब्ध बना हाथी खड्डे में गिर अकाल मृत्यु पाता है वैसे ही विषय गृद्धी मनुष्यों भी अकाल में मृत्यु पाते हैं ॥ ८९ ॥ जो कोइ अमनोज्ञ भावों का सम्बन्ध होते तीव्र द्वेष को प्राप्त होता है वह आप ही अपना को दुःखी बना लेता है परंतु वह भाव उस का अपराधी नहीं है ऐसा द्वेष रूप दुर्दान्त शत्रु के आधीन में पडे जीवों स्वयं ही दुःखी होते हैं ॥ ९० ॥ जीवों एकान्त मनोज्ञ भावों में रक्त होते हैं वे अमनोज्ञ भावों पर सहज ही द्वेष को प्राप्त होते हैं जिस से अज्ञानी जीवों दुःख के भोक्ता बनते हैं ऐसा जान वीतरागी जीव द्वेष रूप लेप कर लिप्त नहीं होते हैं ॥९१॥ जिस अज्ञानीने मनोज्ञ भावों को ही भला मान ग्रहण रखता है वे मनोज्ञ

मूल
पेगरूवे ॥ विरोहि ते परितावेइबाले, पीलेइ अचट्ठगुरु किलेट्ठे ॥ १२ ॥ भावाणुवाएण परिग्गहेण,उप्पायणे रक्खण सन्निओगे॥ वए निओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्त लाभे ॥ १३ ॥ भावेअतित्त य परिग्गहे य सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ॥ अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ १४ ॥ तण्हाभि भूयस्स अदत्तहारिणो, भावेअतित्तस्स परिग्गहे य ॥ मायामुसं वड्ढइ

अर्थ
भाव का राग कर पीडित हुवे मनोज्ञ भावों के पीछे ही फिरते हैं मनोज्ञ भावों को प्राप्त करने मन के त्रस स्थावर की घात करते हैं पीडा देते हैं ॥ १२ ॥ मनोज्ञ भावों का रागी बना जीव मनोज्ञ भावों को ग्रहण करने की मूर्च्छा कर मनोज्ञ भाव के उत्पादक नृत्यादि परिग्रह का अपने या परके भोग के लिये उपार्जन करता है उपार्जन किये परिग्रह का रक्षण करता है यों करते २ दोनों में से एक का नाश जरूर ही होता है इस लिये वह भाव लुब्ध जीव किसी भी प्रकार सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है ॥ १३ ॥ मनोज्ञ भावों में असंतोषी जीवों मनोज्ञ भावों में लुब्ध बन हुवे किंचित् भी संतोषी नहीं बनते हैं मनोज्ञ भावों के अनुराग कर जिन का चित्त मलीन बना है वह जीव असंतोष के दोष कर अन्य की नृत्यादि सामग्री देखकर उसे ग्रहण करने चोरी करते हैं तो भी उन की इच्छा तृप्त नहीं होती है ॥ १४ ॥ मनोज्ञ भावों का परिग्रह प्राप्त करने में असंतोषी बना हुवा जीव तृष्णा कर परागत पाया हुवा नृत्यादि सामग्री भावों के योग्य वस्तु की चोरी करनेवाला होता है उसे कोई पूछे-तैने अमुक वस्तु ग्रहण की ? तब वह

सूत्र

लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न वि मुच्चई से ॥ १५ ॥ मोसस्स पच्छाय पुरत्थओय, पओगकाले य दुही दुरंते ॥ एव अदत्ताणि समाययंतो, भावे अतित्त दुहिओ अणिस्सो ॥ १६ ॥ भावाणुरत्तस्स नरस्स एव, कुत्तो सुह होज्ज कयाइ किंचि ॥ तत्थोव भोगे वि किलेस दुक्खं निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ १७ ॥ एमेव भावम्मिगओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ ॥ पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं

अर्थ

कपट युक्त झूठा जवाब देता भी उस के कटु फल भुक्तने से छूटता नहीं है पाप के फल जरूर ही भुक्तने पड़ते हैं ॥ १५ ॥ भावानुरागी जीवों उक्त प्रकार झूठ बोले बाद भी पश्चाताप करते हैं, तैसे ही पहिले भी पश्चाताप करते हैं वे सदैव चिन्तातुर रहते हैं अमुक मुझे पूछेगा तो मैं क्या कहूंगा ? रसे ही अब चोरी प्रगट होजावे यों भावों के पदार्थ की चोरी करनेवाला दुःख ही दुःख भुक्तता है उस का कोई सहायक नहीं होता है उस के दुःख का अन्त आना मुश्किल हो जाता है ॥ १६ ॥ इस प्रकार भावों के गृद्धी जीवों को सुख की प्राप्ति होवे ही कहां से ? वे किसी भी उपाय कर सुखी नहीं होते हैं उलटे इन मनोज्ञ भावों मय पदार्थों में फसकर अनेक प्रकार के कष्ट भुक्तते हैं उस की प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाते हैं ॥ १७ ॥ और इस ही प्रकार खराब भाव पर द्वेष को प्राप्त हुवा मनुष्य भी दुःख के समूह को प्राप्त होता है विशेष द्वेषी बना हुवा कर्मों का बन्ध करता है उस के फल इस लोक

सूत्र

विवागे ॥ ९८ ॥ भावे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण ॥ न लिप्पइ भवमज्झे वि सतो, जलेणवा पोक्खरिणी पलास ॥ ९९ ॥ १ ॥ एविंदियत्था य मणस्स अत्था, दुक्खस्स हेउ मणुयस्स रागिणो ॥ ते चेव थोवं पि कयाइ दुक्ख, न वीयरागस्स करेंति किंचि ॥१००॥ न काम भोगा समय उवेंति न यावि भोगा विगइं उवेंति॥जे तप्पओसी य परिग्गही य,सो तेसु मोहा विगइ उवेइ॥१०१॥

अर्थ

परलोक में मुझने बहुत दुःखकारी होते हैं ॥ ९८ ॥ ऐसा भान जो ज्ञानी होते हैं वे मनोज्ञ भावों से विरक्त भाव धारन करते हैं जिस प्रकार पानी में कमल अलिप्त रहता है तैसे वे भी अलिप्त रहते हैं वे सब प्रकार चिन्ता रहित होते हैं और किसी भी प्रकार के दुःख को प्राप्त नहीं होते हैं इति भाव कथन ॥९९॥ अब समुच्चय सक्षेप कहते हैं—इस प्रकार—१ शब्द २ रूप ३ गंध ४ रस, ५ स्पर्श और ६ भाव इन में राग द्वेष में प्रवर्ते उस को दुःख का हेतू होता है परंतु उक्त छ ही वस्तु में जो वीतराग रहता है और राग द्वेष नहीं करता है वह किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं पाता है ॥१००॥ काम भोग को भोगवता हुवा जीव रागद्वेष से विरक्त कदापि नहीं होता है तैसे ही उसे संतोष प्राप्त भी नहीं होता है, कुछ काम भोग विषय विकार को उत्पन्न नहीं करते हैं परंतु पांचों इन्द्रिय और मन करके ही काम भोग की उत्पत्ति होती है और जो जीव रागद्वेष सहित होते हैं वे अमनोज्ञ काम भोग पर द्वेष करते हैं और मनोज्ञ काम भोग पर राग करते हैं. उन रागद्वेष सहित जीव को पांचों इन्द्रिय के विषय विकार मोहनीय

सूत्र

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोहं दुगुञ्छं अरइं रइं च ॥ हासं भयं सोग पुमित्थिवेयं, नपुंसवेयं विविहे य भावे ॥ १०२ ॥ आवज्जइ एव मणेगरूवे एवंविहे कामगुणेसु सत्तो ॥ अन्ने य एयप्पभवे विसेसे, कारुण्णदीणे हिरिमे वइस्से ॥ १०३ ॥ कप्पं न इच्छिज्ज सहायलिच्छू, पच्छाणु तावेण तवप्पभावं ॥ एवंवियारे अमियप्पयारे,

अर्थ

क्रम से प्राप्त होते हैं ॥ १०१ ॥ मोहनीय कर्म से १४ दोष की प्राप्ति होती है उन के नाम-१ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ, ५ दुगच्छा, ६ अरति, ७ रति, ८ हास्य ९ भय, १० शोक, ११ पुरुषवेदोदय १२ स्त्री वेदोदय, १३ नपुंसक वेदोदय और १४ अनेक प्रकार के हर्ष विषाद ॥ १०२ ॥ जो काम भोग में आसक्त होते हैं वे रागद्वेष के विकार से पराभव पाये हुवे पूर्वोक्त बहुत प्रकार के दुःख प्राप्त करते हैं विषय के भोग से क्रोधादि की उत्पत्ति होती है विषय से ही दुर्गति में जीव जाता है, विषय से ही दयापात्र (परवश्य) जीव देखाता है दीनता (गरीबाइ) भी विषय से ही होती है विषय अनेक प्रकार्य कर स्त्रियों में लज्जावंत होता है सब को अप्रतीतकारी होता है वसे द्वेष हरेक का द्वेष पात्र उत्पन्न होता है इत्यादि दोष विषय वांछा से उत्पन्न होते हैं ॥ १०३ ॥ जो साधु शिष्यादि सहाय को की तो इच्छा करता है परंतु शुद्धाचार पालने की इच्छा नहीं करता है वह साधु चारित्र अंगीकार करके तपश्चर्या करके भी खेदित दुःखी हो पश्चाताप करता है ऐसा हो तप करनेकी तो इच्छा नहीं करे परंतु कदापि करे तो भी तपके महाप्रभावसे जो कर्मोंकी निर्जराहोती है उसकी वांछा नहीं करता हुवा इस लोकमें

सूत्र

आवज्जई इंदिय चोरवस्से ॥ १०४ ॥ तओ से जायंति पओयणाइ, निमज्जिउं मोहमहण्णवम्मि ॥ सुहेसिणो दुक्ख विमोयणट्ठा तप्पच्चय उज्जमए य रागी ॥ १०५ ॥ विरज्जमाणस्स य इंदियत्था सद्दाइया तावइयप्पगारा ॥

अर्थ

महिमा पूजा तथा लब्धि आदि और परलोक में चक्रवर्ति आदि के पद की वांछा करे इस प्रकार जो इन्द्रियों रूपी चोरों के वशमें पड़ा है वह प्रमाण रहित संसार मे पड़ता है अर्थात् संसारमें बहुत परिभ्रमण करता है. ॥१०४॥ जो वशमें पड़ा है वह इन्द्रियों के विषय सेवन के लिये हिंसादि पापोंका आचरन पाप सेवन से मोह रूपी महा समुद्र में अपनी आत्मा को डुबाता है संसार के सुखों का गवेषी बना कुबुद्धि दुःख निकन्द करने दुःखोत्पादक रागद्वेष हिंसादि निमित में उद्यमी बनता है। ॥ १०५ ॥ और जो विषय विरक्त बने हैं वे इन्द्रियों की २३ विषय और२४०विकारादि भेद* हैं उन में से अच्छे पर राग और खोटेपर

---

* १ श्रोत्रेन्द्रिय की ३ विषय १ जीव शब्द २अजीव शब्द, और ३ मिश्र शब्द, इस के १२ विकार. उक्त तीनों शब्द को शुभ अशुभ से दुगने करे ६ हुवे और रागद्वेष से दुगुन किये १२ होते हैं, २ चक्षु इन्द्रिय की ५ विषय १ कृष्ण, २नीला, ३रक्त ४ पीत, और ५ शुक्ल इस के ६०विकार, उक्त सचित उक्त अचित उक्त मिश्रसे तीन गुने किये१५ हुवे शुभ अशुभ से दो गुन किये ३ हुवे, रागद्वेष से दुगुने किये ६० हुवे ३ घ्राणेन्द्रिय की २ विषय-सुगंध,और दुगंध, इस के १२ विकार-उक्त दो सचित दो अचित [illegible] मिश्र से तीगुने किये ६ हुवे, रागद्वेष से दुगुने किये १२ हुवे ४रसेन्द्रिय

सूत्र

न तस्ससव्वे वि मणुन्नय वा निव्वत्तयति अमणुन्नय वा॥ १०६॥ एव ससकप्पविकप्प णासु संजायइ समय मुवट्ठियस्स ॥ अत्थे असकप्पयओ तओसे पहीयए कामगुणेसु तण्हा ॥ १०७ ॥ से वीयरागो कयसव्वकिच्चो, खवेइ णाणावरणं खणेण॥ तहेव जं दंसणमावरेइ, ज चंतराय पकरेइ कम्म ॥ १०८ ॥ सव्व तओ जाणइ

अर्थ

द्वेषपना उपार्जन नहीं करते हैं ॥ १०६ ॥ इस प्रकार जो ज्ञान बुद्धि करके अपने अध्यवसाय के विचारों में जो सावधान है वे सराग अध्यवसाय को छोडकर अच्छे अध्यवसाय में प्रवर्तते हैं वे ही समता भाव उपार्जन करते हैं वे समता भाव करके कामभोग की तृष्णा को कमी करते हैं और तत्त्व ज्ञान के विचार में तल्लीन (लीन) रहते हैं ॥ १०७ ॥ इस प्रकार जो तृष्णा का क्षय करते हैं वे ही वीतराग होते हैं वे जीवों क्षीण मात्र में मोह के क्षय हुवे बाद पांच प्रकार ज्ञानावरणीय, ९ प्रकार दर्शनावरणीय और पांच प्रकार अन्तराय इन तीनों कर्मों को युगवत् (साथही) क्षय करते हैं॥ १०८ ॥ इस प्रकार मोहनीय यावत् अन्तराय इन चारों घन घातिक कर्म के आवरण रहित

की ५ विषय तिक्त कटु कषाय खट्टा और मधुर, इस के ६० विकार चक्षु इन्द्रिय के तैसे जानना और ५ स्पर्शेन्द्रिय की ८ विषय कर्कश कोमल शीत, उष्ण, गुरु, लघु, रूक्ष, स्निग्ध, इस के ९६ विकार-उक्त ८ सचित्त ८अचित्त ८मिश्र से तीन गुने करे २४ हुवे, इसे शुभ अशुभ से दुगुने करे ४८ हुवे और इसे रागद्वेष से दुगुने किये ९६ होते हैं यों पांचों इन्द्रिय के मिलकर सब २३ विषय और २४० विकार होते हैं

सूत्र

पासए य, अमोहणे होइ निरन्तराए ॥ अणासवे झाणसमाहिजुत्तो, आउक्खए मोक्ख मुवेइ सुद्धे ॥ १०९ ॥ सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को जं बाहई सयय जंतुमेयं॥ दीहामय विप्पमुक्को पसत्थो, तो होइ अच्चतसुही कयत्थो ॥११०॥ अणाइकालप्पभवस्स एसो सव्वस्स दुक्खस्स पमोक्खमग्गो ॥ वियाहिओ ज समुविच्च सत्ता, कमेण अच्चतसुही भवति ॥ १११ ॥ त्तिबेमि ॥ इति पमायठाणज्झयण सम्मत्त ॥ ३२ ॥

अर्थ

हुवा आत्मा केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त कर सर्वज्ञ-सब जाननेवाला सर्व दर्शी-सब देखनेवाला हो जाता है फिर शुक्ल ध्यान कर बाकी रहे चारों कर्मों आयुष्य कर्म के साथ ही क्षय कर आठों कर्म रहित निर्मल बनकर मोक्ष प्राप्त करता है ॥ १०९ ॥ यों प्रत्यक्ष में निरन्तर दुःख दाता बहुत दीर्घ काल की स्थितिवाले कर्म रूप रोग से मोक्षगामी जीव मुक्त होते हैं वे मोक्ष प्राप्त कर सर्व जगत् में प्रशंसा पात्र होते हैं तैसे ही उनोंने सब आत्महित के कार्य सिद्ध किये हैं, वे सिद्ध अनन्त सुख के भोक्ता होते हैं ॥ ११० ॥ श्री तीर्थंकर भगवानने अनादि काल के दुःख से मुक्त करने का न्याय मार्ग यहां कहा है इस मार्ग को प्राप्त करके बहुत से जीवों गये काल में मोक्ष गये हैं, वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र से जा रहे हैं और आगामिक काल में जावेंगे अनंत सुख की प्राप्ति करते हैं, यों सुधर्मास्वामीने जम्बू स्वामी से कहा इति प्रमाद स्थान नामक बत्तीसवा अध्ययन समाप्त हुवा ॥ ३२ ॥

॥ कर्मप्रकृति नामकं त्रयस्त्रिंशत्तम मध्ययनम् ॥

सूत्र

अट्ठ कम्माइ वोच्छामि, आणुपुव्वि जहाकम ॥ जेहिं बद्धो अयजीवो ससारे परिवहई ॥ १ ॥ नाणस्सा वरणिज्ज, दसणावरण तहा ॥ वेयणिज्ज तहा मोह, आउकम्म तहेव य ॥ २ ॥ नामकम्म च गोयच, अतराय तहेव य ॥ एव मेयाइ

अर्थ

बत्तीसवे अध्ययन में प्रमाद का कथन कहा सो प्रमादी जीव कर्म बन्ध करता है इस लिये तेतीसवे अध्ययन में कर्म का कथन करते हैं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि अहो जम्बू ! जिन कर्मों के बन्धन में बन्धाया हुवा जीव इस ससार में परिभ्रमण करता है उन कर्मों का कथन मैं अनुक्रम से कहता हूं उसे तू एक चित्तश्रवण कर ॥ १ ॥ कर्म की मूल प्रकृति आठ है उन के नाम—१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय ३ वेदनीय ४ मोहनीय, ५ आयुष्य ६ नाम, ७ गोत्र और ८ अन्तराय १ जिस प्रकार सूर्य के तेज को बादल ढकते हैं उस प्रकार आत्मा के ज्ञान गुण को ज्ञानावरणीय कर्मने ढके हैं २ जिस प्रकार आंख पर पट्टा पड़ा पदार्थ को देखने नहीं देता है उस आत्मा के दर्शन गुण दर्शनावरणीय कर्मने ढके हैं ३ मधु [सेहद] का भरा हुवा खड्ग जिव्हा पर फिराने से किंचित् मधुर रस दे कर महा दुःख दाता होता है ऐसा वेदनीय कर्म आत्मिक सुख का घातिक है ४ मदिरा पीने से जीव बेभान होता है तैसा मोहनीयकर्म सम्यक्त्व गुण रोकता है ५ जिस प्रकार चोर का

सूत्र

कम्माइं, अट्ठेव उ समासओ ॥ ३ ॥ नाणावरणं पंचविहं, सुयं अभिणिबोहियं ॥ ओहिनाणं च तइयं, मणनाणं च केवलं ॥ ४ ॥ निद्दा तहेव पयला निद्दानिद्दा पयलपयला य ॥ तत्तो य थीणगिद्धी उ, पंचमा होइ नायव्वा ॥५॥ चक्खुम चक्खू

अर्थ

खोडे में डाला हवा पांव मुद्दत पहिले छुटता नहीं है तैसे आयुष्य कर्म से प्राप्त गति में जीव रहता है ६ जिस प्रकार चित्रकार मनमाने चित्र करता है तैसा नाम कर्मसे जीव नाम पाता है ७ जैसे कुंभार मनमाने बरतन बनाता है तैसे गोत्र कर्मसे जीव जाति आदि पाता है, और ८ जैसा धन देना राजाका भंडारी रोकता है तैसे अन्तराय कर्मने आत्म शक्ति गुण रोके है ॥ २-३ ॥ अब आठों कर्म की उत्तर प्रकृति कहते हैं, प्रथम ज्ञानावरणीय कर्म की पांच प्रकृति—१ मति ज्ञानावरणीय, २ श्रुति ज्ञानावरणीय ३ अवधि ज्ञानावरणीय, ४ मनःपर्यव ज्ञानावरणीय और ५ केवल ज्ञानावरणीय (इन का बंध ६ प्रकार से होता है—१ ज्ञानी की निन्दा करे, २ ज्ञानी का उपकार छिपावे, ३ ज्ञानी की असातना करे, ४ ज्ञान की अन्तराय देवे, ५ ज्ञानी पर द्वेष करे और ६ ज्ञानी के साथ झूठे झगडे करे) ॥ ४ ॥ दूसरा दर्शनावरणीय कर्म की ९ प्रकृति—१ निद्रा-सुख से आवे सुख से जाग्रत होवे, २ निद्रानिद्रा दुःख से आवे, दुःख से जागे, ३ प्रचला-बैठे २ खडे २ आवे, ४ प्रचला प्रचला रास्ते चलते आवे और ५ थीणधी निद्रा—इस में आधे वासुदेव का बल आवे, ६ चक्षु दर्शनावरणीय—आंखों के पडल आवे, ७ अचक्षुदर्शनावरणीय—चारों

सूत्र

अहिस्स, दसण कम्म य आवरण ॥ एव तु नवविगप्प, नायव्व दसणावरण॥६॥ वेयणिय पि य दुविहं, सायमसाय च आहिय॥सायस्स बहु भेया एवमेव असायस्स वि ॥ ७ ॥ मोहणिज्जं पि दुविहं, दसण चरणे तहा ॥ दसणे तिविह वुत्त, चरणे दुविह भवे ॥ ८ ॥ सम्मत्त चेव मिच्छत्त, सम्मामिच्छत्त मेव य ॥ एयाओ तिन्निपयडीओ,

अर्थ

इन्द्रियों मनके पटल भार,८ अवधि दर्शनावरणीय अवधि दर्शनसे देख नहीं सके और ९ केवल दर्शना वरणिय केवल दर्शन से देखनेका पटल (यह कर्म ६ प्रकार बन्धे १ दर्शनी की निन्दा कर,२ दर्शनीका उपकार छिपावे, ३ दर्शनी की असातना करे,४ दर्शनी की अन्तराय दे ५ दर्शनी पर द्वेष करे, और ६ दर्शनी के साथ झूठे झगडे करे) ॥६॥ तीसरे वेदनीय कर्म के दो प्रकार १ साता वेदनीय, और २ असाता वेदनीय इस में साता वेदनी कर्म के ८ भेद—१ इष्ट शब्द २ इष्ट रूप, ३ इष्ट गन्ध ४ इष्ट रस, ५ इष्ट स्पर्श, ६ मन का सुख ७ वचन का सुख और ८ काया का सुख इन के उलट अनिष्ट शब्दादि आठ भेद असाता वेदनीय कर्म के भी जानना (यह कर्म प्राण भूत जीव सत्व को दुःख झूरना पीटना शोक परिताप नहीं उपजावे साता देवे तो साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है और दुःख झूरना वगैरा उपजावे तथा दुःख देवे तो असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है) ॥ ७ ॥ चौथे मोहनीय कर्म के दो भेद कहे हैं—१ दर्शन मोहनीय जिस के तीन भेद और २ चारित्र मोहनीय जिस के दो भेद ॥ ८ ॥ अब दर्शन मोहनीय के ३ भेद कहते हैं—१ सम्यक्त्व मोहनीय सो मिथ्यात्व के अबद्ध पुद्गलों क्षय होवे तब सम्यक्त्व

मूल

मोहणिज्जस्स दंसणे ॥ ९ ॥ चरित्त मोहण कम्मं, दुविहं त वियाहियं ॥ कसाय
मोहणिज्ज तु, अकसाय तहेवय ॥ १० ॥ सोलसविह भेएण, कम्म तु कसाय जं ॥

अर्थ

प्राप्त होवे उसे जिस वक्त मिथ्या प्रकृति ग्रहण करे, तब सम्यक्त्व में अतिचार लगे तथा उपशामि
कादि भाव में जिस वक्त मुरझावे उस वक्त सम्यक्त्व मोहनी कहना २ मिथ्यात्व मोहनीय-जिस आत्मा
के सम्यक्त्व का अभाव है मिथ्यात्व के अशुद्ध दलिये से आत्मा अतत्त्व में तत्त्व बुद्धि और सत्व में
अतत्त्व बुद्धि कर उस में मुरझावे वह मिथ्यात्व मोहनी ३ मिश्र मोहनीय-शुद्धाशुद्ध दलिक रूप जिस
का जैन धर्म पर राग भी नहीं तैसा द्वेष भी नहीं वैसे ही अन्य धर्म पर राग भी
नहीं तैसे द्वेष भी नहीं ऐसा स्वभाव जब हो वह मिश्र मोहनी दृष्टान्त—काले
बद्दल में ढके सूर्य समान मिथ्यात्व मोहनीय, कुछ काले कुछ श्वेत बद्दल में सूर्य
ढके समान मिश्र मोहनीय और श्वेत बद्दल में ढके सूर्य समान सम्यक्त्व मोहनीय ॥ ९ ॥ चारित्र मोह
नीय के दो भेद—१ कषाय मोहनीय और २ ना कषाय मोहनीय ॥ १० ॥ कषाय मोहनीय के १६ भेद—
१ अनन्तानुबन्धी क्रोध पत्थर की तराड जैसा, २ मान पत्थर के स्थंभ जैसा, ३ माया-बांस की जड
जैसी, ४ लोभ किरमजी रेशम के रंग जैसा, ५ अप्रत्याख्यानी क्रोध जमीन की तराड, ६ मान हड्डी का
स्थंभ, ७ माया मेंढा का शृंग, ८ लोभ खंजर का रंग, ९ प्रत्याख्यानी क्रोध रेती की लकीर, १० मान

सूत्र

सत्तविह नवविहं वा, कम्मं नो कसायजं ॥ ११ ॥ नेरइय तिरिक्खाउं, मणुस्साउं तहेव य ॥ देवाउयं चउत्थं तु आउं कम्मं चउव्विहं ॥ १२ ॥ नामकम्मं दुविहं, सुहमसुहं च आहियं ॥ सुभस्स उ बहुभेया, एमेव असुभस्सवि ॥ १३ ॥ गोयं कम्मं

अर्थ

क्षाए स्तम्भ, ११ माया-चलते बैल का मूत्र, १२ लोभ-कीचड़ का लेप १३ संज्वल का क्रोध पानी की लकीर, १४ मान तृण का स्तम्भ, १५ माया बांस की छुली और १६ लोभ-पतंग का रंग दूसरी कषाय की उत्पादक नो कषाय के ९ भेद—१ हास्य २ रति ३ अरति ४ भय ५ शोक, ६ दुगंछा, ७ स्त्री वेद, ८ पुरुष वेद और ९ नपुसक वेद सब मोहनीय कर्म की २८ प्रकृति हुई ॥ ११ ॥ आयु कर्म की चार प्रकृति—१ नरक २ तिर्यंच, ३ मनुष्य और ४ देव इस में नरकायु चार प्रकार बन्धे—महा आरंभ, महा परिग्रह, पंचेन्द्रिय की घात, मांस का आहार, २ तिर्यंचायु चार प्रकार बन्धे—१ माया, २ निविड माया झूठ बोले ४ खोटे तोल माप रखे ३ मनुष्यायु चार प्रकार बन्धे—१ स्वभाव से भद्रिक २ स्वभाव से विनीत ३ दयावंत, ४ मत्सर रहित ४ देवता का आयुष्य चार प्रकार बन्धे १ सराग संयम, २ संयमासंयम ३ बाल तपस्वी और ४ अकाम निर्जरा ॥ १२ ॥ छठा नाम कर्म के दो भेद—१ शुभ नाम कर्म और २ अशुभ नाम कर्म, शुभ नाम कर्म चार प्रकार बन्धे—काया का सरल भाषा का सरल भाव का सरल और विसंवाद योग रहित अशुभ नाम कर्म के चारों विपरीत प्रकार से बन्धे—

सूत्र

दुविहं, उच्चं नीयं च आहिय ॥ उच्च अट्ठविहं होइ, एवं नीयं पि आहियं ॥ १४ ॥ दाण लाभे य भोगे य, उवभोगे वीरिए तहा ॥ पचविह मतगाय, समासण वियाहियं ॥ १५ ॥ एयाओ मूल पयडीओ उत्तराओ य आहिया ॥ पएसग्ग खेत्त काले य,

अर्थ

शुभकर्म १४प्रकार भोगवे १ इष्टकारी शब्द रूप, गंध, रस स्पर्श ६ ९ इष्टकारी, गति, स्थिति, यश लावण्यता, १०इष्टस्वर, ११ कतस्वर १२ नियस्वर, १३ मनाज्ञ स्वर और १४ इष्ट उत्थान कर्म बल वीर्य पुरुषात्कार पराक्रम और २ अशुभ नाम कर्म उक्त १४ विपरीत प्रकार से भोगवे ॥१३॥ सातवा गोत्र कर्म के दो भद १ ऊंच गोत्र और २ नीच गोत्र नीच गोत्र आठ प्रकार बन्धे—१ जाति का, २ कुल का, ३ बल का, ४ रूप का ५ तप का, ६ श्रुत का, ७ लाभ का और ८ ऐश्वर्यता का; इन आठों का मद करे तो नीच गोत्र कर्म का बन्ध होवे और इन आठों का मद नहीं करे तो ऊंच गोत्र का बन्ध होवे नीच गोत्र का बन्ध होने से उक्त आठों ही वस्तु हीन पावे और ऊंच गोत्र का बन्ध होने से उक्त आठों ही वस्तु उत्तम पावे ॥ १४ ॥ आठवा अन्तराय कर्म की ५ प्रकृति—१ दान अतराय, २ लाभ अतराय, ३ भोग अंतराय, ४ उपभोग अंतराय और ५ बल वीर्य अंतराय इन पांच काम की अतराय देने से अंतराय कर्म का बन्ध होवे हैं यह पांचों ही की प्राप्ति होने पांच प्रकार भोगवे ॥१५॥ यह आठों ही कर्म की मूल आठ प्रकृति और उत्तर२१प्रकृति कही अब आगे अहो शिष्य! १ द्रव्य से जीव कितने कर्म पुद्गलों का बन्ध करता है २ क्षेत्र से कितनी दिशा के पुद्गलों ग्रहण करता है, ३ काल से-कर्मों की कितने काल की स्थिती है

सूत्र

भाव च उत्तर सुण ॥ १६ ॥ सव्वेसिं चेव कम्माण, पएसग्ग मणंतग ॥ गठिय सत्ताईय अंतो, सिद्धाण आहिय ॥ १७ ॥ सव्व जीवाण कम्मतु सगहे छद्दिसागय॥ सव्वसु वि पएसेसु सव्व सव्वेण बद्धग ॥ १८ ॥ उदही सरिस नामाण, तीसई कोडाकोडीओ ॥ उक्कोसिया ठिई होइ, अंतो मुहुत्त जहन्निया ॥ १९ ॥ आवरणि ज्जाण दुण्हपि वेयणिज्जे तहेव य ॥ अंतराए य कम्मम्मि, ठिई एसा वियाहिया

अर्थ

और ४ भाव से कर्म पुद्गल किस प्रकार आते हैं इन का स्वरूप कहता हूं सो दत्तचित्त से श्रवन कर ॥१६॥ श्री तीर्थंकर भगवत ने कहा है कि—१ द्रव्य से आठों ही कर्म के सब पुद्गलों अनतानंत हैं जिस को एकही समय में बन्ध करता है उसे अनत प्रदेशिक स्कन्ध कहते हैं यों हरेक कर्म के अनंतानत स्कन्ध होते हैं वे स्कन्ध अभव्य जीव से अनत गुने अधिक और सिद्ध भगवंत से अनंत वे भाग जितने होते हैं ॥ १७ ॥ क्षेत्र से—सब जीवों कर्म बन्धन करते जो जो पुद्गलो ग्रहण करते हैं वे पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर ऊंची नीची यों छ ही दिशा के पुद्गलों ग्रहण करते हैं, जिन २ पुद्गलों को कर्म रूप पने ग्रहण किये जाते हैं वे सब पुद्गलों सब जीवों के अपने २ आत्म प्रदेश के साथ बन्धाते हैं ॥ १८ ॥ अब काल से—१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शना वरणीय, ३ वेदनीय, और ४ अन्तराय इन चारों कर्मों की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति और उत्कृष्ट समुद्र के पानी के समान बहुत असंख्यात

मूल

॥ २० ॥ उदही सरिस नामाण, सत्तरिं कोडाकोडीओ ॥ मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अंतो मुहुत्त जहण्णिया ॥ २१ ॥ तेत्तीस सागरोवमा, उक्कोसेण वियाहिया ॥ ठिईउ आउकम्मस्स, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया ॥ २२ ॥ उदही सरिस नामाण, वीसई कोडाकोडीओ ॥ नाम गोत्ताण उक्कोसा, अट्ठ मुहुत्ता जहण्णिया ॥ २३ ॥ सिद्धाणणंत भागो य, अणुभागा हवंतिओ ॥ सव्वेसु वि पएसग्गं, सव्वजीवे

अर्थ

क्रोड़ कोटी वर्ष का एक सागरोपम, ऐसे तीस कोट्याकोटी (क्रोड़ को क्रोड़ गुन करे इतने) सागरोपम की स्थिति कही है (साता वेदनीय की १५ क्रोडाकोडी सागरोपम की है) ५ मोहनीय कर्म जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट सीत्तर [७०] कोट्याकोटी सागरोपम की, आयुष्य कर्म की जघन्य अंतर्मुहूत की उत्कृष्ट तेंतीस सागरोपम की नाम कर्म की और गौत्र कर्म की जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट बीस कोटाकोट सागरोपम की स्थिति जानना ॥ २१ २३ ॥ अब भाव से—१ द्रव्य से जिस वक्त पूछो उस ही वक्त मुमुक्षय जीव आश्रिय सब सिद्ध भगवंत के अनंतवे भाग में जितने अनंत होते हैं उतने अनंते कर्म के पुद्गलों के स्कन्ध एक समय में जीव भोगवते हैं २ क्षेत्र से जीवों से भोगवने के सब पुद्गलों के स्कन्ध की जो कदाचित् गिनती करें तो सब जगत् के जीवों से भी अनंत गुने अधिक होवें, काल-वर्तमान काल में अनुभाग से भोगवने योग्य अनंत प्रदेशी स्कन्ध अनंत भोगवता है उस एकेक स्कन्ध में अनंतानंत परमाणु हैं इसलिये वे परमाणुओं सब जीव से अनंतगुने अधिक हैं इतने अनंत परमाणुओं

सूत्र

माव च उत्तर सुण ॥ १६ ॥ सव्वसिं चेव कम्माण, पएसग्ग मणतग ॥ गठिय सत्ताईय अतो सिद्धाण आहिय ॥ १७ ॥ सव्व जीवाण कम्मतु सगहे छद्दिसागय॥ सव्वसु वि पएसेसु सव्व सव्वेण बद्धग ॥ १८ ॥ उदही सरिस नामाण, तीसई कोडाकोडीओ ॥ उक्कोसिया ठिई होइ, अंतो मुहुत्त जहन्निया ॥ १९ ॥ आवरणि ज्जाण दुण्हपि, वेयणिज्जे तहेव य ॥ अंतराए य कम्मम्मि, ठिई एसा वियाहिया

अर्थ

और ४ भाव से कर्म पुद्गल किस प्रकार आते हैं इन का स्वरूप कहता हूं सो दत्तचित्त से श्रवन कर ॥१६॥ श्री तीर्थंकर भगवत ने कहा है कि—१ द्रव्य से आठों ही कर्म के सब पुद्गलों अनन्तानंत हैं. जिस का एकही समय में बन्ध करता है उसे अनत प्रदेशिक स्कन्ध कहते हैं यों हरेक कर्म के अनंतानंत स्कन्ध होते हैं वे स्कन्ध अभव्य जीव से अनत गुने अधिक और सिद्ध भगवंत से अनंत वे भाग जितने होते हैं ॥ १७ ॥ क्षेत्र से—सब जीवों कर्म बन्धन करते जो जो पुद्गलों ग्रहण करते हैं वे पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर ऊंची नीची यों छ ही दिशा के पुद्गलों ग्रहण करते हैं, जिन २ पुद्गलों को कर्म बन्ध पने ग्रहण किये जाते हैं व सब पुद्गलों सब जीवों के अपने २ आत्म प्रदेश के साथ बन्धाते हैं. ॥ १८ ॥ अब काल से—१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शना वरणीय, ३ वेदनीय, और ४ अन्तराय इन चारों कर्मों की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति और उत्कृष्ट समुद्र के पानी के समान बहुत असंख्यात

॥ २० ॥ उदही सरिस नामाण सत्तरिं कोडाकोडीओ ॥ मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अंतो मुहुत्त जहन्निया ॥ २१ ॥ तेत्तीस सागरोवमा, उक्केसेण वियाहिया ॥ ठिईउ आउकम्मस्स, अंतोमुहुत्त जहन्निया ॥ २२ ॥ उदही सरिस नामाण, वीसई कोडाकोडीओ ॥ नाम गोत्ताण उक्कोसा, अट्ठ मुहुत्ता जहन्निया ॥ २३ ॥ सिद्धाणणंत भागो य, अणुभागा हवंतिओ ॥ सव्वेसु वि पएसग्गं, सव्वजीवे

कोटा कोटी वर्ष का एक सागरोपम, ऐसे तीस कोटाकोटी (क्रोड को क्रोड गुने करे इतने) सागरोपम की स्थिति कही है (साता वेदनीय की १५ क्रोडाक्रोडी सागरोपम की है) ५ मोहनीय कर्म जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट सीत्तर [७०] कोटाकोटी सागरोपम की, आयुष्य कर्म की जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तेंतीस सागरोपम की नाम कर्म की और गोत्र कर्म की जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट बीस कोटाकोट सागरोपम की स्थिति जानना ॥ २२ २३ ॥ अब भाव से—१ द्रव्य से जिस वक्त पूछो उस ही वक्त मुमुक्षु जीव आश्रिय सब सिद्ध भगवंत के अनंतवे भाग में जितने अनंत होते हैं उतने अनंते कर्म के पुद्गलों के स्कन्ध एक समय में जीव भोगवते हैं २ क्षेत्र से जीवों से भोगवने के सब पुद्गलों के स्कन्ध की जो कदाचित् गिनती करें तो सब जगत् के जीवों से भी अनत गुने अधिक होवें, काल-वर्तमान काल में अनुभाग से भोगवने योग्य अनंत प्रदेशी स्कन्ध अनंत भोगवता है उस एकेक स्कन्ध में अनंतानंत परमाणु हैं इसलिये वे परमाणुओं सब जीव से अनतगुने अधिक हैं इतने अनत परमाणुओं

सजण नयणनिभा, किण्हलेसा उ वण्णओ ॥ ४ ॥ नीलासोग सकासा, चासपीच्छ समप्पभा ॥ वेरुलिय निद्धसकासा, नीललेसा उ वण्णओ ॥ ५ ॥ अयसी पुप्फ सकासा कोइलच्छद सन्निभा ॥ पारेवय गीवनिभा, काओलेसा उ वण्णओ ॥ ६ ॥ हिंगुलधाउ संकासा तरुणाइच्च सन्निभा ॥ सुगतुण्डपईवनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ ॥ ७ ॥ हरियाल भेदसंकासा हलिद्दाभेय समप्पभा ॥ सणासण कुसुमनिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ ॥ ८ ॥ सखकुंदसकासा, खीर पूरसमप्पभा ॥ रययहार सकासा सुक्कलेसा उ वण्णओ ॥ ९ ॥, जह कडुग तुंबगरसो, निंबरसो कडुग

काले होते हैं वैसा कृष्ण लेश्या का काला रंग मानना ॥ ४ ॥ जैसा हरा अशोक वृक्ष, तोते की पांख वैडूर्य रत्न का हरा रंग होता है वैसा नीललेश्या का रंग मानना ॥ ५ ॥ जैसा अलसी का फूल कोकिलाकी पांख कबुतर की ग्रीवा, इनका जैसा आसमानी रंग होता है वैसा कापोतलेश्या का रंग मानना ॥ ६ ॥ जैसा लाल हिंगलु, उदय पाता सूर्य, तोते का मुख, दीपे की शिखा का जैसा लाल रंग होता है तैसा तेजू लेश्या का रंग मानना ॥ ७ ॥ जैसा पीला हरिताल का टुकडा सन का फूल का पीला रंग होता है तैसा पीला पद्मलेश्या का रंग मानना ॥ ८ ॥ जैसा श्वेत शंख अंकरत्न मचकुन्द का फूल, दूध की धार, रूपे का हार का श्वेत रंग होता है वैसा शुक्ललेश्या का श्वेत रंग मानना ॥ ९ ॥ तीसरा रस द्वार जैसा कडुआ तुम्बा, कडुआ निंब, रोहणी वनस्पति का जैसा कडुआ

सूत्र

रोहिणिरसो वा ॥ एत्तो वि अणतगुणो, रसोय किण्हाए नायव्वो ॥ १० ॥ जह निगडुयरस य रसो तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा ॥ एत्तोवि अणतगुणो, रसो उ नीलाए नायव्वो ॥ ११ ॥ जह तरुण अम्बगरसो, तुवर कविट्ठरसवावि जारिसओ ॥ एत्तो वि अणतगुणो, रसो उ काऊए नाय व्वो ॥ १२ ॥ जह परिणियम्बगरसो, पक्ककविट्ठरस वावि जारिसओ ॥ एत्तोवि अणतगुणो रसो उ तेऊए नायव्वो ॥ १३ ॥ जह मेरयस्स व रसो, वरवारुणी एव रसो, विविहाण व आसवाण जारिसओ ॥ एत्तो पम्हाए परए ॥ १४ ॥ खज्जूर मुद्दिय रसो, खीररसो खण्ड सक्कर रसो वा ॥

अर्थ

स्वाद होता है इस से अनंत गुन कडुवा कृष्णलेश्या का स्वाद मानना ॥ १० ॥ जैसा तीखा त्रिकटु (सूठ पींपल मिरच) के रस का स्वाद व पींपल का स्वाद जैसा तीखा होता है इस से अनंत गुना तीखा नीललेश्या का स्वाद मानना ॥ ११ ॥ जैसा कचे आम (करी) का खट्टा स्वाद तुम्बर वनस्पति का खट्टा स्वाद कच्चा कवीठ का खट्टा स्वाद होता है इस से भी अनंत गुना खट्टा कापोतलेश्या का स्वाद मानना ॥ १२ ॥ जैसा पका हुवा आम्र, पक्का कवीठ का खटामठा स्वाद होता है वैसा तेजुलेश्या का स्वाद मानना ॥ १३ ॥ जैसा उत्तम वारुणी का रस, जैसा आसवका स्वाद होता है इस से भी अनंतगुना मिठा पद्मलेश्या का स्वाद मानना ॥ १४ ॥ जैसा खरजु का स्वाद

सूत्र

एत्तोवि अणन्त गुणो रसो उ सुक्काए नायव्वो ॥ १५ ॥ जह गोमडस्स गंधा, सुणग मडस्स व जहा आहिमडस्स ॥ एत्तो वि अणंत गुणो लेसाण अप्पसत्थाण ॥ १६ ॥ जह सुरहि कुसमगंधो, गंधवासाण पिस्समाणाण ॥ एत्तो वि अणंत गुणो पसत्थ लेसाण तिण्ह पि ॥ १७ ॥ जह करगयस्स फासो गोजिब्भाए य सागपत्ताण ॥ एत्तो वि अणंत गुणा लेसाण अप्पसत्थाण ॥ १८ ॥ जह बूरस्स व फासो, नवणीयस्स व सरीस कुसुमाण ॥ एत्तो वि अणंत गुणा, पसत्थ लेसाण तिण्ह पि

अर्थ

द्राक्ष का, खीर का स्वाद शक्कर का स्वाद जैसा मधुर मिष्ठ होता है वैसा शुक्ल लेश्या का स्वाद जानना ॥ १५ ॥ अब चौथा गंध द्वार कहते हैं—जैसा गाके मडे (कलेवर) कुत्ते के मडे की सांप के मडे की जैसी दुर्गंध होती है ऐसी कृष्ण नील कपोत इन तीन अप्रशस्त लेश्या की दुर्गंध जानना ॥ १६ ॥ जैसा केवड़े आदि फूलों की सुगंध जैसा केसर कस्तूरी आदि पीसते हुवे सुगंध हो उमस भी अनंत गुनी सुगंधी तेजु पद्म शुक्ल इन तीन प्रशस्त लेश्या की जानना ॥ १७ ॥ अब पांचवा स्पर्श द्वार कहते हैं—जैसा करपत का स्पर्श जैसा गौ जिव्हा का स्पर्श, जैसा शाग पत्र के पत्तों का स्पर्श खरदरा होता है इस से भी अनंत गुना कर्कश स्पर्श कृष्ण नील कापोत इन तीनों अप्रशस्त लेश्या का जानना ॥ १८ ॥ जैसा बूर वनस्पति का स्पर्श जैसा मक्खन का स्पर्श, जैसा सरसव के फूल का स्पर्श मृदु होता है उस से अनंत

॥ १९ ॥ तिव्विहाव नवविहा वा, सत्तावीसइविहे कासीओ वा ॥ दुसओ तेयालो वा, लेसाणं होइ परिणामो ॥ २० ॥ पचासवप्पवत्तो तिहिं अगुत्तो छसु अविरओ य ॥ तिव्वारंभ परिणओ, खुद्दो साहसिओ नरो ॥ २१ ॥ निद्धंधस परिणामो, निस्संसो अजिइंदिओ ॥ एय जोग समाउत्तो, किण्हलेसं तु परिणमे ॥ २२ ॥ ईसा

गुना कोमल स्पर्श तेजु पद्म शुक्ल इन तीन प्रशस्त लेश्या का जानना ॥ १९ ॥ अब छठा परिणाम द्वार—लेश्या के परिणाम तीन प्रकार के होते हैं—१ जघन्य, २ मध्यम और ३ उत्कृष्ट इस के ९ भेद—१ जघन्य का जघन्य, २ जघन्य का मध्यम, ३ जघन्य का उत्कृष्ट ४ मध्यम का जघन्य ५ मध्यम का मध्यम ६ मध्यम का उत्कृष्ट ७ उत्कृष्ट का जघन्य ८ उत्कृष्ट का मध्यम और ९ उत्कृष्ट का उत्कृष्ट इस ही प्रकार इन एकेक के तीन २ भेद करते ९×३=२७ भेद होते हैं फिर भी उन केभी तीन २ भेद करते २७×३=८१ भेद और होते हैं ८१ को भी जघन्य मध्यम उत्कृष्ट से तीन गुने करते ८१×३=२४३ भेद होते हैं इतने परिणाम छ ही लेश्या के जानना ॥ २० ॥ सातवा लक्षण द्वार—पांच आश्रव सेवन करे, तीनों योग की अगुप्ति रखे, छ काया की हिंसा तीव्र परिणाम से करे, आरंभ करता अचकावे नहीं, सर्व जीवों का अहितकारी हिंसा करने में साहसिक होवे, इस लोक परलोक के दुःख से डरे नहीं, निर्दय परिणामी, जीव की घात में घृणा रहित, अजीतेन्द्रिय इस प्रकार के योगो के व्यापार कर युक्त होवे उसे कृष्ण लेश्यावाला जानना

अमरिस अतवो अक्किमाया अहीरिया ॥ ग्द्धीपओमे यसढे पमत्ते रसलोलुए, सायगवेसए य ॥ २३ ॥ अरमाओ अनिरओ खुद्दो ागस्सिओ नरा ॥ एय ओग समाउत्तो, नीललस तु परिणमे ॥ २४ ॥ वंके वंक समायार, नियडिल्ले अणज्जुए ॥ पलि उ च गआवहिए मिच्छदिट्ठी अणारिए ॥ २५ ॥ उप्फासग दुट्ठवाइ य, तेणयावि य मच्छरी ॥ एय जोग समाउत्ता काऊलेस तु परिणमे ॥ २६ ॥ नीयावत्ती अचवले, अमाई अकुतूहले ॥ विणीय विणयदंते, जोगव

अर्थ ॥ २१ २२ ॥ ईर्षावंत, बहुत क्रदाग्रही तप रहित, अच्छी विद्या रहित ठग कपटी अनाचार की मर्यादा रहित विषय का लम्पटी द्वेषी पूर्त, आठों मद का धारक रस लम्पटी अपनी साता का ही गवेषी आरंभ की वृत्ति रहित सब जीवों का अहित कर्ता, इन लक्षण युक्त होवे उसे नील लेश्यावाला जानना ॥ २३ २४ ॥ वांका बोल, वांक ही काम कर निबड कपटी सरलता रहित अपने अवगुण ढके, दूसरे के मनका करे, मिथ्या दृष्टि, अनार्य, क्रन्दकारी वचन का प्रकाशक दुष्ट वचन बोलनेवाला चोरी की करनेवाला अन्य का सुख सम्पत्ति देख झूरनेवाला इन लक्षण कर युक्त होवे उस कापोत लेश्यावाला जानना ॥ २५ २६ ॥ नीचों को नमनेवाला चपलता रहित स्थिर स्वभावी कुतूहल रहित, कपट रहित, विनीत, गुरु की भक्ति करनेवाला इन्द्रियों का दमन करनेवाला स्वाध्यायादि के

मूल

उवहाणवं ॥ २७ ॥ पियधम्म दढधम्म, वज्जभीरू हिएसए ॥ एय जोग समाउत्तो तेओलेस तु परिणमे ॥ २८ ॥ पयणु कोह माणय, माया लोभय पयणुए ॥ पसंतचित्ते दंतप्पा, जोगवं उवहाणव ॥ २९ ॥ तहा पयणुवाईय उवसंत जिइंदिए ॥ एय जोग समाउत्तो, पम्हलेस तु परिणमे ॥ ३० ॥ अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, धम्म सुक्काई झायए ॥ पसंतचित्ते दंतप्पा, समिए गुत्ताय गुत्तिसु ॥ ३१ ॥ सरागे वीयरागे वा, उवसंत जिइंदिए ॥ एय जोग समाउत्ता, सुक्कलेस तु परिणमे

अर्थ

मसगुरु सिद्धान्ताभ्यास करते सो तप करना हो उस तप कर सहित, धर्म प्रमी दृढ धर्मी पाप का डर रखने वाला मोक्ष का इच्छक इन लक्षण युक्त हो उसे तेजो लेश्यावाला जानना ॥ २७ २८ ॥ जिस के क्रोध मान माया लोभ राग द्वेष उपशान्त हुआ हो स्वात्मा का दमन करने वाला, तीनों जोगको स्वतः के वश में रखने वाला तपोधन का करने वाला थोडा बोले उपशान्त चित्त जीतेन्द्रिय इन गुन युक्त होय उसे पद्मलेश्या वाला जानना ॥ २९ ३० ॥ आर्त रौद्र ध्यान का वर्जने वाला धर्म शुक्ल ध्यान का ध्यान वाला राग द्वेष कर उपशान्त चित्त स्वात्मा वश का करने वाला, पांच समिति समता तीन गुप्ति गुप्ता, सरागी संयमी तथा वीतरागी संयमी, जीतेन्द्रिय इन लक्षण युक्त हो उसे शुक्ललेश्या वाला जानना ॥ ३१ ३२ ॥

सूत्र

॥ ३२ ॥ असंखिज्जा णो सप्पिणीण, उस्सप्पिणीण जे समया ॥ संखाईया लोगा, लेसाण हवंति ठाणाइ ॥ ३३ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना तेत्तीसा सागरा मुहुत्तहिया ॥ उक्कोसाहोई ठिई, नायव्वा किण्हलेसाए ॥ ३४ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दस उदही पलिय मसंखभाग मब्भहिया ॥ उक्कोसाहोई ठिई नायव्वा नीललेसाए ॥ ३५ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तिण्णुदही पलियमसंख भागमब्भहिया ॥ उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा काउ लेसाए ॥ ३६ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दोण्णुदही पलिय मसंखभाग

अर्थ

बारवा स्थान द्वार—दश क्रोडा क्रोड सागरोपम का अवसर्पिणी (उतरता) काल और दश क्रोडा क्रोड सागरोपम का उत्सर्पिणी (चढता) काल ऐसी असंख्याती सर्पनी उत्सपनी के जितने समय होवे हैं तथा यह तीनसो तीयालीस राजु का घनाकार लोक है ऐसे संख्याते लोक के जितने आकाश प्रदेश होवे हैं उतने लेश्या के स्थानक हैं ॥ ३३ ॥ तेरवा लेश्या स्थिति द्वार—कृष्णलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट ३३ सागरोपम अन्तर्मुहूर्त अधिक ॥ ३४ ॥ नीललेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट दश सागरोपम एक पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक ॥ ३५ ॥ कापोत लेश्या की स्थिति—जघन्य अन्तर मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन सागरोपम एक पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक ॥ ३६ ॥ तेजोलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट दो सागरोपम

मब्भहिया ॥ उक्कोसा होई ठिई, नायव्वा तेउलेसाए ॥ ३७ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना
दसहोंति य सागरा मुहुत्तहिया ॥ उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा पम्हलेसाए ॥ ३८ ॥
मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तत्तीस सागरा मुहुत्तहिया ॥ उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा सुक्क
लेसाए ॥ ३९ ॥ एसा खलु लसाण, ओहेण ठिई व ण्णिया होइ ॥ चउसु वि गईसु,
एत्तो, लेसाण ठिइ तु वोच्छामि ॥ ४० ॥ दस वास सहस्साइ, काऊए ठिई
जहन्निया होइ ॥ तिण्णुदही पलिओवम, असंखभाग च उक्कोसा ॥ ४१ ॥ तिण्णु
दही पलिओवम संखभागो जहन्नग नील ठिई ॥ दस उदही पलिओवम,

अर्थ

एक पल्योपम के असंख्यातवे भाग अधिक ॥ ३७ ॥ पद्मलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट दश सागरोपम अन्तर मुहूर्त अधिक जानना ॥ ३८ ॥ शुक्लेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट ३३ सागरोपम अन्तर मुहूर्त अधिक ॥ ३९ ॥ हे शिष्य यह सो छहों लेश्या की औघ (समुच्चय) स्थिति कही अब गति आश्रिय लेश्या की स्थिति कहते हैं ॥ ४० ॥ नरक गति की लेश्या की स्थिति—कापूतलेश्या की स्थिति जघन्य दश हजार वर्ष (प्रथम नरक आश्रिय) उत्कृष्ट तीन सागर (दूसरा नरक आश्रिय) पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक (मनुष्य तिर्यच के आयुर्भव मत आश्रिय) ॥ ४१ ॥ नीललेश्या की जघन्य तीन सागरोपम (तीसरी नरक आश्रिय) पल्योपम का असंख्यातवा भाग

सूत्र

असंख भागम उक्कोसा ॥ ४२ ॥ दस उदही पलिओवम असंखभागं जहन्निया होइ ॥ तेत्तीस सागराओ उक्कोसा होइ किण्हाए ॥ ४३ ॥ एसा नेरइयाण लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ॥ तेण परं वोच्छामि तिरिय मणुस्साण देवाणं ॥ ४४॥ अन्तो मुहुत्तमद्धं लेसाण जहिं जहिं जाउ ॥ तिरियाण नराण वा, वज्जित्ता केवलं लेस ॥ ४५ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना उक्कोसा होइ पुव्वकोडीओ ॥नवहिं वरिसहिं ऊणा

अर्थ

भाग (एक प्रकार) उत्कृष्ट दश सागरोपम पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक ॥ ४२ ॥ कृष्ण लेश्या की स्थिति—जघन्य दश सागरोपम [पांचवीं नरक आश्रिय] पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक. उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की [सातवी नरक आश्रिय] ॥ ४३ ॥ यह जो नरक गति में तीन ही लेश्या पाती है उस की स्थिति का वर्णन किया, अब तिर्यच मनुष्य और देवता में छही लेश्या पाती है जिस का वर्णन करते हैं ॥ ४४ ॥ पृथ्वी पानी, वनस्पति, (इस में पहिले की चार लेश्या पावे) तेऊ, वायु, तीनों विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय (इन में तीन लेश्या पहिली पावे) गर्भज तिर्यच गर्भज मनुष्य (केवल ज्ञानी के छोड कर) इन में छही लेश्या होती है इन सब की छ ही लेश्या की जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की ही स्थिति होती है ॥ ४५ ॥ और केवल ज्ञानी के एक शुक्ल लेश्या ही होती है जिस की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट

नायव्वा सुक्कलेसाए ॥ ४६ ॥ एसा तिरिय नराणं, लेसाए ठिई उ वण्णिया होइ ॥ तेणपरं वोच्छामी, लेसाण ठिई उ देवाण ॥ ४७ ॥ दस वास सहस्साइ, किण्हाए ठिई जहन्निया होई । पलिय मसंखिज्ज इमो, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥ ४८ ॥ जा किण्हाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समय मब्भहिया ॥ जहन्नेणं नीलाए पलिय मसंख च उक्कोसा ॥ ४९ ॥ जा नीलाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समय मब्भहिया ॥ जहन्नेण काऊए, पलिय मसंखं च उक्कोसा ॥ ५० ॥ तेण पर

दश (९ वर्ष) कम क्रोड पूर्व की ॥ ४६ ॥ यह तिर्यंच की और मनुष्य की स्थिति का कथन करा अब देवता की लेश्या की स्थिति का कहते हैं ॥ ४७ ॥ कृष्ण लेश्या की स्थिति जघन्य दश हजार वर्ष की (भुवनपति आश्रिय) उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवे भाग की ॥ ४८ ॥ जो कृष्ण लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति है उस उपरांत एक समय अधिक नील लेश्या की जघन्य स्थिति जानना और उत्कृष्ट स्थिति उस के उपरान्त पल्योपम के असंख्यातवें भाग की जानना ॥ ४९ ॥ जितनी नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति है उस पर एक समय अधिक कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति जानना और उस उपरांत पल्योपम के असंख्यातवे भाग अधिक उत्कृष्ट स्थिति जानना ॥ ५० ॥ अब अहो शिष्य ! भुवनपति वाण-

सूत्र

असंख भागम उक्कोसा ॥ ४२ ॥ दस उदही पलिओवम असंखभागं जहन्निया होइ ॥ तेत्तीस सागराओ उक्कोसा होइ किण्हाए ॥ ४३ ॥ एसा नेरइयाणं लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ॥ तेण परं वोच्छामि तिरिय मणुस्साण देवाण ॥ ४४॥ अन्तो मुहुत्तमद्धं लेसाण जहिं जहिं जाउ ॥ तिरियाण नराणं वा, वज्जित्ता केवलं लेसं ॥ ४५ ॥ मुहुमद्धं तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुव्वकोडीओ ॥नवहि वरिसेहि ऊणा

अर्थ

अधिक (उक्त प्रकार) उत्कृष्ट दश सागरोपम पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक ॥ ४२ ॥ कृष्ण लेश्या की स्थिति—जघन्य दश सागरोपम [पांचवीं नरक आश्रिय] पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक. उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की [सातवी नरक आश्रिय] ॥ ४३ ॥ यह जो नरक गति में तीन ही लेश्या पाती है उस की स्थिति का वर्णन किया, अब तिर्यंच मनुष्य और देवता में छओं लेश्या पाती है जिस का वर्णन करते हैं ॥ ४४ ॥ पृथ्वी पानी, वनस्पति, (इस में पहिले की चार लेश्या पावे) तेऊ वायु, तीनों विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय (इन में तीन लेश्या पाईसी पावे)असंज्ञी तिर्यंच गर्भज मनुष्य (केवल ज्ञानी को छोड़ कर) इन में छओं लेश्या होती है इन सब की छओं लेश्या की जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की ही स्थिति होती है ॥ ४५ ॥ और केवल ज्ञानी के एक शुक्ल लेश्या ही होती है जिस की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट

सूत्र

नायव्वा सुक्कलेसाए ॥ ४६ ॥ एसा तिरिय नराणं, लेसाए ठिई उ वण्णिया होइ ॥ तेणपरं वोच्छामी लेसाण ठिई उ देवाण ॥ ४७ ॥ दस वास सहस्साइं, किण्हाए ठिई जहन्निया होई । पलिय मसंखिज्ज इमो, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥ ४८ ॥ जा किण्हाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समय मब्भहिया ॥ जहन्नेण नीलाए पलिय मसंख च उक्कोसा ॥ ४९ ॥ जा नीलाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समय मब्भहिया ॥ जहन्नेण काऊए, पलिय मसंख च उक्कोसा ॥ ५० ॥ तेण पर

अर्थ

दश (१ वर्ष) कम क्रोड पूर्व की ॥ ४६ ॥ यह तिर्यंच की और मनुष्य की स्थिति का कथन कहा अब देवता की लेश्या की स्थिति का कहते हैं ॥ ४७ ॥ कृष्ण लेश्या की स्थिति जघन्य दश हजार वर्ष की (भुवनपति आश्रिय) उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवे भाग की ॥ ४८ ॥ जो कृष्ण लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति है उस उपरांत एक समय अधिक नील लेश्या की जघन्य स्थिति जानना और उत्कृष्ट स्थिति उस के उपरान्त पल्योपम के असंख्यातवे भाग की जानना ॥ ४९ ॥ जितनी नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति है उस पर एक समय अधिक कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति जानना और उस उपरांत पल्योपम के असंख्यातवे भाग अधिक उत्कृष्ट स्थिति जानना ॥ ५० ॥ अब अहो शिष्य ! भुवनपति वाण-

सूत्र

असंख भागम्भ उक्कोसा ॥ ४२ ॥ दस उदही पलिओवम असखभाग जह्निया होइ ॥ तेत्तीस सागराओ उक्कोसा होइ किण्हाए ॥ ४३ ॥ एसा ने इयाण लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ॥ तेण पर वोच्छामि तिरिय मणुस्साण देवाण ॥ ४४॥ अन्तो मुहुत्तमद्धं लेसाण जहिं जहिं जाउ ॥ तिरियाण नराण वा, वज्जिचा केवल लेस ॥ ४५ ॥ मुहुत्तद्ध तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुव्वकोडीओ ॥नवहिं वरिसहि ऊणा

अर्थ

अधिक (उक प्रकार) उत्कृष्ट दश सागरोपम पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक ॥ ४२ ॥ कृष्ण लेश्या की स्थिति—जघन्य दश सागरोपम [पांचवी नरक आश्रिय] पल्योपम का असंख्यातवा भाग अधिक. उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की [सातवी नरक आश्रिय] ॥ ४३ ॥ यह तो नरक गति में तीन ही लेश्या पाती है उस की स्थिति का वर्णन किया, अब तिर्यंच मनुष्य और देवता में छही लेश्या पाती है जिस का वर्णन करते हैं ॥ ४४ ॥ पृथ्वी पानी, वनस्पति, (इस में पहिले की चार लेश्या पावे) तेऊ वायु, तीनों विकलेन्द्रिय, असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय (इन में तीन लेश्या पहिली पावे) सन्नी तिर्यंच गर्भज मनुष्य (केवल ज्ञानी के छोड कर) इन में छही लेश्या होती है इन सब की छ ही लेश्या की जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की ही स्थिति होती है ॥ ४५ ॥ और केवल ज्ञानी के एक शुक्ल लेश्या ही होती है जिस की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट

सूत्र

तेत्तीस मुहुत्त मब्भहिया ॥ ५५ ॥ किण्हा नीला काऊ, तिन्नि वि एयाओ अहमलेसाओ ॥ एयाहि तिहि वि जीवो दुग्गइ उववज्जइ ॥ ५६ ॥ तेऊ पम्हा सुक्का, तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ ॥ एयाहि तिहि वि जीवा, सुग्गइ उववज्जई ॥ ५७ ॥ लेसाहिं सव्वाहिं पढम समयम्मि परिणयाहिं तु ॥ न हु कस्सइ उववाओ, परभवे अत्थि जीवस्स ॥ ५८ ॥ लेसाहिं सव्वाहिं चरिमे समयम्मि परिणयाहिं तु ॥ न हु कस्सइ उववाओ परभवे होइ जीवस्स ॥५९॥ अंतमुहुत्तम्मि गए, अंतमुहु

अर्थ

न्तर मुहूर्त अधिक जानना ॥ ५५ ॥ दूसरा गति द्वार—कृष्ण नील कापूत इन तीन लेश्या कर जीव अधर्म गति [दु:खदायी स्थान] में उत्पन्न होता है ॥ ५६ ॥ तेजू पद्म और शुक्ल इन तीनों लेश्या कर जीव सद्गति [सुखदाई गति में] उत्पन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ इग्यारवा चवन द्वार जब जीवों के भव के आयुष्य का अंत आता है तब जीवों के जिस गति में जाने का बंध पड़ा होता है उस गति में जो लेश्या होती है वह परिणमती है जिस समय में वह लेश्या परिणमती है उस समय में उस का मृत्यु नहीं होता है ॥ ५८ ॥ तैसे ही मृत्यु की वक्त सब ही जीवों की जिस गति में जाना हो उस गति स्थान में जो लेश्या होती है वह परिणमती है उस वक्त भी कोई जीव परभव में उत्पन्न नहीं होता है ॥ ५९ ॥ परन्तु मृत्यु के अन्त से आगे जिस भव में जाना हो उन सुख स्थान में जो लेश्या होती है

सूत्र

वोच्छामी तेउलेसा जहा सुरगाण ॥ भवणवइ वाणमतर जोइस वेमाणियाण च ॥ ५१ ॥ पलिओवम जहन्न, उक्कोसा सागराओ दुन्नहिया ॥ पलियम संखेज्जेण, होइ भागेण तेऊए ॥ ५२ ॥ दस वास सहस्साइ तेऊए ठिई जहन्निया होइ ॥ दुन्नुदही पलिओवम, असंखभाग च उक्कोसा ॥ ५३ ॥ जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समय मब्भहिया ॥ जहन्नेण पम्हाए दस उ मुहुत्ताहियाइ उक्कोसा ॥ ५४ ॥ जा पम्हाए ठिई खलु उक्कोसा सा उ समय मब्भहिया ॥ जहन्नेण सुक्काए,

अर्थ

व्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक इन चारों में तेजो लेश्या पाती है उस की स्थिति कहते हैं—तेजो लेश्या की स्थिति जघन्य एक पल्योपम की (प्रथम दूसरे देवलोक के देवता आश्रिय) उत्कृष्ट दो सागरोपम (पहिले दूसरे देवलोक के देवता आश्रिय) कुछ (पल्योपम का असंख्यातवा भाग) अधिक (पूर्व भव आश्रिय मानना) ॥ ५२ ॥ और भी तेजो लेश्या की जघन्य दश हजार वर्ष की स्थिति [भवनपति वाणव्यन्तर आश्रिय] उत्कृष्ट दो सागरोपम की पल्योपम की असंख्यातवा भाग अधिक (मध्यम स्थिति में ज्योतिषी मानना) ॥ ५३ ॥ जो तेजो लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति होवे उस से एक समय अधिक पद्म लेश्या की जघन्य स्थिति और पद्म लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम अन्तर मुहूर्त अधिक मानना (पांचवे देवलोक आश्रिय) ॥ ५४ ॥ जो पद्मलेश्या की उत्कृष्ट स्थिति कही उस से एक समय अधिक शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति मानना और शुक्ल लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम

मूल

संठाणओ विय ॥ २६ ॥ वण्णओ जे भवे सुक्किले, भइए से उ गंधओ ॥ रसओ फासओ चेव भइए सठाणओ विय ॥ २७ ॥ गंधओ जे भवे सुब्भी भइए से उ वण्णओ, रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥ २८ ॥ गंधओ जे भवे दुब्भी भइए से उ वण्णओ॥ रसओ फासओ चेव भइए सठाणओ विय॥ २९ ॥ रसओ तित्तए जेउ, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ फासओचेव, भइए सठाणओ विय ॥ ३० ॥ रसओ कडुए जेउ, भइए से उ वण्णओ॥गंधओ फासओ चेव भइए सठाणओ विय ॥ ३१ ॥ रसओ कसाए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ फासओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥ ३२ ॥ रसओ अंबिले जे उ, भइए से

अर्थ

॥ २६ ॥ जो श्वेत वर्ण के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे हैं २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान ॥२७॥ जो सुगंधी पुद्गल हैं उन में २३ बोल पावे हैं-५ वर्ण ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान ॥ २८ ॥ जो दुर्गंधी पुद्गलों हैं उन में २३ बोल पावे हैं—५ वर्ण, ५ रस, ८ स्पर्श ५ संस्थान, ॥२९॥ जो तिक्तरस के पुद्गलों हैं उन में २० बोल पावे हैं—५ वर्ण २ गंध, ८ स्पर्श ५ संस्थान ॥ ३० ॥ जो कटु रस के पुद्गलों हैं उन में२० बोल पावे हैं-५ वर्ण, २ गंध ८ स्पर्श, ५ संस्थान ॥ ३१ ॥ जो कषाय से रस के पुद्गलों हैं उन में २० बोल पावे हैं—५ वर्ण, २ गंध, ८ स्पर्श, ५ संस्थान ॥ ३२ ॥ जो खट्टे

सूत्र

चरिम समएसेव ॥ लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छंति परलोय ॥ ६० ॥ तम्हा ए-
यभि लेसाण आणुभाव वियाणिया ॥ अप्पसत्थाओ वज्जित्ता, पसत्थ ओ हिट्ठिए
मुणि ॥ ६१ ॥ त्तिबेमि ॥ इति लेसज्झयण चो तिस समत्त ॥ ३४ ॥

अर्थ

उस लेश्या के परिणाम वाली रही आत्मा में परिणमें बाद उस लेश्या की जो स्थिती है उस स्थिति का अन्तर मुहूर्त का काल भी क्षमे और अन्तर मुहूर्त ही बाकी रहे तब जीव यहां से परभव में जाता है अर्थात् प्रथम और अन्तिम समय की स्थिति के दोनों समय छोड कर बीच के समय में जीव परभव में गमन करता है ॥ ६० ॥ हे भव्यो! अशुभ लेश्या से दुर्गति में और शुभ लेश्या से सद्गति में जीव जाता है ऐसा जानकर कृष्ण नील कापोत इन तीनों खोटी लेश्या को छोड कर तेजू पद्म और शुक्ल इन तीन लेश्या को आदर कर सुखी होवो ' यों सुधर्मा स्वामीने जंबू स्वामी से कहा ॥ इति लेश्या नामक चौतीसवा अध्ययन समाप्तम् ॥ ३४ ॥ * * *

सूत्र

विय ॥ ३८ ॥ फासओ सीयए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ विय ॥ ३९ ॥ फासओ उण्हए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥ ४० ॥ फासओ निद्धए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥ ४१ ॥ फासओ लुक्खए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ विय ॥ ४२ ॥ परिमंडलसठाणे, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए फासओ विय ॥ ४३ ॥ सठाणओ भवे वट्टे, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ

अर्थ

५ संस्थान ॥ ३८ ॥ जो शीत स्पर्श के पुद्गल हैं उन में २३ बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (शीत उष्ण नहीं) ५ संस्थान ॥ ३९ ॥ जो उष्ण स्पर्श के पुद्गल है उनमें २३ बोल पावे-५वर्ण २ गंध, ५ रस ६ स्पर्श (शीत उष्ण नहीं) ५ संस्थान ॥ ४०॥ जो चिकने स्पर्श के पुद्गल हैं उनमें २३ बोल पावे २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श, (चिकना लूखा नहीं) ५ संस्थान ॥ ४१ ॥ जो लूखे स्पर्श के पुद्गल हैं उन में २३ बोल पावे—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श, (चिकना लूखा नहीं) ५ संस्थान ॥ ४२ ॥ जो परिमंडल संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे-५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ॥ ४३ ॥ जो

-उ वण्णओ ॥ गंधओ फासओ चेव भइए सठाणओ विय ॥ ३३ ॥ रसओ महुरए जेउ, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ फासओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥३४॥ फासओ कक्खडे जे उ भइए से उ वण्णओ ॥ गधअ रसओ चेव, भइए भइए संठाणओ विय ॥ ३५ ॥ फासओ मउए जेउ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥ ३६ ॥ फासओ गुरुए जे उ, भइए से उ वण्णओ॥ गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥ ३७ ॥ फासओ लहुए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओ

रस के पुद्गलों हैं उन में २० बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ८ स्पर्श ५ संस्थान ॥ ३३ ॥ जो मधुर रस के पुद्गलों हैं उन में २० बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध ८ स्पर्श ५ संस्थान॥३४॥ जो कठोर स्पर्श के पुद्गलों हैं उन में २१ बोल पाते हैं— ५ वर्ण २ गंध ५ रस, ३ स्पर्श (कठोर कोमल नहीं) ५ संस्थान ॥ ३५ ॥ जो कोमल स्पर्श के पुद्गल है उन में २१ बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (कठोर कोमल नहीं) ५ संस्थान ॥ ३६ ॥ जो भारी स्पर्श के पुद्गलों हैं उन में २१ बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (भारी हलका नहीं) ५ संस्थान ॥ ३७ ॥ जो हलके स्पर्श के पुद्गल हैं उस में २१ बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श [भारी हलका नहीं]

सूत्र

वियं ॥ ३८ ॥ फासओ सीयए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ विय ॥ ३९ ॥ फासओ उण्हए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥ ४० ॥ फासओ निद्धए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए संठाणआ विय ॥ ४१ ॥ फासओ लुक्खए जे उ, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओ विय ॥ ४२ ॥ परिमंडलसठाणे, भइए से उ वण्णओ ॥ गधओ रसओ चेव, भइए फासओ विय ॥ ४३ ॥ सठाणओ भवे वट्टे, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ

अर्थ

५ संस्थान ॥ ३८ ॥ जो शीत स्पर्श के पुद्गल हैं उन में २३ बोल पाते हैं—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (शीत उष्ण नहीं) ५ संस्थान ॥ ३९ ॥ जो उष्ण स्पर्श के पुद्गल हैं उनमें २३ बोल पावे-५ वर्ण २ गंध, ५ रस ६ स्पर्श (शीत उष्ण नहीं) ५ संस्थान ॥ ४० ॥ जो चिकने स्पर्श के पुद्गल हैं उनमें २३ बोल पावे २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श, (चिकना लूखा नहीं) ५ संस्थान ॥ ४१ ॥ जो लूखे स्पर्श के पुद्गल हैं उन में २३ बोल पावे—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (चिकना लूखा नहीं) ५ संस्थान ॥ ४२ ॥ जो परिमंडल संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे-५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ॥ ४३ ॥ जो

चेव, भइए से फासओ विय ॥ ४४ ॥ संठाणओ भवे तंसे, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ चेव भइए से फासओ विय ॥४५॥ संठाणओ भवे चउरंसे, भइए से उ वण्णओ गंधओ रसओ चेव, भइए से फासओ विय ॥ ४६ ॥ जे आयय संठाणे भइए से उ वण्णओ गंधओ रसओ चेव, भइए से फासओ विय ॥४७॥ एसा अजीव विभत्ती, समासण वियाहिया ॥ इत्तो जीव विभत्तिं, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥ ४८ ॥ संसारत्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया ॥ सिद्धाणेगविहा वुत्ता, त मे कित्तयओ

वर्तुल संस्थान के पुद्गल हैं उन में २ बोल पावे—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस ८ स्पर्श ॥४४॥ जो त्रिकोन संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण २ गंध ५ रस ८ स्पर्श ॥ ४५ ॥ जो चौकोन संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ॥ ४६ ॥ जो परिमंडल संस्थान के पुद्गल है उन में २० बोल पावे—५ वर्ण २ गंध ५ रस ८ स्पर्श ॥ ४७ ॥ अहो शिष्य ! यह श्री तीर्थंकरने ५ वर्ण के १०० बोल, २ गंध के ४६ बोल, ५ रस के १०० बोल ८ स्पर्श के १८४ बोल और ५ संस्थान के १०० बोल सब मिलकर अजीव रूपी पुद्गलों के भाव से ५३० भेद कहे हैं ॥ ४८ ॥ अब आगे जीव के भेदों का वर्णन अनुक्रम से कहता हूं अहो जम्बू ! तीर्थंकरने जीव दो प्रकार के कहे हैं—१ कर्म सहित सो संसारी जीव, और २ कर्म रहित सो सिद्ध भगवंत के

सूत्र

सुण ॥४९॥इत्थी पुरिस सिद्धा य तहेव य नपुंसगा ॥ सलिंगे अन्नलिंगे य गिहिलिंगे तहेव य ॥ उक्कोसोगाहणाए य जहन्नमज्झिमाए य ॥ उड्ढं अहय तिरियं च समुद्दम्मि जलम्मिय ॥ ५१ ॥ दस य नपुंसएसु, वीसइत्थियासु य ॥ पुरिसेसु य अट्ठसयं, समएणेगेण सिज्झई ॥ ५२ ॥ चत्तारिय गिहिलिंगे, अन्नलिंग दसेव य ॥ सलिंगेण

अर्थ

जीव इस में से प्रथम सिद्ध के जीव के अनेक भेद कहे हैं सो मैं तुझे स अनुक्रम से कहता हूं उसे स्वस्थ चित्त श्रवण कर ॥ ४९ ॥ संसार के जीवों जिस प्रकार सिद्ध होते हैं सो कहते हैं—१ स्त्री लिंग से सिद्ध होवे, २ पुरुष लिंग से सिद्ध होवे, ३ नपुंसक लिंग से सिद्ध होवे ४ स्वलिंग सो साधु के लिंग से सिद्ध होवे ५ सन्यासी आदि के अन्य लिंग स शुद्ध श्रद्धा कर सिद्ध होवे ६ गृहस्थ लिंग (भाव चारित्र) से सिद्ध होवे ॥ ५० ॥ जघन्य दो हाथ की (वावना संस्थान आश्रेय) अवगाहना वाला सिद्ध होवे, मध्यम अवगाहना वाले सिद्ध होवे और उत्कृष्ट ५०० धनुष्य की अवगाहना वाले सिद्ध होवे ऊंची भूमी पर्वतादि पर से सिद्ध होवे, नीची भूमी गर्तादि खड्डादि में से सिद्ध होवे तिरछा अढाइ द्वीप में म सिद्ध होवे कोई देवता छद्मस्त साधु का हरन कर लवण समुद्र तथा कालोदधी समुद्र में डाल दे वहां केवल ज्ञान पाकर सिद्ध होवे ऐसे ही नदी आदि अन्य जलाशय में स सिद्ध होवे ॥ ५१ ॥ एक समय में—नपुंसक लिंगी १० सिद्ध होवे, स्त्री लिंगी २० सिद्ध होवे और पुरुष लिंगी १०८ सिद्ध होवे ॥ ५२ ॥ एक समय में—गृहस्थ लिंग से भाव चारित्र माप्त कर ४ सिद्ध होवे, अन्य लिंग से

वेए, भइए से फासओ विय ॥ ४४ ॥ संठाणओ भवे तंसे, भइए से उ वण्णओ ॥ गंधओ रसओ चेव भइए से फासओ विय ॥४५॥ संठाणओ भवे चउरंसे, भइए से उ वण्णओ गंधओ रसओ चेव, भइए से फासओ विय॥ ४६ ॥ जे आयय संठाणे भइए से उ वण्णओ गंधओ रसओ चेव, भइए से फासओ विय ॥४७॥ एसा अजीव विभत्ती, समासेण वियाहिया ॥ इत्तो जीव विभत्तिं, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥ ४८ ॥ संसारत्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया ॥ सिद्धाणेगविहा वुत्ता, तं मे कित्तयओ

वर्तुल संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस ८ स्पर्श ॥४४॥ जो त्रिकोन संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण २ गंध ५ रस ८ स्पर्श ॥ ४५ ॥ जो चौकोन संस्थान के पुद्गल हैं उन में २० बोल पावे—५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ॥ ४६ ॥ जो परिमंडल संस्थान के पुद्गल है उन में २० बोल पावे—५ वर्ण २ गंध ५ रस ८ स्पर्श ॥ ४७ ॥ अहो शिष्य ! यह श्री तीर्थंकरने ५ वर्ण के १०० बोल, २ गंध के ४६ बोल ५ रस के १०० बोल ८ स्पर्श के १८४ बोल और ५ संस्थान के १०० बोल सब मिलकर अजीव रूपी पुद्गलों के भाव से ५३० भेद कहे हैं ॥ ४८ ॥ अब आगे जीव के भेदों का वर्णन अनुक्रम से करता हूं अहो जम्बू ! तीर्थंकरने जीव दो प्रकार के कहे हैं—१ कर्म सहित सो संसारी जीव, और २ कर्म रहित सो सिद्ध भगवंत के

सुण ॥४९॥इत्थी पुरिस सिद्धा य तहेव य नपुंसगा ॥ सलिंगे अन्नलिंगे य गिहिलिंगे तहेव य ॥ उक्कोसोगाहणाए य जहन्नमज्झिमाए य ॥ उड्ढं अहय तिरियं च समुद्दम्मि जलम्मिय ॥५१॥ दस य नपुंसएसु, वीसइत्थियासु य ॥ पुरिसेसु य अट्ठसय, समएणेगेण सिज्झई ॥५२॥ चत्तारि य गिहिलिंगे, अन्नलिंगे दसेव य ॥ सलिंगेण

अर्थ — उसे जीव इस में से प्रथम सिद्ध के जीव के अनेक भेद कहे हैं सो मैं तुझे स अनुक्रम से कहता हूं एक चित्त श्रवण कर ॥ ४९ ॥ संसार के जीवों जिस प्रकार सिद्ध होते हैं सो कहते हैं—१ स्त्री लिंग से सिद्ध होवे, २ पुरुष लिंग से सिद्ध होवे, ३ नपुंसक लिंग से सिद्ध होवे ४ स्वलिंग सो साधु के लिंग से सिद्ध होवे ५ सन्यासी आदि के अन्य लिंग से शुद्ध श्रद्धा कर सिद्ध होवे ६ गृहस्थ लिंग (भाव चारित्र) से सिद्ध होवे ॥ ५० ॥ जघन्य दो हाथ की (वामना संस्थान आश्रिय) अवगाहना वाला सिद्ध होवे, मध्यम अवगाहना वाले सिद्ध होवे और उत्कृष्ट ५०० धनुष्य की अवगाहना वाले सिद्ध होवे ऊंची भूमी पर्वतादि पर से सिद्ध होवे, नीची भूमी गर्तादि खड्डादि में से सिद्ध होवे तिरछा अढाइ द्वीप में से सिद्ध होवे कोइ देवता छद्मस्त साधु को हरन कर लवण समुद्र तथा कालोदधी समुद्र में डाल दे वहां केवल ज्ञान पाकर सिद्ध होवे ऐसे ही नदी आदि अन्य जलाशय में से सिद्ध होवे ॥ ५१ ॥ एक समय में—नपुंसक लिंगी १० सिद्ध होवे, स्त्री लिंगी २० सिद्ध होवे और पुरुष लिंगी १०८ सिद्ध होवे ॥ ५२ ॥ एक समय में—गृहस्थ लिंग से भाव चारित्र प्राप्त कर ४ सिद्ध होवे, अन्य लिंग से

अट्ठसयं समएणेगेण सिज्झइ ॥ ५३ ॥ उक्कोसोगाहणाए य, सिज्झते जुगव दुवे ॥ चत्तारि जहन्नाए मज्झे अट्ठुत्तर सय ॥५४॥ चउरुड्ढलोए य दुवे समुद्दे, तओ जले वीसमहे तहेव य ॥ सयं च अट्ठुत्तर तिरियलोए समएणेगेण सिज्झइ धुवम् ॥ ५५ ॥ कहिंपडिहया सिद्धा कहिं सिद्धापइट्ठिया ॥ कहिं बोंदिं चइत्ताण, कत्थ गतूण सिज्झइ ॥ ५६ ॥ अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ॥ इहं बोंदिं

मात्र सम्यक्त्व प्राप्त कर दश सिद्ध होवे, साधु के लिंग से १०८ सिद्ध होवे ॥ ५३ ॥ एक समय में-जघन्य अवगाहना वाले चार जीव सिद्ध होवे, मध्यम अवगाहना वाले १०८ जीव सिद्ध होवे उत्कृष्ट अवगाहना वाले दो जीव सिद्ध होवे ॥ ५४ ॥ एक समय में मेरु पर्वत की चूलकादि उर्ध्वलोक में उत्कृष्ट चार सिद्ध होवे समुद्र में दो जीव सिद्ध होवे, नदी प्रमुख के पानी में तीन जीव सिद्ध होवे अधोगामिनी विजय आदी नीचे लोक में २० जीव सिद्ध होवे तिरछे लोक में १०८ सिद्ध होवे ॥ ५५ ॥ गोतम स्वामीने प्रश्न किया कि-अहो भगवान ! सिद्ध भगवत कहां जाकर अटके हैं ? कहां रहे हैं ? कहां शरीर छोड़ा है ? और कहां जाकर सिद्ध हुवे हैं ? भगवंतने उत्तर दिया कि-अहो गोतम ! सिद्ध भगवंत ऊर्ध्व लोक में अलोक से जाकर अटके हैं, लोकाग्र भाग में रहे हैं, इस मनुष्य लोक में शरीर का त्याग कर वहां लोकाग्र में सिद्ध क्षेत्र में सिद्ध

पइसाणं, तत्थ गतूण सिज्झई ॥ ५७ ॥ बारसहिं जोयणेहिं, सव्वट्ठस्सुवरि भवे ॥ ईसिपब्भार नामाउ, पुढवी छत्तसठिया ॥ ५८ ॥ पणयाल सयसहस्सा, जोयणाण तु आयया ॥ तावइयं चेव वित्थिण्णा, तिगुणो साहिय परिरओ ॥ ५९ ॥ अट्ठजोयण बाहुल्ला सा, मज्झम्मि वियाहिया ॥ परिहायंति चरिमंते, मच्छिपत्ताउ तणुयरि ॥ ६० ॥ अज्जुणसुवण्णगमई, सा पुढवी निम्मला सहावेणं ॥ उत्ताण गच्छत्तगसठियाय, भणिया जिणवरेहिं ॥६१॥ संखककुंद सकास पडुरा निम्मला

हुवे हैं ॥ ५७ ॥ वह सिद्ध क्षेत्र कहां है सो कहते हैं—सर्वार्थ सिद्ध महा विमान से बारा योजन ऊपर ईषत्प्रागभार नामक मुक्ति शिला है वह पृथ्वी परिणाम मय भगामी विधे छत्र के संस्थान से संस्थित है ॥ ५८ ॥ वह सिद्ध शिला पैंतालीस लाख योजन की लम्बी चौडी गोल है, उस से त्रिगुनी [१४२-३०२४९] योजन कुछ अधिक) परधी है ॥ ५९ ॥ वह सिद्ध शिला मध्य में आठ योजन की जाडी है फिर आगे चारों तरफ अनुक्रम से पतली पतली २ अन्तिम अग्रभाग किनारे पर मक्षिका की पांख से भी बहुत पतली रहगई है ॥ ६० ॥ वह सिद्ध शिला अर्जुन (श्वेत) सुवर्णमय निर्मल है और श्वेतछत्र के आकार से तीर्थंकरने कही है ॥ ६१ ॥ वह सिद्ध शिला—शंख, अंकरत्न, मचकुंद मोगरा का फूल

मूल

अट्ठसयं समएणेगेण सिज्झइ ॥ ५३ ॥ उक्कोसोगाहणाए य, सिज्झते जुगव दुवे ॥ चत्तारि जहन्नाए, मज्झे अट्ठुत्तर सय ॥५४॥ चउरुड्ढलोए य दुवे समुद्दे, तओ जले वीसमहे तहेवय ॥ सय च अट्ठुत्तर तिरियलोए समएणेगेण सिज्झइ धुवम् ॥ ५५ ॥ कहिंपडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धापइट्ठिया ॥ कहिं बोंदिं चइत्ताण, कत्थ गंतूण सिज्झइ ॥ ५६ ॥ अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गेय पइट्ठिया ॥ इह बोंदिं

अर्थ

मात्र सम्यक्त्व चारित्र मास-कर दश सिद्ध होवे, साधु के लिंग से १०८ सिद्ध होवे ॥ ५३ ॥ एक समय में-जघन्य अवगाहना वाले चार जीव सिद्ध होवे, मध्यम अवगाहना वाले १०८ जीव सिद्ध होवे उत्कृष्ट अवगाहना वाले दो जीव सिद्ध होवे ॥ ५४ ॥ एक समय में मेरु पर्वत की चूलकादि ऊर्ध्वलोक में उत्कृष्ट चार सिद्ध होवे समुद्र में दो जीव सिद्ध होवे, नदी प्रमुख के पानी में तीन जीव सिद्ध होवे अधोगामिनी विजय आदी नीचे लोक में २० जीव सिद्ध होवे तिरछे लोक में १०८ सिद्ध होवे ॥ ५५ ॥ गौतम स्वामीने प्रश्न किया कि-अहो भगवान ! सिद्ध भगवंत कहां जाकर अटके हैं ? कहां रहे हैं ? कहां शरीर छोडा है ? और कहां जाकर सिद्ध हुवे हैं ? भगवंतने उत्तर दिया कि-अहो गौतम ! सिद्ध भगवंत ऊर्ध्व लोक में अलोक से जाकर अटके हैं, लोकाग्र भाग में रहे हैं, इस मनुष्य लोक में शरीर का त्याग कर वहां लोकाग्र में सिद्ध क्षेत्र में सिद्ध

सूत्र

तत्थ, कोसो उवरिमो भवे ॥ तस्स कोसस्स, छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥ ६३ ॥ तत्थ सिद्धा महाभागा, लोगग्गम्मि पइट्ठिया ॥ भवपवंचओ मुक्का,

अर्थ

शस्त्र करके भी द्विभाग न होवे, अनंत व्यवहार परमाणु का ऊष्ण श्रेणिया [गरमी के पुद्गल] आठ ऊष्ण श्रेणिये पुद्गल जितना एक शीत श्रेणिया (ठंड के पुद्गल) आठ शीत श्रेणिये जितना एक त्रसरेणु (तरखले में देखावे सो) आठ ऊर्ध्वरेणु जितनी एक त्रस रेण [त्रस काया का शरीर] आठ त्रस रेणु जितनी एक रथ रेणु [रथ चलते धूल उडे सो] आठ रथ रेणु जितना एक देवकुरु उत्तर कुरु क्षेत्र के युगलीये का वालाग्र आठ देवकुरु उत्तर कुरु के वालाग्र जितना एक हरीवास, रम्यकवास क्षेत्र के युगलीये का वालाग्र, आठ हरीवास रम्यकवास क्षेत्र के मनुष्यों का वालाग्र जितना एक हेमवय ऐरणवय क्षेत्र के मनुष्यों का वालाग्र, आठ हेमवय ऐरणवय क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्र जितना एक पूर्व महा विदेह पश्चिम महा विदेह क्षेत्र के मनुष्य का वालाग्र आठ महा विदेह क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्र जितना एक भरतैरावत क्षेत्र के सख्यात वर्षाय वाले मनुष्य के वालाग्र आठ भरतैरावत क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्र जितनी लीख, आठ लीख की एक यूका, आठ यूका का एक जव मध्य, आठ जवमध्य का एक अंगुल, ६ अंगुल का एक पाउ २ पावका एक वेंत २ वेंत एक हाथ, २ हाथ एक कुछ दो कुछका एक धनुष्य, २००० धनुष्य का एक कोस ४ कोस का एक योजन ऐसे उत्सेध अंगुल के ४००० कोस होवे तब प्रमाणु अंगुल का एक योजन) ॥ ६१ ॥ वहां सिद्ध क्षेत्र में रहे सिद्ध भगवत अनंत ज्ञान रूप ऋद्धि कर

सूत्र

सुहा ॥ मस्याए जोयणे तत्तो, लोयंतो उ वियाहिओ ॥ ६२ ॥ जोयणस्स उजो

अर्थ

समान श्वेत उज्वल निर्मल है उस सिद्ध सिला के ऊपर एक योजन प्रमाण में लोक का अन्त है ॥ ६२ ॥ उस सिद्ध के ऊपर के एक योजन में के तीन हजार नवसे निन्याणवे (३९९९) योजन नीचे छोडना ऊपर का एक कोश रहा उस के ६ भाग करना उन में से पांच भाग नीचे छोडना ऊपर का एक भाग ३३३ (तीन सो तेंत्तास) धनुष्य और ३२ अंगुल क्षेत्र रहा है, इतनी सिद्ध की उत्कृष्ट अवगाहना है) उतने ऊंचे क्षेत्र में (और पैंतालीस लक्ष योजन लम्बे चौडे क्षेत्र में) अनंत सिद्ध का अवगाह है ॥ ६३ ॥ (अंगुल का प्रमाण— चार मधुर त्रिफले का एक श्वेत सरसव, १६ सरसव का उडद, दो उडद का एक गुंजा [चिरमी] पांच गुंज का एक मासा, १६ मासा का एक सोनैया ८ सोनैये भर का एक कागुनी रत्न, उस रत्न के ६ तले ८ कोने १२ हांसे हैं वह सुवर्णकार की एरन के संस्थान से संस्थित होता है उस कागुनी रत्न का एकेक हांस एक उत्सेध अंगुल का चौडा होता है, वह उत्सेध अंगुल श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामी का आधा अंगुल होता है, उस हजार गुना करने से एक परमाणु अंगुल होता है अर्थात् महावीर स्वामी के आत्म अंगुल का एक परमाणु अंगुल होता है ऐसे ६ परमाणु अंगुल का एक पाव, दो पाव का १ वेंत दो वेंत का एक हाथ दो हाथ की एक कुक्षी दो कुक्षी का एक धनुष्य, २००० धनुष्य का एक कोश चार कोश का एक योजन यह परमाण अंगुल के योजन का माप कहा अब उत्सेध अंगुल का प्रमाण कहते हैं—अनंत सूक्ष्म परमाणु का एक बादर परमाणु तथा व्यवहार परमाणु, जिस के अति तीक्ष्ण

मूल

॥ ६८ ॥ ससारत्था उ जे जीवा, दुविहा ते वियाहिया ॥ तसा य थावरा चेव, थावरा तिविहा तहिं ॥ ६९ ॥ पुढवि आउ जीवा य, तहेव य वणस्सई ॥ इच्चेव थावरा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥७०॥ दुविहा उ पुढवि जीवा, सुहुमा बायरा तहा ॥ पज्जत्त मपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ ७१ ॥ बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया ॥ सण्हा खरा य बोद्धव्वा सण्हा सत्तविहा तहिं ॥ ७२ ॥ किण्हा

अर्थ

पार हुवे हैं सर्व कर्मांश क्षय करके मोक्ष रूप प्रधान गति को प्राप्त की है यह सिद्ध का स्वरूप जानना ॥ ६८ ॥ अब दूसरे संसारी जीवों का स्वरूप कहते हैं—जो ससार में रहे वे संसारी जीव दो प्रकार के कहे हैं—१ त्रस जीव और २ स्थावर जीव इस में स्थावर जीव के तीन प्रकार कहे हैं ॥ ६९ ॥ अहो जम्बू ! वे तीन भेद स्थावर के मैं तेरे से कहता हूं सो तू दत्तचित्त श्रवण कर–पृथ्वीकाय, २ अप्काय, और ३ वनस्पतिकाय ॥ ७० ॥ पृथ्वीकाय के भेद कहते हैं श्री तीर्थंकर भगवान ने द्रव्य से पृथ्वीकाय के दो भेद कहे हैं—१ सूक्ष्म और २ बादर, इस में सूक्ष्म के दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त वैसे ही बादर के भी दो भेद—१ अपर्याप्त और २ पर्याप्त ॥ ७१ ॥ और भी बादर पृथ्वीकाय के दो भेद—१ कोमल और २ कठिन, इस में कोमल पृथ्वी काय के ७ भेद ॥ ७२ ॥ तद्यथा—१ काली मट्टी, २ हरी मट्टी, ३ लाल मट्टी, ४ पीली मट्टी, ५ श्वेत मट्टी,

सिद्धिवरगइगया ॥ ६४ ॥ उस्सेहो जस्स जो होइ भवम्मि चरिमम्मि उ ॥ तिभागहीणो तत्तो य, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥ ६५ ॥ एगत्तेण साईया अपज्जव-सिया विय ॥ पुहुत्तेण अणाईया, अपज्जवसियाविय ॥ ६६ ॥ अरूविणो जीवघणा, नाणदंसणसन्निया ॥ अतुलं सुहसंपन्ना, उवमा जस्स नत्थिउ ॥ ६७ ॥ लोगेग देसे ते सव्व, नाणदंसण सन्निया ॥ संसार पार नित्थिण्णा सिद्धिं वरगइं गया

मसमाग्य वान हैं, अनंत बलवीर्य रूप प्रधान कर महाशक्ति के धारक हैं सर्व लोक के ऊपर अग्रभाग में रहे नरकादि गति के भवों में भ्रमण करने के प्रपंच से निवृत्ते हैं और मोक्ष रूप प्रधान गति को प्राप्त की है ॥६४॥ मनुष्य भव के चरिम-अन्तिम शरीर की जितनी अवगाहना [ऊंचाइ] थी उस के तीन भाग में का एक भाग छोड़कर बाकी रहे दो भाग जितनी सिद्ध भगवंतकी अवगाहना होती है ॥६५॥ एकसिद्ध आश्रिय तो आदि अन्त सहित हैं जैसे महावीर स्वामीजी कार्तिक वद अमावस्या को मोक्ष गये और बहुत सिद्धों आश्रिय आदिअंत दोनों नहीं है ॥ ६६ ॥ वे सिद्ध भगवन्त कर्म रहित होने से अरूपी हैं शरीर रहित होने से सघन आत्म प्रदेश के धारक है केवल ज्ञान केवल दर्शन रूप संज्ञा वाले हैं, और सुख की ओपमा रहित अतुल्य सुख को प्राप्त हुवे है, ॥ ६७ ॥ वे सिद्ध भगवन्त लोक के एक देश विभाग में रहे हैं, केवल ज्ञान केवल दर्शन रूप सहोपयुक्त है संसार परिभ्रमण का छेदन कर संसार के

सूत्र

जलकते सूरकंते य ॥ ७७ ॥ एए खर पुढवीए भेया, छत्तीस माहिया ॥ एगविहम नाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥ ७८ ॥ सुहुमा सव्व लोगम्मि, लोग देसेय बायरा ॥ इत्तो काल विभाग तु, तेसिं वुच्छ चउव्विह ॥ ७९ ॥ सतइ पप्प नाईया अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ ८० ॥ बावीस सहस्साइ, वासाणुक्कोसिया भवे ॥ आउठिई पुढवीण, अंतोमुहुत्त जहन्निया ॥ ८१ ॥ असख काल मुक्कोस, अंतोमुहुत्त जहन्नग ॥ कायठिई पुढवीण, त

अर्थ

कठिन पृथ्वी के छत्तीस भेद कहे और सूक्ष्म पृथ्वी काया का तो एक ही भेद तीर्थंकरने कहा है यों सब ४० भेद पृथ्वी काया के हुवे ॥ ७८ ॥ २ क्षेत्र से—सूक्ष्म पृथ्वी काया के एक ही प्रकार के जीव सर्व लोक में व्याप रहे हैं और बादर पृथ्वी काया के जीवों लोक के देश विभाग में हैं ३ काल से पृथ्वी काया के जीवों के चार भेद हैं सो मैं कहता हूं ॥ ७९ ॥ १ पृथ्वी काया द्रव्य की अपेक्षा तो अनादि और अनंत है अर्थात् पृथ्वी काया कभी बनी नहीं और सब पृथ्वीकाया का नाश भी नहीं होगा वैसे ही पर्याय की अपेक्षा अर्थात् जीव शरीर का उत्पन्न होना और नाश होने की अपेक्षा आदि और अन्त दोनों सहित हैं ॥ ८० ॥ (२) पृथ्वीकाया की स्थिति—जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस [२२] हजार वर्ष की यह भव स्थिति कही ॥ ८१ ॥ (३) अब कायास्थिति अर्थात् पृथ्वीकाया का जीव मर २ कर पुन २ पृथ्वी काया में ही उत्पन्न होवे उस की (काया)

सूत्र

नीला य रुहिरा य, हलिद्दा सुक्किला तहा ॥ पंडु पणग मट्टिया खरा छत्तीसईविहा ॥ ७३ ॥ पुढवीय सक्करा वालुया य उवले सिला य, लोणूसे ॥ अय तउय तम्ब सीसग रुप्प सुवण्णे य वइरे य ॥ ७४ ॥ हरियाले हिंगुलए मणोसिला सासगंजण पवाल ॥ अब्भ पडलब्भ वालुय, बायरकाए मणिविहाणे ॥ ७५ ॥ गोमेज्जए य रुयगे, अंके फलिगे य लोहियक्खे य ॥ मरगय मसारगल्ले, भुयमोयग-इन्दनीले य ॥ ७६ ॥ चंदण-गेरुय-हंसगब्भ, पुलए सोगंधिए य बोद्धव्वे ॥ चंदप्पह वेरुलिए

अर्थ

१ पांडु और ७ मोपीपंदन और कठिन मट्टी के ३६ भेद कहे हैं ॥ ७३ ॥ यथा—१ खदान की मट्टी, २ मुरड-कंकर, ३ बेलू रेती ४ पाषान ५ सिला ६ समुद्रादि का निमक, ७ ओस-खारी, ८ लोहा, ९ ताम्बा १० तरुआ [कथीर] ११ सीसा १२ रूपा, १३ सुवर्ण १४ वज्रहीरा, १५ हरताल, १६ हिंगलु, १७ मणसिला, १८ रत्नों की जाति १९ सुरमा, २० प्रवाल, २१ अभ्रक, २२ भोडल की धूल, यह २२ जाति की पृथ्वी काया ॥ ७४ ७५ ॥ सोले जाति के रत्न—१ गोमिज रत्न २ रुचक रत्न, ३ अंक रत्न ४ स्फटिक रत्न, ५ लोहिताक्ष रत्न, ६ मरकत रत्न, ७मसारगल्ल रत्न, ८ भुजमोचक रत्न ९ इन्द्रनील रत्न १० चंदन रत्न ११ गेरुक रत्न १२ हंसगर्भ रत्न, १३ पुलक रत्न, १४ सौगंधिक रत्न, १५ चन्द्रप्रभ रत्न, १६ वैडूर्य रत्न, १७ जलकांत रत्न, १८ सूर्यकान्त रत्न ॥ ७६-७७ ॥ पर

सूत्र

एगविहँ मणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥ सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य वायरा ॥ ८७ ॥ संतइ पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइ पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य ॥ ८८ सत्तेव सहस्साइ, वासाणुक्कोसिया भवे ॥आउठिई आऊण, अंतोमुहुत्त जहन्निया ॥ ८९ ॥ असंख कालं मुक्कोसं, अंतोमुहुत्त जहन्नग ॥ कायठिई आऊण, तं कायं तु अमुंचओ ॥ ९० ॥ अणंत कालं मुक्कोस, अंतोमुहुत्त जहन्नग ॥ विजढंमि सए काए, आऊ जीवाण अंतर ॥ ९१ ॥ एएसिं वण्णओ, चेव, गंधओ

अर्थ

पानी ॥ ८६ ॥ श्री तीर्थंकरने सूक्ष्म अपकाया का तो एक ही भेद कहा है—२ क्षेत्र से सूक्ष्म अपकाया के जीव सर्व लोक में व्यापक हैं और बादर अपकाया के जीव लोक के देश विभाग में हैं ॥ ८७ ॥ ३ काल से—अपकाया चार प्रकार की है—१ अपकाया की सदैव आस्ति आश्रिय अनादि अनंत है, पवन उपजन आश्रिय सादि सान्त है ॥ ८८ ॥ अपकाया की भवस्थिति—जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की ॥ ८९ ॥ अपकाया की काया स्थिति—जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल तक मर कर उसी में उत्पन्न होवे ॥ ९० ॥ अपकाया का जीव निकलकर पीछा अपकाया में जावे जिस का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ ९१ ॥ ४ भाव से अपकाया के ५ वर्ण)

सूत्र

काय तु अमुच्चओ ॥ ८२ ॥ अणत काल मुक्कोस, अतोमुहुत्त जहन्नग ॥ विजढंम सएकाए, पुढवि जीवाण अतरं ॥ ८३ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गधओ रस फासओ ॥ सठाण देसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ ८४ ॥ दुविहा आऊ जीवा उ, सुहुमा बायरा तहा ॥ पज्जत्त मपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ ८५ ॥ बायरा जे उ पज्जत्ता, पचहा ते पकित्तिया ॥ सुद्धोदए य उस्से, हरतणू महिया हिमे ॥ ८६ ॥

अर्थ

स्थिति—जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असख्यात काल की ॥ ८२ ॥ (५) पृथ्वी काया के जीवों पृथ्वी काया का शरीर छोडकर पीछा पृथ्वी काया में उत्पन्न होवे उस के मध्य (बीच) में अन्तर पडे तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ ८३ ॥ ६ भाव से पृथ्वी काया के वर्ण की गंध की रस की स्पर्श की और सस्थान की अपेक्षा से हजारों ही भेद होते हैं इति पृथ्वीकाया वर्णन ॥ ८४ ॥ अब अपकाया के भेद कहते हैं—१ द्रव्य से अप्काया के दो भेद—१ सूक्ष्म और २ बादर इस में सूक्ष्म के भी दो भेद—१ अपर्याप्त और २ पर्याप्त तैसे ही बादर के भी दो भेद—१ अपर्याप्त और २ पर्याप्त ॥ ८५ ॥ श्री तीर्थंकर भगवानने बादर पर्याप्त अपकाया के पांच भेद कहे हैं—१ शुद्ध मेघ का पानी, २ ओस का पानी, ३ हरे तृण पर रहा पानी, ४ धूंवर का पानी, और ५ हेम (बरफ) का

सूत्र

पकित्तिया ॥ आलए मूलए चेव, सिंगबेरे तहेव य ॥ ९७ ॥ हरिली सिरिली सस्सिरिली, जावई केयकदली ॥ पलडु लसणकंदे य, कदली य कुडुव्वए ॥ ९८ ॥ लोहणी हूय थीहूय, तुहगाय तहेवय॥कण्हे य वज्जकंद य, कंदे सूरणए तहा ॥९९॥ अस्सकण्णी य घोधव्वा, सीहकण्णी तहेव य ॥मुसुंढी य हलिद्दा य, णेगहा एवमायओ ॥१००॥एगविहमणाणत्ता सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥सुहुमा सव्व लोगम्मि लोग देसे य बायरा ॥ १०१ ॥ संतइं पप्प णाईया अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साईया,

अर्थ

१२ हरित काय भाजी आदि यह बारा प्रकारादि प्रत्येक वनस्पति के भेद जानना ॥ ९६ ९६ ॥ अब साधारन वनस्पति के भी अनेक भेद कहे हैं जैसे १ आलू २ मूला ३ अद्रक, ४ हिरली, ५ सिरली, ६ अस्सीरिली, ७ जवाय ८ कदली, ९ पलाडु, १० लशन, ११ कान्दे, १२ कुडक १३ लोहिणी, १४ हूयीया १५ कुहाग, १६ कृष्णकंद, १७ वज्रकंद १८ सूरणकंद १९ अश्वकर्णी, २० सिंहकर्णी २१ मुसंडी और २२ हल्दी, इत्यादि बहुत प्रकार की कन्द मूलादी साधारन वनस्पति की जाति है ॥ ९७ १०० ॥ और जो सूक्ष्म वनस्पति है उस का एक ही प्रकार कहा है २ क्षेत्र से सूक्ष्म वनस्पति सर्व लोक में भरी है और बादर वनस्पति लोक के एक देश में रही है ॥ १०१ ॥ काल से वनस्पति के चार प्रकार—१ वनस्पति काय की सदैव आस्ति होने से आदि और अन्त रहित है

सूत्र

रस फासओ ॥ सठाण देसओ वावि, विहाणाई सहस्ससो ॥ १२ ॥ दुविहा वणस्सई जीवा, सुहुम बायरा तहा ॥ पज्जत्त मपज्जत्ता एवमेए दुहा पुणो ॥ १३ ॥ बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया ॥ साहारण सरीरा य, पत्तेगा य तहेव य ॥ १४ ॥ पत्तेग सरीराओ, णेगहा ते पकित्तिया ॥ रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य, लया वल्ली तणा तहा ॥ १५ ॥ वलया पव्वगा कुहणा, जलरुहा ओसही तहा ॥ हरियकाया बोद्धव्वा, पत्तेया इइ आहिया ॥ १६ ॥ साहारण सरीराओ, णेगहा ते

अर्थ

२ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं इति अपकाया वर्णन ॥ १२ ॥ अब वनस्पति काया का कहते हैं—१ द्रव्य से वनस्पति के जीव दो प्रकार के कहे हैं—१ सूक्ष्म और २ बादर इस में सूक्ष्म के दो भेद—पर्याप्त और अपर्याप्त वैसे ही बादर के भी दो भेद—अपर्याप्त और पर्याप्त ॥ १३ ॥ बादर पर्याप्त वनस्पति काया के दो भेद कहे हैं—१ साधारण शरीर [एक शरीर में अनंत [जीव] वासी और प्रत्येक शरीर [एक शरीर में एक जीव] वासी ॥ १४ ॥ इस में प्रत्येक शरीरवासी वनस्पति के अनेक भेद कहे हैं—१ वृक्ष वृक्ष [यह दो प्रकार के होते हैं—एक बीजवाले तो आम्रादि और बहुत बीजवाले सीताफलादि] गुच्छा-रींगणी प्रमुख के, ३ गुल्म मालती आदि के, ४ लता-चम्पादि की ५ वेली तुम्बे प्रमुख की ६ तृण ८ पर्व-इक्षुआदि ९ कुहाण भूमी फोडादि, १० जलरुह-कमलादि ११ औषधि धान्य शालीप्रमुख, और

सूत्र

इच्चेउ तसे तिविहे वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥ १०७ ॥ तेउ वाऊ य बोधव्वा, ओराला य तसा तहा ॥ इच्चेए तसा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥ १०८ ॥ दुविहा तेऊ जीवा उ सुहुमावायरा तहा ॥ पज्जत्त मपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ १०९ ॥ बायरा ज उ पज्जत्ता, णेगहा ते वियाहिया ॥ इंगले मुम्मुरे अगणी, अच्चिजाला तहेव य ॥ ११० ॥ उक्को विज्जु य बोधव्वा, णेगहा एवमायओ ॥ एगविह मणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥ १११ ॥ सुहुमा सव्वलोगम्मि,

अर्थ

प्रकार के त्रस जीवों का कथन अनुक्रम से कहूंगा ॥ १०७ ॥ तीनों त्रस के नाम—तेउकाय, २ वायुकाय और ३ औदारिक त्रस इन के भेदानुभेद आगे कहता हूं सो दत्त चित्त श्रवन कर ॥१०८॥ तेउकाया के जीव १ द्रव्य से दो प्रकार के कहे हैं १ सूक्ष्म और २ बादर इस में सूक्ष्म के दो भेद १ अपर्याप्त और पर्याप्त, तैसे ही बादर के भी दो भेद—१ अपर्याप्त और पर्याप्त ॥ १०९ ॥ बादर तेउस्काय के पर्याप्त है जिस के अनेक भेद कहे हैं—१ अंगारे, २ मोभर ३ अग्नि ४ज्वाला, ५ टूटी ज्वाला, तैसे ही ६ उल्कापात की अग्नि, ७ बिजली की अग्नि ८ इत्यादि बहुत भेद हैं और सूक्ष्म तेजस्काय का एक ही भेद

* तेऊ वायु को बहुत से स्थान स्थावरों में भी गिने हैं जिस का कारन एकेन्द्रिय होने से और यहां तथा जीवाभिगमजी में त्रस में गिने है वह चलन शक्ति की अपेक्षा से जानना

मूल

अपज्जत्तसिया वि य ॥ १०२ ॥ दस चेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया पणगाण ॥ वणस्सईण आउ, अतोमुहुत्त जहन्निया ॥ १०३ ॥ अणतकालमुक्कोस ॥ अतो मुहु० जहन्नग ॥ कायठिई पणगाण त काय तु अमुञ्चओ ॥ १०४ ॥ असख कालमुक्कोस, अतोमुहुत्तं जहन्नग ॥ विजढमि सए काए, पणग जीवाण अतर ॥ १०५ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस फासओ ॥ सठाणदेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १०६ ॥ इच्चेए थावरा तिविहा, समासेण वियाहिया ॥

अर्थ

वनस्पति यवन उपजन आश्रिय आदि और अन्त सहित है ॥ १०२ ॥ ७ वनस्पति काया की भव स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की है, उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है ॥ १०३ ॥ वनस्पति काया की कायास्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट अनन्त काल की है (यह कथन-अनंत काय आश्रिय मानना) ॥ १०४ ॥ वनस्पति काया का जीव निकल पुनः वनस्पति काया में उत्पन्न होवे तो उस का अन्तर जघन्य अन्तर महूर्त का उत्कृष्ट असंख्यात काल का ॥१०५॥ ८ भाव से वनस्पति काया के-५ वर्ण की २ गंध की ५ रस की, ८ स्पर्श की और ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं इति वनस्पति काया का कथन संपूर्ण ॥ १०६ ॥ अहो जम्बू ! यह तीनों प्रकार के स्थावर जीवों का भेदानुभेद कहा,-अब ती

सूत्र

जीवा उ, सुहुमा बायरा तहा ॥ पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ ११८ ॥ बायरा जे उ पज्जत्ता' पचहा ते पकित्तिया ॥ उक्कालिया मंडलिया, घणगुंजा सुद्धवाया य ॥ ११९ ॥ संवट्टगवाते वा णेगहा एवमायओ ॥ एगविह मणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥ १२० ॥ सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥ इत्तो काल विभागंतु, तेसिं वुच्छ चउव्विहा ॥ १२१ ॥ संतई पप्प नाइया, अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया विय ॥ १२२ ॥ तिण्णेव सहस्साइ, वासाणुक्कोसिया भवे ॥ आउठिइ वाऊण, अतो मुहुत्त जहन्निया ॥ १२२ ॥

अर्थ

सूक्ष्म के दो भेद-अपर्याप्त और पर्याप्त, तैसे ही बादर के भी दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त ॥ ११८ ॥ बादर पर्याप्त वायुकाय के ५ भेद कहे हैं—१ उत्कालिक वायु (ठेर २ कर चले) २ मंडलिक वायु चक्कर खावे, ३ घनवाय जो जमीन के नीचे ४ गुंजवायु गुंजारव करे सो ५ शुद्ध वायु ६ संवर्तक वायु इत्यादि वायु काया के बहुत प्रकार हैं और सूक्ष्म वायुकाया का एक ही प्रकार कहा है॥ ११९ १२०॥ क्षेत्र से सूक्ष्म वायुकाया सर्वलोकमें व्यापक है और बादर वायुकाय लोक के देश विभाग में है १ काल से वायुकाय के चार प्रकार हैं ॥ १२१ ॥ वायु काया की आस्ति आश्रिय अनादि अनंत है और उत्पन्न चवन आश्रिय सादी सान्त है ॥ १२२ ॥ वायु काया की भव स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष

सूत्र

लोगदेसे य वायरा ॥ इत्तो कालविभागं तु तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥ ११२ ॥ संतइं पप्प णाइया अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साइया सपज्जवसिया वि य ॥ ११३ ॥ तिण्णेव अहोरत्ता उक्कोसेण वियाहिया ॥ आउठिई तेऊण, अंतो मुहुत्तं जहन्निया ॥ ११४ ॥ असंखकाल मुक्कोसं अंतो मुहुत्तं जहन्नगं ॥ कायठिई तेऊण तं कायं तु अमुंचओ ॥ ११५ ॥ अणंत कालमुक्कोसं, अंतो मुहुत्तं जहन्नगं ॥ विजढंमि सए काए तेऊ जीवाण अंतरं ॥ ११६ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस फासओ ॥ संठाण देसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ ११७ ॥ दुविहा वाउ

अर्थ

हैं ॥ १११ ॥ २ क्षेत्र से-सूक्ष्म तेजस्काय के जीव तो सर्व लोक में व्याप्त हैं परन्तु तेजस्काय लोक के एक देश (अढाई द्वीप) में ही हैं और ४ काल के चार प्रकार कहे ॥ ११२ ॥ अग्नि काय की संतति आश्रित अनादि अनन्त है और जीवों के उत्पन्न चवन आश्रित आदि और अन्त सहित है ॥ ११३ ॥ २ तेजस्काय की भव स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन अहोरात्रि की ॥ ११४ ॥ तेजस्काया की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की ॥ ११५ ॥ तेजस्काय का जीव मर पुनः तेजस्काय में उत्पन्न हो जिस का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनन्त काल का ॥ ११६ ॥ ४ भाव से तेजस्काय के ५ वर्ण की, २ गंध की, ५ रस की, ८ स्पर्श की और ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं इति तेजस्काय ॥ ११७ ॥ अब वायुकाया का कहते हैं—वायुकाया के दो भेद कहे हैं—सूक्ष्म और बादर इस में

जीवा उ, सुहुमा बायरा तहा ॥ पज्जत्तमपज्जत्ता एवमेए दुहा पुणो ॥ ११८ ॥
बायरा जे उ पज्जत्ता' पचहा ते पकित्तिया ॥ उक्कलिया मंडलिया, घणगुंजा सुद्धवाया
य ॥ ११९ ॥ संवट्टगवाते वा णेगहा एवमायओ ॥ एगविह मणाणत्ता,
सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥ १२० ॥ सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥
इत्तो काल विभागतु, तेसिं वुच्छं चउव्विहा ॥ १२१ ॥ संतई पप्प नाइया,
अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया विय ॥ १२२ ॥ तिण्णेव
सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे ॥ आउठिइ वाऊण, अंतो मुहुत्त जहन्निया ॥ १२२ ॥

सूक्ष्म के दो भेद-अपर्याप्त और पर्याप्त, तैसे ही बादर के भी दो भेद अपर्याप्त और पर्याप्त ॥ ११८ ॥
बादर पर्याप्त वायुकाय के ५ भेद कहे हैं—१ उत्कालिक वायु (ठेर २ कर चले) २ मंडलिक वायु
चक्कर खावे, ३ घनवाय जो जमीन क नीचे ४ गुंजवायु गुंजारव करे सो ५ शुद्ध वायु ६ संवर्तक वायु
इत्यादि वायु काया के बहुत प्रकार हैं और सूक्ष्म वायुकाया का एक ही प्रकार कहा है ॥ ११९ १२० ॥ क्षेत्र से सूक्ष्म
वायुकाया सर्वलोकमें व्यापक है और बादर वायुकाय लोक के देश विभाग में है १ कालसे वायुकाय के चार
प्रकार हैं ॥ १२१ ॥ वायु काया की आस्ति आश्रिय अनादि अनंत है और उत्पन्न चवन आश्रिय
सादी सान्त है ॥ १२२ ॥ वायु काया की भव स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष

लोगदेस य बायरा ॥ इत्तो कालविभागं तु तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥ ११२ ॥ संतइं पप्प नाइया अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य ॥ ११३ ॥ तिण्णेव अहोरत्ता उक्कोसेण वियाहिया ॥ आउठिई तेऊण, अंतो मुहुत्तं जहन्निया ॥ ११४ ॥ असंखकाल मुक्कोस अंतो मुहुत्तं जहन्नग ॥ कायठिई तेऊण त काय तु अमुंचओ ॥ ११५ ॥ अणंत काल मुक्कोस, अंतो मुहुत्तं जहन्नयं ॥ विजढंमि सएकाए तेऊ जीवाण अंतरं ॥ ११६ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस फासओ ॥ संठाण देसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ ११७ ॥ दुविहा वाउ

है ॥ १११ ॥ २ क्षेत्र से-सूक्ष्म तेजस्काय के जीव तो सर्व लोक में व्याप्त है बादर तेजस्काय लोक के एक देश (अढाइ द्वीप) में ही है और ४ भाव के चार प्रकार कहे ॥ ११२ ॥ अग्नि काय की सदैव भास्ति आश्रिय अनादि अनंत है और जीवों के उत्पन्न चवन आश्रिय आदि और अन्त सहित है ॥ ११३ ॥ २ तेजस्काय की भव स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन अहोरात्रि की ॥ ११४ ॥ तेजस्काया की कायास्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की ॥ ११५ ॥ तेजस्काय का जीव मर पुनः तेजस्काय में उत्पन्न हो जिस का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ ११६ ॥ ४ भाव से तेजस्काय के ५ वर्ण की, २ गंध की, ५ रस की, ८ स्पर्श की और ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं इति तेजस्काय ॥ ११७ ॥ अब वायुकाया का कहते हैं—वायुकाया के दो भेद कहे हैं—सूक्ष्म और बादर इस में

सूत्र

संसारसंसणगा तहा ॥ १२९ ॥ ...

जालगा चेव, चंदणाय तहेव य ॥ १३० ॥ इइ बेइंदिया एए णेगहा एवमायओ ॥ लोगेगदेसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया ॥ १३१ ॥ संतइं पप्प णाइया, अपज्जवसिया त्रिय ॥ ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवासिया त्रिय ॥ १३२ ॥ वासाइं बारसा चेव, उक्कोसेण वियाहिया॥बेइंदिय आउठिई, अंतो मुहुत्तं जहन्निया ॥१३३॥ संखिज्ज काल मुक्कोस, अन्तोमुहुत्तं जहन्नग॥बेइंदिय काय ठिई,त कायतु अमुंचओ॥ १३४॥अणतकाल मुक्कोस, अंतो मुहुत्तं जहन्नग॥बेइंदिय जीवाणं,अंतरं च वियाहिय॥ १३५॥एएसिं वण्णओ

अर्थ

५ सीप ६ शंख, ७ संखोलिये [छोटे शंख] ८ पलोया, ९ गुन १० राता काए मक्षी, ११ जलोक, १२ कोडे १३ चन्दन ॥ १२९ १३० ॥ लेप से इत्यादि बेइन्द्रिय के अनेक भेद हैं, वे सब लोक के एक देश में रहते हैं परंतु सर्व स्थान नहीं हैं ॥ १३१ ॥ काल से चार भेद–१ बेइन्द्रिय की सदैव आस्ति आश्रिय अनादि अनंत है और उत्पन्न चवन आश्रिय आदि अंत सहित है ॥ १३२ ॥ बेइन्द्रिय की भव स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट बारा वर्ष की है ॥ १३३ ॥ बेइन्द्रिय की काया स्थिति-जघन्य अन्त र्मुहूर्त उत्कृष्ट संख्यात काल की इतने काल तक बेइन्द्रिय में ही रहे ॥ १३४ ॥ बेइन्द्रिय मरकर पुनः बेइन्द्रिय में उत्पन्न होने का अन्तर-जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ १३५ ॥ ४ भाव से

असंखकाल मुक्कोसं, अतो मुहुत्त जहन्नग ॥ कायठिई वाऊण, त कायतुं अमुचओ ॥ १२४ ॥ अणतकाल मुक्कोस, अतो मुहुत्त जहन्नग ॥ विजढमि सए काए, वाऊ जीवाण अंतर ॥ १२५ ॥ एएसिं वण्णओ चेव गधओ रस फासओ ॥ सठाण देसओ वावि विहाणाइ सहस्ससो ॥ १२६ ॥ ओराला तसा जे उ चउहा ते पकित्तिया ॥ बेइंदिय तेइंदिय चउरो पंचिंदिया चेव ॥ १२७ ॥ बेइंदियाउ जे जीवा दुविहा ते पकित्तिया ॥ पज्जत्तमपज्जत्ता एवमेए दुहापुणो ॥ १२८ ॥ किमिणो सोमगला चेव, अलसा माइवाहया ॥ वासीमुहा य सिप्पिया,

र्थ

की ॥ १२३ ॥ वायु काया की काया स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की, सदा तक वायु काया पन ही रहे ॥ १२४ ॥ वायु काया का जीव मरकर पुन वायु काया में उत्पन्न होने का अन्तर पड़े तो जघन्य अन्तर मुहूर्त का उत्कृष्ट अनत काल का ॥ १२५ ॥ ५ भाव से वायु काया के ५ वर्ण की, २ गंध की, ५ रस की, ८ स्पर्श की और ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं ॥ इति वायु काया ॥ १२६ ॥ अब औदारिक त्रस के चार भेद कहे हैं—१ बेन्द्रिय २ तेन्द्रिय, ३ चौरिन्द्रिय, और ४ पंचेन्द्रिय ॥ १२७ ॥ बेइन्द्रिय जो जीव हैं उन के दो भेद कहे हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ १२८ ॥ बेइंन्द्रिय के भेद—१ कृमिये, २ सोमंगल मकोसया, ३ भिकोके ४ बेसीमुखे

सूत्र

तेइंदिय आउठिई, अंतोमुहुत्त जहन्निया ॥ १४२ ॥ ...

तेइंदियकायठिई, त कायतु अमुचओ ॥ १४३ ॥ अतोमुहुत्त जहन्नग ॥ तेइदिय जीवाण, अतरं च वियाहिय अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्तं जहन्नग ॥ ॥ १४४ ॥ एएसि वण्णओ चेव, गधओ रस फासओ ॥ सठाण देसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १४५ ॥ चउरिंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया ॥ पज्जत्त मपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ १४६ ॥ अधिया पोत्तिया चेव, मच्छिया मसगा तहा ॥ भमरे कीडपयगे य, ढिंकणे कंकणे तहा ॥ १४७ ॥ कुकुडे सिंगरीडीय, नदावत्ते य विच्छिए ॥ डोले भिंगारी य विरली, अच्छि वेहए ॥ १४८ ॥

अर्थ

तेइन्द्रिय की भव स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट गुनपचास [४९] दिन की ॥ १४२ ॥ तेइन्द्रिय की काया स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट असंख्यात काल की तेइन्द्रिय मर कर पुन तेइन्द्रिय होवे जिस का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ १४४ ॥ भाव से तेइन्द्रिय के ५ वर्ण, २ गध ५ रस, ८ स्पर्श ५ सस्थान की अपेक्षा करके हजारों भेद होते हैं इति तेइन्द्रिय ॥ १४५ ॥ चौरेन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे हैं—यथा—अपर्याप्त और पर्याप्त ॥ १४६ ॥ चौरेन्द्रिय के नाम— १ अधिका, २ पोतिका, ३ मच्छर, ४ डांस, ५ भ्रमर, ६ कीडे ७ पतंग ८ ढिंकण ९ कुकडे, १० सीगरीडी, ११ नंदावृत, १२ बिच्छु, १३ गडोल, १४ भींगारी, १५ वीरली, १६ अक्षिवेधक,

सूत्र

वेव गंधओ रस फासओ॥सठाण दसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो॥१३तेइंदिया उ जे जीवा दुविहा ते पकित्तिया ॥ पज्जत्तमपज्जत्ता एएसिं सुणेह भे ॥ १३७ ॥ कुंथु पिपिलि उद्दसा, उक्कलुद्देहिया तहा ॥ तणहार कट्ठहारा य मालुगापत्तहारगा ॥ १३८ ॥ कप्पासट्ठिमि जायति दुगातउसमिजगा ॥ सदावरीय गुम्मीय बोधव्वा इंदगाइया ॥ १३९ ॥ इंदगोवग माईया, णेगहा एवमायओ ॥ लोगेग देसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया ॥ १४० ॥ संतइं पप्प णाइया अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसिया विय ॥ १४१ ॥ एगुणपन्नहोरत्ता उक्कोसेण वियाहिया ॥

अर्थ

वेन्द्रिय के ५ वर्ण २ गंध, ५ रस ८ स्पर्श ५ संस्थान की अपेक्षा कर हजारों भेद होते हैं इति बेइन्द्रिय ॥ १३६ ॥ तेइन्द्रिय के दो भेद कहे हैं तद्यथा—पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ १३७ ॥ तेइन्द्रिय के नाम–१ कुंथुवा, २ चींटी, ३ उद्दसा, ४ उकाडिया ५ उदइ ६ तृणाहारी ७ काष्ठाहारी, ८ मालुका, ९ पत्राहारी, १० कपासिया, ११ अस्थिबीजा, १२ तुक, १३ समीजग १४ सदावरीये, १५ गुमीप, १६ इन्द्रगाय, १७ इन्द्रगोप, इत्यादि तेइन्द्रिय के अनेक प्रकार हैं २ क्षेत्र से सब तेइन्द्रिय जीव लोक के एक देश विभाग में हैं परंतु सर्व लोक में नहीं हैं ॥ १३८ १४० ॥ अब काल से चार प्रकार–१ तेइन्द्रिय जीवों की सदैव अस्तित्व व्यापिक अनादि अनंत हैं ... आश्रिय सादी सांत हैं ॥ १४१ ॥

मूल

हिय ॥ १५४ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस फासओ ॥ संठाण देसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो ॥ १५५ ॥ पंचिंदिया उ जे जीवा, चउव्विहा ते वियाहिया ॥ नेरइया तिरिक्खा य मणुया देवा य आहिया ॥१५६ ॥ नेरइया सत्तविहा, पुढवीसु सत्तेसु भवे ॥ रयणाभ सक्कराभा, वालुयाभा य आहिया ॥ १५७ ॥ पंकाभा धूमाभा तमा तमतमा तहा ॥ इइ नेरइया एए सत्तहा परिकित्तिया ॥१५८॥ लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे वियाहिया ॥ एत्तो कालविभाग, चउव्विहा ते वियाहिया ॥ १५९ ॥ संतइं पप्प नाईया, अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइं पडुच्च साईया

अर्थ

अंतर-जघन्य अंतर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ १५४ ॥ भाव से चौरेन्द्रिय के ५ वर्ण २ गंध, ५ रस ८ स्पर्श ५ संस्थान आश्रिय हजारों भेद होते हैं इति चौरेन्द्रिय ॥ १५५ ॥ अथ पंचेन्द्रिय के भेद कहते हैं—पंचेन्द्रिय चार प्रकार के कहे हैं १ नारकी, २ तिर्यंच ३ मनुष्य, और ४ देवता ॥ १५६ ॥ नारकी के द्रव्य से ७ भेद—१ रत्न प्रभा २ शर्कर प्रभा ३ वालुप्रभा, ४ पंक प्रभा, ५ धूम्रप्रभा, ६ तमप्रभा, ७ तमतमा प्रभा यह नरक के ७ प्रकार कहे ॥ १५७ १५८ ॥ क्षेत्र से नरक लोक के एक देश में है परंतु सब स्थान में नहीं है ३ काल से ४ भेद कहे हैं ॥ १५९ ॥ नारकी की आस्ति आश्रिय

अचेहिले साहए, अच्छिरोडए त्रिचित्ते चित्तपत्तए ॥ ढहिजलिया जल्कारी य, नीया तंतवगाइया ॥ १४९ ॥ इय चउरिंदिया, एए णेगहा एवमायओ ॥ लोगेग देसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ॥ १५० ॥ संतइं पप्प नाईया, अपज्जवसिया वि य॥ ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ १५१ ॥ छच्चेव मास ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ॥ चउरिंदिय आउठिई अंतोमुहुत्त जहन्निया ॥ १५२ ॥ संखिज्जकाल मुक्कोस अंतो मुहुत्तं जहन्नग ॥ चउरिंदिय कायठिई, त काय तु अमुंचओ ॥ १५३ ॥ अणंतकाल मुक्कोस, अंतो मुहुत्तं जहन्नग ॥ चउरिंदिय जीवाण, अंतर च विया-

१७ मच्छीया,१८ मागध, १९ रोड, २० विचित्रा, २१ ऊन्च जानिक, २२ जलकारी २३ निपा, २४ तबका ॥ १४७-१४९ ॥ इत्यादि बहुत प्रकार के चौरेन्द्रिय हैं २ क्षेत्र से चौरेन्द्रिय लोक के एक देश में हैं परन्तु सब लोक में नहीं है ॥ १५० ॥ काल से ४ भेद—चौरेन्द्रिय की सदैव आश्रित आश्रिय आदि और अन्त दोनों नहीं है और उत्पन्न चवन आश्रिय आदि अन्त दोनों ही है ॥ १५१ ॥ चौरेन्द्रिय की भव स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट ७ महिने की ॥१५२॥ चौरेन्द्रिय की काया स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट संख्यात काल तक ॥ १५३ ॥ चौरेन्द्रिय मर कर पुनः चौरेन्द्रिय होवे उस का

सूत्र

॥ १६७ ॥ जा चेव य आउट्ठिई नेरइयाण वियाहिया ॥ सा तेसिं काय ठिई, जहन्नुक्कोसिया भवे ॥ १६८ ॥ अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहन्नग ॥ विजढमि सए काए नेरइयाण अतर ॥ १६९ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गधओ रस फासओ ॥ संठाण देसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो ॥ १७० ॥ पंचिंदिय तिरिक्खाओ, दुविहा ते वियाहिया ॥ समुच्छिम तिरिक्खाओ, गब्भवक्कंतिया तहा ॥ १७१ ॥ दुविहा ते भवे तिविहा, जलयरा थलयरा तहा ॥ खहयरा य बोधव्वा तेसिं भेदे सुणेहमे

अर्थ

सागर की ॥ १६७ ॥ नारकी की काया स्थिति—जो नारकी की भवस्थिति कही वही सातो नरक की कायास्थिति जानना अर्थात् नारकी का जीव मरकर पुन नरक में उत्पन्न नहीं होता है जिस से नारकी का एक ही भव होता है ॥ १६८ ॥ नरक का जीव मरकर पीछा नरक में उत्पन्न होवे जिस का अन्तर जघन्य अन्तर मुहूर्त अन्तरमुहूर्तायु का तिर्यंच का भव कर पुन नरक में उत्पन होवे उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ १६९ ॥ ५ भाव से-नरक में ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ५ संस्थान की अपेक्षा से नारकी के हजारों भेद होते हैं ॥ १७० ॥ तिर्यंच पंचेन्द्रिय का कहते हैं—पंचेन्द्रिय तिर्यंच के दो प्रकार कहे हैं—समुर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय ॥ १७१ ॥ उक्त दोनों प्रकार के जीव के अलग २ तीन २ भेद कहे हैं तद्यथा १ जलचर पानी में चलने वाले, २ स्थलचर—जमीन पर

सपज्जवसिया वि य ॥ १६० ॥ सागरोवम मेगतु, उक्कोसेण वियाहिया ॥ पढमाए जहन्नेण, दसवास सहस्सिया ॥ १६१ ॥ तिण्णेव सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया ॥ दोच्चाए जहन्नेणं, एग तु सागरोवम ॥१६२॥ सत्तेव सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया ॥ तइयाए जहन्नेण तिन्नेव सागरोवमा ॥ १६३ ॥ दस सागरोवमाऊ उक्कोसेण वियाहिया ॥ चउत्थीए जहन्नेण, सत्तेव सागरोवमा ॥ १६४ ॥ सत्तरस सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया ॥ पंचमाए जहन्नेण, दस चेव सागरोवमा ॥ १६५ ॥ बावीस सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया ॥ छट्ठीए जहन्नेणं, सत्तरस सागरोवमा ॥१६६॥ तेत्तीस सागराऊ उक्कोसेण वियाहिया ॥ सत्तमाए जहन्नेण बावीस सागरोवमा

अनादी अनंत है और उत्पन्न मृत्य आश्रिय आदि सहित अंत सहित है ॥ १६० ॥ नरक की भव स्थिति रत्नप्रभा में जघन्य दश हजार वर्ष की उत्कृष्ट एक सागर की ॥ १६१ ॥ शर्कर प्रभामें जघन्य एक सागर उत्कृष्ट तीन सागर की ॥ १६२ ॥ बालु प्रभा की जघन्य तीन सागर उत्कृष्ट सात सागर की ॥ १६३ ॥ पंक प्रभा की जघन्य सात सागर की उत्कृष्ट दश सागर की ॥ १६४ ॥ धूम्र प्रभा की जघन्य दश सागर की उत्कृष्ट सतर सागर की ॥ १६५ ॥ तमप्रभा की जघन्य सतरा सागर उत्कृष्ट बावीस सागर की ॥ १६६ ॥ तमतमा प्रभा की जघन्य बावीस सागर की और उत्कृष्ट तेंतीस

सूत्र

॥ १७८ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस फासओ ॥ संठाण देसओ यावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १७९ ॥ चउप्पयाय परिसप्पा, दुविहा थलयरा भवे ॥ चउप्पया चउव्विहा, ते मे कित्तयओ सुण ॥ १८० ॥ एगखुरा दुखुरा चेव, गंडीपय सणप्पया ॥ हयमाइ गोणमाइ, गयमाइ सीह माइणो ॥ १८१ ॥ भुओरग परिसप्पाय, परिसप्पा दुविहा भवे ॥ गोहाइ अहिमाई य,एक्केक्काणेगहा भवे ॥१८२॥ लोएग देसे ते सव्वे, नसव्वत्थ वियाहिया ॥ एत्तो काल विभाग, चउव्विहा ते विया

अर्थ

अनंत काल का ॥ १७८ ॥ ४ भाव आश्रिय—यह जलचर के ५ वर्ण से, २ गंध से, ५ रस से, ८ स्पर्श ५ संस्थान से हजारों भेद होते हैं इति जलचर ॥ १७९ ॥ स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय के दो भेद कहते हैं—१ चतुष्पद, और २ परिसर्प इस में चतुष्पद के चार भेद कहे हैं ॥ १८० ॥ तद्यथा—१ एक खुरा घोडा गदहादि, २ दो खुरा-गौ महिषादि, ३ गंडीपद-गोल पांववाले हाथी इत्यादि और ४ सणपदा-पंजे नखवाले-सिंह कुत्ता बिल्ली आदि ॥ १८१ ॥ परिसर्प के दो भेद कहे हैं—१ उरपरीसर्प और २ भुजपरी सर्प सर्पादि पेट रगड कर चलनेवाले उरपरिसर्प के अनेक भेद हैं तैसे ही नकुलादि भुजपर भुजा के जोर से चलनेवाले के भी अनेक भेद हैं ॥ १८२ ॥ सेश से स्थलचर लोक के देश विभाग में हैं परंतु

॥१७२॥ मच्छा य कच्छभा य गाहाय मगरा तहा॥सुसुमारा य बोधव्वा पंचहा जलयरा हिया ॥ १७३ ॥ लोएगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ॥ एत्तो काल विभाग, चउविहा ते वियाहिया ॥ १७४ ॥ संतइ पप्प नाइया अपज्जवसिया वि या ॥ ठिइ पडुच्च साईया सपज्जव सिया वि य ॥ १७५ ॥ एगाओ पुव्वकोडीओ उक्कोसेण वियाहिया ॥ आउठिई जलयराण, अंतोमुहुत्त जहन्निया ॥ १७६ ॥ पुव्वकोडि पुहुत्त तु, उक्कोसेण वियाहिया ॥ कायठिई जलयराण, अंतोमुहुत्त जहन्नग ॥१७७॥ अनंत कालमुक्कोस, अंतोमुहुत्त जहन्नग ॥ विजढमि सए काए, जलयराण अंतर

चलने वाले, और ३ खेचर-आकाश में चलने वाले ॥ १७२ ॥ जलचर के द्रव्य से—१ मच्छ, २ कच्छप ३ ग्राह-शंतीये मगर, ४ मगरमच्छ, और ५ सुसमार यह पांच भेद कहे हैं ॥ १७३ ॥ क्षेत्र से-जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय-लोक के एक देश में हैं परंतु संपूर्ण लोक में नहीं हैं ३ काल से जलचर के ४ भेद ॥ १७४ ॥ जलचर जीव की सदैव आस्ति आश्रिय-अनादि अनंत हैं और उत्पन्न मृत्यु आश्रिय आदि सहित तथा अन्त सहित हैं ॥ १७५ ॥ जलचर की भवस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्व कोटी वर्ष की ॥१७६॥ जलचर की कायास्थिति—जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट-पृथक्त्व (दो से नव तक) पूर्व कोटी वर्ष की ॥१७७॥ जलचर मर कर पीछा जलचर होवे उस का अंतर-जघन्य अंतर्मुहूर्त का उत्कृष्ट

पक्खिय बोधव्वा, पक्खिणो य चउव्विहा ॥ १८९ ॥ लोगेगदेसे ते सव्वे, नसव्वत्थ त्रियाहिया ॥ इत्तो कालविभाग तु तेसिं वुच्छ चउव्विह ॥ १९० ॥ सन्तइ पप्प नाईया, अपज्जवासिया वि य॥ ठिइ पडुच्च साईया सपज्जवसिया वि य॥ १९१ ॥ पलिओवमस्स भागो, असखेज्जइमो भवे ॥ आउ ठिई खहयराण अतोमुहुत्त जहन्निया ॥ १९२ ॥ असखभाग पलियस्स उक्कोसेण उ साहिया ॥ पुव्वकोडी पुहुत्तेण, अतोमुहुत्त जहन्निया ॥ १९३ ॥ ठिई खहयराण, अतरे तेसिमे भवे ॥ काल अणत मुक्कोस,

अर्थ

खेचर के द्रव्य से चार भेद—१ चर्म पक्षी-चमड की पांखोंवाले वटवागुल चामचीडी आदि, २ रोम पक्षी-रोम की पांखोंवाले सोवा कावलादि, ३ समुद्र पक्षी डब्बे की तरह ढकी पांखोंवाले, और ४ वितत पक्षी सदैव चौडी पांख रहे (पीछे के दोनों पक्षी अढाइ द्वीप के बाहिर हैं) ॥ १८९ ॥ क्षेत्र से खेचर लोक के एक देश में हैं परंतु सब स्थान नहीं है इन के काल से चार भेद हैं ॥ १९० ॥ खेचर की सदैव भास्ति की अपेक्षा आदि अंत रहित है उत्पन्न मृत्यु आश्रिय आदि अंत सहित हैं ॥ १९१ ॥ खेचरकी भव स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त का उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग की ॥ १९२ ॥ खेचर की काया स्थिति-जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट एक पल्योपम के असंख्यातवे भाग ऊपर क्रोड पूर्व पृथक्त्व की ॥ १९३ ॥ खेचर मर कर पाछा खेचर होवे जिस का अंतर-जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट अनंत काल का

हिया ॥ १८३ ॥ संतइ पप्प नाइय, अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ १८४ ॥ पलिओवमाइ तिन्निओ, उक्कोसेण वियाहिया ॥ आउठिई थलयराण, अतोमुहुत्त जहन्निया ॥ १८५ ॥ पुव्वकोडि पुहुत्तेण, अतोमुहुत्त जहन्निया ॥ कायठिई थलयराण, अतर तेसिम भवे ॥ १८६ ॥ कालमणत मुक्कोस अतोमुहुत्त जहन्नग ॥ विजढम्मि सए काए, थलयराणतु अतर ॥ १८७ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गधओ रस फासओ ॥ सठाण देसओवावि, विहणाइ सहस्ससो ॥ १८८ ॥ चम्मे उ लोमपक्खी या, तइया समुग्ग पक्खिया ॥ वियय

सर्व स्थान नहीं है २ प्रवाह से इन के चार भेद कहे हैं ॥ १८३ ॥ स्थलचर की संतति आश्रित की अपेक्षा कर अनादि अनंत हैं और उत्पत्ति चवन आश्रिय आदि अंत सहित है ॥ १८४ ॥ स्थलचर की भव स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम की ॥ १८५ ॥ स्थलचर की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन पल्योपम ऊपर पृथक्त्व पूर्व कोटि वर्ष ॥ १८६ ॥ स्थलचर मर कर पीछा स्थलचर होवे जिस का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥१८७॥ वर्ण से स्थलचर के ५ वर्ण २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श ५ संस्थानकी अपेक्षाकर हजारों भेद होते हैं इति स्थलचर ॥१८८॥ खेचरका वर्णन—

॥ १९८ ॥ समुच्छिमाण एसेव, भेओ होई वियाहिया ॥ लोगस्स एगदेसम्मि तेसव्वे वि वियाहिया ॥ १९९ ॥ सतइ पप्प नाईया, अपज्जवसिया वि य ॥ ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ २०० ॥ पलिओवमाउ तिन्निवि, असंखेज्ज इमो

क्षेत्र की मर्याद कर्ता चुल्लहिमवतके पर्वत पूर्व पश्चिम के अन्त में दो दो दाढों दोनों पर्वतकी चार दाढों एकेक दाढों पर सात२ द्वीप आठों दाढों के ७×८=२८ अवर द्वीप हुवे ॥ १९८ ॥ समूर्च्छिम मनुष्य जो मनुष्यों के लघुनीत बडी नीत आदि चौदे स्थान में उत्पन्न होवे उन का एक ही भेद है २ क्षेत्र से मनुष्यों लोक के एक देश में रहे हैं परन्तु सब लोक में नहीं हैं ॥ १९९ ॥ काल से मनुष्यों के ४ प्रकार— १ मनुष्यों की सदैव आस्ति है इस अपेक्षा आदि अन्त रहित हैं और उत्पत्ति मृत्यु आश्रिय आदि अन्त सहित है ॥ २०० ॥ मनुष्य की भव स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन पल्योपम तथा पल्य का असंख्यातवा भाग अर्थात् कर्मभूमी मनुष्य के पांच भरत पांच एरावत में-उत्सर्पिणी के पहिला आरा बैठते तीन पल्योपम की उतरते दो पल्योपमकी, दूसरा आरा बैठते दो पल्योपम उतरते एक पल्योपम, तीसरा आरा बैठते एक पल्योपम उतरते क्रोड पूर्व चौथा आरा बैठते क्रोड पूर्व उतरते सो वर्ष कुछ अधिक पांचवा आरा बैठते सो वर्ष कुछ अधिक उतरते वीस वर्ष,छठा आरा बैठते२० वर्ष उतरते सोला वर्ष इस ही प्रकार अवसर्पिणीके छही आरेमें चढती स्थिति जानना,पांचों महा विदेह क्षेत्रमें जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट क्रोड

सूत्र

अतोमुहुत्त जहन्नगं ॥ ११४ ॥ एएसिं वण्णओ चेव, गधओ रस फासओ, संठाण देसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ ११५ ॥ मणुया दुविह भेया, ते मे कित्तय ओ सुण ॥ समुच्छिमा य मणुया, गब्भवक्कतिया तहा ॥ ११६ ॥ गब्भवक्कतिया जे उ, तिविहा ते वियाहिया ॥ कम्म अकम्म भूमाय, अतरद्दीवया तहा ॥ ११७ ॥ पन्नरस तीसविहा, भेया अट्ठवीसइ ॥ सखा उ कमसो तेसिं इइ एसा वियाहिया

अर्थ

॥ ११४ ॥ ४ भाव से खेचर के ५ वर्ण, २ गंध ५ रस, ८ स्पर्श, ५ संस्थान की अपेक्षा हजारों भेद होते हैं इति खेचर ॥ ११५ ॥ मनुष्य दो प्रकार के कहे हैं—१ समूर्च्छिम मनुष्य और २ गर्भज मनुष्य ॥ ११६ ॥ इस में गर्भ से उत्पन्न होनेवाले मनुष्य तीन तरह के कहे हैं—यथा—१ कर्मभूमी जो असी मषी कृषि तीनों प्रकार से अपनी उपजीविका करे, २ अकर्मभूमी उक्त तीनों कर्म नहीं करे और कल्प वृक्षों से जिन की इच्छा पूरें ३ अंतर द्वीप जो समुद्र में डोंगरीयों पर युगल मनुष्य रहते हैं ॥ ११७ ॥ इस में कर्मभूमी के पन्दरा भेद—एक भरत एक एरावत एक महा विदेह यह तीन क्षेत्र जम्बूद्वीप में दो भरत, दो एरावत दो महा विदेह यह ६ क्षेत्र धातकी खण्ड में और यही ६ क्षेत्र पुष्करार्ध द्वीप में यों ५ भरत, ५ एरावत और ५ महा विदेह एसे १५ कर्मभूमी के क्षेत्र जानना एक हेमवय एक एरणवय, एक हरीवास, एक रम्यकवास, एक देवकुरु और एक उत्तर कुरु यह ६ क्षेत्र जम्बूद्वीप में दो दो धातकी खंडमें १२ क्षेत्र और पुष्करार्ध द्वीप में भी १२ क्षेत्र यों सब तीस अकर्मभूमी के क्षेत्र जानना जम्बूद्वीप में भरत

सूत्र

पञ्चविहा जोइसिया, दुविहा वेमाणिया तहा ॥ २०६ ॥ असुरा नागसुवण्णा, विज्जू अग्गी वियाहिया ॥ दीवोदहि दिसा वाया थणिया भवणवासिणो ॥२०७॥ पिसाय भूय जक्खा य रक्खसा किंनरा किंपुरिसा ॥ महोरगा य गन्धव्वा, अट्ठविहा वाणमन्तरा ॥ २०८ ॥ चन्दा सूरा य नक्खत्ता, गहा तारागणा तहा ॥ ठिया विचारिणो चेव पञ्चहा जोइसालया ॥ २०९ ॥ वेमाणियाउ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया ॥ कप्पोवगा य बोधव्वा, कप्पाईया तहेव य ॥ २१० ॥ कप्पोवगा बारसहा, सोहम्मीसाणगा तहा ॥ सणंकुमार माहिंद, बम्भलोगा य लन्तगा ॥२११॥

अर्थ

॥ २०५ ॥ इन में भुवनपति के १० भेद, वाणव्यन्तर के ८ भेद, ज्योतिषी के ५ भेद, और वैमानिक के दो भेद ॥ २०६ ॥ १ असुरकुमार २ नाग कुमार, ३ सुवर्ण कुमार ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्नि कुमार ६ द्वीप कुमार ७ उदधी कुमार, ८ दिशा कुमार, ९ वायु कुमार, और १० स्तनित कुमार यह भुवनपति के दश भेद जानना ॥ २०७ ॥ १ पिशाच २ भूत ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किंनर, ६ किंपुरुष ७ महोरग और ८ गन्धर्व यह वाणव्यन्तर के ८ भेद ॥ २०८ ॥ १ चन्द्रमा २ सूर्य ३ ग्रह ४ नक्षत्र और ५ तारा यह पांच ज्योतिषी के भेद जानना ॥ २०९ ॥ १ कल्पोत्पन्न और २ कल्पातीत यह वैमानिक के दो भेद कहे ॥ २१० ॥ इन में कल्पोत्पन्न के १२ भेद—१ सौधर्म देवलोक, २ ईशान देवलोक, ३ सनत्कुमार

सूत्र

मवे ॥ आउ ठिई मणुयाण, अंतोमुहुत्त जहन्निया ॥२०१॥ पलिओवमाइ तिन्नि उ उक्कोसेण उ साहिया ॥ पुव्वकोडि पुहुत्तेण, अंतोमुहुत्त जहन्निया ॥ २०२ कायठिई मणुयाण, अंतर तेसिम भवे ॥ कालमणंत मुक्कोस, अंतोमुहुत्त जहन्नग ॥ २०३॥ एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रस फासओ ॥ संठाण देसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो ॥ २०४ ॥ देवा चउव्विहा वुत्ता, ते मे कित्तयओ सुण ॥ भोमिज्ज वाणमंतर, जोइस वेमाणिया तहा॥२०५॥दसहा उ भवणवासी, अट्ठहा वणचारिणो॥

अर्थ

पूर्व की अकर्म भूमी के तीस क्षेत्र में पांच हेमवय पांच एरणवय में एक पल्योपमकी, पांच हरीवास पांच रम्यकवासमें दो पल्योपमकी, पांच देवकुरु पांच उत्तरकुरुमें तीन पल्योपमकी छप्पन अंतर द्वीपमें पल्योपम के असंख्यातवे भाग की और सब संमूर्छिम मनुष्य की जघन्य उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त की ॥ २०१ ॥ मनुष्यों की काया स्थिति-जघन्य अन्तमुहूर्त की उत्कृष्ट तीन पल्योपम पृथक्त्व क्रोडी पूर्व अधिक की क्यों कि लगोलग सात भव कर्म भूमि मनुष्य के कर एक भव अकर्मभूमि मनुष्यका फिर नियमासे देव होवे ॥ २०२ ॥ यह काया स्थिति कही अब मनुष्य मर कर पीछा मनुष्य होवे जिस के मध्य का अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त का उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ २०३ ॥ ४ भाव से मनुष्य के ५ वर्ण २ गंध ५ रस ८ स्पर्श ५ संस्थान आश्रिय हजारों भेद होते हैं इति मनुष्याधिकार ॥ २०४ ॥ अब देवता के भेद कहते हैं—द्रव्य से देवता के चार भेद-१ भुवनपति, २ वाणव्यन्तर ३ ज्योतिषी और ४ वैमानिक

सूत्र

जिया ॥ २१६ ॥ सव्वट्ठसिद्धगा चेव, पञ्चहाणुत्तरा सुरा ॥ इय वेमाणिया एए पेगहा एव मायओ ॥ २१७ ॥ लोगस्स एग देसम्मि, ते सव्वे वि वियाहिया ॥ इत्तो काल विभाग तु, तेसिं वुच्छ चउव्विहं ॥ २१८ ॥ संतइ पप्प नाईया, अपज्जवसिया विय ॥ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ २१९ ॥ साहिय सागर एक, उक्कोसेण ठिई भवे ॥ भोमेज्जाण जहन्नेण दसवास सहस्सिया ॥ २२० ॥ पलिओवम दो ऊणा, उक्कोसेण वियाहिया ॥ असुरेंद वज्जेत्ताण, जहन्ना दससहस्सगा

अर्थ

सर्वार्थ सिद्ध यह पांच अनुत्तर विमानवासी देव जानना इन प्रतरादि विभाग कर वैमानिक देव के अनेक भेद होते हैं ॥ २१४ २१७ ॥ क्षेत्र से देवताओं लोक के एक देश विभाग में हैं, परंतु संपूर्ण लोक में नहीं हैं और इन के काल से चार भेद होते हैं ॥ २१८ ॥ देवताओं की प्रवेशकाल आस्ति होने से अनादि अनंत हैं और प्रत्येक देवताओं के उत्पन्न चवन आश्रिय सादि सान्त हैं ॥२१९॥ भुवनपति में असुरकुमार देवता की जघन्य दश हजार वर्ष की उत्कृष्ट एक सागर से कुछ अधिक स्थिति है ॥ २२० ॥ असुर कुमार छोडकर बाकी के नव जाति के भुवनपति देवता की जघन्य दश हजार वर्ष की उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम की स्थिति है [भुवनपति के असुरकुमार जाति के देवता के दो इन्द्र हैं १ दक्षिण दिशा के चमर इन्द्र और २ उत्तर दिशा के बल इन्द्र इस में चमर इन्द्र की उत्कृष्ट एक सागर की, चमर इन्द्र की देवी की साढे तीन पल्य की दक्षिण के नाग कुमारादि नव जाति के देव की

सूत्र

महासुक्का सहस्सारा, आणया पाणया तहा ॥ आरणा अच्चुया चेव, इइ कप्पोवगा सुरा ॥ २१२ ॥ कप्पाईया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया ॥ गेविज्जाणुत्तरा चेव, गेविज्जा नवविहा तहिं ॥ २१३ ॥ हेट्ठिमा हेट्ठिमा चेव, हेट्ठिमा मज्झिमा तहा ॥ हेट्ठिमा उवरिमा चेव, मज्झिमा हेट्ठिमा तहा ॥ २१४ ॥ मज्झिमा मज्झिमा चेव, मज्झिमा उवरिमा तहा॥ उवरिमा हेट्ठिमा चेव, उवरिमा मज्झिमा तहा ॥२१५॥उवरिमा उवरिमा चेव इयगेविज्जगा सुरा॥विजया वेजयंता य, जयंता अपरा

अर्थ

देवलोक, ४ माहेन्द्र देवलोक, ५ ब्रह्म देवलोक ६ लांतक देवलोक, ७ महाशुक्र देवलोक, ८ सहस्रार देवलोक ९ आणत देवलोक, १० प्राणत देवलोक, ११ आरण देवलोक, और १२ अच्युत देवलोक, इन १२ स्थान में जो देवों उत्पन्न होवे हैं वे कल्पोत्पन्न जानना ॥ २११ २१२ ॥ और जो कल्पातीत देवता हैं उन के दो भेद कहे १ ग्रैवेयकवासी, और २ अनुत्तर विमानवासी. इस में ग्रैवेयकवासी देव नव प्रकार के कहे हैं ॥ २१३ ॥ १ नीचे की नीचली (भद्र) २ नीचे की बीचकी, (सुभद्र) ३ नीचे की ऊपरकी, (सुजात) ४ मध्य की नीचली (सुमानस) ५ मध्य की बीचकी (सुदर्शन), ६ मध्य की ऊपर की (प्रियदर्शन) ७ ऊपर की नीचली (अमोघ), ८ ऊपर की मध्यकी (सुप्रतिभद्र) और ९ ऊपर की ऊपरकी (यशोधर) ये नव ग्रैवेयक स्थान के देवता जानना १ विजय, २ वैजयंत, ३ जयंत, ४ अपराजित और

मूल

ठिई भवे ॥ अच्चुयंमि जहन्नेणं, सागरा इक्कवीसई ॥ २३५ ॥ तेवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ॥ पढमम्मि जहन्नेणं, बावीस सागरोवमा ॥ २३६ ॥ चउवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ॥ बीइयम्मि जहन्नेण, तेवीस सागरोवमा ॥ २३७ ॥ पणवीस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे ॥ तइयम्मि जहन्नेण, चउवीस सागरोवमा ॥ २३८ ॥ छव्वीस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे ॥ चउत्थम्मि जहन्नेण, सागरा पणुवीसई ॥ २३९ ॥ सागरा सत्तवीस तु उक्कोसेण ठिई भवे ॥ पंचमम्मि जहन्नेण, सागराउ छव्वीसई ॥ २४० ॥ सागरा अट्ठावीस तु उक्कोसेण ठिई भवे ॥ छट्ठम्मि जहन्नेण, सागरा सत्तवीसई ॥ २४१ ॥ सागरा अउणतीस तु उक्कोसेण ठिई भवे ॥ सत्तमम्मि जहन्नेण सागरा

अर्थ

देवलोक में जघन्य इक्कीस सागरोपम उत्कृष्ट बावीस सागरोपम यह बारे कल्पोत्पन्न देवों की स्थिति हुई ॥ २३५ ॥ अब ग्रीवेक के देवों स्थिति कहते हैं—प्रथम ग्रीवेक की जघन्य बावीस सागर की उत्कृष्ट तवीस सागरोपम की ॥ २३६ ॥ दूसरी ग्रीवेक की जघन्य तेवीस सागरोपम की उत्कृष्ट चोवीस सागरोपम की ॥ २३७ ॥ तीसरी ग्रीवेक की जघन्य चोवीस सागरोपम की उत्कृष्ट पचीस सागरोपम की ॥ २३८ ॥ चौथा ग्रीवेक की जघन्य पचीस सागरोपम की उत्कृष्ट छब्बीस सागरोपम की ॥ २३९ ॥ पांचवी ग्रीवेक की जघन्य छब्बीस सागरोपम की उत्कृष्ट सतावीस सागरोपम की ॥ २४० ॥ छट्ठी ग्रीवेक की जघन्य सतावीस सागरोपम उत्कृष्ट अठावीस सागरोपम ॥ २४१ ॥ सातवी ग्रीवेक की जघन्य अठावीस

जहन्नेण, सत्त ऊ सागरोवमा ॥ २२८ ॥ चउदस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे ॥ लसगम्मि जहन्नेणं, दसउ सागरोवमा ॥ २२९ ॥ सत्तरस सागराई, उक्कोसेण ठिइ भवे ॥ महासुक्के जहन्नेण चउदस सागरोवमा ॥ २३० ॥ अट्ठारस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे ॥ सहस्सारम्मि जहन्नेण, सत्तरस सागरोवमा ॥ २३१ ॥ सागरा अउणवीस तु उक्कोसेण ठिई भवे ॥ आणयम्मि जहन्नेण, अट्ठारस सागरोवमा ॥ २३२ ॥ वीसन्तु सागराइ उक्कोसेण ठिई भवे ॥ पाणयम्मि जहन्नेण, सागरा अउणवीसई ॥ २३३ ॥ सागरा इक्कवीसं तु उक्कोसेण ठिई भवे ॥ आरणम्मि जहन्नेण, वीसई सागरोवमा ॥ २३४ ॥ बावीसा सागराइ, उक्कोसेण

की उत्कृष्ट दश सागरोपम की ॥ २२८ ॥ छठे लांतक देवलोक में जघन्य दश सागरोपम की उत्कृष्ट चौदा सागरोपम, की ॥ २२९ ॥ सातवे महा शुक्र देवलोक में जघन्य चउदा सागरोपम की उत्कृष्ट सतरा सागरोपम की ॥ २३० ॥ आठवे सहस्रार देवलोक में जघन्य सतरा सागरोपम की उत्कृष्ट अठारा सागरोपम की ॥ २३१ ॥ नववे आणत देवलोक में जघन्य अठारा सागरोपम उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम ॥ २३२ ॥ दशवे प्राणत देवलोक में जघन्य उन्नीस सागरोपम उत्कृष्ट बीस सागरोपम ॥२३३॥ इग्यारवे आरन देवलोक में जघन्य बीस सागरोपम उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम ॥ २३४ ॥ बारवे अच्युत

गेविज्जाण तू अतर ॥ २४९ ॥ सखेचन्न, सागरओवमें घास पुहुत्त जहन्निया ॥ अणुत्त

राणय देवाण अतर तु वियाहिया ॥ २५० ॥ एएसि वण्णओ चेव गधओ रस फासओ

॥ सठाण देसओ वावि विहाणाइ सहस्ससो ॥ २५१ ॥ ससारत्थाय सिद्धा इय जीवा वियाहिया ॥ रूविणो चेव रूवी य, अजीवा दुविहा विय ॥ २५२ ॥ इय जीव, मजीवे सोच्चा सद्द

अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का [तिर्यंच का मनुष्य उत्पन्न होकर] और उत्कृष्ट अनन्तकाल का वनस्पति आश्रिय ॥ २४८ ॥ नवमे आणत देवलोक से लगाकर नवमें ग्रैवेयक के देव का अन्तर पड़ता जघन्य वर्ष पृथक्त्व का अर्थात् दो वर्ष से नव वर्ष की उम्मर वाला ही मनुष्य आठवें देवलोक के ऊपर उत्पन्न होसकता है कमी उम्मर वाला नहीं होसकता है और उत्कृष्ट अनंत काल का ॥ २४९ ॥ चारो अनुत्तर विमान के देवता का अन्तर पड़े तो जघन्य पृथक्त्व वर्ष का उत्कृष्ट संख्यात सागरोपम का क्योंकि अनुत्तर विमान के देवता नरक तिर्यंच में उत्पन्न नहीं होते फक्त मनुष्य जन्म के संख्याते भव कर मोक्ष जाते हैं और सर्वार्थ सिद्ध विमान वाले का अन्तर पड़ता ही नहीं है क्योंकि वे एक भवावतारी होते हैं अर्थात् सर्वार्थ सिद्ध विमान से चवकर मनुष्य होकर मोक्ष ही जाते हैं ॥ २५० ॥ ८ भाव से देवता के ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस ८ स्पर्श ६ संस्थान आश्रिय हजारों भेद होते हैं इति देवताधिकार ॥ २५१ ॥ अहो शिष्य ! श्री तीर्थंकर भगवंत ने जो जीव तथा रूपी अरूपी अजीव का और सिद्ध के

सूत्र

हिकुण य ॥ सव्व नयाण मणुमए, रम्मेज सजमे मुणी ॥ २५३ ॥ तओ यहूणि वासाई सामण्ण मणुपालिय ॥ इमेण कम्मजोगेण, अप्पाण संलिहेमुणी ॥ २५४ ॥ बारसेव उ वासाइं, संलेहु कोसियाभवे ॥ सवच्छर मज्झिमिया, छम्मासाय जहान्निया ॥ २५५ ॥ पढमे वासचउक्कंमि विगई-निज्जूहण करे ॥ बिइए वास चउक्कमि,

अर्थ

जीव का तथा संसारी जीव का स्वरूप विस्तार पूर्वक उक्त प्रकार कहा है ॥ २५२ ॥ अहो शिष्य ! गुरवादि के समीप उक्त कहे जीवादि का स्वरूप श्रवण कर सर्व (साता) नय प्रमाणादि युक्ती कर यथार्थ श्रद्धा न कर अर्थात् ज्ञानी बनकर फिर तप संयम में अपनी आत्माको रमन करावे॥२५३॥ तब फिर तप संयम में आत्मा का रमन करता हुआ बहुत वर्ष पर्यंत संयम का पालन कर आगे कहूंगा उस उपाय कर द्रव्य से शरीर को और भाव से कषाय को दुर्बल बनावे ॥ २५४ ॥ शरीर और कषाय को दुर्बल बनावे उसे संलेपना कहते हैं यह तीन प्रकार से करे जघन्य ६ महिने की, मध्यम एक वर्ष की, और उत्कृष्ट १२ वर्ष की ॥ २५५ ॥ अब बारा वर्ष की संलेपना किस प्रकार करे वह कहते हैं-प्रथम चार वर्ष पर्यंत तो दूध दही घृत तेल मिठाई इन पांचों विगय का भोगवने का त्याग करे फिर चार वर्ष पर्यंत चौथ भक्त छठ भक्तादि विविध प्रकार का तप करे ॥ २५६ ॥ फिर दो वर्ष पर्यंत एकांतर उपवास करे और पारणे में आयम्बिल करे (यह १० वर्ष हुवे) फिर छ महिने पर्यंत बहुत अट्ठमादि किसी भी

विविस तु तव घरे ॥ २५६ ॥ एगतरमायाम, कट्टु संवच्छरे दुवे ॥ तओ संवच्छरद्धं तु, नाइ विगिट्ठं तवं चरे ॥ २५७ ॥ तओ संवच्छरद्धं तु, विगिट्ठं तु तवं चरे ॥ परिमियं चेव आयाम, तमि संवच्छरे करे ॥ २५८ ॥ कोडी सहिय मायाम, कट्टु

प्रकार का तप नहीं करे फिर छ महिने पर्यंत अष्टम अट्टमादि दुष्कर तप का आचरण करे पारने में आयम्बिलादि तप करे ॥२५७-२५८॥ फिर बारवे वर्ष में कोडी सहित तप करे अर्थात् मास खमन आधा मास खमन आदि तप करे और पारने में आयम्बिल करे फिर आहार का त्याग कर अनशन तप करे [जो आयुष्य अन्त नजीक न दिखता मास आधा मास खमनादि तप करता रहे] यह बारा वर्ष का तपना तप कहा ॥ २५९ ॥ अब जो साधु होकर संयम व संयम से भ्रष्ट होते हैं उन की गति का कथन करते हैं—१ जो साधु हंसी मस्करी करता है वह कंदर्पी (गायन नाटक करनेवाला) देवता होता है जो साधु मंत्रादि प्रयुंजता है वह अभियोगी (नोकर) देवता होता है जो साधु आचार्य उपाध्यायादि धर्मगुरु की असातना करे वह किल्विषी [नीच जाति का] देवता होवे ४ जो साधु अज्ञान कष्ट करे तथा बहुत काल तक रोष द्वेष भाव रखे वह असुर कुमार [परमाधर्मी] जाति का देवता होवे इन चार कर्मों को बहुत काल तक करनेवाले व मृत्यु के समय यह भाव प्राप्त होनेवाले साधु संयम के विराधिक होकर उक्त देवता की दुर्गति में देवतापने उत्पन्न होते हैं ॥ २६० ॥ मिथ्यात्व से नुकसान—जो जीव मिथ्यात्व दर्शन [कुमत] में रक्त होवे हैं, करणी कर उस का नियाना [फल की वांछा]

कण्हले समोगाढा ॥ इय जे मरनि जीवा तसिं पुण दुल्लहा बोही ॥२६२॥ जिणवयणे अणुरत्त जिणवयण करेंति भावेण ॥ अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्तससारी ॥ -६३ ॥ बालमरणाणि बहुसा अकाममरणाणी चेव य बहुणि॥मरिहिंनि ते वराया,

पार गाथा कर कहते हैं—अन्य को तथा स्वयं को हास्य उत्पन्न हो ऐसे वचन का तथा विषय विकार उत्पन्न हो ऐसे वचन का बोलने वाला, ऐसी ही कथा का कहने वाला भोक्चेष्ट करे अर्थात् भांड की तरह लोकों को हसाने वाला, इन्द्र जालादि कौतुक कर लोगों को विस्मयका उत्पादक, इस प्रकार के स्वभाव वाले साधु मर कर इन्द्र का कंदर्पी देवता होता है वह वहां देवलोक में इन्द्र सभा में अनेक प्रकार की भांड चेष्टा कर देवताओं को हसाता है ॥ २६२ ॥ व्यन्तरादि के मशोप चार करे वशीकरणादि के योग तथा दे करें पुत्रादि के रक्षणार्थ या प्राप्ति अर्थ भूत कर्म करे अर्थात् रास प्रमुख की पोटली बांध को पन्थे मनोज्ञ षट रस मय आहार की प्राप्ति का अहंकार करे, शिष्य मृगादि ऋद्धि का अभिमान करे शारीरिक स्थानकादि की साता का गर्व करे इन तीनों का गर्व करने वाला, ऐसा जो साधु होता है वह मर कर आभियोगी (नौकर) देवता होता है वह इन्द्र की आज्ञा का पालन करता ॥ जिस मोगोप भोगमोगय नहीं सकता है इस के लिये सदैव असता रहता है ॥ २६३ ॥ ज्ञानी-पंडितो-बहु सूत्री का केवल ज्ञानी का या केवली के वचनों का, धर्माचार्य-गुरु का, साधु साध्वी श्रावक श्राविका तपस्वी आदि साधु सतीयों का इत्यादि महा पुरुषों का अवर्णवाद का

अर्थ

जिणवयणं ज नयाणति ॥२६४॥ बहुआगम विन्नाणा, समाहि उप्पायगाय गुणगाहा॥ एएण कारणेण अरिहा आलोयणं सोउ ॥ २६५ ॥ कंदप्पकुक्कुयाइ, तह सीलसहा वह सगनिगहाइ ॥ विम्हवेंतो वि पर कदप्प भावण कुणइ ॥ २६६ ॥ मताजोग काउं, भूईकम्म च जे पउजति ॥ साय–रस–इड्ढिहेउ, अभिओग भावण कुणइ ॥ २६७ ॥ नाणस्स केवलीण, धम्मा यरियस्स सघ साहुणं ॥ माइ अवण्णवाई, किव्विसिय भावण कुणइ ॥ २६८ ॥ अणुबद्धरोस पसरो, तहय निमित्तमि होइ पडिसेवी ॥ एएहिं कारणेहिं आसुरियं भावण कुणइ ॥ २६९ ॥ सत्थ गहण विस भक्खणं च, जलण च जलपवेसोय ॥ अणायार भडसेवी, जम्मण मरणाणि बधति

बोलने वाला–निन्दा का करने वाला, किल्विषी नामक देवता होता है, वह सब देवता में नीच जाति वाला देवलोक से दूर निवास करने वाला अज्ञानी मिथ्या दृष्टी होता है॥२६८॥जिस किसी से वैरभाव हुआ हो उस के साथ पुनः क्षमापना नहीं करता हुआ दीर्घकाल पर्यन्त रोष धारण कर रखे, क्लेश की वृद्धि करे, ज्योतिष निमित्त का आश्रय करे, वे जीवों मरकर असुर कुमार जाति के पर माधामी [यम] देवता में उत्पन्न होते हैं ॥ २७० ॥ जो शस्त्र प्रयोग कर, विषादि का भक्षण कर, अग्नि में जलकर, पानी में डूबकर, अनाचार का सेवन करके, मृत्यु करते हैं वे बहुत जन्म मृत्यु की वृद्धि कर

सूत्र

चरंति, एतावता बाहिर चउदसे पच्चत्थिमिल्ले अद्धमंडले समत्ते भवति ॥ १४ ॥ एवं खलु चंदेण मासेण चंदे परस्स चउण्णाइं दुवे सत्तसट्ठी भागाइं चंदे अप्पणो चिण्ण पडिचरति तेरस सत्तसट्ठी भागाइं जाणि चंद, अप्पणो चेव परस्सचिण्ण पडिचरइ बतालीस

अर्थ

स भरत क्षेत्र चवदहवे मंडलपर १४ भाग ६७ या १८ चुर्णिये भाग ३१ या चले तब में चंद्र मास संपूर्ण होवे ॥ १४ ॥ यों एक चंद्र मास में चंद्रमा एक नक्षत्र व दो अर्ध मंडल और तीसरे अर्ध मंडल के ८ भाग ६७ व १८ भाग ३१ ये इतना चलता है पर कौन से २ क्षेत्र में संपूर्ण करे ! चंद्र नक्षत्र मास संपूर्ण होने व चंद्र नीकलते चवदहवे अर्ध मंडल के २६ भाग ६७ या जाकर नक्षत्र संपूर्ण करे क्यों कि एक युग में नक्षत्र मास ६७ हैं और १७६८ अर्धमंडल चंद्र के हैं १७६८ को ६७ से भाग देते २६ अर्ध मंडल आवे शेष २६ भाग ६७ ये रहे एक नक्षत्र मास में २६ अर्धमंडल है, और २७ व अर्ध मंडल में २६ भाग ६७ या चंद्र चलकर नक्षत्र मास संपूर्ण करे इस से एक अयन के १४ अर्ध मंडल निकालते दूसरी अयन के १२ अर्ध मंडल २६ भाग ६७ या बचे परंतु यहां १४ व अर्ध मंडल पर २६ भाग ६७ या कहा है उस का क्या कारन ! दूसरी अयन का दूसरा अर्ध मंडल से प्रारंभ होता है इस से तेरवे अर्ध मंडल में एक मिलाने से १४ या अर्ध मंडल के २६ भाग ६७ व ये एक नक्षत्र मास संपूर्ण हुवा, तत्पश्चात् १४२ भाग ६७ व १८ भाग ३१ या चलकर चंद्र मास पूर्ण होवे १०८ भाग ६७ या परक्षेत्र से व अपना क्षेत्र में चंद्र चाल चलता है क्योंकि ईशान कून से नीकलता हुवा चंद्र १४ वे अर्ध मंडल पर २४। भाग ६७ या अग्निकून में

भागाति, अद्धासत्तसट्ठीभागाइ सत्तसट्ठिभागेण एक्तीसहाछत्ता, अट्ठारस भागाति, जाति, भागाति, अद्धासत्तसट्ठीभागाइ सत्तसट्ठिभागेण एकतीसहाछत्ता अट्ठारस भागाति जाति चंदे अप्पणोय परस्सचिण्णं पडिचरति, अवराति खलु दुवे तेरस भागाति जाइ चदे, केणति असामाणाति सयमेव पविट्ठिचा चारं चरति॥ इच्चेसा चदमासोयगमणनिमुट्ठि अणुवाट्ठिय

करे सूर्य का क्षेत्र चले और १६॥। भाग ६७ या अपना क्षेत्र चलकर चवदहवा अर्थ मंडल संपूर्ण करे तत्पश्चात् पन्नरवे अर्धमंडल पर चलते १३॥। भाग अपना क्षेत्र और ११॥ भाग ६७ या वायव्य कून में सूप के क्षेत्र में चले, १६॥। भाग ६१ या ईशान कून में चंद्र के क्षेत्र मांहि चले और पन्नरहवा अर्थ मंडल ईशान कून म सपूर्ण करे वैसहि नैऋत्य कून मे नीकलता हुवा चद्र चवदहवे अर्ध मंडल पर २७। भाग ६७ या वायव्य कून में सूर्य क्षेत्र चलकर व १६॥। भाग ६७ या ईशान कून में अपना क्षेत्र चलकर ईशान कूनमें चवदहवा अर्थ मंडल सपूर्ण करे, तत्पश्चात् पन्नरह वे अर्थ मंडल पर चलते १६॥। भाग ६७ या ईशान कून में अपना क्षेत्र चले और ११॥ भाग ६७ या आग्निकून में पर क्षेत्र चले और १६॥। भाग पर क्षत्र चलकर पन्नरहवा अर्थ मंडल सपूर्ण करे ११ भाग ६७ या चंद्र अपना १४ वा अर्थ मंडल में प्रवेश कर पर क्षेत्र में चल यों नैऋत्य कून से निकल कर चद्र नैऋत्य कून में ११ भाग ६७ या पर क्षेत्र चले और ईशान कून में निकलकर ईशान कून में १३ भाग ६७ या पर क्षेत्र चले बियालीस भाग का अर्थ एकतीस भाग ६७ या और १८ भाग ३१ या चलवे चद्र अपने १४ वे अर्ध मंडल पर जाते पर क्षेत्र पर चलकर चद्र मास पूर्ण करे ईशान कून से निकलता चद्र ३॥। भाग ६७ या ईशान कून के

सूत्र

मठाण साठिति विउब्वणागिड्डिपत्तमुवि चंदेदेव २ आहितति वदेज्जा ॥ इति तेरसम पाहुड सम्मत्त ॥ १३ ॥ * * * * * *

अर्थ

चंद्र का पर सम चलकर १३। भाग ३७ या १८ भाग ६१ य भाग कुन मे सय का पर क्षम चलकर चंद्र मास पूर्ण करे और नक्षत्र कुन मे निकलता घर ३॥। भाग ३७ या नैऋत्य कुन में चंद्र का पर सम ष १७अ भाग ३७ या १८ भाग ६१ या वायव्य कन के सूय का पर क्षम चलकर घर मास पूर्ण करे दूसरी वक्त २१ भाग ३७ प जाता हुवा घर १४ व मंडल इस प्रकार स्वयमेव प्रवेश कर चाल चलकर मास मास सपूर्ण ५१ इस प्रकार चंद्र मास में गमन की वृद्धि अनवस्थितपना से जानना चंद्र के विमान व मंडल के संस्थान कैसे व चंद्र के देवता की स्थिति कैसी है ? चंद्र का देव विकुर्वणा ग्रहण करता हुवा समर्थवा है यों तेरहवा पाहुडा संपूर्ण हुवा ॥ १३ ॥ ० •

॥ चतुर्दश प्राभृतम् ॥

ता कहंते दोसिणा पक्खाओ बाहु आहितेति वदेज्जा? ता दोसिणा पक्खेण दोसिणा बहु आहितेति वदेज्जा ? ता कहते दोसिणा पक्खे दोसिणा बहु आहितेति वदेज्जा ता अधकार पक्खाओ दोसिणा पक्खे दोसिणा बहु आहितेति वदेज्जा ॥ १ ॥ ता कहंते ता अंधकार पक्खाओ दोसिणा पक्खे दोसिणा बहु आहितेति वदेज्जा ॥ ता अधकार पक्खाओण दोसिणा पक्खे अयमाणे चदे चत्तारिवयाले मुहुत्त सएछेतालीसच बावट्ठी गो मुहुत्तस्स जाय चदे विरज्जति तपढमाए पढम भाग जाव पण्णरसमु पण्णरसम भाग॥

चउदसवा पाहुडा कहते हैं अहो भगवन् ! दूसरा शुक्ल पक्ष कैसे कहा है ? अहो गौतम ! शुक्ल पक्ष उद्योत बहुत कहा है अहो भगवन् ! दूसरे शुक्ल पक्ष में उद्योत बहुत किस प्रकार कहा ? अहो गौतम कृष्ण पक्ष पीछे शुक्ल पक्ष आनेसे अर्थात कृष्ण पक्ष की अपेक्षा से उद्योत विशेष कहा ॥ १ ॥ अहो भगवन् ! अधकार पक्ष से उद्योत पक्ष के मुहूर्त कैसे कहे ? अर्थात् प्रतिदिन उद्योत की वृद्धि कैसे कही ? अहो गौतम ! अधकार पक्ष से जब उद्योत पक्ष आता है तब चद्र ४४२ $\frac{४६}{६२}$ मुहूर्त पर्यंत राहु के विमान से विरक्त होवे इस में पहिले दिन एक भाग यावत् पन्नरहवे दिन पन्नरह भाग राहु के विमान से विरक्त होकर वृद्धि होवे इस तरह कृष्ण पक्ष से शुक्ल पक्ष के मुहूर्त कहे और इसी स भाति

एत्थ णं अंधकार पक्खाओ दोसिणा पक्खे मुहुत्तेण दोसिणा बहु आहिताति वदेज्जा॥ २॥ ता केवतियाणं दोसिणा पक्खस्स परित्ता दोसिणा आहिताति वदेज्जा? ता परित्ता असंखेज्ज भागा ॥ ३॥ ता कहते अंधकारावहं आहिताति वदेज्जा? ता अंधकार पक्खे अंधकार बहु आहिताति वदेज्जा ? ता कहं अंधकार पक्खे अंधकार बहु आहितेति वदेज्जा ? ता दोसिणा पक्खातोणं अंधकार पक्खे अंधकार बहु आहिताति वदेज्जा ॥ ४ ॥ ता कहते दोसिणा पक्खाओ मुहुत्तेण अंधकार अंधकारबहु आहिताति वदेज्जा? ता दोसिणा पक्खा तो णं अंधकार पक्खे अयमाणे चंदे चत्तारि बयालीसे मुहुत्त सए छयालीसंच बावट्ठी

दिन उद्योत की वृद्धि करी॥ २ ॥ अहो भगवन् ! शुक्ल पक्ष के कितने समय कहे हैं ? अहो गौतम ! शुक्ल पक्ष के असंख्यात समय कहे हैं तथापि शुक्ल पक्ष के असंख्यात भाग कहे हैं ॥ ३ ॥ अहो भगवन् ! अंधकार बहुत कैसे कहा ? अहो गौतम ! अंधकार पक्ष में अंधकार बहुत कहा अहो भगवन् ! अंधकार पक्ष में अंधकार बहुत कैसे कहा ? अहो गौतम ! उद्योत पक्ष के अंतर में अंधकार पक्ष आता है इस से अंधकार पक्ष में अंधकार बहुत कहा है ॥ ४ ॥ अहो भगवन् ! उद्योत पक्ष से अंधकार पक्ष का अंधकार कितने मुहूर्त का कहा ? अहो गौतम ! उद्योत पक्ष से अंधकार पक्ष ४४२ $\frac{46}{62}$ मुहूर्त का अंध

भागा मुहुत्तस्स जाति चदे रज्जति तं पढमाते पढम भाग जाव पण्णरससु पण्णरसम भागं॥ एव खलु दोसिणा पक्खातो अधकार पक्खे अधकार बहु आहितति वदेज्जा ॥ ५ ॥ ता केवतियाण अधकार पक्खे परित्ता अधकारे आहितति वदेज्जा ? ता परित्ता असखेज्जा ॥ इति चाद्दसम पाहुड सम्मत्त ॥ १४ ॥ * * *

कार करता है अर्थात् इतने मुहूर्त पर्यंत चंद्र राहु के विमान से आवरण वाला होवे प्रथम तिथि में प्रथम भाग यावत् पन्नरहवी तिथि में पन्नरहवा भाग ॥ ५ ॥ अहो भगवन् ! अंधकार पक्ष के कितने समय कहे हैं ? अहो गौतम ! अंधकार पक्ष के असख्यात समय कहे हैं अर्थात् अंधकार पक्ष के असख्यात भाग होते हैं यह चवदहवा पाहुडा संपूर्ण हुवा ॥ १४ ॥ ° °

एवं खलु अधकर पक्खाओ दोसिणा पक्खे मुहुत्तणं दोसिणा बहु आहितेति वदेज्जा॥ २॥ ता केवतियाण दोसिणा पक्खवम्मपरित्ता दोसणा आहितेति वदेज्जा? ता परित्ता असंखज्ज भागा ॥ ३॥ ता कहते अधकारबहु आहिततेति वदेज्जा? ता अधकार पक्खे अधकार बहु आहितति वदेज्जा? ता कह अधकार पक्खे अधकार बहु आहितेति वदेज्जा? ता दोसिणा पक्खातोण अधकार पक्खे अधकार बहु आहितति वदेज्जा, ॥ ४ ॥ ता कहते दोसिणा पक्खाओण मुहुत्तेण अधकार अधकारबहु आहितेति वदेज्जा? ता दोसिणा पक्खातोण अधकार पक्खे अयमाणे चरे चत्तारि बयालीस मुहुत्त सए छयालीसए बावट्ठी

अर्थ

दिन उद्योत की वृद्धि कही ॥ २ ॥ अहो भगवन् ! शुक्ल पक्ष के कितने समय कहे हैं ? अहो गौतम ! शुक्ल पक्ष के असंख्यात समय कहे हैं तथापि शुक्ल पक्ष के असंख्यात भाग कहे हैं ॥ ३ ॥ अहो भगवन् ! अंधकार बहुत कैसे कहा ? अहो गौतम ! अंधकार पक्ष में अंधकार बहुत कहा अहो भगवन् ! अंधकार पक्ष में अंधकार बहुत कैसे कहा ? अहो गौतम ! उद्योत पक्ष के अंतर में अंधकार पक्ष आता है इस से अंधकार पक्ष में अंधकार बहुत कहा है ॥ ४ ॥ अहो भगवन् ! उद्योत पक्ष से अंधकार पक्ष का अंधकार कितने मुहूर्त का कहा ? अहो गौतम ! उद्योत पक्ष से अंधकार पक्ष ४४२ $\frac{४६}{६२}$ मुहूर्त का अंध

मडल उवसकमित्ता चार चरागि, ता तस्स मंडलस्स परिक्खेवस्स सत्तरस्स अट्ठसट्ठा भागसयाति गच्छति मडल सतसहस्सेण अट्ठाणउतिएय सएहि छेत्ता ॥२॥ ता एग मेगेण मुहुत्तेण सूरे केवतियार्ति भागसयाइ गच्छति ? तीं अ ज मडल उवसकमित्ता चार ५४९०० होवे यह ५४९०० को १७६८ स गुनते ०७०६१२०० भाग होवे इस भाग को १०९८०० से भाग देने स ८८४ मंडल होवे' इस से दो चद्र मिलकर एक युग में ८८४ मडल चले इस के अर्ध मंडल १७६८ होवे हैं १८३० दिन में १७६८ अर्ध मंडल होवे तो दो अर्ध मडल में कितने दिन होवे ? १८३० को दुगुना करने से ३६६० होवे इस का १७६८ का भाग देने दो आवे शेष १२४ रहे इस के मुहूर्त करन को ३० से गुणना जिस से ३७२० होवे इस को १७६८ का भाग देने से दो मुहूर्त आवे शेष १८४ रहे इस के २२१ के भाग करने को २२१ से गुणना जिस से ४०६६४ हुए इस के १७६८ का भाग देन से २३ भाग २२१ ये हुवे इस से दो अर्ध मडल चलन में चद्र को दो दिन दो मुहूर्त व २३ भाग २२१ य लगे ॥ २ ॥ अहो भगवन् ! एक २ भाग में सूर्य कितने सो भाग चलता है ? अहो गौतम ! जिस २ मंडल पर सूर्य चलता है उस २ मंडल की परिधि को १०९८०० भाग करे उस में से १८३० भाग एक मुहूर्त में चलता है इस तरह सूर्य एक युग में कितने मडल करता है ? एक युग में १८३० अहो रात्रि है इस के मुहूर्त करने को का १८३० को ३० गुना करने से ५४९०० होवे इस के १८३० भाग से गुनने से १००४६७००० भाग होवे इस को मडल के १०९८०० से भाग

॥ पञ्चदश प्राभृतम् ॥

ता कहते सिग्घगइ वत्थु आहितेति वदेज्जा ? ता एएसिण चंदिमसूरियगहगणणक्खत्त ताराख्वाण चंदेहिंतो सूरासिग्घगाति सूरेहिंतो गहासिग्घगाति गहेहिंतो णक्खत्ता सिग्घगाति, णक्खत्तेहिंतो तारासिग्घगती ॥ सव्व अप्पगतीण चंदो, सव्व सिग्घगतीण तारा ॥ १ ॥ ता एगमेगेण मुहुत्तेण चंदे केवइयाइ भाग सयाइ गच्छति ? ता ज

चउदहवे पाहुडे में अंधकार व उद्योत का कथन किया अब पन्नरहवे पाहुड में चन्द्र आदि नक्षत्र की शीघ्रता व मंदता कहते हैं अहो भगवन् ! जो पांच प्रकार के ज्योतिषी हैं, उन में से शीघ्रगति किस की है ? अहो गौतम ! चंद्र सूर्य, ग्रह, नक्षत्र व तारे इन पांच प्रकार के ज्योतिषियों में चंद्र से सूर्य की शीघ्रगति है, सूर्य से ग्रह की शीघ्रगति है, ग्रह से नक्षत्र की शीघ्रगति है, और नक्षत्र से ताराओं की शीघ्रगति है सब से मंद गति चंद्र की व सब से शीघ्रगति ताराओं की है ॥ २ ॥ अहो भगवन् ! एक २ मुहूर्त में चंद्र कितना भाग चलता है ? अहो गौतम ! चंद्र जिस २ मंडल पर चलता है उस २ मंडल का १०९८०० भाग करना जिस में के १७६८ भाग एक मुहूर्त में चलता है एक युग में चंद्र कितना मंडल करे ? युग की १८३० अहोरात्रि हैं इस के मुहूर्त करने को ३० से गुना करने से

मूल

मडल उवसकमित्ता चार चरामि, ता तस्स मडलस्स परिक्खेवस्स सत्तरस्स अट्ठसट्ठी भागसयाति गच्छति मडल सतसहस्सेण अट्ठाणउतिएय सएहि छेत्ता ॥२॥ ता एग मेगेण मुहुत्तेण सूरे केवतियाति भागसयाइ गच्छति? तीं जज मंडल उवसकमित्ता चार

अर्थ

५४९०० होवे यह ५४९०० को १७६८ से गुनते ९७०६१२०० भाग होवे इस भाग को १०९८०० से भाग देने से ८८४ मंडल होवे इस से दो चंद्र मिलकर एक युग में ८८४ मंडल चले इस के अर्ध मंडल १७६८ होते हैं १८३० दिन में १७६८ अर्ध मंडल होवे तो एक अर्ध मंडल में कितने दिन होवे? १८३० को दुगुना करने से ३६६० होवे, इस का १७६८ का भाग देने दो आये शेष १२४ रहे इस के मुहूर्त करने को ३० से गुणना जिस से ३७२० होवे इस को १७६८ का भाग देने से दो मुहूर्त आये शेष १८४ रहे इस के २२१ के भाग करने को २२१ से गुणना जिस से ४०६६४ हुए इस के १७६८ का भाग देने से २३ भाग २२१ ये हुवे इस से दो अर्ध मंडल चलने में चंद्र को दो दिन दो मुहूर्त व २३ भाग २२१ य लगे ॥ २ ॥ अहो भगवन्! एक २ भाग में सूर्य कितने सो भाग चलता है? अहो गौतम! जिस २ मंडल पर सूर्य चलता है उस २ मंडल की परिधि को १०९८०० भाग करे उस में से १८३० भाग एक मुहूर्त में चलता है इस तरह सूर्य एक युग में कितने मंडल करता है? एक युग में १८३० अहो रात्रि है इस के मुहूर्त करने को का १८३० को ३० गुना करने से ५४९०० होवे इस के १८३० भाग से गुनने से १००४६७००० भाग होवे इस को मंडल के १०९८०० से भाग

सूत्र

घरति ता तस्स मडलस्स परिक्खवस्स अट्ठारसतीसे भाग सते गच्छाति मडल सयसहस्सण अट्ठाणउति पयसएहिं छेत्ता ॥ २ ॥ ता एगमगेण मुहुत्तण णक्खत्तेण कयतियाति भागा सयाति गच्छाति ता जजमडल उवसकमित्ता चार

अर्थ

इसे से ९१५ मडल दो सूर्य एक युग म करते है इस तरह अर्थ मडल १८३० होवे, एक युग में १८३० अर्थ मडल होवे, तो दो अर्थ मंडल कितने दिन में होवे ? १८३० को दुगुन करने से ३६६० होवे इस का १८३० का भाग देने से दो दिन होवे शेष कुच्छ रहे नहीं, इस से दो दिन में दो अर्थ मंडल सूर्य चलता है ॥ १ ॥ अहो भगवन् ! एक २ मुहूर्त में नक्षत्र कितने सो भाग चलता है ? अहो गौतम ! नक्षत्र जिन २ मडल पर चलते हैं उन २ मंडल के १०९८०० भाग में से १८३५ भाग एक मुहूर्त में चलते हैं इस तरह चलने से एक युग में कितने मंडल चले ? एक युग में १८३० अहोरात्रि है इस के मुहूर्त करने का ३० से गुनना जिस से ५४९०० होवे इस मुहूर्त का १८३५ के भाग से गुनते १००७४१५०० भाग होवे इस के मडल करने के लिये १०९८०० से भाग देना जिस से ९१७॥ मंडल होवे शेष कुच्छ रहे नहीं इतना ही नक्षत्र चले इस के अर्थ मंडल करने का उक्त सख्या को दुगुना करना जिस से १८३५ अर्थ मंडल होवे उक्त १८३५ अर्थ मंडल १८३० दिन में होवे अब दो अर्थ मडल कितने दिन में चले सो कहते हैं १८३० को दुगुने करने से ३६६० हुवे, इस को १८३५ का भाग देने से एक दिन व शेष

	एक मुहूर्त में कितने भाग चला १०९८००	एक युग में कितने मंडल संपूर्ण कर	एक युग में अर्ध मंडल	एक संपूर्ण मंडल अथवा दो अर्ध मंडल में कितना समय होवे दिन	मु०	मु के भाग
चंद्र	१७६८	८८४	१७६८	२	२	$\frac{२३}{२२१}$
सूर्य	१८३०	९१५	१८३०	२	०	०
नक्षत्र	१८३५	९१७॥	१८३५	१	२९	$\frac{३०७}{३६७}$

चरति तस्स मंडलस्स परिक्खेवस्स अट्ठारस पणतीसं भागसते गच्छति मंडल सतसहस्सेण अट्ठा जाव छेत्ता ॥ ४ ॥ ता जयाण चंदे गति समावण्णगं, सूरे गति समावण्णए भवइ सेण गइ विसेसेति मायाए केवइया विसेसेति ? ता बावट्ठी भागे विसेसेइ । ता जयाण चंदे गइ समावण्णा णक्खत्ते गइ

१८७५ रहा इस के मुहूर्त करने को ३० से गुनेने से ५४७५० होवे इस को १८३५ का भाग देने से २९ मुहूर्त व शेप १५३५ रहे, इस के ३६७ वें भाग करने को ३६७ से गुनेने से ५६३३४५ होवे, इस को १८३५ का भाग देने से ३०७ भाग हुवे, अब कुच्छ नहीं रहा इस तरह दो अर्ध मंडल नक्षत्र एक दिन २९ मुहूर्त व ३०७ भाग६७या में पूर्ण कर इसका चक्र पूर्ण होवे ॥४॥ अहो भगवन्! अब चंद्र मुहूर्त के परिमाणमें

सूत्र

चरति ता तस्स मंडलस्स परिक्खेवस्स अट्ठारसतीसे भागे सते गच्छति मंडल सयसहस्सेण अट्ठाणउति एयसएहिं छेत्ता ॥ २ ॥ ता एगमेगेण मुहुत्तेण णक्खत्तेण कतिभागाति भागा सयाति गच्छति ता जजंमंडल उवसंकमित्ता चार

अर्थ

हने से ९१५ मंडल जो सूर्य एक युग म करते है इस तरह अर्ध मंडल १८३० होवे, एक युग में १८३० अर्ध मंडल होवे, तो दो अर्ध मंडल कितने दिन में होवे ? १८३० को दुगुन करने से ३६६० होवे इस का १८३० का भाग देने से दो दिन होवे शेष कुच्छ रहे नहीं, इस से दो दिन में दो अर्ध मंडल सूर्य चलता है ॥ २ ॥ अहो भगवन् ! एक २ मुहूर्त में नक्षत्र कितने सो भाग चलता है ? अहो गौतम ! नक्षत्र जिन २ मंडल पर चलते हैं उन २ मंडल के १०९८०० भाग में से १८३५ भाग एक मुहूर्त में चलते हैं इस तरह चलने से एक युग में कितने मंडल चले ? एक युग में १८३० अहोरात्रि है इस के मुहूर्त करने का ३० से गुनना जिस से ५४९०० होवे इस मुहूर्त को १८३५ के भाग से गुनते १००७४१५०० भाग होवे इस के मंडल करने के लिये १०९८०० से भाग देना जिस से ९१७॥ मंडल होवे शेष कुच्छ रहे नहीं इतना ही नक्षत्र चले इस के अर्ध मंडल करने का उक्त संख्या को दुगुना करना जिस से १८३५ अर्ध मंडल होवे उक्त १८३५ अर्ध मंडल १८३० दिन में होवे अब दो अर्ध मंडल कितने दिन में चले सो कहते हैं १८३० को दुगुने करने से ३६६० हुवे, इस को १८३५ का भाग देने से एक दिन व शेष

सत्तावीस च सत्तसट्ठी भागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं, जोग जोएति जेण अणुपरि हाति २ त्ता विप्पजहाति २ त्ता विगतजोगियावि भवइ जयाण चंदे गति समावण्णे भवइ सवणे णक्खत्ते गइ समावण्णे भवइ पुरत्थिमाते तहेव जहा अभिइस्स णवरं तीस मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोग जोएति जाव विगतजोगियावि भवति एव एतेण अभिलावेण णेयव्व पण्णरस मुहुत्ताइं तीसति मुहुत्ताइ पणयालीसति मुहुत्ताइ भाणियव्वाति जाव उत्तरासाढा विगतजोगियावि भवति ॥ ६ ॥ ता

अर्थ

१७ ये पर्यंत चंद्र साथ रहता है इतना काल पर्यंत उस की साथ विचरे, तत्पश्चात् योग छोडकर विगत योगी होवे जब चंद्र गति समापन्न होवे और श्रवण नक्षत्र गति समापन्न होवे तब अभिजित नक्षत्र जैसे पूर्व दिशा में से चंद्र साथ तीस मुहूर्त पर्यंत योग करता है इतना काल पर्यंत उस की साथ विचरे तत्पश्चात् विगत योगी होवे इस अभिप्राय से सब जानना इन में कितनेक पनरह मुहूर्त पर्यंत योग करते हैं, जिन के नाम—शतभिषा, भरणि, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा तीस मुहूर्त पर्यंत योग करनेवाले नक्षत्रों के नाम-श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवति, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशर, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढा पैंतालीस मुहूर्त पर्यंत योग करनेवाले नक्षत्र के नाम—१ उत्तराभाद्रपद २ रोहिणी ३ पुनर्वसु ४ उत्तराफाल्गुनी ५ विशाखा और ६ उत्तराषाढा यों प्रथम अभिजि से उत्तराषाढा पर्यंत कहना यावत् विगत योगी है ॥ ६ ॥ अब सूर्य गति समापन्न होवे और अब

समावण्णे भवइ सेण गइमायाए केवइय विसेसेइ ता सत्तसट्ठी भाग विसेसेइ ।ता जयाण सूरे गइ समावण्णे भवइ णक्खत्ते गइ समावण्णे भवइ सेण गति समायाए केवइय विसेसेइ ? ता पञ्च भागा विसेसेइ ॥ ५ ॥ ता जयाण चंदे गति समावण्णग अभिइ णक्खत्ते गइ समयासग पुरत्थिमताए भागाए समासेति ता णव मुहुत्ते

गति संपूर्ण करे तब सूर्य भी मुहूर्त के चरमांत में गति संपूर्ण करे इन दोनों में सूर्य की गति में मर्यादा से क्या विशेषपना है अर्थात् चंद्र से सूर्य एक मुहूर्त में कितना अधिक चलता है ? अहो गौतम ! मुहूर्त के चरम समय में चंद्र से सूर्य एक मंडल के १०९८०० भाग में से ६२ भाग भाग चले इतना सूर्य का विषय अधिक कहा अहो भगवन् ! चंद्र एक मुहूर्त में गति संपूर्ण करे, वैसे ही नक्षत्र एक मुहूर्त में गति संपूर्ण करे तो इस में चंद्र से नक्षत्र कितना भाग भाग चले ? अहो गौतम ! एक मुहूर्त के चरम समय में चंद्र से नक्षत्र एक मंडल के १०९८०० भाग में के ६७ भाग अधिक भाग चले इतना विषय नक्षत्र का जानना अहो भगवन् ! जैसे सूर्य एक मुहूर्त में गति संपूर्ण करता है वैसे ही नक्षत्र एक मुहूर्त में गति संपूर्ण करता है इस तरह गति संपूर्ण करने में क्या विशेषता है ? अर्थात् कितना अधिक नक्षत्र चलता है अहो गौतम ! एक मंडल के १०९८०० भाग में के पांच भाग सूर्य से नक्षत्र अधिक चले ॥ ५ ॥ चंद्र गति समापन्न होवे और अभिजित नक्षत्र भी गति समापन्न होवे तो पूर्व दिशा के भाग से योग ग्रहण कर, नव मुहूर्त २७ भाग

सत्तावीस च सत्तट्ठी भागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं, जोग जोएति जेण अणुपरि हाति २ त्ता विप्पजहति २ सा विगतजोगियावि भवइ जयाण चंदे गति समावण्णे भवइ सवणे णक्खत्ते गइ समावण्णे भवइ पुरत्थिमाते तहेव जहा अभिइस्स णवर तीस मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोएति जाव विगतजोगियावि भवति एव एतेण अभिलावेण णेयव्व पण्णरस मुहुत्ताइ तीसाति मुहुत्ताइ पणयालीसाति मुहुत्ताइ भाणियव्वाति जाव उत्तरासाढा विगतजोगियावि भवति ॥ ६ ॥ ता

७ ये पर्यंत चद्र साथ रहता है इतना काल पर्यंत उस की साथ विचरे, तत्पश्चात् योग छोडकर विगत योगी होवे जब चद्र गति समापन्न होवे और श्रवण नक्षत्र गति समापन्न होवे तब अभिजित नक्षत्र जैसे पूर्व दिशा में से चंद्र साथ तीस मुहूर्त पर्यंत योग करता है इतना काल पर्यंत उस की साथ विचरे तत्पश्चात् विगत योगी होवे इस अभिप्राय से सब जानना इन में कितनेक पन्नरह मुहूर्त पर्यंत योग करते हैं, जिन के नाम—शतभिषा, भरणि, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा तीस मुहूर्त पर्यंत योग करनेवाले नक्षत्रों के नाम-श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवति, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशर, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढा पैंतालीस मुहूर्त पर्यंत योग करनेवाले नक्षत्र के नाम—१ उत्तराभाद्रपद २ रोहिणी ३ पुनर्वसु ४ उत्तराफाल्गुनी ५ विशाखा और ६ उत्तराषाढा यों प्रथम अभिजित से उत्तराषाढा पर्यंत कहना यावत् विगत योगी हैं ॥ ६ ॥ अब सूर्य गति समापन्न होवे और नक्ष

समावण्णे भवइ सेण गइमायाए केवइय विसेसइ ता सत्तसट्ठी भाग विसेसइ ॥ ता जयाण सूरे गइ समावण्ण भवइ णक्खत्ते गइ समावण्णे भवइ सेण गति समायाए केवइय विसेसइ ? ता पच भागा विसेसइ ॥ ५ ॥ ता जयाण चद गति समावण्णग अभिइ णक्खत्ते गइ समघाजग पुरत्थिमताए भागाए समासेति ता णव मुहुत्ते

गति सपूर्ण करे तब सूर्य भी मुहूर्त के चम्मार में गति सपूर्ण करे इन दोनों में सूर्य की गति में मर्यादा से क्या विशेषपना है अर्थात् चद्र स सूर्य एक मुहूर्त में कितना अधिक चलता है ? अहो गौतम ! मुहूर्त के चरम समय में चद्र स सूर्य एक मडल क १०९८०० भाग में स ६२ भाग भाग चले इतना सूर्य का विषय अधिक कहा अहो भगवन् ! चंद्र एक मुहूर्त में गति संपूर्ण करे, वैसे ही नक्षत्र एक मुहूर्त में गति सपूर्ण करे तो इस में चद्र से नक्षत्र कितना भाग भाग चले ? अहो गौतम ! एक मुहूर्त के चरम समय में चंद्र से नक्षत्र एक मंडल के १०९८०० भाग में के ६७ भाग अधिक भाग चले इतना विषय नक्षत्र का जानना अहो भगवन् ! जैसे सूर्य एक मुहूर्त में गति संपूर्ण करता है वैसे ही नक्षत्र एक मुहूर्त में गति संपूर्ण करता है इस तरह गति संपूर्ण करने में क्या विशेषता है ? अर्थात् कितना अधिक नक्षत्र चलता है अहो गौतम ! एक मडल के १०९८०० भाग में के पांच भाग सूर्य से नक्षत्र अधिक चले ॥ ५ ॥ चद्र गति समापन्न होवे और अभिजित नक्षत्र भी गति समापन्न होवे तो पूर्व दिशा के भाग से योग ग्रहण कर, नव मुहूर्त २७ भाग

मण्डलाइं तेरस सत्तसट्ठी भाग॥ति मण्डलस्स चरति॥८॥ता णक्खत्तेण मासेण सूरे कइ मण्ड
लाइं चरति?ता तेरस मण्डलाइ चउयत्तारि सत्तसट्ठि भाग ण्डलस्स चरति ॥९॥ता णक्खत्ते
णं मासेण णक्खत्ते कति मण्डलाइं चरति? ता तेरस मण्डलाति अद्धसुद्धतालीसच सत्तसट्ठी

निकालने का है इस से ८८४ को एक से गुनने से ८८४ होवे इस ६७ से भाग देने से १३ मंडल व १३ भाग आवे इस से एक नक्षत्र मास में चंद्र १३ मंडल व १३ भाग ६७ ये चलता है ॥ ८ ॥ अहो भगवन् ! एक नक्षत्र मास में सूर्य कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! एक नक्षत्र मास में सूर्य १३ मंडल व ४४ भाग ६७ य चलता है, क्यों कि एक युग में नक्षत्र मास ६७ है और सूर्य ९१५ मंडल चलता है, इस से जितने मास का मंडल निकालना होवे उतने मास से ९१५ को गुना करके ६७ से भाग देना जो आवे उतने मंडल सूर्य चलता है सो जानना यहां प्रथम मास के मंडल निकालने के हैं इस से ९१५ को एक से गुनते ९१५ हुवे उसे ६७ से भाग देने से १३ मंडल और शेष ४४ रहे इस से एक नक्षत्र मास में सूर्य १३ मंडल व ४४ भाग ६७ या चलता है ॥ ९ ॥ अहो भगवन् ? एक नक्षत्र मास में नक्षत्र कितने मंडल चले हैं ? अहो गौतम ! एक नक्षत्र मास में नक्षत्र १३ मंडल व ४६॥ भाग ६७ या चले क्यों कि एक युग में नक्षत्र मास ६७ हैं और नक्षत्र ९१७॥ मंडल चलते हैं इस से जितने मास का निकालना होवे उतने मास से ९१७॥ को गुना करके ६७ से भाग देना जो आवे उतने मंडल जानना यहां प्रथम मास का निकालना है इस से ९१७॥ को एक से गुना करने से ९१७॥ होवे

जशाण मर गइ ममावण्ण अभिण्णकखत्ते गतिमगावण्ण पुरत्थिमाए भागाए समासेति ...र ता चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सर्द्धि जोगं जोएति जाव विगत जोगियावि भवति ॥ ७ ता णक्खत्तेण मासेण चंदे कतिमंडलाति चराति, ता तेरस

माभिजित नक्षत्र ग न सम पश्च रात्र मघ पुन र्शिखा के भाग मे सूर्य साथ योग कर इस तरह ४ अहोरात्रि और ६ मुहूर्त ... सब भाग योग कर इसी तरह छ नक्षत्र छ अहोरात्रि २१ मुहूर्त सूर्य साथ योग करते हैं जिन के नाम—अभिजित भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा स्वाति और ज्येष्ठा पन्नरह नक्षत्र तरह अहोरात्रि बारह महूर्त सूर्य साथ योग करते हैं जिन के नाम—श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवति, अश्विनी, कृत्तिका मृगशिर, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढा और छ नक्षत्र २० अहोरात्रि तीन मुहूर्त मत योग करते हैं, जिन के नाम—उत्तराभाद्रपद रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराषाढा उक्त सब नक्षत्र अपने २ समय योग्य सूर्य साथ विचर कर विगत योगी होते हैं ॥ ७ ॥ अहो भगवन् ! एक नक्षत्र मास में चंद्र कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! तेरह मंडल व एक मंडल के ६७ भाग में से १३ भाग एक नक्षत्र मास में चंद्र चलता है एक युग में नक्षत्र मास ६७ हैं और चंद्र मंडल ८८४ हैं जितने मास निकालना होवे उतने मास से ८८४ को गुना करना और ६७ से भाग देना जो आवे सो उतने मंडल जानना यहां प्रथम मास का मंडल

मडलाइ तेरस सत्तसट्ठी भागा।ति मडलस्स चराति॥८॥ता णक्खत्तेण मासेण सूरे कइ मड लाइ चरति?ता तेरस मडलाइ चउचत्तारि सत्तसट्ठि भागे 'डलस्स चरति ॥९॥ता णक्खत्तेण मासेण णक्खत्ते कति मडलाइ चरति? ता तेरस मडलाति अद्धसुडतालीसंच सत्तसट्ठी

निकालने का है इस से ८८४ को एक से गुनने से ८८४ होवे इस ६७ से भाग देन से १३ मंडल व १३ भाग आये इस से एक नक्षत्र मास में चद्र १३ मडल व १३ भाग ६७ ये चलता है ॥ ८ ॥ अहो भगवन्! एक नक्षत्र मास में सूर्य कितने मडल चलता है? अहो गौतम! एक नक्षत्र मास में सूर्य १३ मंडल व ४४ भाग ६७ य चलता है, क्यों कि एक युग में नक्षत्र मास ६७ है और सूर्य ९१५ मंडल चलता है, इस से जितने मास का मडल निकालना होवे उतने मास से ९१५ को गुना करके ६७ से भाग देना जो आवे उतने मडल सूर्य चलता है सो जानना यहां प्रथम मास के मडल निकालने के हैं इस से ९१५ को एक से गुनते ९१५ हुवे उसे ६७ से भाग देने से १३ मडल और शेष ४४ रहे इस से एक नक्षत्र मास में सूर्य १३ मंडल व ४४ भाग ६७ या चलता है ॥ ९ ॥ अहो भगवन्! एक नक्षत्र मास में नक्षत्र कितने मडल चले हैं? अहो गौतम! एक नक्षत्र मास में नक्षत्र १३ मंडल व ४५॥ भाग ६७ या चले क्यों कि एक युग में नक्षत्र मास ६७ हैं और नक्षत्र ९१७॥ मडल चलते हैं इस से जितने मास का निकालना होवे उतने मास से ९१७॥ को गुना करके ६७ से भाग देना जो आवे उतने मडल मानना यहां प्रथम मास का निकालना है इस से ९१७॥ को एक से गुना करने से ९१७॥ होवे

मूत्र

जयाण सूर गइ समावण्ण अभिइणक्खत्ते गतिसमावण्णे पुरत्थिमाए भागाए समासाति ता चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सर्द्धि जोग जोएति जाव णिगत जोगियाति भवति ॥ ७ ता णक्खत्तेण मासेण चदे कतिमडलाति चरति, ता तेरस

अर्थ

अभिजित नक्षत्र गति सम पन्न होवे तब पूर्व दिशा के भाग से सूर्य साथ योग कर इस तरह ४ अहोरात्रि और ६ मुहूर्त तक सूर्य साथ योग करे इसी तरह छ नक्षत्र छ अहोरात्रि २१ मुहूर्त सूर्य साथ योग करते हैं जिन के नाम—शतभिषा भरणी, आर्द्रा अश्लेषा स्वाति और ज्येष्ठा पन्नरह नक्षत्र तेरह अहोरात्रि बारह मुहूर्त सूर्य साथ योग करते हैं जिन के नाम—श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवति, अश्विनी, कृत्तिका मृगसर, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढा और छ नक्षत्र २० अहोरात्रि तीन मुहूर्त तक योग करते हैं, जिन के नाम—उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराषाढा उक्त सब नक्षत्र अपने २ समय योग्य सूर्य साथ विचर कर विमत योगी होते हैं ॥ ७ ॥ अहो भगवन् ! एक नक्षत्र मास में चंद्र कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! तेरह मंडल व एक मण्डल के ६७ भाग में से १३ भाग एक नक्षत्र मास में चंद्र चलता है एक युग में नक्षत्र मास ६७ हैं और चन्द्र मंडल ८८४ हैं जितने मास निकालना होवे उतने मास से ८८४ को गुना करना और ६७ से भाग देना जो आवे सो उतने मंडल जानना यहां प्रथम मास का मंडल

नक्षत्र मास में चलने की मंडलसंख्या

नक्षत्र	चंद्र मंडल		सूर्य मंडल		नक्षत्र मंडल		नक्षत्र	चंद्र मंडल		सूर्य मंडल		नक्षत्र मंडल	
मास	मंडल	मा ६७	मंडल	मा ६७	मंडल	मा ६७	मास	मंडल	मा ६७	मंडल	मा ६७	मंडल	मा ६७
१	११	११	११	४४	११	४१॥	१४	१८४	४८	१९१	११	१९१	४८
२	२६	२६	२७	२१	२७	२६	१५	१९७	६१	२०४	५७	२०५	२७॥
३	३९	३०	४०	६५	४१	५॥	१६	२११	७	२१८	३४	२१९	७
४	५२	५२	५४	४२	५४	५२	१७	२२४	२०	२३२	११	२३२	५३॥
५	६५	६५	६८	१९	६८	३१॥	१८	२३७	३३	२४५	५५	२४६	३३
६	७२	११	८१	६३	८२	११	१९	२५०	४६	२५९	३२	२६०	१२॥
७	९२	२४	९५	४०	९५	५७॥	२०	२६३	५९	२७३	९	२७३	५९
८	१०५	३७	१०९	१७	१००	३७	२१	२७७	५	२८६	५३	२८७	३८॥
९	११८	५०	१२२	६१	१२३	१६॥	२२	२९०	१८	३००	३०	३०१	१८
१०	१३१	६३	१३६	३८	१३६	६३	२३	३०३	३१	३१४	७	३१४	६४॥
११	१४५	९	१५०	१५	१५०	४२॥	२४	३१६	४४	३२७	५१	३२८	४४
१२	१५८	२२	१६३	५९	१६४	२२	२५	३२९	५७	३४१	२८	३४२	२३॥
१३	१७१	३५	१७७	३६	१७८	१॥	२६	३४३	३	३५५	५	३५६	३

भागे मंडलस्स चरति ॥ १० ॥ ता चंदेण मासेणं चंदे कति मंडलाति चरति ? ता चउद्दस चउभागाति मंडलाति एक चउव्वीसते भाग मंडलस्स चरति ॥ ता चंदेण मासेण सूरे कति पुच्छा ? ता पण्णरस चउभागूणाति मंडलाति एग चउवीस सते

पस ६७ से भाग देने से १३ मंडल व ४६॥ भाग शेष रहा इस से एक नक्षत्र मास में नक्षत्र १३ मंडल व ४६॥ भाग चलते हैं ॥ १० ॥ अहो भगवन् ! एक चंद्र मास में चंद्र कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! १४ मंडल पन्दरहवा मंडल का चौथा भाग और एक मंडल के १२४ भाग करे वैसे एक भाग अर्थात् एक मंडल के ३२ भाग कर उन का चौथा भाग १८॥ होवे और एक भाग १२४ का है उन का ६२ या भाग करे तो आधा भाग ६२ या होवे यह पूर्वोक्त १५॥ भाग में मिलाने से १६ भाग ६२ ये होवे अर्थात् एक चंद्र मास में चंद्र १४ मंडल व १६ भाग ६२ या चलता है क्यों की एक युग में चंद्र मास ६२ हैं और चंद्र मंडल ८८४ है इस से ८८४ को ६२ से भाग देने से इतने आते हैं अहो भगवन् ! चंद्र मास में सूर्य कितने मंडल चलते है ? अहो गौतम ! पन्दरवे मंडल में चौथा भाग कमपएक भाग १२४ का अर्थात् १४मंडल संपूर्ण और४६॥भाग ६२ या पन्दरवे मंडल का और एक भाग१२४का जिस का आधा भाग ६२वा हुवा यह पूर्वोक्त भागमें मिलाने से ४७ भाग ६२या हुवा इस से एक चंद्र मास में सूर्य १४ मंडल व ४७ भाग ६२ या चलता है क्यों कि एक युग में चंद्र मास ६२ है और सूर्य ९१५ मंडल चलता है इस से ९१५ को ६२ से भाग देने से पूर्वोक्त संख्या आती है अहो

९१	८११	१५	८६०	७५	८६२	८८॥	६६	८७०	५४	१०१	२३	१०२	५४
६४	८५४	२८	८७४	२	८७३	२८	६७	८८५	०	११५	०	११७	३३॥
६५	८५९	४१	८८७	४६	८९०	७॥							

भाग मंडलस्स चराति ता चंदेण मासण णक्खत्ते कइमंडलाइ चरति ? ता पण्णरस चउभागूणाइ मंडलाइ छ चउवीस सते भाग मंडलस्स चरति ॥ ११ ॥ ता उउणा मासण चंद कति मंडलाति चरति ? ता चउदस मंडलाति तीसच एग

भगवन् ! चन्द्र मास में नक्षत्र कितने मंडल चलते हैं ! अहो गौतम ! पन्नरहवे मंडल में चतुर्थ भाग कम अर्थात् १४ मंडल व ४६॥ भाग ६२ या और १ भाग १२४ ये मिल के तीन भाग ६७ ५ होवे इस से एक चन्द्र मास में नक्षत्र १४ मंडल ४९॥ भाग ६२ ये चलते है एक युग में चन्द्र मास ६२ हैं और नक्षत्र ९१७॥ मंडल चलते है इस से इस को ६२ का भाग देने स पूर्वोक्त संख्या आती है ॥११॥ अब ऋतु मास का कथन करते हैं अहो भगवन् ! ऋतु मास में चन्द्र कितने मंडल चलता है ! अहो गौतम ! १४ मंडल व ३० भाग ६१ या चलता हैं क्यों कि एक युग में ऋतु मास ६१ हैं और चंद्र मंडल ८८४ हैं इस स ८८४ को ६१ स भाग देने से १४ मंडल व ३० भाग ६१ ये होवे अहो

चंद्र मास में चलने की मंडल संख्या

चंद्र मास	चंद्र मंडल		सूर्य मंडल		नक्षत्र मंडल		चंद्र मास	चंद्र मंडल		सूर्य मंडल		नक्षत्र मंडल	
	मंडल	भा ६७	मंडल	भा ६१	मंडल	भा ६२		मंडल	भा ६७	मंडल	भा ६१	मंडल	भा ६२
१	१४	१६	१४	४७	१४	४९॥	१४	२२९	१८	२०३	१८	२०७	२१
२	२८	३	२९	३४	२९	३७	१५	२१३	५४	२२१	२३	२२१	६०॥
३	४२	४८	४४	१७	४४	२४॥	१६	२२८	८	२३६	८	२३६	४८
४	५७	२	५९	२	५९	१२	१७	२४२	२४	२५०	५५	२५१	३५॥
५	७१	१८	७३	४१	७३	६१॥	१८	२५६	४०	२६५	४	२६६	२३
६	८५	३४	८८	३४	८८	४९	१९	२७०	५६	२८	२५	२८१	१०॥
७	९९	५०	१०३	१९	१०३	३६॥	२०	२८५	१०	२९५	१	२९५	६०
८	११४	४	११८	४	११८	२४	२१	२९९	२६	३०९	५०	३१०	४७॥
९	१२८	२०	१३२	५३	१३३	११॥	२२	३१३	४२	३२४	४२	३२५	३५
१०	१४२	३६	१४७	३६	१४८	६१	२३	३२७	५८	३३९	२७	३४०	२२॥
११	१५६	५	१६२	२१	१६२	४८॥	२४	३४२	१२	३५४	१२	३५५	१०
१२	१ १	६	१७७	६	१७७	३६	२५	३५६	२८	३६८	५९	३६९	५९॥
१३	१८५	२२	१९१	५३	१९२	२३॥	२६	३७०	४४	३८३	४४	३८४	४७

महादेव-सूर्य महित सूत्र सप्तम जपाङ्ग

सूत्र

द्धिभाग मडलस्स चरति उउणा मासेण सर कति पुच्छा ता पण्णरस मडलाति चरति ॥ ता उउणा मासेण णक्खत्त पुच्छा ? ता पण्णरस मडलाति चरति पचम बावीसे सत भाग मडलस्स ॥ १२ ॥ ता आइच्चेण मासेण चद कति मडलाति चरति ता चउद्दस मडलाति चरति एक्कारसय पण्णरस भाग मडलस्स आइच्चेण मासेण सूरे कति

अर्थ

भगवन् ! ऋतु मास में सूर्य कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! एक ऋतु मास में सूर्य १५ मंडल चलता है एक युग में ऋतु मास ६१ है और सूर्य ९१५ मंडल चलता है इस से ९१५ को ६१ से भाग देने से १५ मंडल आते हैं अहो भगवन् ! एक ऋतु मास में नक्षत्र कितने मंडल चलते हैं ? अहो गौतम ! एक ऋतु मास में नक्षत्र १५ मंडल व पांच भाग १२२ का चलते हैं क्यों कि एक युग में ऋतु मास ६१ हैं और नक्षत्र ९१७॥ मंडल चलते हैं इस ९१७॥ के ६१ से भाग देने से पूर्वोक्त संख्या होवे ॥ १२ ॥ अहो भगवन् ! आदित्य मास में चंद्र कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! एक आदित्य मास में चंद्र १४ मंडल व ११ भाग १५ के चलता है क्यों कि एक युग में आदित्य मास ६० है और चंद्र मंडल ८८४ हैं इस से ८८४ को ६० का भाग देने से १४ होवे शेष ४४ रहे इस का छेद करने को चार से भाग देनेसे ११ रहा और ६० का छेद १५ हुवा, इस से एक आदित्य मास में चंद्र १४ $\frac{११}{१५}$ मंडल चलता है अहो भगवन् ! एक आदित्य मास में सूर्य कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! एक आदित्य मास में सूर्य पन्नरह मंडल व एक मंडल का चौथा भाग अर्थात् १५॥ मंडल चलता है एक युग

ऋतु मास में चलने के मंडल

ऋतु मास	चंद्र मंडल मंडल	चंद्र मंडल मा ६१	सूर्य मंडल मंडल	नक्षत्र मंडल मंडल	नक्षत्र मंडल भाग १२२	ऋतु मास	चंद्र मंडल मंडल	चंद्र मंडल मा ६१	सूर्य मंडल मंडल	नक्षत्र मंडल मंडल	नक्षत्र मंडल भाग १२२
१	१४	३०	१५	१५	५	१४	२०२	५४	२१०	२१०	७
२	२८	६०	३०	३०	१०	१५	२१७	२३	२२५	२२५	७५
३	४३	२९	४५	४५	१५	१६	२३१	५३	२४०	२४०	८०
४	५७	५९	६०	६०	२०	१७	२४६	२२	२५५	२५५	८५
५	७२	२८	७५	७५	२५	१८	२६०	५२	२७०	२७०	९०
६	८६	५८	९०	९०	३०	१९	२७५	२१	२८५	२८५	९५
७	१०१	२७	१०५	१०५	३५	२०	२८९	५१	३००	३००	१००
८	११५	५७	१२०	१२०	४०	२१	३०४	२०	३१५	३१५	१०५
९	१३०	२६	१३५	१३५	४५	२२	३१८	५०	३३०	३३०	११०
१०	१४४	५६	१५०	१५०	५०	२३	३३३	१९	३४५	३४५	११५
११	१५९	२५	१६५	१६५	५५	२४	३४७	४९	३६०	३६०	१२०
१२	१७३	५५	१८०	१८०	६०	२५	३६२	१८	३७५	३७५	३
१३	१८८	२४	१९५	१९५	६५	२६	३७६	४८	३९०	३९०	८

सूत्र

पुच्छा ? ता पण्णरस चउभागाति मडलाति पंचायथीस सत्तेभागे मडलस्स चरति पुच्छा ? ता पण्णरस चउभागाति मडलाति चरति ? ता पण्णरस मडलाति ॥ १३ ॥ ता अभिवड्डिएणं मासण चंदे कति मडलाति चरति ? ता पण्णरस मडलाति

अर्थ

मे आदित्य मास ६० हैं और सब मंडल ९१५ हैं इस से ९१५ को ६० का भाग देने से १५। रहे अहो भगवन् ! एक आदित्य मास में नक्षत्र कितने मडल चलते हैं ? अहो गौतम ! एक आदित्य मास में नक्षत्र १५। मडल पांच भाग १२० या चल अर्थात् १५। मडल १ भाग २४ या चले क्योंकि एक युग में आदित्य मास ६० और नक्षत्र ९१७॥ मडल चलता है इस को ६० से भाग देने से १५ मंडल सपूर्ण आये ऊपर १७॥ रहा उस के २४ या भाग करन को २४ से गुनने से ४२० हुवे उसे ६० का भाग देने से ७ आये इस स एक आदित्य मास में नक्षत्र १५ मंडल और ७ भाग ६४ या चलता है ॥ १३ ॥ अहो भगवन् ! अभिवर्धन मास में चंद्र कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! पंचाइ मडल व एक मंडल क १८६ भाग करे वैसे ८३ भाग चंद्र एक अभिवर्धन मास में चलता है एक युग में अभिवर्धन मास ५७$\frac{?}{??}$ हैं और चंद्र एक युग में ८८४ मडल चलता है यहां मास के तेरीवे भाग करने का ५७ का १३ स गुना करके तीन मिलाना ५७×१३=७४१+३=७४४ होते यह एक अभिवर्धन युग के मानना इस को भिन्न मास के मडल निकालना होवे उनने को १३ से गुनना और जो ... ८८४ से गु कर ७४४ से भाग देना, जो आवे सो मडल मानना यहां पपप ...

आदित्य मास में चलने की मंडल संख्या

मा०	चंद्र मंडल		सूर्य मंडल		नक्षत्र मंडल		मा०	चंद्र मंडल		सूर्य मंडल		नक्षत्र मंडल	
मास	मंडल	भा १५	मंडल	भा ४	मंडल	भा २४	मास	मंडल	भा १५	मंडल	भा ४	मंडल	भा २४
१	१४	११	१५	१	१५	७	१४	२०६	४	२११	२	२२४	२
२	२९	७	३०	२	३०	१४	१५	२२१	०	२२८	३	२२९	९
३	४४	३	४५	३	४५	२१	१६	२३५	११	२४४	०	२४४	१६
४	५८	१४	६१		६१	३	१७	२५	७	२५९	१	२५९	२३
५	७३	१०	७६	१	७६	११	१८	२६५	३	२७४	२	२७५	६
६	८८	६	९१	२	९१	१८	१९	२७९	१४	२८९	३	२९०	१३
७	१०३	२	१०६	३	१०७	१	२०	२९४	१०	३०५	०	३०५	२०
८	११७	१३	१२१	०	१२२	८	२१	३०९	६	३२०	१	३२१	३
९	१३२	९	१३६	१	१३७	१५	२२	३२४	२	३३५	२	३३६	१०
१०	१४७	५	१५२	२	१५२	२२	२३	३३८	१३	३५	३	३५१	१७
११	१६२	१	१६७	३	१६८	५	२४	३५३	९	३६६	०	३६७	०
१२	१७६	१२	१८३	०	१८३	१२	२५	३६८	५	३८१	१	३८२	७
१३	१९१	८	१९८	१	१९८	१९	२६	३८३	१	३९६	२	३९७	१४

सीतालीसय भागेहिं अहिय ति चउद्दसहिं अट्ठासिते हिं गतहिं मंडल छेत्ता ॥१४॥ ता एगमेगेणं अहोरत्तेणं चंदे कति मंडलाति चरति ? ताएगं अद्ध मंडलं चरति, एकतिसाते भागेहिं ऊण नवहिय पण्णरसहिं सतेहिं अद्ध मंडल छेत्ता चरति ॥ ता एगमेगेणं अहोरत्तेण सूरे कति मंडलाति चरति ? ता एग अद्ध मंडल

है और नक्षत्र ९१७॥ मंडल चलते हैं इस को १३ से गुना करने से ११९२७॥ होवे, इस को ७४४ से भाग देने से १६ मंडल शेष २३॥ भाग रहे इस का १४८८ से गुना करने से ३४२१४८ होवे इस ७४४ का भाग देने से ४७ आये इस से एक अभिवर्धन मास में नक्षत्र १६ मंडल चलते हैं एक युग के १३ भाग यहां ग्रहण किये हैं इस में से जितने मास का निकालना होवे उतने भाग से चंद्र सूर्य व नक्षत्र के मंडल से गुना करके ७४४ से भाग देना और जो आवे सो मंडल जानना इस तरह करने से अभिवर्धन मास के प्रथम भाग में चंद्र १ मंडल सूर्य १ और नक्षत्र १ मंडल चलते हैं ॥ १४ ॥ अहो भगवन् ! एक अहोरात्रि में चंद्र कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! एक अर्ध मंडल के ९१५ भाग वैसे ४४२ भाग एक अहोरात्रि में चंद्र चलता है क्यों कि एक युग में अहोरात्रि १८३० हैं और चंद्र ८८४ मंडल चलता है इस से ८८४ का १८३ से भाग देने से इतने भाग होते हैं अहो भगवन् ! एक अहोरात्रि में सूर्य कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! एक अहोरात्रि में सूर्य एक अर्ध मंडल चलता है क्यों कि एक युग में अहोरात्रि १८३० हैं और सूर्य मंडल

सूत्र

चरति नक्खत्त जोय ताव ण मंडलस्स चरति ॥ ता अभिवड्ढिएण मासेण सूरे पुच्छा? ता मासस्स मण्डालं तिहिं भागेहिं ऊणगाति दो अट्ठयालीसमण्हि भागे मंडल छत्ता चरति ॥ ता अभिवड्ढिएण मासेण णक्खत्त कति मंडलाति चरति? ता सालसमंडलाइ

अर्थ

है इस से इस का १३ से गुना करने से १३ होवे फीर ८८४ से गुनने से ११४९२ होवे इस का ८८४ से भाग देने से १३ मंडल हुए, शेप ११० रहे इस को १८६ का भाग करने का १८६ से गुनना, जिस से ६१७ होवे इस का ८८४ से भाग देने से ८१ भाग आये अहो भगवन् ! एक अभिवर्धन मास में सूर्य कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! एक अभिवर्धन मास में सूर्य २४८ के तीन भाग कम चौदह (१४ —) मंडल चलता है एक युग में अभिवर्धन मास के ७४४ भाग १३ के होते हैं और सूर्य २१५ मंडल चलता है जो मास के मंडल निकालना होवे उस तेरह गुना करके २१५ से गुना कर ७४४ भाग देना यही मगध मास का निकालना है इस को तेरह गुना करने से १३ होवे इस फीर २१५ से गुना करने से ११८२५ होवे इस के ७४४ से भाग देने से १५ मंडल व शेष ७१० रहे इस को २४८ से भाग करने को २४८ से गुना करना जिस से १८११८० होवे उस को ७४४ का भाग देने से २४५ भाग होवे अहो भगवन् ! एक अभिवर्धन मास में नक्षत्र कितने मंडल चलते हैं ? अहो गौतम ! एक अभिवर्धन मास में नक्षत्र १६ मंडल व एक मंडल १४८८ भाग करे वैसे ४७ भाग अर्थात् १६$\frac{47}{1488}$ मंडल चलते हैं एक युग में अभिवर्धन मास के ७४४ भाग १३ के

चरति ता एगमेगेणं अहोरत्तेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरइ ॥ ता एगं अद्ध मंडलं दोहिं भागेहिं अहिंगं सतेहिं दुबतीसेहिं सएहिं अद्ध मंडलं छेत्ता चरंति॥ १५ ॥ ता एगमेगेणं मंडलं चंदे कतिहिं अहोरत्तेहिं चरति? ता दोहिं अहोरत्तेहिं एकतीसाए भागेहिं अहितेहिं चउहिं चत्तालेहिं सतेहिं रातिंदियंच्छेत्ता, चरति ताएगमेगेणं मंडले सूरे कतिहिं

९१५ हैं इस से ५१ को १८३० से भाग देने से एक आधा मंडल पूरा आता है अहो भगवन्! एक अहोरात्रि में नक्षत्र कितने मंडल चलता है? अहो गौतम! एक अहोरात्रि में नक्षत्र एक मंडल के ७३२ भाग करे वैसे ३६७ भाग चलता है क्यों कि एक युगमें १८३ अहोरात्रि हैं और ९१७॥ नक्षत्र मंडल हैं ०१७॥ को १८३० से भाग देने से इतने आते हैं ॥ १५ ॥ अहो भगवन्! एक २ मंडल चंद्र कितनी अहोरात्रि में चलता है? अहो गौतम! एक २ मंडल पर चंद्र दो अहोरात्रि व एक अहोरात्रि के ४४२ भाग करे वैसे ३१ भाग (२-$\frac{३१}{४४२}$) अहोरात्रि में चलता है एक युग में १८३० अहोरात्रि हैं और चंद्र ८८४ मंडल चलता है इस से १८३ को ८८४ से भाग देने से २-$\frac{३१}{४४२}$ अहोरात्रि होवे अहो भगवन्! एक २ मंडल पर सूर्य कितनी अहोरात्रि में चलता है? अहो गौतम! सूर्य एक २ मंडल पर दो अहो रात्रि में चलता है क्यों की एक युग की १८३० अहोरात्रि हैं और मंडल ९१५ हैं, १८३० को ९१५ से गुना करने से दो अहोरात्रि होती हैं अहो भगवन्! एक २ मंडल पर नक्ष

अहोरत्ताहिं चरति? ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरइ॥ ता एगमेगेण मडले पुच्छा? दोहिं अहोरत्तेहिं छोहिं भागेहिं ऊणा तिहिं सत्तसट्ठे सतेहिं रातिंदिय छेत्ता ॥ १६ ॥ ता जुगेण चद कति मडल ति चरति? ता अट्ठचुलसी सतेमडल चरति। ता जुगेण सूर कति मडलाति

कितनी अहोरात्रि में चलता है ? अहो गौतम ! एक मंडल पर एक मंडल के ३६७ भाग करे वैसे दो भाग दो अहोरात्रि में कम (१ ३६६/३६७ अहोरात्रि) में चलता है एक युग में १८३० अहोरात्रि हैं और नक्षत्र ९१७॥ मंडल चलता है ९१७॥ को आधे करके दो गुणा करना, जिससे १८३५ अर्ध मंडल हुवे १८३० को दुगुने करने से ३६६० हुवे इस से ३६६० अहोरात्रि को १८३५ से भाग देने से इतने होते हैं ॥ १६ ॥ अहो भगवन् ! एक युग में चंद्र कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! एक युग में चद्र ८८४ मंडल चलता है क्यों की एक युग में १८३० अहोरात्रि है, इस के मुहूर्त ५४९०० होते हैं एक मुहूर्त मे चद्र एक मंडल के १०९८०० भाग करे वैसे १७६८ भाग चलता है, इस से युग के मुहूर्त ५४९०० की साथ १७६८ से गुणा करने से ९७०६३२०० होते इतने भाग एक युग में चले इसका मंडल करने से १०९८०० से भाग देने से ८८४ मंडल होवे अहो भगवन् ! एक युग में सूर्य कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! एक युग में सूर्य ९१५ मंडल चलता है क्यों की एक युग के मुहूर्त ५४९०० है और सूर्य एक मंडल के १०९८०० भाग करे वैसे १८३० भाग चलता है, इस से ५४९०० को १८३० से गुणा करने से १००४६७०००

चरति ता एगमेगेण अहोरत्तेण णक्खत्ते कति मंडलाइं चरइ ॥ ता एग अद्ध मंडल दोहिं भागेहिं अहिगं सतहिं दुबतिसहिं सएहिं अद्ध मंडल छेत्ता चरति॥ १५ ॥ ता एगमेगेण मंडल चंदे कतिहिं अहोरत्तेहिं चरति? ता दोहिं अहोरत्तेहिं एकतीसाए भागेहिं अहितहि चउहिं चतालेहि सतेहिं रातिदियच्छेत्ता, चरति ताएगमगेणं मंडले सूरे कतिहिं

९१५ है इस से ५१ को १८३० से भाग देने से एक आधा मंडल पूरा आता है अहो भगवन् ! एक अहोरात्रि में नक्षत्र कितने मंडल चलता है ? अहो गौतम ! एक अहोरात्रि में नक्षत्र एक मंडल के ७३२ भाग करे वैसे ३६७ भाग चलता है क्यों कि एक युगमें १८३ अहोरात्रि हैं और ९१७॥ नक्षत्र मंडल हैं ९१७॥ को १८३० से भाग देने से इतने होते हैं ॥ १५ ॥ अहो भगवन् ! एक २ मंडल चंद्र कितनी अहोरात्रि में चलता है ? अहो गौतम ! एक २ मंडल पर चंद्र दो अहोरात्रि व एक अहो-रात्रि के ४४२ भाग करे वैसे ३१ भाग (२—३१/४४२) अहोरात्रि में चलता है एक युग में १८३० अहो रात्रि हैं और चंद्र ८८४ मंडल चलता है इस से १८३ को ८८४ से भाग देने से २—३१/४४२ अहोरात्रि होवे अहो भगवन् ! एक २ मंडल पर सूर्य कितनी अहोरात्रि में चलता है ? अहो गौतम ! सूर्य एक २ मंडल पर दो अहो रात्रि में चलता है क्यों की एक युग की १८३० अहोरात्रि हैं और मंडल ९१५ हैं, १८३० को ९१५ से गुना करने से दो अहोरात्रि होती है अहो भगवन् ! एक २ मंडल पर नक्ष

॥ पोडश प्राभृतम् ॥

ता कहते दोसिणा लक्खणा आहितेति वदेज्जा ? ता दोसिणा तिया चदलेस्सा ता दोसिणा तिया चदलेसा किं अट्ठे किं लक्खणे?ता एग अट्ठे एगलक्खणे आहितेति वदेज्जा ॥ १ ॥ ता कहते सूरे लक्खणा आहितेति वदज्जा ता सूरलेस्सातिया आयावेति २ ताकिं अट्ठ किं लक्खण ? ता एगट्ठे एग लक्खणा॥ २ ॥ ता कहत छाया लक्खणे आहिताति वदेज्जा? ता अधकारे तिया छायातिया ता अंधकार तिया छायातिया किं अट्ठे किं लक्खणे ? ता एगट्ठे एग लक्खण ॥ इति सोलसम पाहुड सम्मत्त ॥ १६ ॥ *

अथ सोलहवा पाहुडा कहते हैं अहो भगवन् ! उद्योत का लक्षण कैसे कहा ? अहो गौतम ! उद्योत चंद्र लक्षण से होता है अहो भगवन् ! उद्योत अथवा चंद्र लेश्या किसलिये कही अथवा उस का क्या लक्षण है ? अहो गौतम ! उस का एक अर्थ कहा और एक लक्षण कहा ॥१॥ अहो भगवन् ! सूर्य का क्या लक्षण कहा ? अहो गौतम ! जहां सूर्य लेश्या वहां आताप होता है अहो भगवन् ! जहां सूर्य लेश्या वहां आताप किस प्रकार कहा ? अहो गौतम ! एक अर्थ ताप का व एक अर्थ लेश्या का कहा ॥ २ ॥ अहो भगवन् ! छाया किसे कहते हैं अर्थात् छाया का क्या लक्षण है ? अहो गौतम ! जहां अंधकार है वहां छाया है अहो भगवन् ! जहां अंधकार है वहां छाया है उस का क्या लक्षण कहा ? अहो गौतम ! एक अर्थ अंधकार का और एक लक्षण अंधकार करने का है यह चंद्र प्रज्ञप्ति सूत्र का सोलहवा पाहुडा संपूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

वरगंधधरा अव्वोच्छिन्ने नयट्ठयाए अण्णे चयति अण्णे उववज्जति आहितेति वदेज्जा इति सत्तरसम पाहुड सम्मत्त ॥ १७ ॥ * * * * *

देव बड़ा बलवंत महानुभाववाले, महासुखवाले, श्रेष्ठ वस्त्र धारन करनेवाले, श्रेष्ठ माला धारन करनेवाले, श्रेष्ठ गंध धारन करनेवाले, अविच्छिन्नपने आयुष्य पूर्ण होने पर चवते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं यों चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र में सतरहवा पाहुडा संपूर्ण हुवा ॥ १७ ॥

॥ सप्तदश प्राभृतम् ॥

सूत्र

ता कहते चयणोववात आहितेति वदेज्जा ? तत्थ खलु इमातो पण्णवीस पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ तंजहा तत्थेगे एव माहंस ता अणुसमय मेव चंदिम सूरिया अण्णे चयति अण्ण उववज्जति आहितेति वदेज्जा ? एगे पुण एव माहंसु अणुमुहुत्त मेव चंदिम सूरिया अण्णे चयति अण्ण उववज्जति वदेज्जा एवं जाव जहेवहेट्ठिताए पण्णवीस पडिवत्तीओ, तता एत्थवि भाणियव्वातो जाव अणुउसप्पिणिमेव चंदिम सूरिया अण्णे चयति अण्णे उववज्जति आहितेति वदेज्जा एगे एव माहंसु ॥ १ ॥ वयंपुण एव वयामा ता चंदिम सूरियाए जो इसिया देवा महिड्डिया महाजसा महाबला महाणुभावा महासुक्खा वरवत्थधरा वरमल्लधरा

अर्थ

अब सत्तरहवा पाहुडा कहते हैं अहो भगवन् ! चंद्र सूर्य का चवण व उत्पन्न होने का कैसे कहा ? अहो गौतम ! इस विषय में अन्य तीर्थीकी प्ररूपना रूप पचीस प्रतिपत्तियों कही हैं कितनेक ऐसा कहते हैं कि अनुसमय में चंद्र सूर्य अन्य उत्पन्न होते हैं और अन्य चवते हैं कितनेक ऐसा कहते हैं प्रत्येक मुहूर्त में चंद्र सूर्य अन्य उत्पन्न होते हैं व अन्य चवते हैं यों जिस प्रकार स्थापने में भी पचीस प्रतिपत्ति कही वैसे ही यहां कहना यावत् प्रत्येक उत्सर्पिणी में चंद्र सूर्य अन्य उत्पन्न होते हैं व अन्य चवते हैं ॥ २ ॥ इस कथन को हम इस प्रकार कहते हैं कि चंद्र सूर्य दोनों ज्योतिषी के देव महर्द्धिक, महाद्युति-

अबाहाए उवरिल्लेतारारूवे चार चरति ॥ २ ॥ ता हेट्ठिल्लातोणं तारारूवातो दस जोयण अबाहाए सूर विमाणे चार चरति, तयाणं असीत जोयण अबाहाए चदविमाणे चार चरति, तयाण वीस जोयण अबाहाए तारारूवे चार चरति एवं अहेव जीवाभिगमे तहेव णेयव्व सब्भतर ज चार सठाण पमाण वहति, सीहगाति इड्ढ तारतर अग्गमाहिसीता ठिति अप्पाबहुय जाव तारातो सखेज्जगुणा ॥ इति अट्ठारसम पाहुड सम्मत्त ॥ १८ ॥

का विमान है, और २०० योजन ऊंचे ऊपर का तारा मंडल है ॥ २ ॥ नीचे का तारा मंडल से दश योजन ऊंचे सूर्य का विमान है उस से ८० योजन ऊपर चंद्र का विमान है, वहां से बीस योजन ऊंचे ऊपर का तारा मंडल है यों जैसे जीवाभिगम सूत्र में कहा वैसे ही कहना ११० योजन में ज्योतिष चक्र है बाहिर व आभ्यंतर कौनसा नक्षत्र है ? वगैरह सब वक्तव्यता कहना चंद्रादिक के विमान के संस्थान की वक्तव्यता कहना, चंद्रादि के विमान की लम्बाइ, चौडाइ का प्रमाण, विमान को वहन करने वाले, शीघ्रगति, ऋद्धि अंतर, अग्रमहिषियों, स्थिति, अल्पाबहुत्व वगैरह सब यहां कहना यावत् तारा भी संख्यातगुने हैं। यह चंद्र प्रज्ञप्ति सूत्र का अठारहवां पाहुडा संपूर्ण हुआ ॥ १८ ॥

बत्तीससूर अट्ठत्तीसमाति चंदे, तत्तीसमूर अट्ठ चउत्तीसातिमाति चंदे चउत्ती सूरे, अट्ठपण्णत्तीसतिमाति चद एगे एव माहसु ॥ एगे पुण पणतीसच जोयण सहस्साति सूरे उड्ढ उच्चत्तेण अट्ठछत्तीसतिमातिचंदे एग एव माहसु ॥ १ ॥ वयं पुण एवं वयामो ता इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागाओ सत्तणउत जोयणसत अबाहाए हिट्ठिल्लतारारूव चार चरति अट्ठजोयणसए अबाहाए सुर विमाण चारं चरति, अट्ठसी जोयणसए अबाहाए चंदविमाण चारं चरति, णव जोयणसए

योजन चंद्र ऊंचा, २० बीस हजार योजन सूर्य ऊंचा साढे बीस हजार योजन चंद्र ऊंचा, २१ इकीस हजार योजन सूर्य ऊंचा साढे इकीस हजार योजन चंद्र ऊंचा २२ बाइस हजार योजन सूर्य ऊंचा साढे बाइस हजार योजन चंद्र ऊंचा २३ तेइस हजार योजन सूर्य ऊंचा साढे तेइस हजार योजन चंद्र ऊंचा २४ चोवीस हजार योजन सूर्य ऊंचा साढे चोवीस हजार योजन चंद्र ऊंचा २५ हजार योजन सूर्य ऊंचा साढे पचीस हजार योजन चंद्र ऊंचा ॥ १ ॥ इस तरह अन्यतीर्थी की प्ररूपणा करकर भगवंत अपना मत कहते हैं इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुत समरमणीय भूमिभाग से ७९० योजन ऊंचे अबाधा से सब से नीचे का तारा मंडल है, आठसो योजन ऊंचे सूर्य का विमान है, और आठसो अस्सी योजन ऊंचे चंद्र

अबाहाए उवरिल्लेतारारूवे चार चरति ॥ २ ॥ ता हेट्ठिल्लातोणं तारारूवातो दस जोयण अबाहाए सूर विमाणे चार चरति, तयाण असीत जोयण अबाहाए चदविमाणे चारं चरति, तयाण वीस जोयण अबाहाए तारारूवे चार चरति एवं अहेव जीवाभिगमे तहेव णेयव्व सब्भतर ज चार सठाण पमाण वहति, सीहगाति इड्ढु तारतर अग्गमाहिसीता ठिति अप्पाबहुय जाव तारातो सखेज्जगुणा ॥ इति अट्ठारसम पाहुड सम्मत्त ॥ १८ ॥

का विमान है, और २०० योजन ऊंचे ऊपर का तारा मंडल है ॥ २ ॥ नीचे का तारा मंडल से दश योजन ऊंचे सूर्य का विमान है उस से ८० योजन ऊपर चंद्र का विमान है, वहां से बीस योजन ऊंचे ऊपर का तारा मंडल है यों जैसे जीवाभिगम सूत्र में कहा वैसे ही कहना ११० योजन में ज्योतिष चक्र है याबत सब आभ्यंतर कौनसा नक्षत्र है ? वगैरह सब वक्तव्यता कहना चंद्रादिक के विमान के के संस्थान की वक्तव्यता कहना, चंद्रादि के विमान की लम्बाइ, चौडाइ का प्रमाण, विमान को वहन करने वाले, शीघ्रगति, ऋद्धि मंडर, अग्रमहिषियों, स्थिति, अल्पाबहुत्व वगैरह सब यहां कहना यावत् ताराओं संख्यातगुने हैं। यह चंद्र प्रज्ञप्ति सूत्र का अठारहवां पाहुडा संपूर्ण हुआ ॥ १८ ॥

संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति ता लवणेणं समुद्दे किं समचक्कवाल संठिते विसम चक्कवाल संठिते? ता समचक्कवाल संठित नो विसम चक्कवाल संठिते, ता लवणेणं समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा ? ता दोय जोयण सय सहस्साति चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस जोयण सयसहस्साति एक्कासीइं च सहस्साति एगसत उणयालिसे जोयणसत किंचिविसेसूणा परिक्खेवेणं॥ ता लवणेणं समुद्दे चत्तारि चंदा पभासिंसुवा जाव ताराओ ॥ २ ॥ ता लवण समुद्दं धायति संडे णाम दीवे

लवण समुद्र वाल वर्तुलाकार चूडी के संस्थान से संस्थित है सब चारों तरफ परिधि से घेरा हुआ है अहो भगवन् ! यह लवण समुद्र क्या सम चक्रवाल संस्थानवाला है या विषम चक्रवाल संस्थानवाला है ? अहो गौतम ! यह लवण समुद्र सम चक्रवाल संस्थित है परंतु विषम चक्रवाल संस्थित नहीं है अहो भगवन् ! यह लवण समुद्र कितना चक्राकार चौडाइ में है और कितनी परिधि है ? अहो गौतम ! दो लाख योजन चक्रवाल में चौडाइ है और इस की परिधि १५८११३९ योजन में कुछ न्यून है इस लवण समुद्र में चार चंद्रने प्रकाश किया, प्रकाश करते हैं व प्रकाश करेंगे यावत् तारा पर्यंत कहना अर्थात् ४ चंद्र, ४ सूर्य १५२ ग्रह, ११२ नक्षत्र और २६७९०० क्रोडाक्रोड ताराओं का जानना ॥ २ ॥ लवण समुद्र को चारों तरफ धातकी खंड वर्तुलाकार संस्थानवाला यावत्

वट्ट वलयाकार सठिते जाव चिट्ठति ॥ ता धायति खंडेण दिवे किं समचक्कवाल सठिते एव विक्खंभो परिक्खवो जातिस जहा जीवाभिगम जाव तारातो ॥ ४ ॥ ता धायति सडण दिव कालोएण समुद्दे वट्ट वलयागारे जाव चिट्ठति ॥ ता कालोएण समुद्द किं समचक्कवाल सठिते विसमचक्कवाल एवं विक्खंभो परिक्खेवो ओतिसच भाणियव्व जाव तारासा ॥ ५ ॥ ता कालोयण समुद्दे पुक्खरवरेण दीवे

रहता है अहो गौतम ! धातकी खंड क्या सम चक्रवाल संस्थानवाला है या विषम चक्रवाल संस्थानवाला है ! अहो गौतम ! जैसे जीवाभिगम सूत्र में कहा वैसे ही यहां जानना यावत् तारा पर्यंत कहना धातकी खंड चार लाख योजन का चक्रवाल से चौडाइ में है उस की परिधि ४११०९६० योजनसे कुछ अधिक है इसमें १२ चंद्र, १२ सूर्य, १०५६ ग्रह, ३३७ नक्षत्र और ८०३७०० क्रोडाक्रोड ताराओं हैं ॥ ४ ॥ इस धातकी खंड की चारों तरफ कालोदधि समुद्र वर्तुलाकार रहा हुवा है अहो भगवन् ! यह कालोदधि समुद्र क्या समचक्रवाल है या विषम चक्रवाल है ! अहो गौतम ! इस की चौडाइ, परिधि, यावत तारा यह सब जीवाभिगम सूत्र से जानना यह कालोदधि समुद्र आठ लाख योजन का चक्रवाल से चौडाइ में है, इस की परिधि ९१७०६०५ योजन से कुछ अधिक की है इस में ४२ चंद्र, ४२ सूर्य ३६९६ ग्रह ११७६ नक्षत्र २८१२९५० क्रोडाक्रोड ताराओं हैं ॥ ५ ॥ अब

मवगिरिक्लिसिंत्ताण चिट्ठति ता लवणण समुद्द किं समचक्कवाल संठिते विसम चक्कवाल संठिते? ता समचक्कवाल संठित नो विसम चक्कवाल संठिते ता लवणेण समुद्दे कवतिय चक्कवालविक्खंभेण केवतिय परिक्खेवेण आहितेति वदेज्जा ? ता दोण जोयण सय सहस्साति चक्कवालविक्खंभेण पण्णरस जोयण सयसहस्साति एक्कासीइं च सहस्साति एगसत उणयालीसे जोयणसए किंचिविसेसूणा परिक्खेवेणं॥ ता लवणेण समुद्दे चत्तारि चंदा पभासिंसुवा जाव ताराता ॥ ३ ॥ ता लवण समुद्द धायति संडे णाम दीवे

लवण समुद्र गोल वर्तुलाकार चूडी के संस्थान से संस्थित है सब चारों तरफ परिधि से घेरा हुवा है अहो भगवन् ! यह लवण समुद्र क्या सम चक्रवाल संस्थानवाला है या विषम चक्रवाल संस्थानवाला है ? अहो गौतम ! यह लवण समुद्र सम चक्रवाल संस्थित है परंतु विषम चक्रवाल संस्थित नहीं है अहो भगवन् ! यह लवण समुद्र कितना चक्राकार चौडाइ में है और कितनी परिधि है ? अहो गौतम ! दो लाख योजन चक्रवाल में चौडाइ है और इस की परिधि १५८११३९ योजन में कुछ न्यून है इस लवण समुद्र में चार चंद्रने प्रकाश किया, प्रकाश करते हैं व प्रकाश करेंगे यावत् तारा पर्यंत् कहना अर्थात् ४ चंद्र, ४ सूर्य १५२ ग्रह, ११२ नक्षत्र और २६७९०० क्रोडाक्रोड ताराओं का जानना ॥ ३ ॥ लवण समुद्र को चारों तरफ धातकी खंड वर्तुलाकार संस्थानवाला यावत्

वट्ट वलयाकार सठिते जाव चिट्ठति ॥ ता धायति खडण दिवे किं समचक्कवाल सठिते, एव विक्खभो परिक्खवो जोतिस जहा जीवाभिगम जाव तारातो ॥ ४ ॥ ता धायति सडण दिव कालोएण समुद्दे वट्टे वलयागारे जाव चिट्ठति ॥ ता कालोएण समुद्द किं समचक्कवाल सठित विसमचक्कवाल एव विक्खभो परिक्खेवो जोतिसच भाणियव्व जाव ताराता ॥ ५ ॥ ता कालोयण समुद्द पुक्खरवरेण दीवे

रहता है अहो गौतम ! धातकी खड क्या सम चक्रवाल सस्थानवाला है या विषम चक्रवाल सस्थानवाला है ? अहो गौतम ! जैसे जीवाभिगम सूत्र में कहा वैसे ही यहां जानना यावत् तारा पर्यंत कहना धातकी खड चार लाख योजन का चक्रवाल से चौडाइ में है उस की परिधि ४११०९६० योजन से कुछ अधिक है इसमें १२ चंद्र, १२ सूर्य, १०५६ ग्रह, ३३६ नक्षत्र और ८०३७०० क्रोडाक्रोड ताराओं हैं ॥ ४ ॥ इस धातकी खड की चारों तरफ कालोदधि समुद्र वर्तुलाकार रहा हुवा है अहो भगवन् ! यह कालोदधि समुद्र क्या समचक्रवाल है या विषम चक्रवाल है ? अहो गौतम ! इस की चौडाइ, परिधि, यावत् तारा यह सब जीवाभिगम सूत्र से जानना यह कालोदधि समुद्र आठ लक्ष योजन का चक्रवाल से चौडाइ में है, इस की परिधि ९१७०६०५ योजन से कुछ अधिक की है इस में ४२ चंद्र, ४२ सूर्य ३६९६ ग्रह ११७६ नक्षत्र २८१२९५० क्रोडाक्रोड ताराओं हैं ॥ ५ ॥ इस

किं समचक्कवाल संठिते, एव विक्खभा परिक्खेवो जोतिस जाव तारानो ॥ ८ ॥
ता मणुस्सक्खेत्तण केवतिय आयाम विक्खभेण वदेज्जा ? एव विक्खभो परि
क्खवो जातिस जाव ताराओ एगससिपरिवारो तारागण कोडाकोडीण ॥ ९ ॥
ता पुक्खरवरण दाव पुक्खरादेनाम समुद्दे वट्ट वलयागारे जाव चिट्ठति एव विक्खभो

अभ्यन्तर पुष्करार्द्ध द्वीप क्या सम चक्रवाल संस्थान वाला है या विषम चक्रवाल संस्थान वाला है ?-यह अभ्यन्तर अर्ध पुष्करद्वीप आठ लक्ष योजन का चक्रवाल से चौड़ा है इस की परिधि १४२३०२४९ योजन से कुछ अधिक की है इस में ७२ चंद्र वगैरह सब पूर्वोक्त कहना वैसे कहना यावत् ४८२२२०० क्रोडाक्रोड ताराओं हैं ॥ ८ ॥ अहो भगवन् ! मनुष्य क्षेत्र कितना लम्बा चौड़ा है ? अहो गौतम ! मनुष्य क्षेत्र ४५ लाख योजन का लम्बा चौड़ा है इस की परिधि १४२३०२४९ योजन से कुछ अधिक की है इस में १३२ चंद्र १३२ सूर्य, ११६१६ ग्रह ३६९६ नक्षत्र व ८८४०७०० क्रोडाक्रोड ताराओं हैं १३२ चंद्र की दो पंक्ति हैं तथथ ६६ चंद्र की पंक्ति नैऋत्य कून में हैं और ६६ चंद्र की पंक्ति ईशान कून में वैसे ही १३२ सूर्य की पंक्ति हैं जिस में ६६ सूर्य की एक पंक्ति अग्निकून में हैं और ६६ सूर्य की दूसरी पंक्ति वायव्य कून में हैं. ये मेरु पर्वत की चारों ओर चलते हैं एक चंद्र का परिवार ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र व ६६९७५ क्रोडाक्रोड ताराओं का है ॥ ९ ॥ इस पुष्करवर द्वीप को पुष्करोदधि नामक

वट्ट वलयाकार जाव चिट्ठति त पुक्खरवरण दिवे किं समचक्कवाल विक्खंभो परिक्खवेण आहिएति वदेज्जा जाव तारातो ॥ ६ ॥ ता पुक्खरवरदीवस्सणं दीवस्स बहुमज्झदेसभाग एत्थण माणुसुत्तरणाम पव्वत वट्टे वलयाकार सठाण सठि, जेण पुक्खरवर दीव दुहा विभयमाण २ चिट्ठति तजहा अब्भतर पुक्खरद्धच बाहिं पुक्खरद्धच ॥ ७ ॥ ता अब्भितर पुक्खरद्धेण

अहो ! समुद्र की चारों तरफ पुष्कर वर नामक द्वीप वलयाकार रहा हुआ है यह पुष्करवर नामक द्वीप क्या सम चक्रवाल है या विषम चक्रवाल है ? अहो गौतम ! इस का विष्कंभ, परिधि यावत् तारा पर्यंत सब जीवाभिगम से जान । अब इस पुष्कर वरद्वीप में सोलह लाख योजन का चक्रवाल से रहा हुआ है इस की परिधि १२२८९८२३ से कुछ अधिक की है इस में १४४ चन्द्र, १४४ सूर्य, १२६७२ ग्रह ४०३२ नक्षत्र, ९६४४४०० क्रोडाक्रोड ताराओं हैं जिस में से ७२ चन्द्र ७२ सूर्य ६३३६ ग्रह, २०१६ नक्षत्र ४८२२२०० क्रोडाक्रोड तारा इतने स्थिर हैं और इतने ही चलते हैं ॥ ६ ॥ इस पुष्करवर नामक द्वीप की १६ लाख योजन की चक्रवाल चौडाई के बहुत मध्य भाग में मानुषोत्तर नामक पर्वत है यह मानुषोत्तर नामक पर्वत वर्तुलाकार चूडी के आकार वाला है यह पुष्करवरद्वीप अभ्यंतर पुष्करवरद्वीप व बाह्य पुष्करवर द्वीप ऐसे दो भाग करके रहा हुआ है ॥ ७ ॥ यह

॥ विंशतितम प्राभृतम् ॥

ता कहते अणुभावे आहितेति वदज्जा ? तत्थ खलु इमाओ दोपडिवत्तीओ पण्णत्ताओ तंजहा तत्थणं एगे एव माहंसु-चंदिम सूरियाण नो जीवा अजीवा नो घणा सिरा बायरबोंदिधरा कलेवराणत्थिण तसि उट्ठाणेतिवा कम्मेतिवा बलेतिवा वीरिएतिवा पुरिसक्कार परक्कमेतिवा, ते नो विज्जुत लवंति नो असणि लवंति नो थणिय लवंति अहेण बादर काइयाए समुच्छंति,अहेण बादर वाउयाए समुच्छंतिवा विज्जुपि लवंतिवा असणिं लवंति थणियपि लवंति ॥ १ ॥ एगे पुण एवमाहंसु ता चंदिम सूरियाण जीवा नो अजीवा घणा णो झुसिरा बादर बोंदिधरा कलेवरा

अब बीसवा पाहुडा कहते हैं अहो भगवन् ! अनुभाव कैसे कहा ? अहो गौतम ! इस विषय में अन्य तीर्थि की प्ररूपणा रूप दो प्रतिपत्तियों कही है कितनेक ऐसा कहते हैं कि चंद्र सूर्य जीव नहीं परंतु अजीव हैं, घन निबिड नहीं हैं परंतु झुसिर पोले हैं बादर शरीर धारण करनेवाले कलेवर मात्र हैं उन का उत्थान कर्म, बल वीर्य व पुरुषात्कार पराक्रम नहीं है विद्युत्स्थान में नहीं प्रवर्तते हैं, असनी जैसे नहीं बोलते हैं, वर्षा जैसे गर्जारव नहीं करते हैं, परंतु बादर काय अथवा बादर वायु काया में से संमूर्छिमपने उत्पन्न होकर विद्युत्स्थान प्रवर्तते हैं यावत् मेघ गर्जना करते हैं २ दूसरे ऐसा कहते हैं कि चंद्र सूर्य जीव हैं परंतु अजीव नहीं है घन निबिड है परंतु पोलारवाले नहीं हैं बादर शरीर के धारन

परिक्खेवा जोतिसच माणियव्वं जहा जीवाभिगमे जाव सयंभूरमणे ॥ ॥ इति एगूणवीसम पाहुडं सम्मत्तं ॥ १९ ॥ * * * * * * * *

समुद्र वर्तुलाकार है यह १० लाख योजन का चक्रवाल से चौड़ाई में है, इस की परिधि १०००८४७ की साधिक कही इस में ८०२ चन्द्र ८२० सूर्य ४१२२१ ग्रह ११५७६ नक्षत्र १२९५१७००० क्रोडाक्रोड ताराओं है इस का सब कथन जीवाभिगम सूत्र से स्वयंभूरमण समुद्र के अधिकार पर्यंत कहना यह उन्नीसवा पाहुडा सम्पूर्ण हुवा ॥ १९ ॥

सूत्र

ता अत्थिणं से राहुदेवे जेणं चंदसूरंच गिण्हति तेण एवं माहंसु ता राहुणं देवं चंदंसूरंच गिण्हमाण बुद्धंतेण गिण्हति बुद्धं तेणं गिण्हतित्ता बुद्धंतेण मुयति, बुद्धं तेण मुयतित्ता मुद्धंतेण गिण्हति मुद्धंतेण गिण्हतित्ता मुद्धंतेण मुयति, वाम भुयंतेण गिण्हति२त्ता वाम भुय तेणं मुयति, वामभुयंतेण गिण्हइत्ता दाहिण भुयंतेण मुयति, दाहिण भुय तेण गिण्हतित्ता वामभुयंतेण मयति दाहिण भुयागिण्हइत्ता दाहिण भुयंतेण मुयति गए माहंसु एवं॥४॥ तत्थ जे त एवं माहंसु ता णत्थिणं से राहुदेवे जेणं चंदसूरंचगिण्हइ,

अर्थ

जो ग्रहण करता है वह राहु है उन का कथन इस तरह है कि यह राहु देव चंद्र सूर्य को ग्रहण करता हुवा अधो भाग से ग्रहण करता है और अधो भाग छोडकर चलता है अधो भाग से ग्रहण करता है और ऊर्ध्व भाग से छोडकर चलता है, ऊर्ध्व भाग से ग्रहण कर चलता है और अधो भाग से छोडता है ऊर्ध्व भाग से ग्रहण करता है और ऊर्ध्व भाग से छोडता है वाम भुजा से ग्रहण कर वाम भुजा से छोडता है वाम भुजा से ग्रहण कर दक्षिण की भुजा से छोडता है, दक्षिण भुजा से ग्रहण कर वाम भुजा से छोडता है, दक्षिण भुजा ग्रहण कर दक्षिण भुजा से छोडता है यों कितनेक कहते हैं ॥४॥ अब जो अन्य तीर्थि एसा कहते हैं कि चंद्र सूर्य को जो ग्रहण करता है वह राहु देव नहीं है इन का कथन ऐसा है कि चंद्रमा

सूत्र

अवि एण तासि उद्वाणातिवा जाव पुरिसक्कार परक्कमातिवा तण विज्जपि लब्भति असविसिल्लयति एगे एव माहंसु ॥ १ ॥ वय पुण एव वयामो ता चंदिमसूरियाण देवा महिड्डिया जाव महासुक्खा वरवत्थधरा वरगंधधरा वरमल्लधरा वराभरणधरा अवोच्छित्तिणयट्ठयाए अण्णचयति अण्णउववज्जति आहितेति वदेज्जा ॥ २ ॥ ता कहं ते राहु कम्म आहितेति वदेज्जा तत्थ खलु इमाता दो पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ तत्थेगे एव माहंसु ता अत्थिण से राहु देवे जेण चंदिम सूरंच गिण्हति एगे एव माहंसु ता णत्थिण से राहु देवे जेण चंदं सूरंच गिण्हति ॥ ३ ॥ तत्थण जेते एव माहंसु

अर्थ

करनेवाले नहीं हैं परंतु उन को उत्थान कर्म बल वीर्य व पुरुषाकार पराक्रम है वे विद्युत्समान सर्वत हैं एवं समान होते हैं मेघ समान गर्जारव करते हैं ॥ १ ॥ हम कथन का हम इस प्रकार कहते हैं कि चन्द्र व सूर्य दोनों देव हैं वे महर्द्धिक यावत् महा सुखवाले हैं श्रेष्ठ वस्त्र धारन करनेवाले हैं, श्रेष्ठ गंध धारन करनेवाले हैं श्रेष्ठ माला धारन करनेवाले हैं श्रेष्ठ आभरण धारन करनेवाले हैं, वे अविच्छिन्नपना से आयुष्य का क्षय होने से चवते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥ अहो भगवन्! राहु की क्रिया कैसे कही? अहो गौतम! इस विषय में अन्यतीर्थी की प्ररूपणा रूप दो प्रतिपत्तियों कहीं कितनेक एसा कहते हैं कि राहु देव है कि जो चन्द्र सूर्य को ग्रहण करता है और कितनेक एसा कहते हैं कि जो चन्द्र सूर्य को ग्रहण करता है वह राहु नहीं है ॥ ३ ॥ जो अन्य तीर्थी ऐसा कहते हैं कि चन्द्र सूर्य का

ता अत्थिण से राहुदेवे जेणं चदसूरंच गिण्हाति तेणं एव माहंसु ता राहुणं देवं चंदसूरंच गिण्हमाण मुद्धतेणं गिण्हाति मुद्ध तेण गिण्हातित्ता मुद्धतेण मुयाति, मुद्ध तेण मुयातित्ता मुद्धतेण गिण्हाति मुद्धतेण गिण्हतित्ता मुद्धतेण मुयति, वाम भुयंतेण गिण्हाति२त्ता वाम भुय तेणं मुयति, वामभुयंतेण गिण्हइत्ता दाहिण भुयतेण मुयाति, दाहिण भुय तेण गिण्हतित्ता वामंभुयतेण मुयाति दाहिण भुयागिण्हइत्ता दाहिण भुयतेण मुयति गए माहंसु एवं॥४॥ तत्थ जे ते एवं माहंसु ता णत्थिण से राहुदेवे जेण चंदसूरंच गिण्हइ,

जो ग्रहण करता है वह राहु है उन का कथन इस तरह है कि यह राहु देव चंद्र सूर्य को ग्रहण करता हुवा अधो भाग से ग्रहण करता है और अधो भाग छोडकर चलता है अधो भाग से ग्रहण करता है और ऊर्ध्व भाग से छोडकर चलता है ऊर्ध्व भाग से ग्रहण कर चलता है और अधो भाग से छोडता है ऊर्ध्व भाग से ग्रहण करता है और ऊर्ध्व भाग से छोडता है वाम भूजा से ग्रहण कर वाम भूजा से छोडता है वाम भूजा से ग्रहण कर दक्षिण की भूजा से छोडता है, दक्षिण भूजा से ग्रहण कर वाम भूजा से छोडता है, दक्षिण भूजा ग्रहण कर दक्षिण भूजा से छोडता है यों कितनेक कहते हैं ॥४॥ अब जो अन्य तीर्थि एसा कहते हैं कि चंद्र सूर्य को जो ग्रहण करता है वह राहु देव नहीं है इन का कथन ऐसा है कि पचास

लेण एवं माहंसु तत्थ खलु इमे पण्णरस कसिणापुग्गला पण्णत्ता तजहा सिंघडए जडिलए खरए खरए अंजणे खंजणे, सीतले हिमसीतले कलासे अरुणप्पहे पभंजणे नभपूरए कविलए पिंगलए राहू॥ ता जयाण एए पण्णरस कसिणा पोग्गला सत्ता चदस्सवा सूरस्सवा लेसाणुबंध चारिणो भवति तताण मणुस्सलोगे मणुस्सा वयति एवखलु राहु च दं वा सूरंवा गिण्हति॥ ता जयाण एए पण्णरस कसिणा पोग्गला नो चदस्सवा सूरस्स लेसाणुबंध चारिणो भवति तयाण्ण मणुस्सलोगे मणुसावयति एए खलु राहु चंदं सूरंवा गिण्हइ एगे एव माहंसु ॥ ५ ॥ वयपुण एवं वयामो

कृष्ण पुद्गल को हैं जिन के नाम—१ सिंघाटक २ जटिल ३ खुहक ४ खर ५ अंजन ६ खंजन ७ ... ८ हिमसीतल ९ कैलास १० अरुणप्रभ ११ प्रभंजन १२ नभसूर १३ कापिल १४ पिंगल और राहु ये उक्त पन्नरह प्रकार के कृष्ण पुद्गल संपूर्ण चंद्र अथवा सूर्य की लेश्या को आवरणरूप हैं तब मनुष्य लोक में ऐसा कहता है कि राहु चंद्र व सूर्य का ग्रहण करता है और जब उक्त पन्नरह प्रकार के कृष्ण पुद्गलों चंद्र सूर्य को आवरणरूप नहीं होते हैं तब मनुष्य लोक में ऐसा कहते हैं कि राहु चंद्र सूर्य का ग्रहण नहीं करता है ॥ ५ ॥ भगवान कहते हैं कि इस कथन को मैं इस प्रकार कहता हूं कि

ता राहुण देवे महिड्डिए जाव महासुक्खे वरवत्थधरे जाव वराभरणधारी राहुस्स णं देव
स्स णव णामधिज्जा प० तजहा सिंघाडए, जडिलए, खत्तए, खरए, दद्दुरे, मगरे, मच्छे, कच्छभे,
किण्हसप्पे ॥ ६ ॥ राहुस्स णं देवस्स विमाणा पंचवण्णा पण्णत्ता तजहा किण्हा
नीला लोहिया हालिद्दा सुक्किला ॥ ७ ॥ अत्थि कालए राहुविमाणे खंजण वण्णाभे
पण्णत्ते, अत्थि णीलए राहु विमाणे लाउयवण्णाभे पण्णत्ते, अत्थि लोहिए मंजिट्ठावण्णाभे
पण्णत्ते, अत्थि पीए हालिद्दवण्णाभे पण्णत्ते, अत्थि सुक्किलए भासरासिवण्णाभे पण्णत्ते
॥ ८ ॥ ता जयाणं राहु आगच्छमाणेवा गच्छमाणेवा विउव्वमाणेवा परियारेमाणेवा

राहु देव महर्द्धिक यावत् महा सुखवाला है श्रेष्ठ वस्त्र धारन करनेवाला, श्रेष्ठ आभूषण धारन करनेवाला है इस राहु देव के नव नाम कहे हैं तद्यथा—१ सिंघाटक २ जटिल ३ क्षुल्लक ४ खर ५ दद्दुर ६ मगर ७ मच्छ ८ कच्छ और ९ कृष्ण सर्प ॥ ६ ॥ इस राहु का विमान पांच वर्णवाला कहा है तद्यथा—१ कृष्ण २ नील ३ रक्त ४ पीत और ५ शुक्ल ॥ ७ ॥ राहु का कृष्ण वर्ण का विमान खंजन के वर्ण समान है, २ नीलवर्ण वाला राहुका विमान तुम्बे के वर्ण जैसा है ३ रक्त राहुका विमान मजीठ के रंग समान है ४ पीला राहुका विमान हलदी के वर्ण समान है और ५ शुक्ल वर्ण वाला राहुका विमान भस्म समान है ॥ ८ ॥ जब राहुदेवता आता हुवा, जाता हुवा, विकुर्वणा करता हुवा, व परिचारणा करता

तेण एव माहसु तत्थ खलु इम पण्णरस कसिणापुग्गला पण्णत्ता तजहा सिंघाडए जडिलए खमए खरए अंजणे खंजणे, सीतल हेमसीतल कलासे अरुणप्पहे पभंजणे नभपूरए कविलए पिंगलए राहु॥ ता जयाण एए पण्णरस कसिणा पोग्गला सया चदस्सवा सूरस्सवा लेसाणुबद्ध चारिणो भवति ततण मणुस्सलोगे मणुस्सा वयति एवखलु राहु चंदं वा सूरवा गिण्हति॥ ता जयाण एए पण्णरस कसिणा पोग्गला नो चदस्सवा सूरस्स लेसाणुबद्ध चारिणा भवति, तयाण मणुस्सलोगे मणुसा वयति एए खलु राहु चंदं सूरवा गिण्हइ एगे एव माहसु ॥ ५ ॥ वयपुण एव वयामो

प्रकार के कृष्ण पुद्गल कहे हैं जिन के नाम—१ सिंघाटक २ जटिल ३ क्षुल्लक ४ खर ५ अंजन ६ खंजन ७ शीतल ८ हिमसीतल ९ कैलास १० अरुणप्रभ ११ प्रभंजन १२ नभसूर १३ कपिल १४ पिंगल और १५ राहु यह उक्त पन्नरह प्रकार के कृष्ण पुद्गल संपूर्ण चंद्र अथवा सूर्य की लेश्या को आवरणरूप होते हैं तब मनुष्य लोक में ऐसा कहता है कि राहु चंद्र व सूर्य का ग्रहण करता है और जब उक्त पन्नरह प्रकार के कृष्ण पुद्गलों चंद्र सूर्य को आवरणरूप नहीं होते हैं तब मनुष्य लोक में ऐसा कहते हैं कि राहु चंद्र सूर्य को ग्रहण नहीं करता है ॥ ५ ॥ भगवान कहते हैं कि इस कथन को मैं इस प्रकार कहता हूं कि

सूत्र

दाहिण पुरत्थिमेण वितिवयइ, उत्तरपुरत्थिमेण आवरित्ता दाहिणपच्चत्थिमेण वितिवयाति
ता अयाण उत्तरपुरत्थिमेण चंदे उवदंसेति दाहिण पच्चत्थिमेण राहु ॥ १ ॥ ता
जयाण राहु आगच्छमाणेवा गच्छमाणवा विउव्वेमाणवा परियारेमाणेवा चदस्सलेसे
आवरेमाणे चिट्ठति तयाण मणुस्सलोगे मणुस्सा वयति एव खलु राहुणा चंदेवा सूरवा
गहिए, एव ता जयाण राहु आगच्छमाणेवा गच्छमाणेवा जाव परियारेमाणेवा चदस्सवा सू-
रस्स लेस्सा आवरेत्ता पातेण वितिवयाति तयाण मणुस्सलोगे मणुस्सा वयति एव खलु चदेणवा

अर्थ

सूर्य दीखता है और वायव्यकून में राहु दीखाता है जब दक्षिण पश्चिम नैऋत्यकून में से चंद्र सूर्य की लेश्या को ढक कर उत्तर पूर्व (ईशानकून) में जब राहु आता है तब नैऋत्यकून में चंद्र सूर्य दीखाते हैं और ईशानकून में राहु रहता है जब वायव्यकून में चंद्र सूर्य की लश्या ढककर अग्निकून में राहु आता है तब वायव्यकून में चंद्र सूर्य दीखाते हैं और अग्निकून में राहु रहता है जब ईशानकून में चंद्र सूर्य की लेश्या ढककर नैऋत्यकून में राहु आता है तब ईशानकून में चंद्र सूर्य दीखाते हैं और नैऋत्यकून में राहु रहता है ॥ १ ॥ जब राहु आता आता हुआ विकुर्वणा करता हुआ या परिचारणा करता हुआ चंद्र अथवा सूर्य की लश्या को आवरण करता हुआ रहता है तब मनुष्यों कहते हैं कि राहुने चंद्र व सूर्य को ग्रहण किया जब राहु आवे जावे, विकुर्वणा करते अथवा परिचारणा करते चंद्र सूर्य की लश्या का

पण्णत्ता?गोयमा दुविहे राहु पण्णत्ता तजहा धुवराहुय पव्वराहुय ॥११॥ तत्थण जेसे धुवराहु सेणं बहुलपक्खस्स पडिवए पण्णरसति भागेण पण्णरस भाग चदस्स लेस्स आवरेमाणे चिट्ठति तजहा पढमाए पढम भाग बितियाए बितियभाग जाव पण्णरसेसु पण्णरसमभाग, चरमसमए चदरत्ते भवति अवसेस समए चंदरत्ते विरत्ते भवति॥ता मेव सुक्कपक्खस्स उवदसमाण २ चिट्ठति तजहा पढमाए पढमभाग जाव पण्णरसं भाग चरम समए चद विरत्ते भवति अव समए चदे रत्तेविरत्ते भवति॥१२॥ तत्थण जसे पव्वराहु

है ! अहो गौतम ! राहु के दो भेद कहे हैं जिन के नाम १ ध्रुवराहु और २ पर्व राहु ॥ ११ ॥ इन में से जो ध्रुवराहु है वह कृष्ण पक्ष का प्रतिपदा के दिन पन्नरह भाग से आवरण कर पन्नरहवे दिन पन्नर भाग को चद्र लेश्या का आवरण कर रहता है अथवा प्रतिपदा को प्रथम भाग, द्वितिया को दो भाग यावत् चतुर्दशी के दिन चउदह भाग १५ वी अमावास्या के दिन पन्नरह भाग चरम समय में चंद्र रक्त होकर आवरण करने वाला होवे अर्थात् अमावास्या के चरम समय में चद्र को सर्वथा प्रकार से आवरण करता है अमावास्या का चरम समय वर्जकर शेष समय में चद्र रक्त व विरक्त होवे वैसे ही शुक्ल पक्ष म चंद्र को पकाता हुवा राहु रहता प्रतिपदा का एक भाग यावत् पन्नरहवी तीथी का पन्नरह भाग पूर्णिमा के चरम समय में चद्र विरक्त होवे व शेष समय में चद्र रक्त व विरक्त होता है ॥ १२ ॥ जो पर्व राहु है वह जघन्य छ मास उत्कृष्ट ४२ मास में चद्र का ग्रहण करे

सूरण राहुस्सकुच्छी भिन्नाए एवं ता जयाणं राहु आगच्छमाणेवा गच्छमाणेवा जाव परिआगमाणेवा चंदस्सवा सूरस्सवा लेस्सं आवरित्ताणं पच्चोसक्कइ तयाणं मणुस्सलोगे मणुस्सा वयंति एवं खलु चंदे वा सूरे वा राहुणा वंत । एवं ता जयाणं आगच्छमाणेवा गच्छमाणेवा चंदस्सवा सूरस्सवा आवरित्ताणं मज्झेणं वितिवयति तयाणं मणुस्सलोगे मणुस्सा वयंति एवं राहुणा चंदेवा सूरेवा विइवाति चाणिए एवं ता जयाणं राहु आगच्छमाणेवा गच्छमाणेवा चंदस्सवा सूरस्सवा अहे सपक्खं सपडिदिसिं आवरेमाणं चिट्ठति तयाणं मणुस्सलोगे मणुस्सा वदंति एवं खलु राहुणा । चंदेवा सूरेवा घत्थे एवं ॥ १० ॥ ता कतिविहेणं राहु

आवरण कर पास में होकर आवे तब मनुष्य लोक में मनुष्यों कहते हैं कि चंद्र सूर्य की कुक्षि राहुने भेदी अथवा राहु के अंदर में चंद्र सूर्य गया एस ही राहु आते, जाते, विकुर्वणा करते अथवा परिचारणा चंद्र अथवा सूर्य की लेश्या को आवरण कर पीछा नीकले तब मनुष्य लोक में मनुष्यों कहते हैं कि राहुने चंद्र सूर्य का वमन किया एसे ही जब राहु देवता आते जाते विकुर्वणा करते या परिचारणा करते चंद्र अथवा सूर्य की लेश्या का चारों दिशा में रुककर रहता है तब मनुष्य लोक में मनुष्य कहते हैं राहुने चंद्र अथवा सूर्य का ग्रहण किया अर्थात् संग्राम हुवा ॥ १० ॥ अहो भगवन् ! राहु के कितने भेद कहे

जोतिंदस्स, जोतिसरन्नो कतिअग्गमहिसिओ पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा चंदप्पहा सुदंसणा अच्चिमालिणी, पभंकरा॥ तत्थण एगमेगाए देवीए चत्तारि २ सहस्सा रूव विउव्वित्ता एव तत्थव पुव्व भणिय अट्ठारसमे पाहुडे तहाणेयव्वं, जाव नो मेहुणवत्तिय एवं सूररसवि॥१६॥ ता तरिय चंदमाण जोतिसिंद जोतिसरायाणो करिसए कामभोग पच्चणुभवमाणा विहरंति? गोयमा! से जहा णामए कतिपुरिसे पढम जोव्वणुट्ठा बलत्थए॥ पढम जोव्वणुट्ठाण बलत्थाए ठाणस्थ चेव भारियत्ताए

॥१५॥ अहो भगवन् ज्योतिषी के राजा ज्योतिषी का इन्द्र चंद्र को कितनी अग्रमहिषियों कहीं? अहो गौतम! चार अग्रमहिषियों कही जिन के नाम-१ चंद्रप्रभा २ सुदर्शना, ३ अर्चिमाली व ४ प्रभंकरा एक २ इन्द्राणी चार २ हजार रूपको वैक्रय कर वगैरह अठारवे पाहुडे में जैसे जीवाभिगम सूत्र की साक्षी दी वैसे ही यहां मानना यावत् मैथुन करे नहीं जैसे चंद्र की चारों इन्द्राणी का कहा वैसे ही सूर्य का मानना वे मैथुन नहीं करते हैं परन्तु भगवती के दशवे शतक के पांचवे उद्देशे में कहा है ॥१६॥ अहो भगवन्! ज्योतिषी के इन्द्र व ज्योतिषी के राजा चंद्र सूर्य कैसे काम भोग भोगते हुवे विचर रहे हैं? अहो गौतम! प्रथम यौवनावस्था में प्राप्त हुवा कोई पुरुष प्रथम यौवनावस्था वाली भार्या की साथ विवाह करके तुरत ही धन की प्राप्ति के लिये परदेश गया वहां सोलह वर्ष पर्यंत रह

स अट्ठण्णव छप्पन्न मासाण छक्कासण सयाल्लीसात मासाण चदस्स अट्ठताली सति सवच्छराण सूरस्स ॥ १३ ॥ स कणट्ठेण एव वुच्चइ चदे ससी ? गोयमा! चंदस्सण जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो मियंक विमाण कंता देवा कंताता देवीओ कंताति आसणसयणखंभ भंडमत्तोवगरण इ अप्पणाविय ण चदे जोतिसिंदे जोतिसराया सोमे कंत सुभगे पियदंसण सुरूवे ता समणट्ठेण एव श्रयाइ चदेससी ॥१४॥ सकेण ट्ठेण एव वुच्चति सूरे आइच्च ? गोयमा! ता सूरादियाण समयातिवा आवलियातिवा जाव उसप्पिणीतिवा अवसप्पिणीतिवा सेतेणट्ठेण एव वुच्चति सूर आइच्चे ॥ १५ ॥ ता चदस्सण

और अपन्य छ मास अस्सट्ट ८८ वर्ष में सूर्य का ग्रहण करे ॥ १३ ॥ अहो भगवन् ! चद्र को शशी क्यों कहा ? अहो गौतम ! ज्योतिषि के इन्द्र ज्योतिषि के राजा चद्र का मृग के चिन्ह वाला मृगांक नामक विमान है, व ईहर दव व देवियों हैं, मनोहर आसन शयन भड व उपकरण हैं, ज्योतिषि का इन्द्र ज्योतिषी का राजा चद्र स्वयमेव शीतलकारी, सौभाग्यकारी, प्रमकारी सरूप है इस लिये चद्र को शशी कहा है ॥ १४ ॥ अहो भगवन् ! सूर्य को आदित्य क्यों कहा ? अहो गौतम ! सूर्य आदि करने वाला, समय आवलिका, श्वासो श्वास, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, सवत्सर, युग यावत् अवसर्पिणी उत्सर्पिणी का करने वाला है इस से अहो गौतम ! सूर्य को आदित्य कहा है

जोतिंदस्स, जोतिसरन्नो कतिअग्गमहिसिओ पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा चदप्पहा सुदसणा अच्चिमालिणी, पभंकरा ॥ तत्थण एगमेगाए देवीए चत्तारि २ सहस्सा रूव विउव्वित्ता एव तपव पुव्व भाणियं अट्ठारसमे पाहुडे तहाणेयव्व, जाव नो मेहुणवत्तिय एव सूररसवि ॥ १५ ॥ ता संरिय चंदमाण जोतिसिंद जोतिसरायाणो कारिसए कामभोग पच्चणुभवमाणा विहरंति ? गोयमा ! से जहा णामए केतिपुरिसे पढम जोव्वणट्ठा बलत्थए ॥ पढम जोव्वणट्ठाण बलत्थाए ठाणस्स चव भारियत्ताए

॥ १५ ॥ अहो भगवन् ज्योतिषी के राजा ज्योतिषी का इन्द्र चंद्र को कितनी अग्रमहिषियों कही ? अहो गौतम ! चार अग्रमहिषियों कही जिन के नाम—१ चंद्रप्रभा २ सुदर्शना, ३ अर्चिमाली व ४ प्रभंकरा एक २ इन्द्राणी चार २ हजार रूपका वैक्रय कर वगैरह अठारवे पाहुडे में जैसे जीवाभिगम सूत्र की साक्षी दी वैसे ही यहां मानना यावत् मैथुन करे नहीं जैसे चंद्र की चारों इन्द्राणी का कहा वैसे ही सूर्य का मानना वे मैथुन नहीं करते हैं परन्तु भगवती के दशवे शतक के पांचवे उद्देशे में कहा है ॥ १६ ॥ अहो भगवन् ! ज्योतिषी के इन्द्र व ज्योतिषी के राजा चंद्र सूर्य कैसे काम भोग भोगते हुए विचर रहे हैं ? अहो गौतम ! प्रथम यौवनावस्था में प्राप्त हुआ कोइ पुरुष प्रथम यौवनावस्था वाली भार्या की साथ विवाह करके पुरुष ही धन की प्राप्ति के लिये परदेश गया वहां सोलह वर्ष पर्यंत धन

मूल

मंहद अचिरस्स [विग्घ] कज्ज अत्थगवसणताए सालमबाम विप्पवासिते सेण तता लद्धट्ठ कतिकज्ज अणह समग पुण [नि]सिय गिण्हइ हव्वमागते ण्हाए जाव सरीरे [भ]मिण मणुण्णा[त] [ले] थालमिद अट्ठारस वजणाउल भोयण भुत्त समाणे तासि तारिस गति [य] सयगसि अब्भतरओ सचित्त कम्म बाहिरउ दुमित घट्ठमट्ठ विचित्तउल्लोय विल्लगति[ल]गणिरयण पणासियधयार बहुसमरमणिज्जभूमिभाग पचवण्णरस सुरभिमुक्क पुप्फ पुजोवयारे कलित कालागरूपवर कुन्दरुक्क तुतक्कधूव मघमघास गंधुभिराम सुगधवरगधिए गधवट्टिभूए तासि तारिसगसि सयणिज्जसि सालिगण

अर्थ

कार्य साधन में विजयवंत हुवा किसी प्रकार का विघ्न नहीं आया इस तरह करके भवन पर आया आकर स्नान किया मंगलीक कार्य किया, सब अलंकार से विभूषित हुवा मनोज्ञ स्थाल में पकवान व व अठारह प्रकार के शाक सहित भोजन किया फीर पुन्यवंत को योग्य मंदर विविध प्रकार के चित्रों वाला,बाहिर स्वच्छ करके अनेक प्रकार के चित्रों वाला,उपर कपड की छत वाला, रत्नों सहित भूतलवाला उज्वल उद्योतवाला,बहुत रमणीय भूमिभागमें पंचवर्ण रत्न सहित सुगंधित पुष्पों का ढग वाला, कृष्णागर सुगंधि द्रव्य व कुंदरुकादिक धूप से मघमघायमान सुगंधित पदार्थों सहित रहने के घर में पुष्पमय मालि

वट्टीभूए उभओवि घोयणे दुहओ उणए मज्झयण गभीरए गगापुलिण वालुया उद्दालि सलिसए उवचिते पुग्गलपट्टपडिच्छयणे विरातिया ताणे रत्ते सुत्तसवुडे सुरम्मे आयणिगसुय भूरणवणिततुलफासे सुगधवर -कुसुमतृणसयणोवयारिकासिए। तारिसयाए भारियाए सार्द्धं सिगारागार चारुवेसाएमगय जाव जोवणाविलास कलियाए अणुरत्ताए अविरत्ताए मणेणुकुलाए सार्द्धं इट्ठे सद्दफरस रूवगधे पचविहे माणुसए काममोगे पच्चणुभवमाणा विहरेज्जा तिसेणं पुरिसे थितस्सकाल समयसि केरिसय साता सोक्ख पच्चणुभवमाणे विहराति ?एतेण समणाउसो ! तस्सण पुरिसस्स

यों को योग्य, चारों तरफ समान, दोनों बाजु गाल मसूरियें, दोनों बाजू कुच्छ ऊंचा, मध्य भाग गंभीर, जैसे गंगा नदी की वालु पानी में स्वच्छ दिखती है वैसे ही स्वच्छ चादर से चारों तरफ अच्छी तरह ढका हुवा, सुरम्य, बुर वनस्पति समान कोमल, सुगंधित मचान पुष्प समान शैय्या में शृंगार के घर समान यावत् यौवन विलासवंता व मन को अनुकूल भार्या की साथ इष्ट शब्द, रूप, गंध, रस व स्पर्श यों पांच प्रकार के मनुष्य संबंधी कामभोग भोगता हुवा विचरता होवे उस पुरुष को उस समय कैसा सुख होवे ! अहो आयुष्मन्त श्रमणो ! उस पुरुष के काम भोग से वाणव्यंतर के काम भोग अनंतगुने विशिष्टतर है

वद्वीभूए उभओवि थोयणे दुहओ उणए मज्झणए गंभीरए गंगापुलिण वालुगा उद्दालि सलिसए उवचिते पुग्गलपट्टपडिच्छयणे विरातिया ताणे रत्त सुत्तसंवुडे सुरम्मे आयणिगसुय बूरणवणिततुलफासे सुगंधवर कुसुमतुणसयणोवकारिकासिए सारिसयाए भारियाए सर्द्धि सिंगारागार चारुवेसाएसगय जाव जोव्वणाविलास कलियाए अणुरत्ताए अविरत्ताए मणेणुकुलाए सर्द्धि इट्ठे सद्दफरस रूयगंधे पचविहे माणुसए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरेज्जा तिसेण पुरिसे तिस्सकाल समयंसि केरिसयं साता सोक्ख पच्चणुभवमाणे विहराति ? एतेण समणाउसो ! तस्सण पुरिसस्स

यों को योग्य, चारों तरफ समान, दोनों बाजु गाल मसूरियें, दोनों बाजु कच्छ ऊंचा, मध्य भाग गंभीर, जैसे गंगा नदी की बालु पानी में स्वच्छ दिखती है वैसे ही स्वच्छ चादर से चारों तरफ अच्छी तरह ढका हुआ, सुरम्य, पुरु नस्राति समान कोमल, सुगंधित सयान पुष्प समान शैय्या में शृंगार के घर समान यावत् यौवनता विलासवंता व मन को अनुकूल भार्या की साथ इष्ट शब्द, रूप, गंध, रस व स्पर्श यों पांच प्रकार के मनुष्य संबंधी कामभोग भोगता हुआ विचरता होवे उस पुरुषको उस समय कैसा सुख होवे ? अहो आयुष्यवंत श्रमणो ! उस पुरुष के काम भोग से वाणव्यंतर के काम भोग अनंतगुने विशिष्टतर हैं

कामभोगहिंतो वाणमंतराण देवाण एत्तो अणतगुणविसिट्ठतरगाचेव कामभोगा वाणमंतराण देवाण कामभोगहिंतो असुरिंद वज्जियाण भवणवासिण देवाण एत्तो अणतगुण विसिट्ठतरगा चेव कामभोगा असुरिंदवज्जियाणं भवण जाव भोगहिंतो असुरकुमाराण एत्तो अणतगुणा असुरकुमार रण्णाण कामभोगेहिंतो गहगणणक्खत्ततारारूवाण जोइसियाणदेवाण एत्तो अणतगुणा विसिट्ठतरगाचेव कामभोगा गहगणणक्खत्त जाव कामभोगेहिंतो चंदिम सूरियाण जोतिसियाण जोतिसराण एत्तो अणतगुणा विसिट्ठतरगाचेव कामभोगा, ता चंदिम सूरियाणं जोतसिया जोतिसरण्णा एरिसे कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरति॥१७॥तत्थ खलु इमा अट्ठासीति महग्गहा पण्णत्ता तंजहा-इगालए, वियालए, लोहिताए, सणिच्छर, आहुणिए, पाहु-

व्यन्तर के काम भोगों से असुरेन्द्र छोडकर शेष भवनवासी के कामभोग अनंत गुने विशिष्टतर हैं अन्य भवनवासी के कामभोगों से असुर कुमार के कामभोग अनंतगुने विशिष्टतर हैं, असुर कुमार के कामभोगों से ग्रह, नक्षत्र व ताराओं के कामभोग अनंतगुने विशिष्टतर हैं ग्रहगण, नक्षत्र व ताराओं के कामभोगों से ज्योतिषी का राजा, ज्योतिषी का इन्द्र चंद्र सूर्य के कामभोगों अनंतगुन विशिष्टतर भोगवते हुए विचरते हैं ॥ १७ ॥ ज्योतिषी में ८८ ग्रह कहे हैं जिन के नाम—१ अंगारक, २ विकालक, ३ लोहिताक्ष, ४ शनिश्चर, ५ आधुनिक, ६ प्राधुनिक, ७ कनक, ८ कनकनक, ९ कणग, १० विघाणक,

कए कणकणए, कणग वियाणए कणगसंताणए, सोम, सहिए, ... कंसवण्णाभे वन, कच्छण अयकयरए, दुदुभए, सख, शखवण्णे, सखवण्णाभे, कंसे, कसवण्णे, कसवण्णाभे निल, निलाभास, रूप्पे, रूप्पाभासे, भासे, भासरासी, तिले, तिलपुप्फे, वण्णे, दक्खे, दक्खवण्णे, काए, कायकंधे धुमाग्गि धुमकेतु, हरी, पिंगलए, बुहे, सुक्के, वहस्सति, राहु अगस्थी, माणवते, कासे, फासे, धूरे, पमुहे, वियडे, विसंधी, पयले, जयल, अरुणे, अगिलाए, काले, महाकाले, सोत्थिए, सोवत्थिए, वद्धमाणे, पलंब, णिच्चालोए, णिचुज्जोए, सयपहे, सेयकरे, खेमकरे, आभकरे, पभकरे, अरए, असोगे,

११ कणमसंतानक, १२ सोम, १३ सहित, १४ आसासण, १५ हत, १६ कार्यवर्त, १७ कचदम, १८ अपकरक, १९ दुदुभि, २० शंख, २१ शंखवर्ण २२ शंखवर्णाभ, २३ कंस, २४ कंसवर्ण, २५ कंसवर्णाभ, २६ नील, २७ नीलाभास, २८ रूपी २९ रूपीभास, ३० भास, ३१ भासराशी, ३२ तिलपुष्प, ३४ वर्ण ३५ दक्ष, ३६ दकवर्ण ३७ काय, ३८ कायकंध, ३९ धूमाग्नि ४० धूमकेतु, ४१ हरि, ४२ पिंगलक ४३ बुध, ४४ शुक्र ४५ बृहस्पति, ४६ राहु, ४७ अगस्ति ४८ मानवर्त ४९ कास, ५० स्पर्श, ५१ धुर, ५२ प्रमुख, ५३ विकट, ५४ विसंध, ५५ प्रलय ५६ जयल, ५७ अरुण, ५८ अगील, ५९ काल, ६० महा काल ६१ सोथिक, ६२ स्वास्तिक, ६३ वर्धमान, ६४ प्रलंबमान, ६५ नित्य लोक, ६६ नित्य ज्योति ६७ स्वयंप्रभ, ६८ श्रेयकर, ६९ क्षेमकर, ७० आभंकर, ७१ प्रभकर ७२ अरुण नामाग्रह, ७३ अरलके

।जहा, दुआदि,

करज्जार । + ॥ इति स ।उच्छा (गाहा) अभव्वजण

हियय दुलहाइ णमा ॥ उक्कातिया भगवती, जोतिस्स गयस्स पण्णाति ॥ १ ॥

एसगाहिय विमतीयद गारचितमाणे पढिणीए ॥ अवहुस्सूए न देया ॥ तव्वीवरिए

भवदगा ॥ २ ॥ सद्धा हिइ उट्ठाणुच्छाह कम्मबल वीरिए पुरिसक्कारहिं ॥ जोसिक्खि

उवमतो अमायग पक्खिवेज्जाहि ॥ ३ ॥ सोपत्रयण कुलगण सघमाहिरोनाप

७४ विगत स्थाक, ७५ विमत, ७६ विषय, ७७ विमाल, ७८ माल, ७९ मुत्रन, ८० भानेपाति, ८१ म नापुन ८२ एकमग ८३ द्विमद्य, ८४ कर, ८५ कर कटिक, ८६ रायगल, ८७ पुष्पकतु और ८८ महा केतु यों अठयासी ग्रह हैं प्रत्येक ग्रह का चार २ हजार सामानिक देव हैं चार २ अग्र महिषियों हैं, तीन २ परिषदा के देव हैं, सात २ अनिक व अनिक के अधिपति हैं और सोलह हजार आत्म रक्षक देव व अन्य भी स्वविमानवासी देव व देवियों हैं इन सब का अधिपतिपना करते हुवे विचरते हैं पूर्वोक्त आठ मद्रप्ति सूत्र का अर्थ भाग हैं परन्तु अभव्य जीवों को इस का श्रय दुर्लभ होता है ॥१८॥ यह चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र बहुत गुढार्थवाला है इस से इस का ज्ञान दान किस को देना व किस को न देना सो बताते हैं यह उत्कृष्ट भगवती श्री ज्योतिषराज प्रज्ञप्ति का ज्ञान दान स्वयमेव ग्रहण करनेवाले को ऋद्धयादि गर्व अज्ञान से नरकादि गति प्राप्त होवे इस से उन को देना नहीं परंतु नरकादि गति निवारन

सूत्र

विणयि पारद्दाणा ॥ अरिहत थेर गणहर महे किरहोंति वाहिणो ॥ ४ ॥ तम्हो धिति उट्ठाणुच्छाह कम्मबलविरिय सिक्खियनाण॥ धारेयव्व णियमा, णय अविणीए सुदायव्व ॥ ५ ॥ वीर वरस्स भगवओ । जर मर किलेस दोस रहियस्स ॥ वदामि विणय पण्णत्तो, सोक्ख पाइ सपाए ॥६॥ इति चद पण्णत्तीए वीसम पाहुड सम्मत्त॥२०॥

अर्थ

को यह प्रज्ञप्ति का ज्ञान दान देना और भी मात्सर्यादिक युक्त प्रत्यनीक सिद्धांत के खंडन करनेवाले को और जो बहुश्रुत नहीं होवे उन को यह ज्ञान दान नहीं देना परंतु जिन वचन में सम्यक् प्रकार से अभ्यासिपना से अर्थ पर्याय की आराधना करनेवाले सम्यक्त्वी को इस का ज्ञान दान देना अथ शास्त्र के आदान में निपुणपना करते हैं ॥ २ ॥ जो कोई श्रद्धा, धृति, (धैर्य) उत्थान, उत्साह, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार व पराक्रम से सूर्य प्रज्ञप्ति का ज्ञान प्राप्त करके अयोग्य अभव्य को देवे तो देने वाले को भी इस की हानि होवी॥३॥ इस तरह अभव्य को ज्ञान देनेवाला साधु प्रवचन कुल गण व संघ से बाहिर मानना अरिहंत व गणधरों की मर्यादा उल्लंघनेवाला जानना ॥ ४ ॥ इस से धृति, उत्थान, उत्साह, कर्म, बल, वीर्य से ज्ञान ग्रहण कर धारन करना और अविनीत को देना नहीं ॥ ५ ॥ जो जन्म जरामरण के दुःख व अठारह दोष रहित होगये हैं, जिन्होंने निराबाध सुख प्राप्त किया है और जो अन्य को प्राप्त करानेवाले हैं वैसे श्री चौवीसवे वीर भगवान को विनय पूर्वक नमस्कार करता हूं यह सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र का वीसवा पाहुडा संपूर्ण हुवा ॥ २० ॥ यह सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र समाप्त हुवा ० ० ०

* इति अष्टादश *

सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र समाप्तम्.

वीर सवत २४४८

समाप्ति

वीराब्द २४४८ विक्रमाब्द

* इति अष्टादश *

सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र समाप्तम्.

वीर संवत २४४९ माघ वदी २ वार शनि

शास्त्रोद्धार प्रारंभ वीराब्द २४४१ ज्ञान पंचमी

इति सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र समाप्तम्

शास्त्रोद्धार समाप्ति वीराब्द २४४६ विजयादशमी